THE BOOK WAS DRENCHED

TIGHT BINDING BOOK

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_182631

UNIVERSAL
LIBRARY

ЭP—707—25-4-81—10,000.

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

all No. H81 V86S Accession No. G. H2770

uthor विनोबा भावे

itle संक्षिप्त संत-सुधा सार

This book should be returned on or before the date last marked below

1958.

संक्षिप्त

संत-सुधा-सार

वियोगी हरि

●

प्रस्तावना

आचार्य विनोबा भावे

●

१९५८

सत्साहित्य-प्रकाशन

प्रकाशक
मार्तण्ड उपाध्याय
मंत्री, सस्ता साहित्य मंडल,
नई दिल्ली

Checked 1969

पहली बार : १९५८
मूल्य
छः रुपया

Checked 1965

मुद्रक
उद्योगशाला प्रेस,
किंग्सवे, दिल्ली

प्रकाशकीय

'मण्डल' ने अबतक जितना माहित्य प्रकाशित किया है, उसमे इस बात का ध्यान रखा है कि वह जीवन के सभी प्रमुख पहलुओ का स्पर्श कर सके। इस दृष्टि से जहा उसने राजनैतिक तथा सामाजिक साहित्य निकाला है, वहां ऐसे साहित्य का भी प्रकाशन किया है, जो मानव की आध्यात्मिक क्षुधा को शात कर सके। सत-वाणी, बुद्ध-वाणी, महावीर-वाणी, तमिलवेद आदि पुस्तके मण्डल इसी विचार से उसने प्रकाशित की है।

हमे हर्ष है कि कुछ समय पूर्व इस दिशा मे एक वृहद् ग्रथ प्रकाशित हुआ था, जिसमे लगभग सभी मुख्य-मुख्य उत्तर भारतीय सतो की चुनी हुई वाणिया आगई थी।

उसका सकलन और सपादन सत-साहित्य के मर्मज्ञ श्रीवियोगी हरि ने किया था।

बड़े परिश्रम और निष्ठा के साथ तैयार किये गये उस ग्रन्थ का यह सक्षिप्त सस्करण निकल रहा है। इसमे आकार कम हो गया है, लेकिन महत्व के सभी पद आ गये है।

सतो की वाणिया वैसे तो आसान ही होती है, फिरभी इस पुस्तक मे जहा-कही कठिन वाणियां आई है, उनका सरल भाषा मे सकलन-कर्त्ता ने अर्थ देकर ग्रथ को सामान्य पाठको के लिए भी बहुत उपयोगी बना दिया है। सपूर्ण ग्रथ का मूल्य ११) है। इस सक्षिप्त सस्करण का मूल्य ५) रखा गया है। इस प्रकार अब यह सामान्य स्थिति के पाठको के लिए भी सुलभ बन गया है।

—मंत्री

दो शब्द

आचार्य विनोबा ने संतवाणी पर प्रस्तावना में अधिकारपूर्वक जो लिखा है उसके बाद मुझे, संपादक के नाते, इस ग्रंथ के सम्बन्ध में बहुत थोडा लिखने को रह जाता है। संतवाणी का विश्लेषण-विवेचन करने की न मुझमे वैसी सामर्थ्य है, न योग्यता। तथापि, कुछ सांकेतिक-सा वक्तव्यमात्र दे देता हूँ, जो संभवतः आवश्यक है और कदाचित् सहायक भी।

दस-बारह बरस पहले संत-साहित्य देखने का मेरा चाव बहुत बढ़ गया था। समय निकालकर नित्य उसका कुछ-न-कुछ अध्ययन व चिंतन किया करता था। उन्ही दिनो बुद्धवाणी को भी कुछ देखा। कहना चाहिए कि मेरी अध्ययन-यात्रा की यह एक नई मोड़ थी। पहले तो सगुण-साकार का मधुर-मधुर रसगान करनेवाले भक्तों की वाणी की ओर ही मेरा रुझान रहा करता था, जिसका एक परिणाम हुआ "ब्रज-माधुरी-सार" का संकलन-सम्पादन।

सूरदास आदि अष्टछाप की ब्रजवाणी मे गहरे अनुराग की अरुणिमा मैंने दूर से तब कुछ-कुछ देखी थी। पीछे, तुलसी की "विनय-पत्रिका" पाई, तो मानो मंदाकिनी की धवलता पर दृष्टि जा दौड़ी।

और जब बुद्धवाणी के साथ-साथ निर्गुण-निराकारी संतों के "सबद" सामने आये, तो जैसे हिमांचल की शुभ्र रजत-रेखा किसीने मानस-क्षितिज पर आकर खीचदी।

कबीर, रैदास, धर्मदास, नानक, दादू, पलटू आदि की बानी को छूते ही ऐसा लगा कि अलौकिक महारस का पूर्ण परिपाक तो यहीं पर हुआ

है। साहित्यालोचकों के यह कथन अर्थशून्य-से जँचे कि "इन संतों की अटपटी रचनाओं में न तो साहित्यिक सरसता है, न संगीत की लय है और न कला की ऊँची अभिव्यंजना ही, और भाषा भी उनकी ऊबड़-खाबड़-सी है।" मैंने देखा कि रीति-ग्रंथों का फीता लेकर वे साहित्यालोचक संत-वाणी का असीम क्षेत्रफल निर्धारित करने गये थे—चौकोर बँधे हुए तालाब पर धीरे-धीरे सरकनेवाली नौका जैसे असीम अनन्त सागर के बिखरे वैभव को मापने पहुँची हो !

"मसि-कागद" से नाता न रखनेवाले जुलाहों, शिल्पियों और खेतिहरों की अटपटी "बाउल-बानी" की अथाह गहराई में उतरा जाये, तो वहाँ वेद, उपनिषद और त्रिपिटक की झीनी-झीनीं झाँकी तो मिलेगी ही, सूफी औलियों की मौज-मस्ती भी वहाँ लहराती नज़र आयेगी। वेदांत, भागवतभक्ति, ब्रह्मविहार और तसव्वुफ इन सब धाराओं का सहज सुन्दर संगम वहाँ देखने को मिलेगा।

२

मन में उठा कि संतवाणी का एक संग्रह-संकलन किया जाये। बहुत-सी पुस्तकों मे की जो साखियाँ और सबद बहुत प्रिय लगे थे, और जिनका अर्थ लगाने में अधिक अड़चन नहीं पड़ी थी, उन सबपर निशान लगा लिये और संग्रह कर डाला। आदि में दो बौद्ध सिद्धों सरहपाद और तिल्लोपाद तथा दो जैन मुनियों देवसेन और रामसिंह की कुछ सूक्तियाँ बानगी के रूप मे दी हे, जो अपभ्रष्ट हिन्दी में हे। उनका अर्थ भी दे दिया है। संतों की इस मुक्त रस-धारा का उगम यहाँ स्पष्ट दिखता है।

कबीर की बानी को सबसे अधिक लिया, फिरभी तृप्ति नहीं हुई। हो भी कैसे और किसे उस रस-निर्झरणी की एक भी बूँ
जिसके कण-कण में साईं का नौरँगा नूर झिलमिल-झि
हो ?

गुरु नानक के पद पहले मने कुछेक संग्रह-ग्रंथों में देखे थे। सर्व हिन्द सिक्ख मिशन, अमृतसर द्वारा प्रकाशित नागरी लिपि में 'श्रीगुरु ग्रंथसाहिब'

के आधार पर। कुछ शब्दों का अर्थ फिरभी कुछ अस्पष्ट-सा ही रहा है।

संत-सुधा-सार दो-ढाई वर्षतक छपता रहा। पू० ठक्कर बापा के देहावसान के बाद बार-बार, हरिजन-कार्य के सिलसिले मे, प्रवास करना पड़ा, इस कारण प्रूफ बराबर नहीं देख सका, जिससे कुछ भूलें भी रह गई है, और ग्रन्थ के प्रकाशित होने मे इतना अधिक विलंब भी हुआ है।

इस संत-वाणी-संग्रह से यदि संत-साहित्य के अध्ययन-अनुशीलन की लोगों मे कुछ भी अभिरुचि बढी,—विशेषकर विद्यार्थियों में, तो मैं अपने आपको कृतकृत्य मानूँगा।

हरिजन-निवास, दिल्ली
सर्वोदय-दिवस, १९५३

विनीत
वियोगी हरि

संक्षिप्त संस्करण

'संत-सुधा-सार' का यह सक्षिप्त संस्करण है। इसमे स्वामी ग़रीबदास, बाबा धरनीदास, दूलनदासजी, गुलाल साहब तथा लालनाथजी इन संतों को नहीं लिया गया है। चोला-परिचय व बानी-परिचय में कुछ भी हेर-फेर नहीं किया गया है। सबदों और साखियों को मैंने कुछ कम किया है, पर बडे संकोच के साथ कि किसे छोडा जाये। गुरु नानक देव के 'जपुजी' को ज्यों का त्यों रहने दिया है।

किसी-किसी शब्द के अर्थ में भी संशोधन कर दिया है, और जहाँ-जहाँ पर प्रूफ की भूले थीं उन्हे भी सुधार दिया है। बस, इतना ही।

सामने आये
हरिजन-निवास,
दिल्ली
दीपावली, १९५७

विनीत
वियोगी हरि

प्रस्तावना

१

संतों की परंपरा अति प्राचीन काल से आजतक चली आरही है। जब से मानवता का उगम हुआ, संतों का आविर्भाव हुआ है। संतों की वाणी का प्रथम नमूना हमें ऋग्वेद में देखने को मिलता है। ऋग्वेद के कुछ कथानकपर सूक्तों को हम छोडदें, तो बाकी का सारा ऋग्वेद संतों की वाणी ही है।

बहुतों का यह खयाल है कि वेदों मे कर्मकांड ही भरा रहता है। यजुर्वेद आदि में कर्मकांड भी मौजूद है, लेकिन ऋग्वेद के मन्त्र भक्ति-पर संत-गाथाएँ है। उनका सबंध जो भिन्न-भिन्न कर्मो के साथ जोडा गया है, उसका उद्‌देश्य इतना ही है कि उन-उन कर्मो के निमित्त उन-उन प्रसंगों पर अच्छे-अच्छे वचन लोगों के कंठ मे रहे। मेरी मां सुबह आटा पीसने के साथ तुकाराम के भजन गाया करती थी। उन भजनों का आटा पीसने के साथ क्या सम्बन्ध था सिवा इसके कि आटा पीसने में उसे कुछ उत्साहवर्धन होता होगा। इसी प्रकार बहुत सारे ऋग्वेद के सूक्तों का कर्मों के साथ संबंध गिना जा सकता है। सामवेद तो ऋग्वेद में के ही भजनों का चुनाव है, जिनकी एक विशेष ढंग से सामपाठियों ने स्वरलिपि बना रखी थी।

कुछ लोगों का यह ख़याल है कि वेदों मे भक्ति है भी, तो वह बहु-देवता-भक्ति है। लेकिन इसका उत्तर तो स्वयं ऋग्वेद ने ही दिया है। वेद कहता है कि, सत्‌नाम एक ही है; उपासना के लिए उपासक भिन्न-भिन्न रूप पसंद करते है :

एकं सत्, विप्राः बहुधा वदंति।
अग्निं यमं मातरिश्वानं आहुः ॥

अग्नि, यम, वायु ये सारे एक ही परमेश्वर के भिन्न-भिन्न गुणवाचक भिन्न-भिन्न नाम हैं। परमेश्वर परिशुद्ध निर्गुण है, अर्थात् अनंत गुणवान् है। जिस उपासक को अपने मे जिस गुण के विकास की आवश्यकता अनुभव होती है, वह उस गुणवाले भगवान् की भक्ति करता है। जैसे, तुलसीदास ने विनय-पत्रिका मे मंगलमूरति गणनायक, प्रेरक सूर्यनारायण, औढरदानी शंकर, विरक्तिरूपिणी दुर्गा आदि अनेक देवताओं का स्तवन किया, पर हरेक से माँगा यही कि "रामचरण-रति देहु"। ऐसा ही ऋग्वेद के सतों का है। संतों की वाणी में जो भावना की उत्कटता, अंदर की छटपटाहट, भूतमात्र के लिए आदर आदि विशिष्ट भाव दीख पड़ते हैं, वे सारे वैदिक ही हैं। जैसे —

स नः पिताइव सूनवे, अग्ने सूपायनो भव। सचस्वा नः स्वस्तये॥

हे अग्निदेव, ज्योतिर्मय प्रभु, जैसे पिता के पास पुत्र सहज पहुँच॥ जाता है, वैसे ही हम तेरे पास पहुँचे। हमारे मंगल के लिए निरंतर तू हमारे साथ रह।" यह है आर्षवाणी। इसे हम संतवाणी न कहें तो क्या कहें ?

संतवाणी का दूसरा आविर्भाव हमें मिलता है बुद्ध भगवान् की गाथाओं मे। वेदवाणी और बुद्धवाणी मे वैसा ही फ़रक है, जैसा कि तुलसीदास और कबीर मे। तुलसीदास है प्रतिमा वेदवाणी की, और कबीर बुद्धवाणी की। वियोगी हरिजी के **संत-सुधा-सार** का बहुत सारा हिस्सा जो मैने देखा, बुद्धवाणी का नमूना है।

"मनो पुब्बंगमा धम्मा, मनो सेट्ठा मनोमया" यह है धम्मपद का पहला वचन।

इसके साथ देखिए **जपुजी** में गुरु नानक का वचन—

"मन्ने मोख दुवारु मन्नी परवारै साधारु।"

मै तो इन दोनो मे कुछ भी फ़रक नहीं देखता, चाहे अर्थ करनेवाले कितने ही भिन्न-भिन्न अर्थ क्यों न करें। कबीर, नानक, दादू सब एक माला के मणि है, जिनमे मेरुमणि तो मैं बुद्ध को ही समझता हूँ। बुद्ध ने लोक-भाषा में लिखा, यही पीछे के संतों ने भी किया। वेद-वाणी

भी उस ज़माने की लोक-भाषा में याने वैदिक संस्कृत में प्रगट हुई। वेद-वाणी स्वयं यह प्रगट कर रही है :

अहं राष्ट्री संगमनी वसूनाम्

"मैं हूँ सब राष्ट्र की वाणी, सबकी वासनाओं का सगम करनेवाली।" अगर वैदिक ऋषि लोक-भाषा मे न गाते होते, तो "**अहं राष्ट्री**" ऐसा दावा वे नहीं कर पाते।

संतवाणी का तीसरा आविर्भाव हमे मिलता है दक्षिण के शैव और वैष्णव भक्तों मे। **पेरिय आळवार, आंडाळ, नम्माळवार, कुलशेखरर्** आदि वैष्णव, और **संबंधर्, अप्पर्, सुन्दरर्, माणिक्कवाचकर्** आदि शैव भक्तों ने जो परममधुर भजन गाये हैं वे विश्व-साहित्य मे अपना एक विशेष स्थान रखते हैं। वेदवाणी और बुद्धवाणी जो उत्तरभारत से दक्षिण भारत में पहुँची, उनका ऋण चुकाने के लिए शकर, रामानुज आदि वैष्णव आचार्यों ने भक्ति का प्रवाह दक्षिण भारत से उत्तर भारत मे बहाया, उन आचार्यो को यह स्फूर्ति तमिल भाषा मे गानेवाले वैष्णव और शैव संतो से ही मिली। यहाँ एक भ्रम दूर करने की जरूरत है। लोगों का ख़याल है कि रामानुज तो वैष्णव थे, पर शायद शंकर वैष्णव नहीं थे। यह गलत है। जहाँ-जहाँ शंकर प्रतीक-उपासना का दृष्टान्त देते हैं वहाँ "**शालग्रामे इव विष्णुः**" ऐसा ही देते हैं। '**अविनयमपनय विष्णो**" यह विष्णुस्तोत्र शंकराचार्य के मठों में प्रतिदिन गाया जाता है। शंकर ने अपनी माता को दर्शन कराया था ..."**मम भवतु कृष्णोक्षिविषयः**" इस स्तोत्र से। और भाष्य भी उन्होंने लिखा है भगवद्गीता और विष्णुसहस्रनाम पर, जो कि वैष्णव ग्रंथ हैं। हाँ, अद्वैती के नाते वे शिव, विष्णु आदि में भेद नहीं करते थे, और **चिदानन्द रूपः शिवोऽहंशिवोऽहं** गाते थे। शिव और विष्णु का यही अभेद हम तुलसीदासतक में पाते हे, जो कि श्रीराम के अनन्य उपासक थे।

वेदवाणी, बुद्धवाणी और तमिल भक्तवाणी यह मूलत्रयी है, जिसमे से बाद को सारी भारतीय संतवाणी प्रसृत हुई। ज्ञानदेव, नामदेव और तुकाराम; पुरंदरदास और त्यागराज; नरसी मेहता और अखा-

भगत:; तुलसीदास, सूरदास और मीरां बाई; कबीर, नानक, दादू ; शंकरदेव और चैतन्य ये सारे मध्ययुगीन संत विविध पुष्प हैं उस वल्ली के, जिसका मूल उक्त त्रयी में है।

२

संतों की सामान्य सिखावन सर्वलोक-सुलभ और सादी-सी होती है। उनकी जीवन-योजना के मूल में जो बुनियादी विचार पाये जाते हैं वे थोड़े में यह हैं :

(अ) देह की आजीविका के लिए कौटुम्बिक सरणी के या परिस्थिति के अनुसार जिसे जो उद्योग प्राप्त हो उसे निरंतर करते रहना चाहिए। समाज पर भाररूप होकर जीवन बिताना भक्ति के अनुकूल नहीं हो सकता। बल्कि अपने सहजप्राप्त उद्योग की क्रियाओं को ब्रह्मरूप देखने का अभ्यास करना चाहिए। शुद्ध आजीविका के बिना शुद्ध विचार और विवेक संभव नहीं है। इसी विश्वास के कारण हम देखते हैं कि नामदेव "**सोने की सूई**" और "**रूपे का धागा**" लेकर भक्ति-भाव से सीवन सीता रहा और चित्त को हरि में पिरोता रहा। कबीर "**झीनी झीनी चदरिया**" बुनता रहा। और दूसरे संत भी इसी तरह अपना-अपना काम करते रहे। उन कामों को उन्होंने कभी बोझ समझा हो ऐसा नहीं मालूम पड़ता, क्योंकि अपने-अपने उद्योग की परिभाषा में वे अपने अध्यात्म के विचारों को प्रगट करते हुए दीख पड़ते हैं। यद्यपि यह मैं नहीं कह सकता कि "**निष्काम-कर्म=भक्ति**" इस गीतोपदेशित समीकरण को वे मान्य करते थे, या "**निष्काम-कर्म+भक्ति**" ऐसा समुच्चय उनके मन में था। यह बारीक भेद है। इसका निर्देशमात्र करके यहाँ छोड़ देता हूँ।

चाहे समीकरण मानो, चाहे समुच्चय, भक्ति के साथ अकर्मण्यता नहीं टिकती यह बात सभी संतों के अनुभव पर से निश्चित है। जहाँ भक्ति का ही टिकाव न लगे ऐसी किसी अंतिम अवस्था में कर्म गिर पड़े यह संभव है। लेकिन उस स्थिति में तो शरीर ही गिर जाने की बात है। इसलिए यहाँ उसके विचार करने की जरूरत नहीं।

दुर्दैव इस बात का है कि वह अंतिम स्थिति मानो प्राप्त ही हो चुकी ऐसे भ्रम में जान-बूझकर कर्म छोड़ने की घातक मनोवृत्ति, बावजूद संतों के जीवन और उपदेश के, हमारे समाज में फैली हुई है, और कभी-कभी किसी संत-वचन का असंबद्ध आधार भी उसे मिल जाता है।

(आ) अपने शरीर से जितना हो सके उतना परोपकार करना चाहिए। परोपकार का मौक़ा कभी खोना नही चाहिए। संतों के जीवन की यह बहुत ही बुनियादी बात है; बल्कि यही कहना चाहिए कि उनका सारा जीवन ही परोपकारमय होता है। "**उपकार**" शब्द मे हम लोगों को कुछ अहंकार का आभास आता है। वास्तव मे ऐसा नही है। "**उप**" का अर्थ ही "**अल्प**" होता है। मनुष्य को अपने पाँवों पर ही खड़ा रहना होता है, उसे हम गौणरूप से कुछ मदद पहुँचा देते है—यह अर्थ '**उपकार**' शब्द में निहित है।

आजकल हमने सार्वजनिक सेवा का एक आडम्बर-सा बना रखा है। अपने पडौसी की और आसपास के लोगों की, सहजभाव से और स्वभाव से, छोटी-मोटी सेवाएँ करते रहना यह मनुष्य का सहज लक्षण होना चाहिए। मीमांसको की भाषा मे, परोपकार एक नित्यकर्म है, जिसके करने मे कोई पुण्य-लाभ नही होगा, लेकिन न करने में पाप होगा। दाहिने हाथ से किये उपकार का बायें हाथ को पता न लगे, और दोनों हाथो से किये उपकार का मन को पता न लगे।

(इ) "**अहिंसासत्यादीनि चारित्र्याणि परिपालनीयानि**" यह है नारद की आज्ञा, जो थे सब संतों के आदिगुरु। संतों की चारित्र्य-पद्धति मे और नीति-शास्त्र-वेत्ताओं की विचार-सरणी मे एक बड़ा अन्तर यह है कि संतो की श्रद्धा मे अहिंसा-सत्यादि का पालन जाति-देश-काल-समय-निरपेक्ष करना होता है। अर्थात् यह लक्ष्मण की खींची रेखा है, जिसका उल्लंघन सीता भी बिना खतरे के नही कर सकती। विद्वान नीति-शास्त्री भी अहिंसा आदि को मानते तो है, लेकिन इनको वे अविचल या शाश्वत धर्म नहीं मानते, बल्कि परिस्थिति-सापेक्ष या सुभीते के अनुसार मानते है। कुछ समाज-शास्त्री भी कहते हैं कि ये यम-नियम व्यक्ति के लिए

निरपवाद माने भी जायँ, तोभी समाज के लिए इनका निरपवाद पालन न केवल अशक्य है, बल्कि अयोग्य भी है। इस विचार से संतों का घोर विरोध है।

"**आदि सच, जुगादि सच, है भी सच, होसी भी सच**" इस तरह की थी उनकी सत्य-निष्ठा। और हमेशा उनकी आतुरतापूर्वक रटन थी : "**किऊ सचियारा होइये, किऊ कूड़े तुट्टे पाल।**" कैसे हम सच्चे बनेंगे, और कैसे असत्य का पर्दा टूटेगा ? निरपेक्ष-नीति और सापेक्ष-नीति का झगडा लोक-जीवन मे तो जब मिटेगा तब मिटेगा, लेकिन भगवान् की जिसपर कृपा होगी उसके लिए तो वह झगड़ा इसी क्षण मिटेगा। और जिसके मन में यह झगडा मिट गया उसपर भगवान् की कृपा हुई ऐसा समझना चाहिए। भक्ति का यह आरम्भमात्र है।

(ई) सब संतों की सिखावन मे और सब धर्मग्रन्थों में भगवन्नाम की महिमा एक सर्वमान्य वस्तु है। इसपर अधिक लिखने की जरूरत नहीं। लेकिन नाम-जप के साथ अर्थ-भावन भी करना होता है। उसमें अपनी-अपनी धारणा के अनुसार अनेक प्रकार हो जाते है।

कुछ ज्ञानी निर्गुण-निराकार का ध्यान करते है, जो सब कल्पनाओं से रहित है। उसका ध्यान करनेवाले अक्सर 'ओंकार' को पसंद करते है। लेकिन राम, गोविंद, नारायण, हरि आदि नाम लेकर भी निर्गुण-निराकार का भावन कर सकते है। कबीर, नानक आदि मे ही नहीं, तुलसीदासतक मे यह पाया जाता है। दुनिया के सारे साहित्य में निर्गुण-निराकार का सबसे श्रेष्ठ प्रतिपादन उपनिषदों में मिलता है।

कुछ ध्यानी नाम के साथ सगुण-निराकार का ध्यान करते हैं। अक्सर हम जहाँ निर्गुण-निराकार को छोड़ते हैं, सगुण-साकार में आ जाते हैं। लेकिन दोनों के बीच सगुण-निराकार की भी एक भूमिका होती है। इसमें भगवान् को निराकार मानते हुए, दया, वात्सल्य आदि अनंत गुणों के परम आदर्श के तौर पर माना जाता है। उपनिषद् में निर्गुण-निराकार के साथ सगुण-निराकारकी पुष्टि करनेवाले वचन भी पाये जाते है, जिनको रामानुज आदि भाष्यकार विशेष महत्त्व देते हैं। इस्लाम

और ईसाई-मत इसीको मानते हैं । ब्रह्मसमाज, प्रार्थना-समाज, आर्य-समाज इत्यादि आधुनिक समाज सगुण-निराकार की भूमि पर खड़े हैं ।

कुछ भक्त नाम के साथ सगुण-साकार की कल्पना करते हैं । इसके भी तीन पंथ हो जाते हैं :

(१) साकेतिक रूप की उपासना, जैसे शेषशायी विष्णु, अर्धनारी-नटेश्वर इत्यादि ।

(२) विश्वरूप की उपासना, जिससे अर्जुन घबडा गया था, लेकिन **"खुले नयन पहचानों, हँसि हँसि सुन्दर रूप निहारों"** कहकर कबीर आनन्दित होता है । अर्जुन इसलिए घबड़ा गया था कि उसके ध्यान-दर्शन में तीनों काल और तीनो स्थल एकत्र प्रगट हुए थे । कबीर इसलिए आह्लादित है कि वह विश्वरूप का एक भाग ही देख रहा है, जो कि उसके नेत्रों को अनुकूल है ।

(३) विशिष्ट श्रेष्ठपुरुष की अवताररूप में उपासना । इस उपासना के करनेवालों के फिर दो विभाग हो जाते हैं । एक अकल रखे हुए, जो कि अपने पूज्य पुरुष को ईश्वर का अंशावतार मानते हैं । दूसरे अकल खोये हुए या अकल को ही शून्य समझनेवाले, जो **"कृष्णस्तु भगवान् स्वयं'** कहकर लीलाविभोर हो जाते हैं । इस विवेचन का चित्र इस प्रकार होगा :

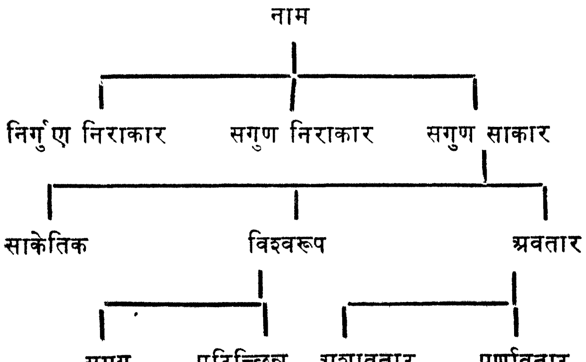

लेकिन खूबी यह है कि हमारे संतों की पाचन-शक्ति प्रखर होने के कारण ये सारे भिन्न-भिन्न दर्शन उनको विरोधी नही मालूम होते, बल्कि इन सबको वे एकसाथ हजम कर लेते है। मिसाल के तौर पर, तुलसीदासजी पक्ष तो लेगे सगुण-साकार का, लेकिन निर्गुण-निराकार से पूर्णावतारतक की सब तालिका वे स्वीकार करेगे। शंकराचार्य अभिमानी बनेगे निर्गुण-निराकार के, लेकिन "**नित्य शुद्धबुद्धमुक्तस्वभावं**" के साथ त्रिपुरसुन्दरी का भी स्तोत्र गा सकेगे। हाँ, शायद पूर्णावतार की कल्पना वे नही निगल सकेगे। क्योकि "**अंशेन कृष्णः किल संबभूव**" ऐसा वे लिख चुके है। फिरभी भाविको के साथ पूर्णावतार के भजन मे भी वे लीन हो जायँ तो आश्चर्य की बात नही ; क्योकि जब वे सारा ही मिथ्या समझते थे, तो किसी चीज के लिए क्यों हिचकिचाना ?

कुछ विचारक और उपासक ऐसे जरूर होते है जो अपना-अपना आग्रह रखते है, जैसे मोहम्मद पैगम्बर सगुण-निराकार माननेवाले थे। यद्यपि निर्गुण-निराकार का वे निषेध नही करेगे, किन्तु सगुण-साकार का निषेध करते हुए दीख पडते है। वैसे कुरान मे वज्हुल्लाह याने "अल्लाह का चेहरा" ये शब्द कई जगह आये है, जिनके आधार पर मूर्तिपूजा की अतिशयता का तो बचाव नहीं होगा, लेकिन सगुण-साकार का प्रवेश हो जायगा। कुरान का कुल मिलाकर भाव मै यही समझता हूँ कि मोहम्मद के सामने विकृत मूर्तिपूजा खडी है, जिसके साथ अनेक भ्रष्टाचार जुड गये है ; उस सबका वे निषेध करना चाहते है। आखिर, ईश्वर का शब्द वे सुनते थे, "**वही**" उन्हें प्राप्त होती थी, उससे वे भावित होते थे, उसका उनके शरीर पर असर होता था; कुछ रूह, कुछ प्रभा, कुछ आभास, जो भी कहो, उनके अंतरमानस मे प्रगट होती थी। यह सब देहधारी मनुष्य कैसे टालेगा? सारांश, जो शब्दातीत वस्तु है उसको शब्द में प्रगट करने के प्रयत्न में ही दोष आ जाता है। विष्णुसहस्रनाम में तो भगवान् के दो नाम ही यों दिये है, "**शब्दातिगः शब्दसहः**" शब्द से परे, किन्तु शब्द को सहन करनेवाला।

इसलिए अचिंत्य विषय मे सर्व आग्रह छोड़कर नम्र हो जाना यही सर्वोत्तम लक्षण है।

(उ) सन्तों की जीवन-योजना में आखिरी बात है सत्संग का चाह। सामान्य व्यावहारिक विद्या की प्राप्ति के लिए भी जब उस विद्या के जानकार का सहारा लेना पड़ता है, तब आध्यात्मिक साधन मे प्रवेश की इच्छा रखनेवाले को अनुभवी सन्तपुरुषों की सगति ढूँढ़नी ही पड़ेगी। यह बात सहज समझ में आती है। इसीलिए शंकराचार्य ने मनुष्यत्व और मुमुक्षुत्व के बाद महापुरुष-सश्रय को तीसरा महद्‌भाग्य माना है। आत्मा स्वयं-सिद्ध और अपना निजरूप ही होने के कारण हम ऐसा आग्रही विचार तो नही रख सकते कि सूर्योदय के पहले उषोदय के समान आत्मदर्शन के पहले महापुरुष-संश्रय या स्थूल सत्संगति आवश्यक है। और हम यह भी नही कह सकते कि सत्संग के लोभ मे ऐसे किसी वेषधारी को सत्पुरुष या सद्‌गुरु के स्थान पर बिठादें। लेकिन यह जरूर मानना पड़ेगा कि जहाँ सद्‌विचार के श्रवण-मनन का मौक़ा मिलेगा वहाँ पहुँचने की या वैसी सगति ढूँढने की अभिलाषा साधक मे होनी चाहिए। मैं तो कहूँगा कि सत्संगति की अभिलाषा सत्सगति से भी बढकर है। या, अधिक समीचीन भाषा मे यो कह सकते है कि सत्सगति की अभिलाषा ही सच्ची सत्सगति है।

यह है सन्त-सुधा-सार, जिसका सग्रह एक सस्कृत श्लोक बनाकर मैंने इस तरह रख दिया है :

स्वकर्मणि-समाधानं, परदुःख-निवारणम् ।
नामनिष्ठा, सतां संगः, चारित्र्य-परिपालनम् ॥

३

अब वियोगी हरिजी के इस संग्रह के बारे में मुझे कुछ कहना चाहिए।

पहली बात तो मै यह कहूँगा कि हिन्दी के बहुत सारे संतों की वाणी का अध्ययन मै नहीं कर सका हूँ। सिर्फ़ चार कृतियाँ मेरे नसीब में आई हैं, जिनको कुछ बारीकी से देखने का मौक़ा मुझे मिला है।

रामायण और **विनयपत्रिका**, ये तुलसीदास की दो कृतियाँ। इन दोनों कृतियों का मुझपर बहुत गहरा असर पड़ा है। तुलसीदास की शैली में बोलना हो तो यही कहना पडेगा कि, एक है "**रा**" और दूसरा है "**म**" और दोनों मिलकर तुलसीदास का "**राम**" बनता है। दोनों कृतियाँ परस्पर पूरक हैं। इसके अलावा गुरु नानक का जपुजी और गुरु अर्जुन की **सुखमनी**। इस सग्रह मे जपुजी का, अर्थ के साथ, पूरा उद्धरण किया गया है। यह मुझे अच्छा लगा। मै जब पाँच-छह महीने शरणार्थियों के काम मे लगा था तब रोज सुबह जपुजी का पाठ किया करता था। कुछ दिन नागरी लिपि मे किया, फिर गुरुमुखी में पढ़ता रहा। यह एक परिपूर्ण कृति है। याने साधनमार्ग का पूरा चित्र, आदि से अततक, इसमें थोड़े मे मिल जाता है। इसकी तुलना ज्ञानदेव के मराठी हरिपाठ से हो सकती है। जिसको वर्णमाला का पूरा परिचय है, ऐसा हरेक देहाती हरिपाठ को पढ ही लेता है। बल्कि जो अक्षर भी नही सीखा वह भी दूसरों से सीखकर उसे कठ करता है। गुरु अर्जुन की **सुखमनी** यद्यपि एक छोटी-सी ही पुस्तक है, तथापि सूत्ररूप नही, वह विवरणरूप है। उसमे पुनरुक्ति काफी है। लेकिन उसकी शक्ति भी उस पुनरुक्ति मे है। उसका यह एक श्लोक जेल मे कई दिनोतक भोजन के पहले मैं बोलता था, जैसा किं सिक्खो मे रिवाज है :

काम क्रोध अरु लोभ मोह विनसि जाय अहमेव,
नानक प्रभु शरणागती, कर प्रसाद गुरुदेव।

भोजन के लिए "**प्रसाद**" संज्ञा हिन्दुस्तान की हर भाषा मे मिलती है।

इन चार कृतियो के अलावा, बाक़ी का मेरा सारा हिन्दी-अध्ययन भ्रमरवत् है, याने थोडा इधर देख लिया, थोड़ा उधर देख लिया। नामदेव के मराठी भजनो मे से कुछ चयन मैंने किया था, उसकी पूर्ति मे उनके हिन्दी पद्यों का भी अवलोकन **ग्रंथ साहिब** में किया था।

बहरे के कानोंतक भी जो पहुँच गई है उस **कबीर-वाणी** का मुझे कुछ सहज परिचय न हुआ हो, यह कैसे हो सकता है? तुकाराम की

वाणी पर कबीर का बहुत असर पडा है। और वह ऋण तुकाराम ने स्वयं प्रगट किया है। तुकाराम का एक भी वचन ऐसा नही होगा, जिसे मै घोलकर पी न गया होऊँ, इसलिए कबीर तो मुझे मुफ्त मे मिल गया।

मीराबाई तो एक अद्वितीय व्यक्तित्व है, जिसके मधुरतम भजन आश्रम की प्रार्थना मे मैने सतत सुने, गाये, और ध्याये है। सूरदास हिदी महासागर है। उसमे से 'आश्रम-भजनावलि' मे जो कुछ दस-पाँच अमृत-बिदु आये है उतने ही मेरे लिए पर्याप्त हो गये है।

गोरखनाथ एक ऐसे महान् है जिनकी वाणी का तो नही, किंतु करनी का स्पर्श समस्त भारत को हुआ है। वे कहाँ और कब जन्मे थे निश्चित रूप से कोई नही जानता, लेकिन वे जन्मे थे इसमे किसीको सदेह नही है। गूढवादी बगाल उनपर अपना दावा करता है। तमिळ लोग कहते है, सारा नाथ-सप्रदाय तमिळनाड का है। और तमिळ भाषा मे नाथ-पथी साहित्य भी बहुत है। उसका परिचय तो राष्ट्रभाषावालो को तब होगा, जब वे आलस्य छोडकर तमिळ सीखेगे। जलधरवाले पजाबी जालदरनाथ के पथ पर क्यो नही अपना अधिकार रखेगे ? और गोरखपुर गोरख का पुर है ही। ज्ञानदेव ने ज्ञानेश्वरी मे अपनी गुरु-परम्परा का कथन करते हुए मत्स्येन्द्रनाथ के शिष्य गोरखनाथ का निर्देश किया है, इसलिए महाराष्ट्र के लोग अपना हक पेश कर ही सकते है। इस संग्रह मे पृष्ठ ३६ पर दिया हुआ भजन "**कैसे बोलौं पंडिता देव कवणे ठाँई**" सारा-का-सारा शुद्ध मराठी भजन है। मत्स्येन्द्र और गोरख की कहानियाँ जिन्होने बचपन मे नही सुनी ऐसा कौन बच्चा है ?

रैदास का नाम महाराष्ट्र मे बहुत प्रसिद्ध है। उनको मराठी मे रोहिदास कहते है। चोखा मेला महार और रोहिदास "चाँभार" (चमार) इन दो हरिजन संतो की कथा हमारी माँ बहुत सुनाती थी। मुझे लगता था कि चोखामेला के समान रोहिदास भी कोई मराठी सत होगे। भजनावली मे रैदास का एक हिंदी भजन साबरमती-आश्रम मे जब मैने पहली बार सुना, तब मुझे इस बात का पता चला कि रोहिदास का

नाम रैदास है और वे एक हिंदी के संत हैं।

एक और हिंदी-संत का नाम अहिंदी प्रांतों को परिचित है, जिसने साहित्य का एक नया विभाग खोल दिया। वे हैं भक्तमाल के लेखक नाभाजी। जैसे पश्चिमी साहित्य में प्लूटार्क, दक्षिण में शेक्किलार, वैसे ही उत्तर हिंदुस्तान में नाभाजी अपने क्षेत्र में अद्वितीय हैं। महाराष्ट्र में महिपति ने संत-चरित्र पर अनेक ग्रंथ लिखे हैं, जिनमें नाभाजी की भक्तमाल का बहुत उपयोग किया है।

दादू की भक्त-मंडली की ओर से **दादूवाणी** और **सुन्दर-ग्रंथावली** भेंट में मिली थी, उन्हें देख जाना जरूरी ही था। लेकिन दादू-पंथी निश्चलदासजी का **विचार-सागर** अपने ढंग का एक विशिष्ट ग्रन्थ है। कबीर के **बीजक** में उनकी स्वतंत्र प्रतिभा का दर्शन होता है। निश्चल-दास के विचार-सागर में पारिभाषिक वेदांत का गहरा अध्ययन दीख पड़ता है। विचार-सागर का इस संग्रह के साथ कोई संबंध नहीं है। मैंने तो उसका प्रसंगेन उल्लेखमात्र कर दिया है।

हिंदी अब राष्ट्र-भाषा बनी है, तो उसके साहित्य का अध्ययन हिंदुस्तानभर में होनेवाला है। जैसे अंग्रेजी में **गोल्डन ट्रेजरी** एक सर्वां-गीण और सर्वमान्य संग्रह हुआ है, वैसा कोई संग्रह हिंदी के लिए ज़रूर चाहिए। हरिजी के इस **संत-सुधा-सार** का वैसा दावा तो नहीं है, लेकिन मुझे लगता है कि यह भी एक काफी प्रातिनिधिक संग्रह है, और थोड़े में हिंदी के संत-साहित्य का जो व्यापक अध्ययन करना चाहते हैं उनको इसका बहुत उपयोग होगा, इसमें मुझे संदेह नहीं।

विषय-सूची

१	सिद्ध सरहपाद	१
२.	सिद्ध तिल्लोपाद	५
३	मुनि देवसेन	७
४	मुनि रामसिह	९
५.	गोरखनाथ	१४
६.	नामदेव महाराज	२१
७.	कबीर साहब	२८
८	रैदास	८५
९	धनी धरमदास	९९
१०	गुरु नानकदेव	११८
११	गुरु अगद	१६०
१२	गुरु अमरदास	१७६
१३.	गुरु रामदास	१९४
१४	गुरु अर्जुनदेव	२१०
१५.	गुरु तेगबहादुर	२३२
१६.	शेख फरीद	२४५
१७.	स्वामी दादूदयाल	२६१
१८.	रज्जबजी	२९९
१९.	बषनाजी	३१३
२०	वाजिदजी	३२६
२१.	स्वामी सुन्दरदासजी	३३५
२२	बाबा मलूकदास	३८६
२३.	जगजीवन साहब	३९६
२४.	दरिया साहब (बिहारवाले)	४११
२५	दरिया साहब (मारवाड़वाले)	४२०
२६.	भीखा साहब	४३१
२७.	चरणदासजी	४४०
२८.	सहजोबाई	४६१
२९.	दयाबाई	४७२
३०.	पलटू साहब	४७९
३१.	तुलसी साहब	५१०

संक्षिप्त

संत-सुधा-सार

सिद्ध सरहपाद

चोला-परिचय

वज्रयानी चौरासी सिद्धो मे सरहपाद को आदिम सिद्ध माना गया है। इन्हें सरहपा भी कहते है। इनके दूसरे दो नाम राहुलभद्र और सरोजवज्र भी है।

पूर्वी प्रदेश के थे यह किसी 'राज्ञी' नगरी के निवासी। पता नहीं, इस नाम की नगरी कहाँपर थी।

जन्म सिद्ध सरहपाद का किसी ब्राह्मण-वंश मे हुआ था। यह अच्छे विद्वान् पडित थे। नालन्दा मे भी यह कितने ही वर्षोंतक रहे थे।

पश्चात् यह विद्वान् बौद्ध भिक्षु कालान्तर मे मंत्र-तंत्र-प्रधान वज्रयान की ओर आकृष्ट हो गया।

श्रीपर्वत (आन्ध्र देश) पर भी सरहपाद ने वज्रयान तंत्र की कठिन साधना की थी।

सरहपाद पालवंशीय राजा धर्मपाल के समकालिक थे। धर्मपाल का समय ई० ७६८–८०९ माना जाता है।

डाक्टर बिनयतोष भट्टाचार्य ने सरहपाद का काल ६३३ ई० माना है। किन्तु किसी परिपुष्ट प्रमाण से सरहपा का काल यह सिद्ध नहीं होता।

भोटिया भाषा मे सिद्धाचार्य सरहपा के ३२ ग्रथो का अनुवाद खोज मे मिला है ।

बानी-परिचय

सरहपादीय दोहा एव **सरहपाद दोहा-कोष** से प्रस्तुत सग्रह मे सरहपाद की सिद्ध-बानी सकलित की गई है ।

भाषा सरहपा की मगही अपभ्रश है, जो निश्चय ही हिन्दी का पूर्व-रूप है । डा० बी० भट्टाचार्य ने इसे बगला का पूर्वरूप सिद्ध करने की असफल चेष्टा की है ।

वज्रयान के परवर्ती सिद्धो की बानी मे जो प्राय. अति स्वच्छन्दाचार दिखाई देता है वह सरहपाद की बानी मे लगभग नही के जैसा है ।

सहज शून्यावस्था से प्राप्त महासुख का, सहज मे स्थित महारस का, बडा सुन्दर वर्णन मिलता है ।

समरस सहज अवस्था मे स्थित हो जाना ही, सरहपाद के मतानुसार, साधक का परम पुरुषार्थ है । उस अवस्था मे कुछ भी भेद-भाव शेप नहीं रह जाता ।

वर्ण-व्यवस्था का, उच्च-नीच-भाव का तथा धर्म के नाम पर चलनेवाले बाह्याचारों का सरहपाद ने बडा जोरदार खण्डन किया है । ब्राह्मणों की ही नहीं, जैन यतियों की भी खबर ली है; लोमोत्पाटन और पिच्छी-ग्रहण की हँसी उड़ाई है ।

सरहपाद के **दोहा-कोष** पर श्री अद्वयवज्र की संस्कृत-पंजिका खोज में मिली है, जो कलकत्ता-यूनिवर्सिटी के जर्नल ऑफ दि डिपार्टमेंट ऑफ लेटर्स (खंड २८) मे प्रकाशित हुई है ।

प्रस्तुत संक्षिप्त संग्रह में संकलित दोहों का अर्थ उसी संस्कृत-पंजिका के अनुसार किया गया है ।

सरहपाद

मन्तह मन्ते स्सन्ति ण होइ ।
पड़िल भित्ति कि उट्टिअ होइ ॥१॥
तरुफल दरिसणे णउ अग्घाइ ।
वेज्ज देक्खि किं रोग पसाइ ॥२॥
जाव ण अप्पा जाणिज्जइ ताव ण सिस्स करेइ ।
अन्धँ अन्ध कढ़ाव तिम वेण वि कूव पड़ेइ ॥३॥
पिच्छी गहणे दिट्ठि मोक्ख ता मोरह चमरह ।
उञ्छें भोअणें होइ जाण ता करिह तुरंगह ॥४॥
आइ ण अंत ण मज्झ णउ णउ भव णउ णिव्वाण ।
एहु सो परम महासुह णउ पर णउ अप्पाण ॥५॥

१. मन्त्र-जाप करने से शान्ति मिलने की नहीं । जो दीवार गिर चुकी वह क्या उठ सकती है ?

२. वृक्ष में लगा हुआ फल देखना उसकी गन्ध लेना नहीं है । वैद्य को देखनेमात्र से क्या रोग दूर हो जाता है ?

३. जबतक अपने आपको नहीं जान लिया, तबतक किसीको शिष्य नहीं करना चाहिए । यह तो वह बात हुई कि एक अंधा दूसरे अंधे को साथ ले चला, और दोनों ही कुएं में गिर पड़े !

कबीर ने भी यही कहा है—

"अंधे अंधा ठेलिया, दून्यूँ कूप पडन्त ।"

४. यदि पिच्छी ग्रहण करने से मुक्ति मिलती हो, तो मोर को पहले ही मुक्त हो जाना चाहिए ।

यदि उञ्छ-भोजन से मुक्ति होती हो तो हाथी-घोड़े मुक्ति के पहले अधिकारी हैं ।

[उञ्छ का अर्थ है खेत का सीला, अर्थात् अन्न का एक-एक दाना चुनना]

५ (सहज शून्यावस्था का) न तो आदि है, न अन्त और न मध्य । न वहाँ जन्म है, न निर्वाण । यह अलौकिक महासुख है । न इसमें पराये का भान रहता है, न अपना ।

घोरान्धारें चन्दमणि जिम उज्जोअ करेइ ।
परम महासुह एक्कु खणे, दुरिआसेस हरेइ ॥६॥
जब्बें मण अत्थमण जाइ तणु तुट्टइ बन्धण ।
तब्बें समरस सहजे वज्जइ णउ सुद्द ण बम्हण ॥७॥

चीअ थिर करि धरहु रे नाइ ।
आन उपाये पार ण जाइ ॥
नौवा ही नौका टानअ गुणे ।
मेलि मेलि सहजे जाउ ण आणे ॥८॥
मोक्ख कि लब्भइ ज्झाण पविट्ठो ।
किन्तह दीवें किन्तह णिवेज्जं ॥
किन्तह किज्जइ मन्तह सेब्बं ॥
किन्तह तित्थ तपोवण जाइ ।
मोक्ख कि लब्भइ पाणी न्हाइ ॥९॥

---

६. जैसे घोर अन्धकार में चन्द्रमणि उजेला कर देती है, इसी तरह यह अपूर्व महा-सुख एक क्षण में ही संपूर्ण दुश्चरितों का नाश कर देता है।

७. जिस क्षण यह मन अस्त या विलीन हो जाता है, उस समय सारे ही बन्धन टूट जाते है। उस समरस सहज अवस्था में कुछ भी भेद नही रहता—न शूद्र न ब्राह्मण।

८. हे नाविक, चित्त को स्थिर कर सहज के किनारे अपनी नौका लिये चल, रस्सी से खीचता चल—और कोई दूसरा उपाय नही।

९ भला ध्यान धरने से कही मुक्ति होती है? दीपक दिखाने और नैवेद्य चढ़ाने तथा मंत्र-पाठ से क्या मुक्ति मिल सकती है?
तीर्थ-सेवन और तपोवन में जाने से, और पानी में नहाने से कही मोक्ष-लाभ होता है?

सिद्ध तिल्लोपाद

चोला-परिचय

सिद्ध तिल्लोपाद या तिलोपा का भिक्षु-नाम प्रज्ञाभद्र था। कहते हैं, सिद्धचर्या मे तिल कूटने के कारण इनका नाम तिलोपा पड़ गया था।

गुरु का नाम विजयपाद था, जो कण्हपा या कृष्णपाद के शिष्य के शिष्य थे।

तिल्लोपाद का जन्म-प्रदेश बिहार था। यह ब्राह्मण थे।

समय इनका १०वी शताब्दी माना गया है। इनके शिष्य सिद्धाचार्य नारोपा राजा महीपाल (९७४-१०२६ ई०) के समकालीन थे।

वज्रयानी चौरासी सिद्धों मे यह एक ऊँचे सिद्ध माने जाते है।

मगही हिन्दी में सिद्ध तिल्लोपाद के ४ ग्रथ मिले है।

बानी-परिचय

प्रस्तुत-संग्रह-ग्रंथ मे तिल्लोपाद के **दोहा-कोष** से केवल ९ दोहे संकलित किये गये है। **दोहा-कोष** मे कुल ३४ दोहे है। भाषा इन दोहों की प्राचीन मगही हिन्दी है।

सहज-साधना को तिल्लोपाद की बानी मे बडा महत्त्व दिया गया है। कहा है कि चित्त-विशुद्धि का एकमात्र साधन सहज-साधना ही है।

अद्वैतवादियों की भाँति इन्होंने भी कहा है—"मै जगत् हूँ, मैं बुद्ध हूँ और मै ही निरंजन हूँ।"

तीर्थ-सेवन तथा तपोवन-वास को अन्य सिद्धों और सन्तों की तरह तिल्लोपाद ने भी मोक्ष-लाभ का साधन नही माना है। देव-प्रतिमा के पूजन को भी निरर्थक बतलाया है।

महासिद्ध तिल्लोपाद के **दोहा-कोष** पर संस्कृत में एक पंजिका है, जिसका नाम 'सारार्थ पंजिका' है। इसी टीका की सहायता से संकलित दोहों का अर्थ किया गया है।

तिल्लोपाद

वढ़ अणँ लोअअ गोअर तत्त पण्डित लोअ अगम्म ।
जो गुरुपाअ पसण्ण तँहि कि चित्त अगम्म ॥१॥

सहजें चित्त विसोहहु चङ्ग ।
इह जम्महि सिद्धि मोक्ख भङ्ग ॥२॥
सचल णिचल जो सअलाचार ।
सुण णिरंजण म करु विआर ॥३॥
हँउ जगु हँउ बुद्ध हँउ णिरंजण ।
हँउ अमणसिआर भवभंजण ॥४॥
देव म पूजहु तित्थ ण जावा ।
देव पूजाहि ण मोक्ख पावा ॥५॥
परम आणन्द भेउ जो जाणइ ।
खणहि सोवि सहज बुज्झइ ॥६॥

---

१. जो तत्त्व, जो सत्य मूढजनों के लिए अगोचर है वह पण्डितों के लिए भी अगम्य है, (क्योंकि वे शास्त्राध्ययन में उलझे रहते हैं) सत्य का साक्षात्कार तो उसी पुण्यवान् व्यक्ति को होता है, जिसपर कि सद्गुरु प्रसन्न होते हैं।

२. सहज की साधना में चित्त को तू अच्छी तरह विशुद्ध करले। इसी जीवन में तुझे सिद्धि प्राप्त होगी, और मोक्ष भी।

३ जितने सब आचार-व्यवहार हैं, वे या तो सचल हैं या निश्चल। किन्तु शून्य निरंजन सकल विकल्पों से रहित है। उसका विचार नहीं करना चाहिए, विचार से वह परे है।

४. मैं जगत् हूं, मैं बुद्ध हूं, और मैं ही निरंजन हूं। मैं ही मानसिक अकर्त्ता हू, और भव का भंजन करनेवाला भी मैं ही हूं।

५. न देव-प्रतिमा की पूजा करो, न तीर्थ-यात्रा; देवाराधन से तुम्हें मोक्ष मिलने का नहीं।

६. अपूर्व आनन्द के भेद को जो जानता है, उसे सहज का ज्ञान एक क्षण में ही प्राप्त हो जाता है।

गुण दोस रहिअ एहु परमत्थ ।
सह संवेअण केवि णत्थ ॥ ७ ॥
आवइ जाइ कहवि ण णाइ ।
गुरु उपएसें हिअहि समाइ ॥ ८ ॥
हउ सुण जुग सुण तिहु अण सुण ।
णिम्मल सहजे ण पाप ण पुण ॥ ९ ॥

७. परमार्थ अर्थात् परमसत्य यही है, जिसमें न गुण है न दोष। स्वसंबंध कुछ भी नहीं है, न गुण, न दोष।

८. (वहपरम तत्व) न कहीं से आता है, न कहीं जाता है, न किसी स्थान पर ठहरता है। तथापि गुरु के उपदेश से वह हृदय में प्रविष्ट होता है।

९. मैं भी शून्य हूँ, जगत् भी शून्य है, त्रिभुवन भी शन्य है। महासुख निर्मल सहजस्वरूप है; न वहाँ पाप है, न पुण्य।

मुनि देवसेन

चोला-परिचय

मुनि देवसेन का इतिवृत्त अज्ञात-सा ही है। इतना ही कहा जा सकता है कि यह एक उच्चकोटि के जैन-संत थे। '**सावय धम्म दोहा**' का रचयित्ता कौन था यह प्रश्न विवादास्पद है। लक्ष्मीचन्द्र या लक्ष्मीधर को इस ग्रंथ का कर्त्ता मान लिया गया था, और कुछ विद्वानों ने सुप्रसिद्ध जैन मुनि योगीन्द्रदेव को इसका रचयिता माना था। विद्वद्वर हीरालाल जैन ने अपनी शोध के परिणामस्वरूप '**सावय धम्म दोहा**' का कर्त्ता मुनि देवसेन को सिद्ध किया है। उनका निर्णय अनेक दृष्टियो से प्रामाणिक है। योगीन्द्रदेव की रचनाओं और **सावय धम्म दोहा** मे, भाषा और विषय दोनो ही दृष्टियों से, अन्तर पाया जाता है, जबकि देवसेन-रचित **भाव-संग्रह** तथा **सावय धम्म दोहा** मे विशेष सादृश्यताएँ मिली है।

मुनि देवसेन मालवा प्रदेश के निवासी थे, और दसवीं शताब्दी में विद्यमान थे। **दर्शन-सार** ग्रंथ की रचना देवसेन ने धारानगरी के पार्श्व-नाथ-मंदिर में बैठकर संवत् ९९० में की थी।

बानी-परिचय

प्रस्तुत संक्षिप्त संग्रह मे हमने '**सावय धम्म दोहा**' से केवल ७ दोहे ही लिये हैं। इस ग्रंथ का विषय श्रावक का धर्म अथवा आचार है। सामान्य गृहस्थों के लिए **सावय धम्म दोहा** की रचना की गई है। श्रावक का भी जीवन-ध्येय विषय-भोगो का सेवन नहीं है, किन्तु आत्मदर्शन से उपलब्ध आनन्द ही उसका साध्य है, जिसके साधन हैं सत्य, अहिंसा, शील, सदाचार तथा इन्द्रियजन्य सुखों से उपराम।

श्रावक-धर्म, मुनि देवसेन के कथनानुसार, सबके लिए है, उसका साधक चाहे ब्राह्मण हो चाहे शूद्र, अथवा जैन हो या अजैन। एक दोहा है—

> **"एहु धम्म जो आयरइ बंभणु सुद्द वि कोइ।**
> **सो सावउ कि सावयहं अण्णु कि सिर मणि होइ॥"**

अर्थात्, इस धर्म का जो भी आचरण करता है, फिर चाहे वह ब्राह्मण हो चाहे शूद्र, कोई भी हो, वही श्रावक है। श्रावक के सिर पर क्या कोई मणि चिपकी रहती है?

अवहट्ठा याने अपभ्रष्ट भाषा का यह अति प्राचीन ग्रंथ है। इसका अच्छा प्रचार और आदर था। लक्ष्मीचन्द्र ने '**सावय-धम्म**' पर एक पंजिका और मुनि प्रभातचन्द्र ने 'तत्त्वदीपिका' नाम की वृत्ति लिखी है।

मुनि देवसेन

एहु धम्मु जो आयरइ बंभणु सुद्दु वि कोइ।
सो सावउ किं सावयह अण्णु कि सिरि मणि होइ॥१॥
धम्मु करउं जइ होइ धणु इहु दुव्वयणु म बोल्लि।
हक्कारउ जमभडतणउ आवइ अज्जु कि कल्लि॥२॥

---

१. इस धर्म का जो भी आचरण करता है, फिर चाहे वह ब्राह्मण हो चाहे शुद्र, कोई भी हो, वही श्रावक है। श्रावक के सिर पर क्या कोई मणि चिपकी रहती है?

२. मत ऐसा दुर्वचन कह कि यदि धन प्राप्त हो जाय तो मैं धर्म करूँ। कौन जाने, यमदूत आज बुलाने आजाय या कल।

काइं बहुत्तइं जंपयइं ज अप्पहु पडिकूलु ।
काइं मि परहु ण तं करहि एहु जि धम्मु ममूलु ॥३॥
धम्मु विसुद्धउ तं जि पर जं किज्जइ काएण ।
अहवा तं धणु उज्जलउ जं आवइ णाएण ॥४॥
रूवहु उप्परि रइ म करि णयण णिवारहि जंत ।
रूवासत्त पयंगडा पेक्खहि दीखि पडंत ॥५॥
मणगच्छहं मणमोहणहं जिय गेयहं अहिलासु ।
गेयरसें हियकण्णडा पत्ता हरिण विणाहु ॥६॥
एक्कहिं इंदियमोक्कलउ पावइ दुक्खसयाइं ।
जसु पुणु पंच वि मोक्कला तुसु पुच्छिज्जर काइं ॥७॥

३. अधिक क्या कहे, जो अपने प्रतिकूल हो उसे दूसरों के प्रति कभी न करो ; धर्म का यही मूल है ।
४. धर्म विशुद्ध वही है, जो अपनी काया से किया जाता है; और धन भी वही उज्ज्वल है, जो न्याय से प्राप्त होता है ।
५. रूप से प्रीति मत कर । रूप पर खिंचते हुए नेत्रों को रोकले । रूपासक्त पतिंगे को तू दीपक पर पड़ते हुए देख ।
६. हे जीव, अच्छे मनमोहक गीत सुनने की लालसा न कर ; देख, कर्ण-मधुर संगीत-रस से हरिण का विनाश हुआ ।
७. जब एक ही इन्द्रिय के स्वच्छन्द विचरण से जीव सैकड़ों दुःख पाता है, तब जिसकी पांचों इन्द्रियां स्वच्छन्द है, उसका तो फिर पूछना ही क्या ।

मुनि रामसिंह

चोला-परिचय

इतिवृत्त इतना ही केवल कि यह एक जैन मुनि थे, और सुप्रसिद्ध प्राकृतवैयाकरण हेमचन्द्राचार्य के यह पूर्ववर्ती थे, अर्थात् ११वीं शताब्दी म यह विद्यमान थे ।

'करहा' अर्थात् ऊँट शब्द का अनेक बार प्रयोग इनके दोहों में मिला है, इससे अनुमान कर लिया गया है कि मुनि रामसिंह कदाचित

राजपूताने के निवासी रहे होंगे। पर इस अनुमान के पीछे कोई और पुष्ट प्रमाण उपलब्ध नहीं।

'**पाहुड़-दोहा**' की एक हस्तलिखित प्रति के अन्त मे 'योगीन्द्रदेव' नाम भी आया है, और अनुमान किया गया था कि '**योगसार**' के रचयिता योगीन्द्रदेव का परम्परागत नाम रामसिंह रहा हो। पर इसका भी कोई प्रबल प्रमाण नही।

अनुमान है कि मुनि रामसिंह 'सिंह' नामक संघ के अनुयायी रहे होंगे, जिसे आचार्य अर्हद् बलि ने स्थापित किया था।

'**पाहुड़-दोहा**' से पता चलता है कि मुनि रामसिंह स्वतन्त्र प्रकृति के एक ऊँचे रहस्यवेत्ता संत थे।

बानी-परिचय

'पाहुड़' का संस्कृत रूपान्तर 'प्राभृत' किया गया है, जिसका अर्थ 'उपहार' होता है, अतः '**पाहुड़-दोहा**' का अर्थ हुआ दोहों का उपहार। कुन्दकुन्दाचार्य के भी अधिकांश ग्रंथ 'पाहुड' कहलाते हैं।

भाषा इनकी 'अवहट्ठा' अर्थात् अपभ्रष्टा है। हिन्दी का यह एक पूर्वरूप है।

मुनि रामसिंह की पाहुड-बानी मे उच्चकोटि का अनुभवगम्य अध्यात्मरस मिलता है। कई दोहों को पढ़ते हैं तो ऐसा लगता है मानो उपनिषदों की सूक्तियाँ पढ रहे हैं।

स्वानुभवशून्य कोरे ज्ञानवाद और निस्सार क्रिया-काण्ड को पाहुड़-बानी मे कुछ भी महत्त्व नही दिया गया है।

धर्म के नाम पर जो अनेक बाह्याडंबर और पाखंड प्रचलित हुए उन सबका इस जैन संत ने प्रबल खंडन किया है। कहता है—"घट के अन्तर में बसनेवाले देव का दर्शन करो। क्यों व्यर्थ तीर्थों मे भटकते हो ? क्यों पत्थर के बड़े-बडे मन्दिर बनवाते हो ?"

और—"यह देह ही देवालय है; इसमें वह परमदेव अधिष्ठित है, जिसकी अनेक शक्तियाँ हैं। उसीकी आराधना करो।"

पाहुड़-बानी मे योग-साधन की निर्मल झाँकी मिलती है, लगभग

वैसी ही, जैसी कि ब्राह्मण एवं बौद्ध-काव्यों मे।

उपमाएँ अनूठी हैं। शैली सरल और सरस है। काव्य-रस अनुभव-गम्य है, जो कोरे शब्द-पाण्डित्य मे कहीं खोजने पर भी नही मिलता।

साप्रदायिक सकीर्णता तथा भेद-भावना को मुनि रामसिंह ने अपनी बानी मे कहीं भी स्थान नही दिया।

मुनि रामसिंह

मूढा सयलु वि कारिमउ मं फुडु तुहुं तुस कंडि।
सिवपइ णिम्मलि करहि रइ घरु परियणु लहु छंडि ॥१॥

सप्पिं मुक्की कंचुलिय ज विसु तं ण मुएइ।
भोयहं भाउ ण परिहरइ लिंगग्गहणु करेइ ॥२॥

उपलाणहिं जोइय करहुलउ दावणु छोडहि जिम चरइ।
जसु अखइणि रामइ गयउ मणु सो किम बुहु जगि रइ करइ ॥३॥

छिल्लउ होहि म इंदियहं पंचहं विण्णि णिवारि।
एक्क णिवारहि जीहाडिय अण्ण पराइय णारि ॥४॥

मणु मिलियउ परमेसरहो परमेसरु जि मणस्स।
विण्णि वि समरसि हुइ रहिय पुज्ज चडावउं कस्स ॥५॥

---

१. अरे मूढ, यह सारा ही कर्म-जजाल है। मत कूट तू भूसी को। गृह और परिजनों को तुरत त्यागकर तू निर्मल शिव-पद में अनुरक्त होजा।

२. साप केंचुल तो त्याग देता है, किंतु विष को नहीं त्यागता। ऐसे ही मनुष्य मुनि का वेश तो धारण कर लेता है, किंतु वह भोगो की भावना को नही छोडता।

३ जैसे हस्ति-कुमार कमलो को देखते ही बन्धन को तोड-ताडकर विचरने लगते हैं, वैसे ही जिसका मन अन्तर्यिनी रामा अर्थात् मुक्ति-रमणी पर चला गया वह जगत् के प्रति फिर कैसे प्रीति कर सकता है?

४. इन्द्रियो के विषय मे तू ढील मत दे। पांच में से इन दो का तो अवश्य निवारण कर—एक तो जिह्वा और दूसरी परस्त्री।

५. मन मिल गया है परमेश्वर से और परमेश्वर मिल गया है मन से, दोनों एकाकार हो गये हैं। अब पूजा में किसे अर्पण करूँ?

सइं मिलया सइं विहडिया जोइय कम्म णि भंति ।
तरलसहावहिं पंथयहिं अरणु कि गाम वसंति ॥६॥
पंडिय पंडिय पंडिया कणु छंडिवि तुस कंडिया ।
अत्थे गंथे तुट्ठो सि परमत्थु ण जाणहि मूढो सि ॥७॥
णाण तिडिक्की सिक्खि वढ कि पढ़ियइं बहुएण ।
जा सुंधुक्की णिड्डहइ पुरण वि पाउ खणेण ॥८॥
तूसि म रूसि म कोहु करि कोहें णासइ धम्मु ।
धम्मि नट्ठि णरयगइ अह् गउ माणुसजम्मु ॥९॥
बहुयइं पढियइं मूढ पर तालू सुक्कइ जेण ।
एक्कु जि अक्खरु तं पढहु सिवपुरि गम्मइ जेण ॥१०॥
हसं सगुणी पिउ णिग्गुणउ णिल्लक्खणु णीसंगु ।
एकहिं अंगि वसंतयहं मिलिउ ण अंगहिं अंगु ॥११॥
जीव वहंतिं णरयगइ अभय पदाणे सग्गु ।
बे पह जव ला दरसियइं जहिं भावइ तहिं लग्गु ॥१२॥

---

६. हे योगी, कर्म स्वयं मिलते है, और स्वयं विलग हो जाते हैं, इसमें कोई भ्रांति नही । चंचल प्रकृति के पथिकों से क्या गाँव बसते हे ?

७. पण्डित-श्रेष्ठ, कणों को छोड्कर तूने भूसी को ही कूटा है । ग्रंथ और उसके अर्थ में तुझे सतोष है, किंतु रे मूढ, परमार्थ से तेरा परिचय नहीं ।

८. मूर्ख, बहुत पढ़ लिया तो क्या ? ज्ञान की चिनगारी को पढ, जो प्रज्वलित होते ही पुण्य और पाप को एक क्षण में भस्म कर देती है ।

९. न त्वेष कर, न रोष कर, न क्रोध कर । क्रोध धर्म को नष्ट कर देता है । और धर्म नष्ट होने से नरक-वास । मनुष्य-जन्म ही नष्ट हो गया ।

१०. इतना अधिक पढा कि तालू सूख गया, पर रहा तू मूर्ख ही । उस एक ही अक्षर को पढ कि जिससे तू शिवपुरी जा सके ।

११. मै सगुण हूँ, और प्रियतम मेरा निर्गुण, निर्लक्षण और निस्संग । एक ही अंग में, एक ही कोठे में, हम दोनों रहते है, फिरभी अंग से अंग नही मिल पाया ।

१२. प्राणियों के वध से . नरक और अभय-दान से स्वर्ग मिलता है । ये दो पंथ हैं, चाहे जिसपर चलाजा ।

हलि सहि काइं करइ सु दप्पणु ।
जहिं पडिबिंबु ण दीसइ अप्पणु ।।
धंधवालु मो जगु पडिहासइ ।
घरि अच्छंतु ण घरवइ दीसइ ।।१३।।

पुरणेण होइ विहओ विहवेण मओ मएण मइमोहो ।
मइमोहेण य णरयं तं पुरणं अम्ह मा होउ ।।१४।।

कासु समाहि करउं को अंचउं ।
छोपु अछोपु भणिवि को वंचउं ।।
हल सहि कलह केण सम्माणउं ।
जहिं जहि जोवउं तहि अप्पाणउं ।।१५।।

दया विहीणउ धम्मडा णाणिय कह विण जोइ ।
बहुएं सलिल विरोलियइं करु चोपडो ण होइ ।।१६।।

देवलि पाहणु तित्थि जलु पुत्थइं सव्वइं कव्वु ।
वत्थु जु दीसइ कुसुमियउ इंधणु होसइ सव्वु ।।१७।।

मूढ़ा जोवइ देवलइं लोयहिं जाइं कियाइं ।
देह ण पिच्छइ अप्पणिय जहिं सिउ संतु ठियाइं ।।१८।।

---

१३. अयि सखि, उस दर्पण को लेकर क्या करूँ, जिसमें अपना प्रतिबिम्ब न दीखे ? लगता है कि यह जगत् मुझे लज्जित कर रहा है । गृह में रहते हुए भी गृह-स्वामी का दर्शन नहीं होता ।

१४ छोड़ो ऐसा पुण्य जिससे विभव प्राप्त होता हो, और विभव से मद, फिर मद से मति-मोह और मति-मोह से नरक ।

१५ समाधि किसकी लगाऊँ ? पूजूँ किसे ? छूत अछूत कहकर किसे छोड़ूँ ? भला किसके साथ कलह करूँ ? जहाँ भी देखता हूँ, सर्वत्र अपनी ही आत्मा दिखाई देती है ।

१६ हे ज्ञानवान् योगी, बिना दया के धर्म हो नहीं सकता । कितना ही पानी विलोया जाये, उससे हाथ चिकना होने का नहीं ।

१७ देवालय में पत्थर हैं, तीर्थ में जल, और पुस्तकों में काव्य; जो भी वस्तुएँ फूली-फली दीख रही है, वे सब ईंधन हो जानेवाली है ।

१८ मूर्ख, उन देवालयों का तो तू दर्शन करने जाता है, जिनका मनुष्यों ने निर्माण किया है, किंतु अपनी काया को नहीं देखता, जहाँ सदा ही शिव विराजमान हैं !

अप्पापरहं ण मेलयउ आवागमणु ण भग्गु ।
तुस कंडंतहं कालु गउ तंदुलु हत्थि ण लग्गु ॥१९॥
वेपंथेहिं ण गम्मइ वेमुह सूई ण सिज्जए कंथा ।
विण्णि ण हुंति अयाणा इंदियसोक्खं च मोक्खं च ॥२०॥

१९ न आत्मा और परमतत्त्व का मिलन हुआ, न आवागमन का भग। भूसी कूटते-कूटते ही काल चला गया, चावल एक भी न हाथ लगा।

२० एकसाथ दो मार्गो से जाना नही बनता। दो मुँहवाली सूई से कथा नही सिया जाता। मूर्ख, एकसाथ दो-दो बाते नही सधनी—इन्द्रिय-सुख भी और मोक्ष भी।

गोरखनाथ

चोला-परिचय

गोरखनाथ या गोरक्षनाथ के विषय मे इतना ही निश्चितरूप से कहा जा सकता है कि भारतवर्ष की धर्माचार्य-परम्परा मे यह एक महान् योगी और सुप्रसिद्ध महापुरुप थे।

विक्रम-संवत् की दसवी शती के अन्त मे, अथवा ग्यारहवी शती के आदि मे इस योगिराट् का प्राकट्य हुआ था। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी तथा स्व० डाक्टर पीताम्बरदत्त बडथ्वाल ने अपनी विद्वत्तापूर्ण शोधों के परिणामस्वरूप इस आविर्भाव-काल को निश्चित किया है।

जन्म-स्थान भी निश्चित रूप से स्थिर नही हो सका। कोई इनका जन्म-स्थान गोदावरी-तट का प्रदेश बतलाता है, तो कोई बगाल और कोई पजाब !

इसी प्रकार न इनके कुल का निश्चित पता चल सका है, और न जाति का ही। इन बातो का कोई खास महत्त्व भी नही।

पर इतना तो निस्सन्दिग्ध है कि सुप्रसिद्ध कौलज्ञानी मत्स्येन्द्रनाथ या मछन्दरनाथ इनके गुरु थे। मत्स्येन्द्रनाथ ही नाथ-परम्परा के सबके प्रथम आचार्य हैं। यह जालन्धरपाद के गुरुभाई थे, जिनका सिद्ध-परंपरा में बड़ा ऊँचा स्थान है। इनका एक नाम हाड़िपा या हाड़िफा भी है।

कौलाचार की साधना के आदिकाल मे 'पंचपवित्र'—वाद को पच मकार' का अध्यात्मपरक अर्थ लगाया जाता था। पीछे, वामाचार मे उसका स्थूल अर्थ किया जाने लगा। परिणामतः सहजयानियो, वज्रयानियों और नाथपथियों का भी अध पतन हुआ।

गोरखनाथके योग-मार्ग मे हठयोग का प्राधान्य है सही, किन्तु परवर्ती कौलाचार योग की क्रियाओ का प्रवेश उसमे नही हो पाया था। उन्होने अपने उपदेशो मे अखड ब्रह्मचर्य और शील-सदाचार पर ही सदा बल दिया।

किन्तु पीछे चमत्कारपूर्ण प्रवादो और मनोरजक किवदन्तियो ने गोरखनाथ और मछन्दरनाथ के नामो को इतना अधिक उलझा दिया कि शोधकों के लिए ऐतिहासिक एव तात्त्विक तथ्योतक पहुँचना दुरूह हो गया। यहाँतक कि उलझन का एक नाम 'गोरख-धन्धा' भी पड गया।

तथापि, गोरखनाथ का पवित्र नाम आज भी भारत के एक छोर से दूसरे छोरतक वैसा ही प्रसिद्ध है, जैसा कि शताब्दियो पूर्व था। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी का कथन सही है कि, "शकराचार्य के बाद इतना प्रभावशाली और इतना महिमान्वित महापुरुष भारतवर्ष मे दूसरा नही हुआ। भक्ति-आन्दोलन के पूर्व सबसे शक्तिशाली धार्मिक आदोलन गोरखनाथ का योग-मार्ग ही था।"

बानी-परिचय

प्रस्तुत संग्रह-ग्रंथ मे डाक्टर बडथ्वाल द्वारा संपादित **गोरख-बानी** से कुछ सबदियाँ और कुछ पद लिये गये है। विद्वान् संपादक ने बानी मे 'सबदी' को सबसे प्राचीन माना है। फिरभी भाषा की दृष्टि से इसे दसवीं या ग्यारहवी शती की रचना मानने मे सदेह के लिए कुछ-न-कुछ स्थान तो रहता ही है। वह काल अपभ्रंश भाषाओ का था। गोरखबानी मे जिन अनेक शब्दो के प्रयोग हुए है, वे परवर्ती काल के है।

समाधान यों हो सकता है कि गोरखनाथ की मूल बानी का, शताब्दियों से घिसते-घिसते, काफी रूपान्तर तो हो गया, फिरभी उसकी मौलिकता का सर्वथा लोप नहीं हो पाया। जीर्ण हो जाने पर भी अनेक

परिवर्तनों के बाद भी रग सबदियो पर का आज भी वैसे-का-वैसा ही है।

योगमार्ग के गहनतम सिद्धातों एवं क्रियाओं का विशद निरूपण लोक-भाषा मे गोरखनाथ ने जिस शैली मे किया है, वह उनकी अपनी मौलिक शैली है। गोरख की बानी मे हम स्वानुभूति की ऊँची दृढता, आध्यात्मिक साधना की पारदर्शी निर्मलता, और थोड़े मे अधिक कह डालने की तीव्र अभिव्यंजना-शक्ति पाते है।

प्रस्तुत संग्रह-ग्रथ मे संकलित सबदियो तथा पदो के कठिन और गूढ शब्दों का अर्थ हमने विद्वद्वर डॉ० बडथ्वाल द्वारा सपादित 'गोरखबानी' की संपूर्ण सहायता से किया है। यदि वह अत्यन्त शोधपूर्ण ग्रंथ हमारे सामने न होता, तो बानी मे आये हुए अनेक गूढ एवं रहस्यात्मक पदो का अर्थ लगाना हमारे लिए सम्भव नही था।

गोरखनाथ

बसती न सुन्यं सुन्यं न बसती अगम अगोचर ऐसा।
गगन सिषर महिं बालक बोलै ताका नाँव धरहुगे कैसा ॥१॥
हँसिबा खेलिबा धरिबा ध्यानं। अहनिसि कथिबा ब्रह्मगियानं।
हँसै षेलै न करै मन भंग। ते निहचल सदा नाथ कै संग ॥२॥
अहनिसि मन लै उनमन रहै, गम की छांड़ि अगम की कहै।
छांड़ै आसा रहै निरास, कहै ब्रह्मा हूँ ताका दास ॥३॥
अरधै जाता उरधै धरै, काम दग्ध जे जोगी करै।
तजै अल्यंगन काटै माया, ताका बिसनु पषालै पाया ॥४॥

---

१ बसती=बसा हुआ, अर्थात् 'है'। सुन्यं=शून्य। गगन-सिषर=शून्य; ब्रह्मरन्ध्र से आशय है। बालक=परमवस्तु अर्थात् विशुद्ध आत्मा।

२ नाथ=ब्रह्म से तात्पर्य है।

३ उनमन=उन्मनावस्था; मन की वृत्तियों के अंतर्मुख कर लेने की स्थिति। अग=अगम्य; अध्यात्म का देश।

४ अरधै...धरै=नीचे को पतित होनेवाले वीर्य को जो ऊपर की ओर खीचता है। अल्यंगन=आलिंगन। बिसनु=विष्णु। पषालै पाया=पैर पखारता है।

मरौ वे जोगी मरौ, मरौ मरन है मीठा।
तिस मरणीं मरौ, जिस मरणी गोरष मरि दीठा ॥५॥

हबकि न बोलिबा, ठबकि न चालिबा, धीरैं धरिबा पावं।
गरब न करिबा सहजैं रहिबा, भणत गोरष रावं ॥६॥

स्वामी बनषंडि जाउं तो षुध्या ब्यापै, नग्री जाउं त माया।
भरिभरि षाउं त बिन्द बियापै, क्यों सीझति जल ब्यंद की काया ॥७॥

धाये न षाइबा, भूषे न मरिबा, अहनिसि लेबा ब्रह्म-अगनि का भेवं।
हठ न करिबा पड्या न रहिबा यूं बोल्या गोरषदेवं ॥८॥

अति अहार यंद्री बल करै, नासै ग्यांन मैथुन चित धरै।
ब्यापै न्यंद्रा झंपै काल, ताके हिरदै सदा जंजाल ॥९॥

दूधाधारी परिघरि चित्त। नागा लकड़ी चाहै नित्त।
मोनी करै म्यंत्र की आस। बिन गुर गुदड़ी नहीं बेसास ॥१०॥

मन मैं रहिणां भेद न कहिणां बोलिबा अंमृत-बाणीं।
आगिला अगनी होइबा अवधू, तौ आपण होइबा पांणीं ॥११॥

---

५. वे=हे। दीठा=देखा, आत्म-साक्षात्कार किया।
मरणी=जीवन्मुक्ति से आशय है।

६. हबकि=झट से बिना विचारे। ठबकि=जोर से पटक-पटककर।
भणत=कहता है। राव=नाथ।

७. षुध्या=क्षुधा, भूख। नग्री=नगरी, बस्ती। बिंद=वीर्य-बिन्दु; काम-वासना से आशय है। क्यों=कैसे, किस साधन से। सीझति=सिद्ध हो।
जल-ब्यंद=वीर्य और रज।

८. धाये न षाइबा=ठूँस ठूँसकर नहीं खाना चाहिए। भेवं=भेद, रहस्य।

९. यंद्री=इन्द्रिया। न्यंद्रा=निद्रा। झंपै=चढ़ बैठता है।

१०. लकड़ी चाहै=धूनी जलाने के लिए लकड़ी चाहता है, जिससे नग्न शरीर सदा गरम बना रहे। म्यंत्र=मित्र, साथी, जिसके द्वारा अपने आशय को समझा सके। बेसास=विश्वास।

११. मन मैं रहिणां=मन को बहिर्मुख वृत्तियों को अन्तर्मुख करके उन्मनी अवस्था में लीन रहना। आगिला=सामने का आदमी। अगनी होइबा=गरम पड़े। पाणी होइबा=पानी हो जाये, क्षमा दिखाये।

गोरष कहैं सुणहुरे अवधू, जग मैं ऐसैं रहणां।
आंषैं देषिबा काणैं सुणिबा मुष थैं कछू न कहणां ॥१२॥
नाथ कहै तुम आपा राषौ, हठ करि बाद न करणां।
यहु जग है कांटे की बाड़ी, देषि देषि पग धरणां ॥१३॥
आसण दिढ अहार दिढ जे न्यद्रा दिढ होई।
गोरष कहै सुणों रे पूता, मरै न बूढा होई ॥१४॥
षांयें भी मरिये अणषांयें भी मरिये। गोरष कहै पूतसंजमि हो तरिये।
मधि निरंतर कीजै वास। निहचल मनुवा थिर होइ सास ॥१५॥
जोगी होइ परनिंद्यां झषै। मदमास अरु भांगि जो भषै।
इकोतर सै पुरिषा नरकहि जाई। सति सति भाषंत श्री गोरषराई ॥१६॥
एकाएकी सिध नांउं, दोइ रमति ते साधवा।
चारि पंच कुटंब नांउं, दस बीस ते लसकरा ॥१७॥
महमां धरि महमां कूं मेटै, सति का सबद बिचारी।
नांन्हां होय जिनि सतगुर षोज्या, तिन सिर की पोट उतारी ॥१८॥
जे आसा ते आपदा, जे संसा ते सोग।
गुरमुषि बिना न भाजसी (गोरष) ये दून्यों बड़ रोग ॥१९॥
जपतप जोगी संजम सार। बाले कंद्रप कीया छार।
येहा जोगी जग मैं जोय। दूजा पेट भरै सब कोय ॥२०॥

---

१३. आपा राषौ=आत्मा की रक्षा करो।
१४. पूता=पुत्रो अर्थात् शिष्यो।
१५. मधि=मध्यम रहनी। सास=श्वास।
१६. झषै=बके। इकोतर सै=इकहत्तर सौ।
१७. एकाएकी=अकेला। सिध=सिद्ध। लसकरा=जमात।
१८. धरि=धारणकर, प्राप्त करके। मेटै=मान नहीं देते है।
नांन्हां=नम्र, निरहंकार। पोट=कर्मों की गठरी।
१९. संसा=संशय; द्वैत-बुद्धि। सोग=शोक। गुरमुषि बिना=सतगुरु का उपदेश लिये बिना। भाजसी=भागेंगे, नष्ट होंगे।
२०. बाले=बालकपन में। कंद्रप=कंदर्प; काम-वासना।
जोय=समझना चाहिए।

राग असावरी

कैसैं बोलौं पंडिता, देव कौनै ठांई¹,
निज तत निहारतां अम्हें तुम्हें नहीं।
पषांणची देवली पषांण चा देव, पषांण पूजिला कैसे फीटीला सनेह।
सरजोव तोड़िला निरजीव पूजिला, पाप ची करणीं कैसैं दूतर तिरीला॥
तोरथि तीरथि सनांन करोला, बाहर धोये कैसें भीतरि भेदीला।
आदिनाथ नाती मछीन्द्रनाथ पूता, निज तात निहारैं गोरष अवधूता॥१॥

आरती

नाथ निरंजन आरतो गाऊं। गुरदयाल अग्यां जो पाऊं॥
जहाँ अनन्त सिधां मिलि आरती गाई। तहाँ जम की बाँव न नैड़ी आई।
जहाँ जोगेसुर हरि कूँ ध्यावैं। चंद सूर तहाँ सीस नवावैं।
मछींद्र प्रसादे जती गोरखनाथ आरती गावै।
नूर झिलमिल दीसै तहाँ अनत न आवै॥२॥

नरवै-बोध

सुणौ हो नरवै, सुधि बुधि का विचार। पंच तत ले उतपनाँ सकल संसार।
पहलै आरम्भ घट परचा करौ निसपती। नरवै बोध कथंत श्री गोरषजती॥
पहलै आरम्भ छाँड़ौ काम क्रोध अहंकार। मन माया विषै विकार।
हंसा पकड़ि घात जिनि करौ। तृस्नां तजौ लोभ परहरौ॥२॥

---

१. ठाई=स्थान। निज.. नही=आत्मतत्त्व का साक्षात्कार हो जाने पर न तो हम रहते है, और न तुम। पषांणची देवली=पत्थर का देवालय! ची, चा=की, का=(मराठी प्रयोग) फीटीला=फूटता है, पसीजता है।
सरजीव=सजीव, फूल पत्ती आदि। दूतर=दुस्तर। सनांन=स्नान। भेदीला=भेद सकता है, निर्मल कर सकता है।

२. बाव=वायु, हवा; स्पर्शतक। नैडी=निकट। प्रसादे=प्रसाद अर्थात् कृपा से। नूर=आत्मा का प्रकाश। अनत=अन्यत्र; अन्य अवस्था।

नरवै-बोध

१. नरवै=नृपति। आरम्भ ..निसपती=योग की चार अवस्थाएँ है—आरम्भ, घट, परिचय और निष्पत्ति। उतपनां=उत्पन्न हुआ है।

२. हंसा=प्राणी।

छाँडो दंद रहौ निरदंद । तजौ अल्यंगन रहौ अबंध ।
सहज जुगति ले आसण करौ । तन मन पवनां दिढ करि धरौ ॥३॥
संजम चितओ जुगत अहार । न्यंद्रा तजौ जीवन का काल ।
छांड़ौ तंत मंत बैदंत । जंत्रं गुटिका धात पाषंड ॥४॥
जड़ी बूटी का नांव जिनि लेहु । राज दुवार पाव जिनि देहु ।
थंभन मोहन बिसिकरन छाड़ौ औचाट ।
सुणौ हो जोगेसरो जोगारंभ की बाट ॥५॥
और दसा परहरौ छतीस । सकल विधि ध्यावो जगदीस ।
बहु विधि नाटारंभ निबारि । काम क्रोध अहंकारहि जारि ॥६॥
नैंण महा रस फिरौ जिनि देस । जटा भार बंधौ जिनि केस ।
रूष बिरष बाड़ी जिनि करौ । कूवा निवांण षोदि जिनि मरौ ॥७॥
टूटै पवनां छींजै काया । आसण दिढ करि बैसो राया ।
तीरथ बर्त कदै जिनि करौ । गिर परबतां चढि प्रानमति हरौ ॥८॥
पूजा पाति जपौ जिनि जाप । जोग माहि बिटंबौ आप ।
छांडौ बैद बणज ब्यौपार । पढ़िबा गुणिबा लोकाचार ॥९॥
बहुचेला का संग निबारि । उपाधि मसांण बाद बिष टारि ।
येता कहिये प्रतच्छि काल । एकाएकी रहौ भुवाल ॥१०॥

---

३. दद=द्वन्द्व, द्वैतभाव, प्रपच । अल्यगन=आलिगन, काम-वासना । पवना···धरौ=श्वास को प्राणायाम द्वारा निश्चल करो ।

४. सजम चितओ=सयम-साधन में चित्त लगाओ । जुगत=युक्त, नियत्रित । न्यंद्रा=निद्रा । वैदंत=वैद्यक । गुटिका=गोली । धात=पारा आदि । धातु भस्मों का सिद्ध करना ।

५. थंभन=स्तम्भन । औचाट=उच्चाटन । बाट=मार्ग ।

६. छतीस=क्षितीश, नृपति । नाटारम्भ=बाहरी प्रदर्शन, पाखण्ड । निवारि=दूर करके ।

७. रूष=पेड । निवांण=गहरा ।

८. बर्त=व्रत । कदै=कभी ।

९. बिटंबो=विडंबना कराते हो । बैद=वैद्य का धन्धा ।

१०. उपाधि मसाण=उपाधि है मानो श्मशान । बाद विष टारि=शास्त्रार्थ को विष के समान समझकर टालदो । एकाएकी=अकेले हो ।

सभा देषि मांडौ मति ग्यांन । गूंगा गहिला होइ रहौ अजांण ।
छाड़व राव रंक की आस । भिछ्या भोजन परम उदास ॥११॥
रस रसाइंन गोटिका निवारि । रिधि परहरौ सिधि लेहु विचारि ।
परहरौ सुरापांन अरुभंग । तातैं उपजै नांनां रंग ॥१२॥
नारी, सारी, कींगुरी । तीन्यूं सतगुर परहरी ।
आरम्भ घट परचै निसपती । नरवै बोध कथंत श्री गोरख जती ॥१३॥

---

११. गहिला=पागल ।
१३. सारी=मैना, मैना पालकर उससे राम का नाम जपवाते हे । कींगुरी=सारंगी

नामदेव महाराज

चोला-परिचय

जन्म-संवत्—१३२७ वि०
जन्म-स्थान—नरसी बमनी (सातारा जिला)
जाति—छीपी
पिता—दामा शेट
माता—गोणाई
गुरु—खेचरनाथ नाथपंथी
योगमार्ग-प्रेरक—ज्ञानदेव महाराज
निर्वाण-सवत्—१४०७ वि०
निर्वाण-स्थान—पंढरपुर

महाराष्ट्र के सुविख्यात कृष्ण-भक्त वामदेव इनके नाना थे । नामदेव पर भी, स्वभावतः, कृष्ण-भक्ति का प्रभाव बाल्यपन से पड़ा था । सगुणोपासना-विषयक इनके अनेक अभंग मराठी मे प्रसिद्ध है । हिन्दी मे भी इनके कृष्ण-भक्तिसम्बन्धी कई पद मिलते है । एक पद है—

धनि धनि मेघा रोमावली, धनि धनि कृष्ण ओढे काँवली ।
धनि धनि तू माता देवकी, जेहि गृह रमैया कँवलापती ।

धनि धनि बनखँड बृन्दावना, जहँ खेले श्री नारायणा।
बेनु बजावे, गोधन चारे, नामे का स्वामी आनँद करै ॥

इन पदों तथा मराठी के अभंगों से सिद्ध होता है कि नामदेव आरंभ मे सगुणोपासक थे। पश्चात्, गोरखनाथ की शिष्य-परम्परा के सुप्रसिद्ध संत ज्ञानदेव महाराज ने इन्हे, कहा जाता है, निर्गुणोपासना की ओर मोड़ने का प्रयत्न किया, और उन्हे सफलता भी मिली। कहते हैं कि एक बार श्री ज्ञानदेव इन्हे अपनी संत-मडली मे लेकर तीर्थाटन को निकले। नामदेव अपने इष्टदेव विठोबा (भगवान् विट्ठलनाथ) के वियोग मे व्याकुल रहते थे। ज्ञानदेव ने बहुत समझाया कि, "यह तुम्हारा मोह है, भगवान् तो सर्वत्र है, तुम्हारी यह कच्ची भक्ति है। पक्की भक्ति तो निर्गुण पक्ष की ही होती है। सो तुम उसीका अभ्यास करो।" एक दिन एक गाँव मे सब संतों की परीक्षा हुई। परीक्षक था एक कुम्हार। कुम्हार ने घडा पीटने का पिटना हाथ में लिया, और सबके सिर उससे ठोकने लगा। सब संत चोटें खाकर भी अचल बैठे रहे। पर नामदेव अपना सिर पिटवाने को तैयार नही हुए, उसपर बिगड भी पड़े। कुम्हार बोला—और "सत तो सब पक्के घडे है, यही एक कच्चा घडा है।' नाथपथ का अनुयायी बनाने के लिए ज्ञानदेवजी ने और भी कितने ही प्रयत्न किये। पश्चात्, ज्ञानदेव के देहावसान के उपरान्त नामदेव ने खेचरनाथ नाम के एक नाथपथी योगी को अपना गुरु बना लिया, जैसा कि प्रसिद्ध है

"मन मेरी सूई, तन मेरा धागा।
खेचरजी के चरण पर नामा सिपी लागा ॥"

योगमार्ग पर पैर रखने के पश्चात् नामदेवजी ने निर्गुणोपासना के अनेक अभंगों और पदों की रचना की। किंतु निर्गुणोपासना अथवा नाथपंथी या योगमार्गी हो जाने पर भी पंढरपुर के विठोबा के प्रति इनकी भक्ति मे अन्तर नहीं पडा। नामदेव का देहावसान विट्ठल-मंदिर के महाद्वार की सीढ़ी पर संवत् १४०७ में ८० वर्ष की अवस्था मे हुआ।

नामदेव के सम्बन्ध में भक्तमाल तथा अन्य ग्रंथों में अनेक चमत्कारों का वर्णन मिलता है; जैसे, बचपनमें विठोबा की मूर्ति का प्रत्यक्ष होकर इनके हाथ से दूध पीना, बादशाह के सामने एक मरी हुई गाय को जिला देना, नागनाथ महादेव के मन्दिर का द्वार इनकी ओर घूम जाना आदि।

बानी-परिचय

जैसा कि ऊपर कहा गया है सगुण-भक्ति एवं निर्गुण-भक्ति दोनों ही पक्षों के पद इनके हिंदी मे मिलते हे। गुरु ग्रंथसाहब मे नामदेव के ६० से अधिक पद संकलित हे। पंजाब मे १५ वर्षतक भगवद्भक्ति का प्रचार करते रहने के कारण इनकी मराठीयुक्त हिन्दी में पजाबी का प्रभाव स्पष्ट दिखता है। सगुणोपासना के पदों की भाषा जहाँ कुछ-कुछ ब्रज की जैसी है तहाँ निर्गुणोपासना की बानी पर खडी हिंदी का प्रभाव पडा है।

नामदेव की बानी यद्यपि सीधी-सादी भाषा मे है, तथापि बह भक्ति रसमयी तथा अंतर को भेदनेवाली है। उसमें हम योग-साधना की निर्मलता के साथ-साथ भक्ति की विह्लता भी पाते हे। हिन्दी के संत-साहित्य को नामदेव महाराज की अनुभवपूर्ण बानी पर गर्व है।

नामदेव महाराज

राग आसा

एक, अनेक सु व्यापक पूरक जित देखौं तित सोई।
माया चित्र-विचित्र विमोहिनि बिरला बूझै कोई॥
सब गोबिंदु है सब गोबिंदु है, गोबिंदु बिनु नहिं कोई।
सूतु एक मनि सत सहस्र जैसे, ओतिपोति प्रभु सोई॥
जल, तरंग अरु फेन, बुदबुदा जल ते भिन्न न होई।
इहु प्रपंच ब्रह्म की लीला, बिचरत आन न होई॥

---

१. सूत...सोई=एक धागे में जैसे सैकडों-हजारों मणियाँ गूँथी जा सकती हैं, वैसे ही परमात्मा जगत् की प्रत्येक वस्तु में और प्रत्येक वस्तु उसमें समाई हुई है।

मिथ्या भ्रम अरु सुपन मनोरथ सत्ति पदारथु जान्या।
सुकिरत-मनसा गुरु-उपदेसै जागत ही मन मान्या॥
कहत नामदेव हरि की रचना देखहु रिदै विचारी।
घट-घट अंतरि सरब निरंतरि केवल एक मुरारी॥१॥

राग आसा

मन मेरो गज, जिहवा मेरी काती।
मपि-मपि काटौं जम की फाँसी॥
कहा करौं जाती कहा करौं पाँती।
राम को नाम जपौं दिन राती॥

भगति-भाव सूँ सीवनि सीवौं।
राम नाम बिनु घरी न जीवौं॥

भगति करौं हरि के गुन गावौं।
आठ पहर अपने खसम को ध्यावौं॥

सोने की सूई, रूपे का धागा।
नामे का चित हरि सूँ लागा॥२॥

सारग

बदहु कि न होड़ माधौ, मोसूँ।
ठाकुर ते जन जन ते ठाकुर ख्याल पर्यो है तोसूँ॥
आपन देव देहुरा आपन, आप लगावै पूजा।
जल ते तरंग तरंग ते है जल, कहन सुनन को दूजा॥
आपहि गावै आपहि नाचै, आप बजावै तूरा।
कहत नामदेव तूं मेरो ठाकुर, जन ऊरा तूं पूरा॥३॥

ओतिप्रोति=ओतप्रोत, परस्पर इतना उलझा या मिला हुआ कि अलग-अलग करना असम्भव-सा हो। बुदबुदा=बुलबुला। विचरत=विचार करने पर। आन=अन्य, भिन्न। सुकिरत मनसा=पवित्र मन से। रिदै=हृदय में।

३. काता=कैंची। मपि-मपि=माप-मापकर। खसम=स्वामी।

३. देहुरा=देवालय। तूरा=तुरही, सिघा। ऊरा=अधूरा, न्यून।

मलार

मो को तूं न बिसारि, तूं न बिसारि, तूं न बिसारि रमैया ।
तेरे जन की लाज जाहिगी, मुझ ऊपरि सब कोपिला ।
सूदु सूदु करि मारि उठायो, कहा करौं बाप बीठुला ।।
मूए परि जौ मुकति देहुगे, मुकति न जानै कोई ।
ए पंडिया मो को ढेढ़ कहत तेरी पैज पिछौडी होई ।।
तू जु दयालु कृपालु कहियतु है, अति भुज भयो अपारला ।
फेरि दिया देहुरा नामे कौ, पंडियन को पिछवारला ।।४।।

राग भैरव

जैसी भूखे प्रीति अनाज ।
त्रिषावंत जल सेती काज ।।
जैसे मूढ़ कुटंब परायण ।
ऐसी नामे प्रीति नारायण ।।
नामे प्रीति नरायण लागी ।
सहज सुभाय भयो बैरागी ।।
जैसी परपुरषारत नारी ।
लोभी नर धन का हितकारी ।।
कामी पुरुष कामिनी प्यारी ।
ऐसी नामे प्रीति मुरारी ।।
सोई प्रीति जि आपे लाए ।
गुरपरसादी दुबिधा जाए ।।

---

४. कोपिला=कुपित है, नाराज है । सूद=शूद्र । बीठुला=विट्ठल (विष्णु); पढरीनाथ भी कहते है, जो नामदेव के इष्टदेव थे । मुए परि= मरने पर । ढेढ=अंत्यज, अछूत । पैज पिछौडी होई=तेरा प्रण पीछे पड जायगा । अति...अपारला= भुजा बहुत बढा दी । फेरि.. पिछवारला=मंदिर का मुहँ (द्वार) नामदेव की ओर कर दिया, ताकि वह दर्शन ले सके, क्योंकि उसे मंदिर में प्रवेश नहीं करने दिया था, और मंदिर की पीठ पडों की ओर करदी ।

५. सेती=प्रति, से । पुरषा=पुरुष । हितकारी=लोभी । परसादी=कृपा । तूटसि=

कबहुँ न तूटसि रह्या समाइ ।
नामे चित लाया सचि भाइ ।।
जैसी प्रीति बालक अरु माता ।
ऐसा हरि सेती मन राता ।।
प्रणवै नामदेउ लागी प्रीति ।
गोबिंदु बसै हमारे चीति ।।५।।

माली गौड

मेरो बाप माधौ तूं धन केसौ, सांवलियो बीठुलराइ ।
कर धरे चक्र बैकुंठ ते आयो, तूं रे गज के प्रान उधार्यो ।।
दुहसासन की सभा द्रोपदी अंबर लेत उबार्यो ।
गोतम नारि अहल्या तारो, पापिन केतिक तार्यो ।।
ऐसा अधम अजाति नामदेउ तव सरनागति आयो ।।६।।

राग गौड

मोहि लागति तालाबेली ।
बछुरा बिनु गाइ अकेली ।।
पानी बिनु ज्यूं मीन तलफै ।
ऐसे रामनाम बिनु नामा कलपै ।।
जैसे गाइ का बाछा छूटला ।
थन चोखता माखन घूटला ।।
नामदेउ नारायन पाया ।
गुर भेटत ही अलख लखाया ।।
जैसे बिषै हेत परनारी ।
ऐसे नामे प्रीति मुरारी ।।
जैसे ताप ते निरमल घामा ।
तैसे रामनाम बिनु बापुरो नामा ।।७।।

टूटा । साच भाइ=सच्चे भाव से । राता=अनुरक्त, लगा हुआ । चीति=चित्त ।

६. केसौ=केशव । दुहसासन=दुःशासन । अंबर लेत=वस्त्र खींचते हुए । पापिन... तार्यो=कितने ही पापियों को पवित्र किया और तार दिया ।

७. तालाबेली=बेचैनी । कलपै=व्याकुल हो रहा है । बापुरो=बेचारा ।

राग गौड़

हमरो करता राम सनेही ।
काहे रे नर गरब करत है, बिनसि जाइ झूठी देही ॥
मेरी मेरी कैरव करते दुरजोधन से भाई ।
बारह जोजन छत्र चलैथा, देही गिरझन खाई ॥
सरब सोने की लंका होती, रावन से अधिकाई ।
कहा भयो दर बाँधे हाथी, खिन महिं भई पराई ॥
दुरबासा सूं करत ठगौरी, जादव वे फल पाये ।
कृपा करी जन अपने ऊपर नामा हरिगुन गाये ॥८॥

राग धनाश्री

मारवाड़ि जैसे नीर बालहा, बेलि बालहा करहला ।
ज्यूं कुरंग निसि नाद बालहा त्यूं मेरै मनि रमइया ॥
तेरा नाम रूड़ो रूपु रूड़ो अति रंग रूडो मेरो रमइया ।
ज्यूं धरणी को इन्द्र बालहा, कुसम वास जैसे भवँरला ॥
ज्यूं कोकिल को अंब बालहा, त्यूं मेरै मनि रमइया ॥
चकवी कौं जैसे सूर बालहा, मानसरोवर हंसला ।
ज्यूं तरुणी कौं कन्त बालहा, त्यूं मेरै मनि रमइया ॥
बारक कौं जैसे खीर बालहा, चातक मुख जैसे जलधरा ।
मछली कौं जैसे नीर बालहा, त्यूं मेरै मनि रमइया ॥
साधिक सिद्ध सगल मुनि चाहहिं, बिरले काहू डीठुला ।
सगल भवन तेरो नाम बालहा, त्यूं नामे मनि बीठुला ॥९॥

भाई रे, इन नैनन हरि देखौ ।
हरि की भगति साध की संगति, सोई दिन धनि लेखौ ॥

---

८. गिरझ=गीध । खिन=क्षण, पल । ठगौरी=धोखा ।

९. बालहा=प्रिय । करहला=फूल की कली । कुरंग=मृग । रूडो=सुन्दर । अंब=आम । सूर=सूर्य । बारक=बालक । जलधरा=स्वाति नक्षत्र के मेघ से अभिप्राय है । डीठला=देखा ।

१०. रसना.. दूजा=वही जिह्वा या वाणी धन्य है, जो हरिनाम ही जपती है, दूसरा

चरन सोइ जे नचत प्रेमसूं कर सोई जे पूजा।
सीस सोइ जो नवै साधकूं रसना अवर न दूजा॥
यह संसार हाटका लेखा, सब कोइ बनिजहिं आया।
जिन जस लाद्या तिन तस पाया, मूरख मूल गँवाया॥
आतमराम देह धरि आया तामें हरि कूं देखौं।
कहत नामदेव बलि बलि जैहौं, हरि भजि और न लेखौं॥१०॥
परधन परदारा परिहरी। ताके निकट बसहिं नरहरी॥
जे न भजंते नारायना। तिनका मैं न करौं दरसना॥
जिनके भीतर रहै अंतरा। जैसा पसु तैसा वह नरा॥
प्रनमत नामदेव, ताके बिना ना सोहे बत्तीस लच्छना॥११॥
किसू हूँ पूजूँ दूजा नजर न आई।
एकै पाथर किज्जे भाव। दूजे पाथर धरिये पाव॥
जो वो देव तो हम बी देव। कहै नामदेव हम हरि की सेव॥१२॥

शब्द नहीं बोलती। लेखा=समान। लाद्या=कर्म किया। मूल=पूंजी। आतम-रूप=आत्मस्वरूपी ब्रह्म।

११. अंतरा=मदबुद्धि, द्वैतभाव। किज्जे=करते है।

१२. भाव=भक्ति-भावना। बी=भी।

●

कबीर साहब

चोला-परिचय

जन्म-संवत—१४५६ वि०

जन्म-स्थान—काशी

भारत का तत्कालीन शासक—सिकन्दर लोदी

माता-पिता के नाम अज्ञात; नीरू जुलाहे और उसकी पत्नी नीमा द्वारा पालित।

गुरु—स्वामी रामानन्द

सत्यलोक-प्रयाण-सवत्—१५७५ वि०

कहते है कि नीरू जुलाहा जब अपनी स्त्री का गौना कराकर घर को वापस आ रहा था, तव रास्ते मे उसे काशी के पास लहरतारा तालाब पर एक हाल का जन्मा बालक पड़ा दिखाई दिया। उस नवजात बालक को उठाकर वह घर ले आया, यद्यपि लोकापवाद के डर से नीमा ने पति को ऐसा करने से रोका। यही परित्यक्त बालक आगे चलकर कबीर के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

कबीरदास का पालन-पोषण जिस जुलाहे के कुल मे हुआ था, वह नव-धर्मान्तरित मुसलमान-कुल था। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी अपनी 'कबीर' पुस्तक मे गहरी गवेषणा के परिणामस्वरूप इसी निष्कर्ष पर पहुचे है।

स्वामी रामानन्दजी को कबीरदास ने अपना गुरु स्वीकार किया था—"काशी मे हम प्रगट भये है, रामानन्द चेताये।' सद्गुरु के प्रति कबीर ने ज्वलन्त श्रद्धाभाव अनेक साखियो व शब्दो मे प्रकट किया है।

मगर मुसलमान कबीर-पन्थी मानते है कि कबीर ने सूफी फकीर शेख तकी से गुरु-दीक्षा ली थी। इसके प्रमाण मे यह वाक्य प्रस्तुत किया जाता है—"घट-घट है अविनासी सुनहु तकी तुम शेख।" पर इसमे यह बात सिद्ध नही होती कि शेख तकी कबीर के गुरु थे। 'शेख' शब्द का प्रयोग यहाँ विशेष. आदरभाव मे नही किया गया है, बल्कि शेख तकी को उलटे उपदेश-सा दिया गया है। हाँ, यह सम्भव है कि ऊँजी के पीर शेख तकी का सत्सग कुछ कालतक उन्होने किया हो।

ज्ञानभक्ति की सतत साधना करते हुए भी अपना घरेलू व्यवसाय नही छोडा—'हम घर सूत तनहि नित ताना।' किन्तु कपडा बुनते समय भी लौ उनकी राम से ही लगी रहती थी। ताने-बाने के रूपक के अनेक सुन्दर शब्द कबीर के मिलते है।

एक लोक-प्रचलित कथा है। कहते है कि एक दिन एक थान बुन-कर कबीर साहब उसे बाजार में बेचने के लिए घर से निकले। रास्ते मे एक साधु मिल गया और उसने कहा—'बाबा, ला कुछ दे।' इन्होंने

आधा थान फाडकर दे दिया। 'पर इतने से तो बाबा, मेरा काम नही चलेगा।' कबीर साहब ने दूसरा आधा थान भी उसे दे दिया, और प्रसन्न-चित्त घर लौट आये।

अन्य अनेक संत-महात्माओ की तरह कबीर साहब के विषय मे भी कितनी ही अलौकिक चमत्कारपूर्ण लोक-कथाएँ प्रसिद्ध है, जैसे—व्यापारी के भेष मे भगवान् का कबीर के घर पर सन्तो के भण्डारे के लिए आटा, घी शकर आदि बैलों पर लादकर ले जाना, दिव्यदृष्टि से यह देखकर कि जगन्नाथपुरी मे जगन्नाथजी का कपडा आग से जलना चाहता है, कबीर का दूर से ही पानी डालकर आग को बुझा देना, और जब बादशाह सिकन्दर लोदी ने पाया कि कबीर स्वय अपने को ईश्वर कहता है, तो क्रोध मे आकर उन्हे आग मे फेकवाना, पर उनका उससे साफ़ बच जाना, फिर उन्हे चिरवाने के लिए हाथी भेजवाना, पर उनके सामने से मारे डर के हाथी का भाग जाना, इत्यादि।

आयु का प्राय: सारा ही भाग मोक्षदायिनी काशीपुरी मे कबीर साहब ने बिताया, पर मृत्यु के समय वे मगहर चले आये—

सकल जन्म सिवपुरी बिताया,
मरति बात मगहर उठि धाया।

प्रसिद्ध है कि काशी मे प्राण छोडने से मुक्ति मिलती है, और मगहर मे मरने से नरक। पर कबीर इस लोकप्रचलित अन्ध धारणा के क़ायल नही थे। उन्होने कहा—

जो काशी तन तजै कबीरा।
तो रामहि कौन निहोरा ?

कहते है कि मगहर मे कबीर साहब के हिन्दू और मुसलमान शिष्यों मे उनके शव को लेकर झगड़ा खड़ा हो गया—हिन्दू कहते थे कि हम दाहसस्कार करेगे, और मुसलमान चाहते थे कि उन्हे वे दफनायेगे। मगर जब कफन को उठाकर देखा तो वहाँ कबीर साहब का शव नहीं था, उसकी जगह कुछ फूल बिखरे पडे थे। हिदू-मुसलमानों ने उन फ़ूलों को आपस मे आधा-आधा बाँट लिया।

कबीर साहब की जैसी बानी अलौकिक, वैसी ही उनकी लोक-सद्ध जीवन-कथा भी अलौकिक। कबीर एव उनकी कोटि के अन्य ो की जीवन-कथाएँ तथाकथित इतिहास की वस्तु नही है। उन्होने ाँ, कब, किस कुल मे पचरग चोला धारण किया, और कहाँ और । उसे उतारकर रख दिया इस सबकी खोज मे उलझना व्यर्थ-सा ाता है। उनका जीवन-दर्शन तो उनकी रसवती बानी के पद-पद मे नकता है। तो फिर उसीको साधना के सहारे गहरे उतरकर क्यों न जा जाये ?

नी-परिचय

भक्तमाल मे नाभाजी ने कहा है—

'आरूढ़ दसा ह्वै जगत परमुख देखी नाहिंन भनी।'

कबीर ने जो कुछ भी कहा अपने खुद के जीवित-जागृत अनुभव से ा, दूसरों के मुहँ की कही बात उन्होने नही कही। पढ़-पढ़कर भी ई बात नही कही—

'मसि कागद छूयौ नहीं, कलम गही नहिं हाथ।'

जो कहा अनूठा कहा, किसीका जूठा नही। इसीलिए जिस किसी-केवल शास्त्रीय पांडित्य का सहारा लेकर कबीर के सिद्धांतो की गवे-ा और आलोचना की, वह अपने प्रयत्न मे प्राय सफल नही हुआ। ीर के तत्त्वदर्शन की थाह दार्शनिक विवेचन और विश्लेषण के द्वारा ी, प्रत्युत सत्य की सहज साधना के द्वारा ही किया जा सकता है। ीर की बानी मे जहाँ हम ज्ञान-विज्ञान का सूक्ष्म-से-सूक्ष्म निरूपण पाते वहाँ योग का गूढातिगूढ भेद भी हमे मिलता है और भक्ति का गहरे -गहरा रहस्यवाद भी। वेदांत भी उसमे पूरा-पूरा उतरा है, और साथ सूफी सिद्धांत भी। किन्तु वहाँ उनकी तत्वदर्शन की विविध विवेच-ाएँ तथा मान्यताएँ उन्ही सब अर्थो मे नहीं मिलेंगी, जिन अर्थों में उन्हे हम अनेक शास्त्रों मे सामान्यतया स्थिर पाते है, परिणामत: नके आधार पर कबीर के स्वानुभूत तत्त्वदर्शन का विवेचन और श्लेषण एकांगी या अधूरा रहता है।

कबीर की निपट गहरी और ऊँचे घाट की बानी के विषय मे ऊपर-ऊपर से कुछ कहा जा सकता है, तो केवल इतना ही कि—

१. उसमे निरपेक्ष ज्ञान-विज्ञान की ओर पद-पद पर गूढ संकेत है। पर वह लोगो को धोखे मे नही रखना चाहती। वह 'गुन मे निरगुन की और निरगुन मे गुन' की बाट बताती है–निर्गुण भी उसका अनूठा और सगुण भी उसका अनूठा। उसका प्रतिपाद्य ब्रह्म इसी प्रकार द्वैत और अद्वैत दोनो से परे और ऐसा ही उसका राम भी।

२. उस बानी मे जगह-जगह पर योगमार्ग का उल्लेख आया है। पर रास्ता वह वैसा टेढा-मेढा और विकट नही है। तथापि योगी तो उसे फिसलता हुआ ही दिखाई देता है, योग उसका सहज-ही-सहज है, वैसा ही जैसा कि आत्मा का परमात्मा से मिलन। खुद ही थके-माँदे मार्गदर्शक प्रियतम के निकट कैसे पहुँचा सकते है ?

३. भक्ति-मार्ग पर चलने की वह सलाह देती है। कहती है कि बड़े चाव से, 'जतन करो सखि पिया मिलन की।' राह रपटीली है, उस-पर गिर-गिरकर और उठ-उठकर बडे जतन से चलना पडता है, और जब उस ठौर पर पहुँचते है, लाल की लाली मे सब कुछ रँगा हुआ दीखता है। सो, 'भक्तिमार्ग' भी उसका अपना ही है।

४. बाह्याचारो की उसे तनिक भी अपेक्षा नही—उसकी दृष्टि मे वह कुबाट है। भले ही चला करे पडित-पाडे और शेख-मुल्ले उस रास्ते से; वह अपने साधु भाई को उसपर कभी नही चलने व भटकने देगी।

५. हिन्दू और मुसलमान दोनो ही, उसकी नजर मे, सही रास्ते नही जा रहे थे, दोनों ही अह या खुदी को गले से लगाये उल्टी राह जा रहे थे, तो उन्हे तो उसे फटकारना ही था, उन्हे ही जो वेद और कुरान की गहराई मे न पैठकर उनके पन्नो के उलटने-पलटने मे ही अपनी पडि-ताई और मुल्लाई को खर्च कर रहे थे।

६. सत्य की राह मे जो भी आडे आया, उसे उसने बख्शा नही। कर्मकाड, जात-पाँत और छूतछात को चिपटाये जिसे भी उसने देखा गुम-राह पाया, और उसे झकझोर डाला। उसके प्रखर प्रवाह मे तिनके की

तरह बह गये सारे बाह्याचार, सारे मिथ्याचार।

७ कुछ उलटबाँसियाँ भी उस बानी मे आई है—मौज के अटपटे उद्गार है वे। 'सहज' साधना मे उनका वैसे खास महत्त्व नहीं।

८. भाषा को उस बानी का 'अधिनायकत्त्व' स्वीकार करना पड़ा। उसके विद्युत्-वेग को देखकर वह दिङ-मूढ़-सी हो गई। उसके एक-एक इगित पर मोहित भाषा ने अपने रूप को काँपते हुए साधा और सँवारा।

ऐसी है कबीर की अनूठी बानी! कौन और कैसे उसका बखान करे? बेचारा पगु साहित्य-समीक्षक कहाँ पहुँच सकेगा उस अत्यन्त ऊँचे घाट तक!

प्रस्तुत सार-सग्रह मे थोडे-से शब्द और साखियाँ ही हमने ली है, रमैनी नही; उलटबाँसी एक भी नही ली। बानी मे ऐसे ही अंगों को लिया है, जिनमे सतगुरु और नाम की महिमा, प्रेम और विरह का निरूपण, शील और सदाचार का विवेचन तथा बाह्याचारों और मूढ़-ग्राहों का खण्डन किया गया है।

कबीर साहब

सबद

दुलहनी गावहु मंगलचार।
हम घरि आये हो राजा राम भरतार॥
तन रत करि मैं मन रत करिहूँ, पंचतत मोर बराती।
रामदेव मोरे पाँहुने आये, मैं जोबन में माती॥
सरीर सरोबर वेदी करिहूँ, ब्रह्मा बेद उचारा।
रामदेव संगि भाँवरि लैहूँ, धंनि धंनि भाग हमारा॥
सुर तेतीसूं कौतिग आये, मुनियर सहस अठासी।
कहैं कबीर हम ब्याहि चले हैं, पुरिष एक अबिनासी॥१॥

सबद

१. भरतार=स्वामी। रत=अनुरक्त, पाहुनै=अतिथि; वर। भाँवरि=फेरे, अग्नि की परिक्रमा, जो विवाह के समय वर और वधू मिलकर देते हैं। कौतिग=कौतुक। मुनियर=मुनिवर।

तनना बुनना तज्या कबीर, रांम नांम लिखि लिया सरीर ॥
जबलग भरौं नली का बेह, तबलग टूटै रांम सनेह ॥
ठाढी रोवै कबीर की माय, ए लरिका क्यूं जीवैं खुदाय ॥
कहै कबीर सुनहुं रो माई, पूरणहारा त्रिभुवनराई ॥२॥

अपनैं मैं रंगि आपनपौ जानूं,
जिहि रंगि जानि ताही कूं मानूं ॥टेक॥
अभिअंतरि मन रंग समानां, लोग कहैं कबीर बौरानां ॥
रंग न चीन्हैं मूरखि लोई, जिहि रंगि रंग रह्या सब कोई ॥
जे रंग कबहूं न आवै न जाई, कहै कबीर तिहि रह्या समाई ॥३॥

जो पैं करता बरण बिचारै,
तौ जनमत तीनि डांडि किन सारै ॥टेक॥
उतपति व्यंद कहां थैं आया, जोति धरी अरु लागी माया ॥
नहीं को ऊंचा नहीं को नींचा, जा का प्यंड ताही का सींचा ॥
जो तूं बांभन बंभनी जाया, तौ आंन बाट ह्वै काहे न आया ॥
जो तूं तुरक तुरकनी जाया, तौ भीतरि खतनां क्यूं न कराया ॥
कहै कबीर मधिम नहीं कोई, सो मधिम जा मुखि रांम न होई ॥४॥

हम तौ एकएक करि जानां ।
दोइ कहैं तिनहीं कौं दोजग, जिन नाहिंन पहिचानां ॥टेक॥
एकै पवन एक ही पानीं, एक जोति संसारा ।
एक ही खाक घड़े सब भांडे, एक ही सिरजनहारा ॥

---

२. नली=नाल, ढरकी के अन्दर की नली, जिसपर तार लपटा रहता है। बेह=छेद । खुदाय=या खुदा । पूरणहारा=पालनेवाला ।

३. आपनपौ=आत्मस्वरूप । लोई=लोग ।

४. जोपै...सारै=यदि सरजनहार ने चार वर्णों के भेद का विचार किया है, तो जन्म से ही एकसमान सबके साथ वह भौतिक, दैहिक और दैविक ये तीन दण्ड क्यों लगा देता ? खतना=सुन्नत, एक मुस्लिम संस्कार, जिसमें मूत्रेन्द्रिय के अगले भाग का चमड़ा काट देते है। भीतर=गर्भ में ही। मधिम=हलका, उतरकर ।

५. एक-एक करि=अभेद-रूप से । दोजग=दोजख, नरक, दुर्गति । बाढ़ी=बढ़ई ।

जैसैं बाढ़ी काष्ठ ही काटै, अगिनि न काटै कोई ।
सब घटि अंतरि तूं ही व्यापक, धरैं सरूपैं सोई ॥
माया मोहे अर्थ देखि करि, काहे कूं गरबानां ।
नरभै भया कछू नहीं व्यापै, कहै कबीर दिवानां ॥५॥

बागड़ देस लूवन का घर है,
तहां जिनि जाइ दाझन का डर है ॥टेक॥
सब जग देखौं कोई न धीरा, परस धूरि सिरि कहत अबीरा ॥
न तहां सरवर न तहां पाणी, न तहां सतगुर साधू बांणी ॥
न तहां कोकिल न तहां सूवा, ऊँचै चढि चढ़ि हंसा मूवा ॥
देस मालवा गहर गंभीर, डग डग रोटी पग पग नीर ॥
कहै कबीर घरहीं मन मानां, गूंगे का गुड़ गूंगै जाना ॥६॥

हरि ठग जग कौं ठगौरी लाई,
हरि कै बियोग कैसैं जीऊं मेरी माई ॥टेक॥
कौन पुरिष को काकी नारी, अभिअंतरि तुम्ह लेहु बिचारी ॥
कौन पूत को काको बाप, कौन मरै कौन करै संताप ॥
कहै कबीर ठग सों मनमानां, गई ठगौरी ठग पहिचानां ॥७॥

काहे कूं माया दुख करि जोरी,
हाथि चूंन, गज पांच पछेवरी ॥टेक॥
नां को बंध न भाई साथी, बांधे रहे तुरंगम हाथी ॥
मैड़ी महल बावड़ी छाजा, छाड़ि गये सब भूपति राजा ॥
कहै कबीर रांम ल्यौ लाई, धरी रही माया काहू खाई ॥८॥

दिवाना=दीवाना, मस्त ।

६. बागड=मरुभूमि, यहाँ त्रिताप-संतप्त संसार से अभिप्राय है । लूवन का घर=जहां दिन-रात लुवें (गरम हवा) चलती हो । दाझन का=जलने का । मालवा=प्रियतम के हरेभरे लोक से अभिप्राय है ।

७. ठग=मन को चुरा लेनेवाला; यहा प्रियतम प्रभुको प्रेमातिरेक से 'ठग' कहा है । ठगौरी=मोहिनी ।

८. पछेवरी=पिछौरी, छोटा-सा दोपट्टा । बंध=बंधु । मैडी=मेड़, राज्य की सीमा । छाजा=छज्जा ।

हरि जननी मैं बालिक तेरा, काहे न औगुण बकसहु मेरा ।।टेक।।
सुत अपराध करै दिन केते, जननी कै चित रहैं न तेते ।।
कर गहि केस करै जौ घाता, तऊ न हेत उतारै माता ।।
कहै कबीर एक बुधि बिचारी, बालक दुखी दुखी महतारी ।।९।।

हरि मेरा पीव माई, हरि मेरा पीव,
हरि बिन रहि न सकै मेरा जीव ।।टेक।।
हरि मेरा पीव मैं हरि की बहुरिया, राम बड़े मैं छुटक लहुरिया ।।
किया स्यंगार मिलन कै ताईं, काहे न मिलौ राजा रांम गुसाईं ।।
अब की बेर मिलन जो पाऊं, कहै कबीर भौ-जलि नहीं आऊं ।।१०।।

राम बान अन्ययाले तीर, जाहि लागैं सो जानैं पीर ।।टेक।।
तन मन खोजौं चोट न पाऊं, औषध मूली कहां घसि लाऊं ।।
एकहीं रूप दीसै सब नारी, ना जानौं को पीयहि पियारी ।।
कहै कबीर जा मस्तिक भाग, ना जानूं काहू देई सुहाग ।।११।।

रांम बिन तन की ताप न जाई,
जल में अगिनि उठी अधिकाई ।।टेक।।
तुम्ह जलनिधि मैं जलकर मींनां,
जल में रहौं जलहि बिन षींना ।।
तुम्ह प्यंजरा मैं सुवनां तोरा,
दरसन देहु भाग बड़ मोरा ।।
तुम्ह सतगुर मैं नौतम चेला,
कहैं कबीर रांम रमूं अकेला ।।१२।।

राम मंणि राम मंणि राम चिंतामणि,
भाग बड़े पायौ छाडै जिनि ।।टेक।।

---

९. बकसहु=माफ करो। न हेत उतारै=स्नेहभाव में कमी नहीं करती है।
१०. बहुरिया=वधू। लहुरिया=उम्र में छोटी। स्यंगार=शृंगार।
११. अन्ययाले=अनियारे, तेज नोकवाले। नारी=स्त्री, जीवात्मा। काहू=किसको।
१२. षींनां=क्षीण, दुर्बल। सुवनां=तोता। नौतम=बिल्कुल नया।

असंत संगति जिनि जाइ रे भुलाइ,
साध संगति मिलि हरि गुण गाइ ॥
रिदा कवल में राखि लुकाइ,
प्रेम गांठ दे ज्यूं छूटि न जाइ ॥
अठ सिधि नव निधि नांव मंझारि,
कहै कबीर भजि चरन मुरारि ॥१३॥

डगमग छाड़ि दे मन बौरा ।
अब तो जरें बरें बनि आवै, लीन्हौं हाथ सिंधौरा ॥टेक॥
होइ निसंक मगन ह्वै नाचौ, लोभ मोह भ्रम छाडौ ।
सूरा कहा मरन थैं डरपै, सती न संचैं भांडौ ।
लोक वेद कुल को मरजादा, इहै गलै में पासी ।
आधा बलिकरि पीछा फिरिहै, ह्वै है जगमें हासी ॥
यहु संसार सकल है मैला, राम कहै ते सूचा ।
कहै कबीर नाव नहीं छाड़ौं, गिरत परत चढि ऊंचा ॥१४॥

जौपैं पिय के मनि नहीं भायें, तौ का परोसनि कैं हुलरायें ॥
का चूरा पाइल झमकांयैं, कहा भयो बिछुवा ठमकांयें ॥
का काजल स्यंदूर के दीयें, सोलह स्यंगार कहा भयौ कीयैं ॥
अंजन मंजन करैं ठगौरी, का पचि मरै निगौड़ी बौरी ॥

---

१३. भणि=कह, जप । रिदा कवल=हृदय-कमल । राखि लुकाइ=छिपाकर रख । ज्यू=जिससे कि । नांव मंझारि=रामनाम में ही ।

१४. डगमग=दुविधा । सिंधौरा=सिंधोरा, सौभाग्यसूचक सिंदूर रखने की डिबिया, जिसे लेकर सती अपने पति के शव के साथ जाती थी । न सचै भांडौ=शरीर को रखने का लोभ नहीं करती है । पासी=फांसी । सूचा=पवित्र । चढि ऊँचा=ऊँचे ब्रह्मपद पर पहुंच जाओ ।

१५- तौ का हुलराये=तब पडोसिन के पुत्र को दुलार-प्यार करने से क्या होता है ? चूरा=चूडा, कड़ा । पाइल=पाजेब । झमकायें=बजाने और चमकाने से । बिछुवा=पैर की अंगुलियों में पहनने का एक गहना । ठगौरी=मोहिनी ।

जौपैं पतिव्रता है नारी, कैसैं ही रहौ सो पियहि पियारी।
तन मन जोवन सोंपि सरीरा, ताहि सुहागनि कहै कबीरा ॥१५॥

सब दुनी सयांनीं मैं बौरा, हम बिगरे बिगरौ जिनि औरा ।।टेक॥
मैं नहीं बौरा राम कियो बौरा, सतगुरु जारि गयौ भ्रम मोरा।
विद्या न पढ़ूं बाद नहीं जानूं, हरि गुन कहत सुनत बौरानूं।
काम क्रोध दोऊ भये बिकारा, आपहिं आप जरैं संसारा।
मींठो कहा जाहि जो भावै, दास कबीर राम गुन गावै ॥१६॥

कहा करौं कैसै तिरौं भौजल अति भारी।
तुम्ह सरणागति केसवा, राखि राखि मुरारी ॥टेक॥
घर तजि बनखंडि जाइये, खनि खइये कंदा।
विषै विकार न छूटई, ऐसा मन गंदा।
विष विषिया की बासना तजौं तजी नहीं जाई।
अनेक जतन करि सुरझिहैं, फुनि फुनि उरझाई॥
जीव अछित जोवन गया कछू कीया न नीका।
यहु हीरा निरमोलिका कौड़ी पर बीका।
कहैं कबीर सुनि केसवा, तूं सकल-बियापी।
तुम्ह समान दाता नहीं, हम से नहीं पापी ॥१७॥

तेरा जन एक आध है कोई।
काम-क्रोध अरु लोभ-विवर्जित हरिपद चीन्हैं सोई ॥टेक॥
राजस तांमस सातिग तीन्यूं ये सब तेरी माया।
चौथे पद कौं जे जन चीन्हैं तिनहि परमपद पाया।
असतुति निंद्या आसा छांडै तजै मांन अभिमानां।
लोहा कंचन सम करि देखै ते मूरति भगवाना॥

निगौडी=जिसके आगे-पीछे कोई न हो, अभागिनी।
१६- बौरा=बावला, पागल। औरा=और कोई। बौरानूं=पागल हो गया।
१७. खनि=खोदकर। विष विपिया=इन्द्रियो के विषैले भोग। फुनि फुनि=पुनः पुनः, फिर फिर।
१८. विवर्जित=रहित। सातिग=सात्विक। चौथा पद=गुणातीत; समाधि-अवस्था।

च्यतै तो माधो च्यंतामणि हरिपद रमै उदासा ।
त्रिस्ना अरु अभिमान रहत है, कहै कबीर सो दासा ॥१८॥

तूं माया रघुनाथ की खेलणे चली अहेड़ै ।
चतुर चिकारे चुणि चुणि मारे, कोई न छौड्या नेडै ॥टेक॥
मुनियर पीर डिगम्बर मारे, जतन करंता जोगी ।
जंगल महिं के जंगम मारे, तूं रे फिरै बलिवंती ॥
बेद पढंता बांम्हण मारा, सेवा करतां स्वांमी ।
अरथ करंता मिसर पछाड्या, तूं रे फिरै मैंमंती ।
साषित कै तूं हरता करता, हरि-भगतन कै चेरी ।
दास कबीर रांम कै सरनैं, ज्यूं लागी त्यूं तोरी ॥१९॥

जग सूं प्रीति न कीजिये, समझि मन मेरा ।
स्वाद हेत लपटाइये, को निकसै सूरा ॥
एक कनक अरु कामिनी जग मैं दोइ फंदा ।
इनपै जो न बंधावई ताका मैं बंदा ॥
देह धरें इन मांहिं बास कहु कैसैं छूटे ।
सीव भये ते ऊबरे, जीवत ते लूटे ।
एक एक सूं मिलि रह्या तिनहीं सचु पाया ।
प्रेम मगन लैलीन मन सो बहुरि न आया ॥
कहै कबीर निहचल भया, निरभै पद पाया ।
संसा ता दिन का गया, सतगुरु समझाया ॥२०॥

उदासा=अनासक्त ।

१९. अहेडै=अहेर; शिकार । चिकारा=छिकरा; हिरन की जाति का एक फुर्तीला जानवर । नेडै=पास । डिगम्बर=दिगम्बर; नग्न साधु । जंगम=चलता-फिरता साधु । मिसर=कथावाचक से अभिप्राय है । मैमंती=मतवाली । साषित=वाममार्गी; हरि-विमुख । ज्यूं लागी त्यूं तोरी=आसक्ति को तत्काल तोड़ दिया ।

२०. सीव भये ते ऊबरे=जो शव अर्थात् जीवन-मृतक हो गये, वे ही बचे । सचु-पाया=शान्ति पाई ।

जाइ रे दिन ही दिन देहा । करिलै बौरी रांम सनेहा ॥टेक॥
बालापन गयो, जोवन जासी । जुरा मरण भौ संकट आसी ॥
पलटे केस नैन जल छाया । मूरिख चेति बुढापा आया ॥
रांम कहत लज्या क्यूं कीजै । पल पल आउ घटै तन छीजै ॥
लज्या कहै हूं जम की दासी । एकै हाथि मुदिगर दूजैं हाथि पासी ॥
कहै कबीर तिनहूं सब हार्‌या । रांम नांम जिनि मनहु बिसार्‌या ॥२१॥

कहु पांडे सुचि कवन ठांव, जिहि घरि भोजन बैठि खाव ॥टेक॥
मात जूठी पिता पुनि जूठा, जूठे फल चित लागे ।
जूठा आवन जूठा जानां, चेतहु क्यूं न अभागे ॥
अंन जूठा पानी पुनि जूठा, जूठे बैठि पकाया ।
जूठी कड़छी अंन परोस्या, जूठे जूठा खाया ॥
चौका जूठा गोबर जूठा, जूठा सभी पसारा ।
कहै कबीर तेइ जन सूचे, जे हरि भज तजहिं विकारा ॥२२॥

अलह रांम जीऊं तेरे नाईं, बंदे ऊपरि मिहर करौ मेरे साईं ॥टेक॥
क्या ले माटी भुंइ सूं मारैं, क्या जल देह न्हवायें ।
जोर करै मसकीन सतावै, गुन हीं रहै छिपायें ॥
क्या तु जू जप मंजन कीयें, क्या मसीति सिर नांयें ।
रोजा करैं निमाज गुजारैं, क्या हज काबै जायें ॥
बांम्हण ग्यारसि करै चौबीसों, काजी मुहरम जान ।
ग्यारह मास जुदे क्यूं कीये, एकहि मांहि समांन ॥
जौ रे खुदाइ मसीति बसत है और मुलिक किस केरा ।
तीरथ मूरति रांम-निवासा, दुहु मैं किनहूं न हेरा ॥

---

२१. जासी=जायेगा । जुरा=जरा, बुढापा । भौ=भय । आसी=आयेगा । पलटे केस= काले बाल सफेद हो गये । आउ=आयु । छीजै=क्षीण होता जाता है ।
२२. आंवन=जन्म । जानां=मरण । कडछी=चम्मच । पसारा=सृष्टि । सूचे=पवित्र ।
२३. नांई=नाम पर । जोर=जुल्म । मसकीन=गरीब, बेचारा । तु जू=तो जो । मसीति=मसजिद । ग्यारसि=एकादशी । मुहरम=मोहर्रम । ग्यारह · समान= यदि एक रमजान का महीना ही धर्म का महीना है, तो फिर अलग से ग्यारह

पूरब दिसा हरी का बासा, पच्छिम अलह मुकामां ।
दिल ही खोजि दिलै दिल भीतरि, इहां रांम रहिमांनां ॥
जेती औरति मरदां कहिये, सब में रूप तुम्हारा ।
कबीर पंगुड़ा अलह रांम का, हरि गुर पीर हमारा ॥२३॥

तुम्ह घरि जाहु हमारो बहनां, विष लागैं तुम्हारे नैनां ॥
अंजन छाडि निरंजन राते, नां किसहीं का देनां ।
बलि जाउं ताकी जिनि तुम्ह पठई, एक माइ एक बहनां ॥
राती खांडी पेखि कबीरा, देखि हमारा सिंगारौ ।
सरग लोक थैं हम चलि आई, करन कबीर भरतारौ ॥
सर्ग लोक में क्या दुख पड़िया, तुम आई कलि मांहीं ।
जाति जुलाहा नाम कबीरा, अजहूं पतीज्यौ नांहीं ॥
तहां जाहु जहां पाटपटंबर, अगर चन्दन घसि लीनां ।
आइ हमारैं कहा करौगी, हम तौ जाति कमीनां ॥
जिनि हम साजे साज्य निवाजे, बांधे काचै धागै ।
जे तुम्ह जतन करौ बहुतेरा, पांणी आगि न लागै ॥
साहिब मेरा लेखा मांगै, लेखा क्यूं करि दीजै ।
जे तुम जतन करौ बहुतेरा, तौ पाहंण नीर न भीजै ॥
जाकी मैं मछी सो मेरा मछा, सो मेरा रखवालू ।
टुक एक तुम्हारैं हाथ लगाऊं, तौ राजा रांम रिसालू ॥

महीने क्यों रचे, फिर तो एक ही मास होना चाहिए था ! हेरा=देखा, समझा ।
पंगुड़ा=मूर्ख शिष्य ।

२४. बहनां=बहिन; मोहिनी माया से अभिप्राय है । अंजन=नाशवान् संसार । निरंजन=अक्षय पुरुष; माया से निर्लिप्त ईश्वर । एक माइ एक बहनां=तुम मां और बहिन के बराबर हो । राती खांडी=रक्त से रंगी तलवार, घातक मोहिनी डालनेवाली । पतीज्यौ नांहीं=विश्वास नहीं करता हो । जिनि ...धागै=जिसने हमें रचा, और सब कुछ देकर हमें उपकृत किया, उसीके प्रेम के कच्चे धागे से हम बँधे हुए हैं; हम उसी मालिक के अनन्य सेवक हैं । पाहंण नीर न भीजै=पत्थर के अंदर पानी नहीं पैठ सकता; मोहिनी माया की दाल गलने की नहीं ।

जाति जुलाहा नाम कबीरा, वनि वनि फिरौं उदासी ।
असिपासि तुम्ह फिरि फिरि वैसौ, एक माउ एक मासी ।।२४।।

रांम राइ भई बिगूचनि भारी ।
भले इन ग्यांनियन थैं संसारी ।।टेक।।
इक तप तीरथ औगांहैं, इक मांनि महातम चाहैं ।।
इक मैं-मेरी में बीझैं, इक अहमेव में रीझैं ।।
इक कथि-कथि भरम लगावैं, समिता सी बस्त न पावैं ।।
कहै कबीर का कीजे, हरि सूझै सो अंजन दीजै ।।२५।।

तुम्ह बिन रांम कवन सौं कहिये, लागी चोट बहुत दुख सहिये ।।
बेध्यौ जीव विरह कै भालै, राति दिवस मेरे उर सालै ।।
को जांनैं मेरे तन की पीरा, सतगुर सबद बहि गयौ सरीरा ।।
तुम्ह से बैद न हम से रोगी, उपजी बिथा कैसे जीवै वियोगी ।।
निस बासुरि मोहि चितवन जाई, अजहूँ न आइ मिले रांमराई ।।
कहत कबीर हमकौं दुख भारो, विन दरसन क्यूं जीवहि मुरारो ।।२६।।

वै दिन कब आवैंगे माइ ।
जा कारनि हम देह धरी है, मिलिबौ अंगि लगाइ ।।टेक।।
हौं जांनूं जे हिलमिलि खेलूं, तन मन प्रांन समाइ ।
या कामनां करौ परपूरन, समरथ हौ रांमराइ ।।
मांहिं उदासो माधौ चाहै, चितवत रैन बिहाइ ।
सेज हमारी स्यंघ भई है, जब सोऊं तब खाइ ।।
यहु अरदास दास की सुनिये, तन की तपति बुझाइ ।
कहै कबोर मिलै जो सोई, मिलि करि मंगल गाइ ।।२७।।

उदासी=विरक्त । रिसालू=नाराज होगे । वैसौ=बैठती हो । एक माउ एक मासी=तुम मा और मौसी के बराबर हो ।

२५. बिगूचनि=अड़चन, असमजस । ससारी=दुनियादार । औगांहै=अवगाहन अर्थात् स्नान करते है । बीझैं=लिप्त होते है, फँसते है ।

२६. सालै=कसकता है, चुभता है । बहि गयौ—बेध गया, आरपार हो गया । बासुरी=वासर, दिन । चितवत जाई=राह देखने जाता है ।

२७. मांहि=अतर में । स्यंघ=सिंह । अरदास=अर्जदास्त, विनती ।

वाल्हा आव हमारे ग्रेह रे, तुम्ह बिन दुखिया देह रे ।।टेक।।
सब को कहै तुम्हारी नारी, मोकौं इहै अंदेह रे ।
एकमेक ह्वै सेज न सोवै, तबलग कैसा नेह रे ।।
आंन न भावै नींद न आवै, ग्रिह बिन धरै न धीर रे ।
ज्यूं कामीं कौं काम पियारा, ज्यूं प्यासे कूं नीर रे ।।
हैं कोई ऐसा पर-उपगारी, हरि सूं कहै सुनाइ रे ।
ऐसे हाल कबीर भये हैं, बिन देखें जीव जाइ रे ।।२८।।

राग भैरूं

भलैं नींदौ भलैं नींदौ, भलैं नींदौ लोग,
तन मन रांम पियारे जोग ।।टेक।।
मैं बौरी मेरे रांम भरतार, ता कारनि रचि करौं स्यंगार ।।
जैसै धुबिया रज मल धोवै, हरत परत सब निंदक खोवै ।।
न्यंदक मेरे माई बाप, जन्म जन्म के काटे पाप ।।
न्यंदक मेरे प्रांन अधार, बिन बेगारि चलावै भार ।।
कहै कबीर न्यंदक बलिहारी, आप रहै, जन पार उतारी ।।२९।।

क्या ह्वै तेरे न्हांई धोई, आतम रांम न चीन्हां सोई ।।टेक।।
क्या घट ऊपरि मंजन कीयें, भीतरि मैल अपारा ।
रांम नांम बिन नरक न छूटै, जे धोवै सौ बारा ।।
का नट भेष भगवां बस्तर, भसम लगावै लोई ।
ज्यूं दादुर सुरसुरी जल भीतरि हरि बिन मुकति न होई ।।
परिहरि काम रांम कहि बौरै, सुनि सिख बन्धू मोरी ।
हरि कौ नांव अभै-पद-दाता कहै, कबीरा कोरी ।।३०।।

---

२८. बाल्हा=प्यारे । अदेह=अदेशा, संदेह । आंन=अन्न, भोजन ।

२९. भलै नींदौ=भले ही निंदा करे । ता कारनि=उसी स्वामी को रिझाने के लिए । हरत-परत= मैल के दाग व शिकन याने कपट । आप रहै, जन पार उतारी= पर-निंदा के पाप से खुद तो संसार-सागर में पड़ा रहता है, पर जिन हरिभक्तो की वह निंदा करता है उन्हे सहिष्णु बना-बनाकर पार उतार देता है ।

३०. भगवां बस्तर=सन्यासी का गेरुवा कपड़ा । सुरसुरी=सुरसरि, गंगा । दादुर=मेढ़क । काम=विषय-वासना । कोरी=जुलाहा ।

जाति जुलाहा नाम कबीरा, बनि बनि फिरौं उदासी ।
असिपासि तुम्ह फिरि फिरि बैसौ, एक माउ एक मासी ॥२४॥

रांम राइ भई बिगूचनि भारी ।
भले इन ग्यांनियन थैं संसारी ॥टेक॥
इक तप तीरथ औगांहैं, इक मांनि महातम चाहैं ॥
इक मैं-मेरी मैं बीझैं, इक अहमेव मैं रीझैं ॥
इक कथि-कथि भरम लगावैं, संमिता सी बस्त न पावैं ॥
कहै कबीर का कीजै, हरि सूझै सो अंजन दीजै ॥२५॥

तुम्ह बिन रांम कवन सौं कहिये, लागी चोट बहुत दुख सहिये ॥
बेध्यौ जीव बिरह कै भालै, राति दिवस मेरे उर सालै ॥
को जांनैं मेरे तन की पीरा, सतगुर सबद बहि गयौ सरीरा ॥
तुम्ह से बैद न हम से रोगी, उपजी बिथा कैसे जीवै वियोगी ॥
निस बासुरि मोहि चितवन जाई, अजहूँ न आइ मिले रांमराई ॥
कहत कबीर हमकौं दुख भारी, बिन दरसन क्यूं जीवहि मुरारी ॥२६॥

वै दिन कब आवैंगे माइ ।
जा कारनि हम देह धरी है, मिलिबौ अंगि लगाइ ॥टेक॥
हौं जांनूं जे हिलमिलि खेलूं, तन मन प्रांन समाइ ।
या कामनां करौ परपूरन, समरथ हौ रांमराइ ॥
मांहिं उदासी माधौ चाहै, चितवत रैन बिहाइ ।
सेज हमारी स्यंघ भई है, जब सोऊं तब खाइ ॥
यहु अरदास दास की सुनिये, तन की तपति बुझाइ ।
कहै कबीर मिलै जो सोई, मिलि करि मंगल गाइ ॥२७॥

उदासी=विरक्त । रिसालू=नाराज होगे । बैसौ=बैठती हो । एक माउ एक मासी=तुम मा और मौसी के बराबर हो ।

२५. बिगूचनि=अड़चन, असमंजस । संसारी=दुनियादार । औगांहैं=अवगाहन अर्थात् स्नान करते है । बीझै=लिप्त होते है, फँसते है ।

२६. सालै=कसकता है, चुभता है । बहि गयौ=बेध गया, आरपार हो गया । बासुरी=वासर, दिन । चितवत जाई=राह देखने जाता है ।

२७. मांहि=अंतर में । स्यंघ=सिंह । अरदास=अर्जदाश्त, विनती ।

वाल्हा आव हमारे ग्रेह रे, तुम्ह बिन दुखिया देह रे ।।टेक।।
सब को कहै तुम्हारी नारी, मोकौं इहै अंदेह रे ।
एकमेक ह्वै सेज न सोवै, तबलग कैसा नेह रे ।।
आंन न भावै नींद न आवै, ग्रिह बिन धरै न धीर रे ।
ज्यूं कामीं कौं काम पियारा, ज्यूं प्यासे कूं नीर रे ।।
हैं कोई ऐसा पर-उपगारी, हरि सूं कहै सुनाइ रे ।
ऐसे हाल कबीर भये हैं, बिन देखें जीव जाइ रे ।।२८।।

राग भैरूं

भलैं नींदौ भलैं नींदौ, भलैं नींदौ लोग,
तन मन रांम पियारे जोग ।।टेक।।
मैं बौरी मेरे रांम भरतार, ता कारनि रचि करौं स्यंगार ।।
जैसैं धुबिया रज मल धोवै, हरत परत सब निंदक खोवै ।।
न्यंदक मेरे माई बाप, जन्म जन्म के काटे पाप ।।
न्यंदक मेरे प्रांन अधार, बिन बेगारि चलावै भार ।।
कहै कबीर न्यंदक बलिहारी, आप रहे, जन पार उतारी ।।२९।।

क्या ह्वै तेरे न्हांई धोई, आतम रांम न चीन्हां सोई ।।टेक।।
क्या घट ऊपरि मंजन कीयें, भीतरि मैल अपारा ।
रांम नांम बिन नरक न छूटै, जे धोवै सौ बारा ।।
का नट भेष भगवां बस्तर, भस्म लगावै लोई ।
ज्यूं दादुर सुरसुरी जल भीतरि हरि बिन मुकति न होई ।।
परिहरि काम रांम कहि बौरे, सुनि सिख बन्धू मोरी ।
हरि कौ नांव अभै-पद-दाता कहै, कबीरा कोरी ।।३०।।

---

२८. वाल्हा=प्यारे । अंदेह=अंदेशा, संदेह । आंन=अन्न, भोजन ।

२९. भलैं नींदौ=भले ही निंदा करें । ता कारनि=उसी स्वामी को रिझाने के लिए । हरत-परत= मैल के दाग व शिकन याने कपट । आप रहै, जन पार उतारी= पर-निंदा के पाप से खुद तो संसार-सागर में पड़ा रहता है, पर जिन हरिभक्तों की वह निंदा करता है उन्हे सहिष्णु बना-बनाकर पार उतार देता है ।

३०. भगवां बस्तर=सन्यासी का गेरुवा कपड़ा । सुरसुरी=सुरसरि, गंगा । दादुर=मेढक । काम=विषय-वासना । कोरी=जुलाहा ।

आसण पवन कियैं दिढ रहु रे, मन का मैल छाड़िदे बौरे ॥टेक॥
क्या सींगी मुद्रा चमकायैं, क्या भिभूति सब अंगि लगायैं ॥
सो हिंदू सो मुसलमांन, जिसका दुरस रहै ईमांन ॥
सो ब्रह्मा जो कथै ब्रह्म गियांन, काजी सो जानैं रहिमान ॥
कहै कबीर कछू आन न कीजै, रांम नाम जपि लाहा लीजै ॥३१॥

काहे कूं भीति बनाऊं टाटी, काजानूं कहां परिहै माटी ॥टेक॥
काहे कूं मंदिर महल चिणांऊं, मूवां पीछै घडी एक रहण न पाऊं ।
काहे कूं छाऊं ऊंच उंसेरा, साढे तीनि हाथ घर मेरा ॥
कहै कबीर नर गरब न कीजै, जेता तन तेती भुंइ लीजै ॥३२॥

राग बिलावल

रांम भजै सो जानिये, जाकै आतुर नांहीं ।
सत संतोष लीयें रहै, धीरज मन मांहीं ॥टेक॥
जन कौं काम क्रोध व्यापै नहीं, त्रिष्णां न जरावै ।
प्रफुलित आनन्द मैं रहै, गोव्यंद गुण गावै ॥
जन कौं परनिंद्या भावै नहीं, अरु असति न भाषै ।
काल कलपनां मेटि करि, चरनूं चित राखै ॥
जन समद्रिष्टि सीतल सदा, दुबिधा नहीं आनैं ।
कहै कबीर ता दास सूं, मेरा मन मानैं ॥३३॥

नहीं छाडौं बाबा रांम नाम,
मोहिं और पढन सूं कौन काम ॥टेक॥
प्रहलाद पधारे पढन साल, संग सखा लीयें बहुत बाल ॥
मोहि कहा पढावै आल जाल, मेरी पाटी मैं लिखि दे श्रीगोपाल ॥

---

३१. सींगी=हिरन के सींग का बना बाजा, जिसे मुंह से बजाते हैं ।
३२. टाटी=छप्पर । माटी=शरीर से अभिप्राय है । साढे मेरा=मेरा असली घर याने कब्र या मरघट तो साढे तीन हाथ ही लम्बा है ।
३३. आतुर=अधीरता । सत=सत्य । जनकौं=हरिभक्त को । दुविधा=द्वैतभाव ।
३४. साल=पाठशाला । आल जाल=झंझट-बखेडा । सना मुरकां=शंडा और मर्क, शुक्राचार्य के पुत्र जो असुरों के पुरोहित थे । बांनि=आदत । गिलारि=

तब संना मुरका कह्यौ जाइ, प्रहिलाद बंधायौ बेगि आइ ॥
तूं रांम कहन की छाड़ि बांनि, बेगि छुड़ाऊं मेरौ कह्यौ मांनि ॥
मोहि कहा डरावै बारबार, जिनि जलथल गिरि कौ कियो प्रहार ॥
बांधि मारि भावै देह जारि, जे हूं रांम छाड़ौं तौ मेरे गुरहि गारि ॥
तब काढि खडग कोप्यौ रिसाइ, तोहि राखनहारौ मोहि बताइ ॥
खंभा मैं नै प्रगट्यौ गिलारि, हरनाकस मार्‍यौं नख बेदारि ॥
महापुरुष देवाधिदेव, नरस्यंघ प्रगट कियौ भगति भेव ॥
कहै कबीर कोई लहै न पार, प्रहिलाद उबार्‍यौ अनेक बार ॥३४॥

राग मारग

धंनि सो घरी महूरत्य दिना ।
जब ग्रिह आये हरि के जना ॥टेक॥
दरसन देखत यहु फल भया, नैना पटल दूरि ह्वै गया ॥
सब्द सुनत संसा सब छूटा, स्रवन कपाट बजर था तूटा ॥
परसत घाट फेरि करि घड़्या, काया कर्म सकल झड़ि पड़्या ॥
कहै कबीर संत भल भाया, सकल-सिरोमनि घट मैं पाया ॥३५॥

लोका मति के भोरा रे ।
जौ कासी तन तजै कबीरा, तौ रांमहिं कहा निहोरा रे ॥
तब हम वैसे अब हम ऐसे, इहै जनम का लाहा ।
ज्यूं जल मैं जल पैसि न निकसै, यूं ढुरि मिल्या जुलाहा ॥
रांम-भगति परि जाकौ हित चित, ताकौ अचरज काहा ।
गुर प्रसाद साध की संगति, जग जीतें जाइ जुलाहा ॥
कहै कबीर सुनहु रे सन्तो, भरमि परै जिनि कोई ।
जस कासी तस मगहर ऊसर, हिरदै रांम सति होई ॥३६॥

सिंह से आशय है । नख बिदारि=नखों से चीरकर । भेव=भेद, रहस्य

३५. महूरत्य=मुहूर्त । पटल=अज्ञान का परदा । बजर=वज्र । परसत घड़्या=हाथ लगा कर मिट्टी के शरीर को कंचन का बना दिया ।

३६. निहोरा=एहसान । लाहा=लाभ । पैसि=पैठकर, मिलकर । मगहर=एक स्थान, जो बस्ती जिले में है; मगहर को मगध का भी अपभ्रंश माना जाता है । ऊसर=यहाँ निष्फल से अभिप्राय है ।

अब मोहि जलत रांम जल पाइया ।
रांम उदक तन जलत बुझाइया ॥
मन मारन कारन बन जाइयै ।
सो जल बिन भगवंत न पाइयै ॥
जेहि पावक सुर नर हैं जारे ।
रांम उदक जन जलत उबारे ॥
भवसागर सुखसागर मांहीं ।
पीव रहे जल निखुटत नांहीं ॥
कहि कबीर भजु सारिंगपानी ।
रांम उदक मेरी तिषा बुझानी ॥३७॥

अवर मुये क्या सोग करीजै । तौ कीजै जो आपन जीजै ॥
मैं न मरौं मरिबो संसारा । अब मोहि मिल्यो है जियावनहारा ॥
या देही परमल महकंदा । ता सुख बिसरे परमानंदा ॥
कुअटा एकु पंच पनिहारी । टूटी लाजु भरै मतिहारी ॥
कहि कबीर इकु बुद्धि बिचारी । ना ऊ कुअटा ना पनिहारी ॥३८॥

क्या जप क्या तप क्या ब्रत पूजा । जाकै रिदै भाव है दूजा ॥
रे जन, मन माधव स्यों लाइयै । चतुराई न चतुर्भुज पाइयै ॥
परिहरि लोभ अरु लोकाचार । परिहरि काम क्रोध अहंकार ॥
कर्म करत बद्धे अहमेव । मिल पाथर की करहीं सेव ॥
कहि कबीर भगति कर पाया । भोले भाइ मिले रघुराया ॥३९॥

गंगा के संग सलिता बिगरी । सो सलिता गंगा होइ निबरी ॥
बिगर्‌यो कबीरा राम दुहाई । साचु भयो अन कतहिं न जाई ॥

---

३७. उदक=जल । मन मारन=मन को जीतने । निखुटत नाही=घटता नही है । सारिंगपानी=धनुर्धारी राम । तिषा=प्यास ।

३८. अवर मुये=और के मरने पर । सोक=शोक । जीजै=जीवे । परमल=सुगन्ध । महकन्दा=महकती है । कुअटा=कुआँ, मन से आशय है । पंच पनिहारी= पाँचों इन्द्रियों से अभिप्राय है । लाजु=रस्सी ।

३९. रिदै=हृदय । चतुराई=पांडित्य । बद्धे=बंधन में पडे । भाइ=भाव ।

४०. सलिता=सरिता, नदी । बिगरी=सगति में अपना रूप खो दिया । निबरी=

चन्दन के संगि तरवर बिगर्यो। सो तरवर चन्दन ह्वै निबर्यो।
पारस के सँग ताँबा बिगर्यो। सो ताँबा कंचन ह्वै निबर्यो ॥४०॥

पाती तोरै मालिनी, पाती पाती जीउ।
जिसु पाहन को पाती तोरै, सो पाहनु निरजीउ ॥
भूली मालिनी है एउ। सतिगुरु जागता है देउ ॥
ब्रह्म पाती बिस्नु डारी फूल संकर देव।
तीन देव प्रतख्य तोरहिं करहि किसकी सेव ॥
पषान गढिकै मूरति कीनी देकै छाती पाउ।
जे एइ मूरति साची है तो गड़णहारे को खाउ ॥
भातु पहिति और लापसी करकरा कासारु।
भोगनुहारे भोगिया इसु मूरति के मुख छारु ॥
मालिन भूली जग भुलाना, हम भुलाने नाहिं।
कहि कबीर हम रांम राखे कृपाकरि हरिराइ ॥४१॥

स्वर्गबास न बाछियै, डरियै न नरक-निबासु।
होना है सो होइहै, मनहिं न कीजै आसु ॥
रमय्या गुन गाइयै, जाते पाइयै परमनिधानु।
क्या जप क्या तप संयमो क्या ब्रत क्या इस्नानु ॥
जब लग जुक्ति न जानियै भाव भक्ति भगवान।
सम्पै देखि न हर्षियै बिपति देखि न रोइ ॥
ज्यों सम्पै त्यों बिपत है बिधि ने रच्या सो होइ ॥
कहि कबीर अब जानिया संतन रिदै मंझारि।
सेवक सो सेवा भले जिह घट बसै मुरारि ॥४२॥

परिणत हो गई। अन कतहि=कहीं दूसरी जगह।

४१. पाहन=पत्थर की मूर्ति। जागता=सजीव। देउ=देव। प्रतख्य=प्रत्यक्ष। सेव=सेवा-पूजा। देकै=रखकर। गड़णहारा=गढ़नेवाला, शिल्पी। पहिति=दाल। करकरा=खरा, अच्छा भुना हुआ। कासारु=कसार, एक प्रकार का पकवान। भोगनुहारे भोगिया=पुजारी खा गये।

४२. बाछियै=इच्छा करे। सम्पै=सम्पत्ति, खुशहाली। रिदै=हृदय।

संतन जात न पूछो निरगुनियां।
साध ब्राह्मन, साध छत्तरी, साधै जाती बनियाँ।
साधन मां छत्तीस कौम है, टेढी तोर पुछनियां।
साधै नाऊ, साधै धोबी, साध जाति है बरियां।
साधन मां रैदास संत है सुपच रिषी सो भँगियां।
हिन्दु-तुर्क दुइ दीन बने हैं, कछू नहीं पहचनियां ॥४३॥

निसदिन खेलत रही सखियन संग, मोहि बड़ा डर लागै।
मोरे साहब की ऊंची अटरिया, चढ़त में जियरा कापै॥
जो सुख चहै तो लज्जा त्यागै, पिया सूं हिलमिल लागै।
घूंघट खोल अंगभर भेंटे, नैन आरती साजै॥
कहै कबीर सुनो सखि मोरी, प्रेम होय सो जानै।
निज प्रीतम की आस नहीं है, नाहक काजर पारै॥४४॥

घर घर दीपक बरै, लखै नहि अन्ध है।
लखत लखत लखि परै, कटै जम-फंद है॥
कहन-सुनन कछु नाहिं, नहीं कछु करन है।
जीते-जी मरि रहै, बहुरि नहि मरन है॥
जोगी पड़े बियोग कहैं घर दूर है।
पासहि बसत हजूर, तू चढ़त खजूर है॥
बाह्मन दिच्छा देत सो घर घर घालिहै।
मूर सजीवन पास, तू पाहन पालिहै॥
ऐसन साहब कबीर, सलोना आप है।
नहीं जोग नहिं जाप, पुन्न नहिं पाप है॥४५॥

४३. पुछनिया=पूछना, प्रश्न। बरिया=बारी, एक जाति जो पत्ते-दोने बनाने और सेवा का काम करती है। सुपच रिषि=सुदर्शन नामक श्वपच ऋषि से अभिप्राय है, जिनका उल्लेख महाभारत में आया है।

४४. अंग=अंक, छाती। काजर पारै=दीपक के धुवे की कालिख को किसी बरतनमें जमाये; व्यर्थ सोहाग दिखाये।

४५. दीपक=आत्मज्योति से आशय है। पाहन पालिहै=पत्थर की मूर्तियों को पूजता है। सलोना=सुन्दर।

मन मस्त हुआ तब क्यों बोले।
हीरा पायो गाँठ गँठियायो, बारबार वाको क्यों खोले।
हलकी थी तब चढ़ी तराजू, पूरी भई तब क्यों तोले॥
सुरत कलारी भइ मतवारी, मदवा पी गई बिन तोले।
हंसा पाये मानसरोवर, ताल तलैया क्यों डोले॥
तेरा साहब है घर माहीं, बाहर नैना क्यों खोले।
कहै कबीर सुनो भाई साधो, साहब मिल गये तिल-ओले॥४६॥

जाग पियारी, अब का सोवै। रैन गई दिन काहेको खोवै॥
जिन जागा तिन मानिक पाया। तैं बौरी सब सोय गँवाया॥
पिय तेरे चतुर तू मूरख नारी। कबहुँ न पिय की सेज सँवारी॥
तैं बौरी बौरापन कीन्हा। भर-जोबन पिय अपन न चीन्हा॥
जाग देख पिय सेज न तेरे। तोहि छाँड़ि उठि गये सवेरे॥
कहै कबीर सोइ धन जागै। सब्द-बान उर-अंतर लागै॥४७॥

सन्तो सहज समाधि भली।
साँई तें मिलन भयो जा दिन तें, सुरत न अन्त चली॥
आँख न मूँदूँ कान न रूँधूँ, काया कष्ट न धारूँ।
खुले नैन मैं हँस-हँस देखूँ, सुन्दर रूप निहारूँ॥
कहूँ सो नाम, सुणूँ सो सुमिरन, जो कुछ करूँ सो पूजा।
गिरह-उद्यान एक सम देखूँ, भाव मिटाऊँ दूजा॥
जहँ जहँ जाऊँ सोई परिकरमा, जो कछु करूँ सो सेवा।
जब सोऊँ तब करूँ दण्डवत, पूजूँ और न देवा॥

---

४६. सुरत कलारी=ध्यान; लौरूपी कलवारी। तिल-ओले=आँख के तिल की ओट में।

४७. मानिक=लाल रंग का एक रत्न; यहाँ प्रियतम से आशय है। धन=स्त्री।

४८. अन्त=अनत, अन्यत्र। रूँधूँ=बन्द करता हूँ। कहूँ सो नाम=जो कुछ बोलता हूँ, वही नाम-जप हो जाता है। गिरह-उद्यान=घर और वन। भाव दूजा=द्वैतभाव। परिकरमा=परिक्रमा, प्रदक्षिणा। जब सोऊँ···दण्डवत्=पैर फैलाकर सो जाना ही मेरा दण्डवत् प्रणाम है। तारी=समाधि, ध्यान।

सब्द निरन्तर मनुआ राता मलिन वचन को त्यागी।
ऊठत-बैठत कबहुँ न बिसरै, ऐसी तारी लागी॥
कहै कबीर यह उन्मुनि रहनी, सो परगट कर गाई।
सुख-दुख के इक परे परमसुख तेहि में रहा समाई॥४८॥

जब मैं भूला रे भाई, मेरे सतगुरु जुगत लखाई।
किरिया-करम-अचार मैं छाँडा, छाँडा तीरथ का न्हाना।
सगरी दुनिया भई सयानी, मैं ही इक बौराना।
ना मैं जानूँ सेवा-बंदगी, ना मैं घंट बजाई।
ना मैं मूरत धरि सिंघासन, ना मैं पुहुप चढ़ाई।
ना हरि रीझै जप तप कीन्हे, ना काया के जारे।
ना हरि रीझै धोती छाँड़े, ना पाँचों के मारे।
दाया राखि धरम को पालै, जगसूँ रहै उदासी।
अपना-सा जिव सबका जानै, ताहि मिलै अविनासी।
सहै कुसब्द बाद को त्यागै, छाँडै गर्व-गुमांना।
सत्तनाम ताही को मिलिहै, कहै कबीर दिवांना॥४९॥

मन न रँगाये रँगाये जोगी कपरा।
आसन मारि मन्दिर में बैठे, ब्रह्म छाड़ि पूजन लागे पथरा॥
कनवा फड़ाय जोगी जटवा बढ़ौले दाढ़ी बढ़ाय जोगी होइ गैले बकरा।
जंगल जाय जोगी धुनिया रमौले, काम जलाय जोगी होइ गैले हिजरा॥
मथवा मुँडाय जोगी कपरा रँगेले, गीता बाँचके होइ गैले लबरा।
कहहिं कबीर सुनो भाई साधो, जम-दरवजवा बाँधल जैबे पकरा॥५०॥

सुख-दुख=सान्सारिक सुख-दुःख। परमसुख=ब्रह्मसुख।

४९. जुगत=योग-युक्ति। अचार=आचार। धोती छाँड़े=धोती उतारकर लँगोटी लगाने से। पाँचों के मारे=पाँचों ज्ञानेन्द्रियों को वश में करने से। उदासी=अनासक्त।

५०. धुनिया रमौले=धूनी रमा ली, सामने आग जलाकर शरीर को तपाने वा तप करने बैठ गये। लबरा=झूठा, बकवादी।

जो खोदाय मसजीद बसतु है, और मुलुक केहिकेरा ।
तीरथ-मूरत रांम-निवासी, बाहर केहिका डेरा ।
पूरब दिसा हरी को बासा, पच्छिम अलह मुकांमा ।
दिल में खोज दिलहिमें खोजो इहैं करीमा रांमा ।
जेते औरत-मरद उपानी, सो सब रूप तुम्हारा ।
कबीर पोंगड़ा अलह-राम का, सो गुरु पीर हमारा ॥५१॥

नैहर से जियरा फाट रे ।
नैहर-नगरी जिसकी बिगड़ी, उसका क्या घर-बाट रे ।
तनिक जियरवा मोर न लागै, तनमन बहुत उचाट रे ।
या नगरी में लख दरवाजा, बीच समुन्दर घाट रे ।
कैसेकै पार उतरिहैं सजनी, अगम पंथ का पाट रे ।
अजब तरह का बना तँबूरा, तार लगे मन मात रे ।
खूंटी टूटी तार बिलगाना, कोउ न पूछत बात रे ।
हँस हँस पूछै मातु पितासों, भोरें सासुर जाब रे ।
जो चाहैं सो वोही करिहैं, पत वाही के हाथ रे ।
न्हाय-धोय दुलिहन होय बैठी, जोहै पिय की बाट रे ।
तनिक घुंघटवा दिखाव सखी री, आज सोहाग की रात रे ॥
कहै कबीर सुनो भाई साधो, पिया-मिलन की आस रे ।
भोरे होत बंदे याद करोगे, नींद न आवे खाट रे ॥५२॥

पांडे, बूझि पियहु तुम पानी ।
जिहि मटिया के घरमहँ बैठे, तामहँ सिस्टि समानी ।
छपन कोटि यादव जहँ सीजे, मुनिजन सहज अठासी ॥

---

५१. डेरा=निवासा । करीमा=कृपालु, परमेश्वर । उपानी=उत्पन्न हुए । पोंगडा=मूर्ख, चेला ।

५२. नैहर=मायका; इस लोक से एवं शरीर से अभिप्राय है । पाट=चढाव, फैलाव । खूँटी···बिलगाना=देह से प्राण अलग हो जाने पर । भोरें=सवेरे ही । सासुर=ससुराल, प्रियतम का घर । पत=लाज ।

५३. सिस्टि=सृष्टि । सीजे=गल गये, खप गये । पैग पैग=पग-पग पर । बझि=जाति

पैग पैग पैगंबर गाड़े, सो सब सरि भौ माटी।
तेहि मटिया के भाँड़े पाँड़े, बूझि पियहु तुम पानी ॥
कच्छ-मच्छ-घरियार बियाने, रुधिर नीर जल भरिया।
नदिया नीर नरक बहि आवै, पसु-मानुस सब सरिया ॥
हाड़ झरी-झरि गूद गरी-गरि, दूध कहाँतें आया।
सो लै पाँडे जेंवन बैठे, मटियहिं छूति लगाया ॥
बेद-किनेब छाँडि देउ पाँडे, ई सब मन के भरमा।
कहहिं कबीर सुनहु हो पांडे, ई तुम्हरे हैं करमा ॥५३॥

दुलहिन, अँगिया काहे न धोवाई।
बालपने की मैली अँगिया, बिषय-दाग परि जाई।
बिन धोये पिय रीझत नाहीं, सेज ते देत गिराई ॥
सुमिरन ध्यान कै साबुन करिले, सत्तनाम-दरियाई।
दुविधा के भेद खोल बहुरिया, मन कै मैल धोवाई।
चेत करो तीनों पन बीते, अब तो गवन नगिचाई।
पालनहार द्वार हैं ठाड़े, अब काहे पछिताई।
कहत कबीर सुनो री बहुरिया, चित अंजन दे आई ॥५४॥

वै क्यूं कासी तजैं मुरारी। तेरी सेवा-चोर भये बनवारी ॥
जोगी जती तपी संन्यासी। मठ-देवल बसि परसैं कासी ॥
तीन बार जे नितप्रति न्हावैं। काया भीतरि खबरि न पावैं ॥
देवल देवल फेरी देहीं। नाम निरंजन कबहुँ न लेहीं ॥
तरन-बिरद कासी कों न दैहूँ। कहै कबीर मल नरकहिं जैहूँ ॥५५॥

पूछकर। बियाने=पैदा हुए। नरक=मल-मूत्र। सरिया=सड़ गये। झरि-झरि=झर-झरकर। गूद=गूदा, हड्डी के भीतर का भेजा। गरी-गरि=गलगलकर।

५४. अँगिया=चोली; यहाँ मन की मलिन वृत्ति या वासना से आशय है। गवन नगिचाई=गौना अर्थात् मरण समीप आ गया है। बहुरिया=बहू, वधू।

५५. बनवारी=बनमाली; विष्णु का एक नाम। काया···पावैं=पता नहीं कि शरीर के भीतर कितना मल-मूत्र भरा है। फेरी=परिक्रमा। तरन-बिरद=संसार से मुक्त होने का यश।

तलफै बिन बालम मोर जिया।
दिन नहिं चैन रात नहिं निंदिया, तलफ-तलफके भोर किया॥
तन-मन मोर रहँट-अस डोलै, सून सेज पर जनम छिया।
नैन थकितभ ये थ पंन सूझै, साँई बेदरदी सुध हू न लिया।
कहत कबीर सुनो भाई साधो, हरो पीर दुख जोर किया॥५६॥

करो जतन सखी साँई मिलन की।
गुड़िया गुड़वा सूप सुपलिया, तजिदे बुधि लरिकैयाँ खेलन की॥
देवता पित्तर भुइयाँ भवानी, यह मारग चौरासी चलन की॥
ऊँचा महल अजब रँग बंगला, साईं की सेज वहाँ लागी फूलन की॥
तन मन धन सब अर्पन कर वहाँ, सुरत सम्हार परूँ पइयाँ सजन की॥
कहै कबीर निर्भय होय हंसा, कुंजी बतादयों ताला खुलन की॥५७॥

पीले प्याला हो मतवाला, प्याला नाम-अमीरस का रे।
बालपना सब खेलि गँवाया, तरुन भया नारी-बस का रे।
बिरध भया कफ बायने घेरा, खाट पड़ा न जाय खसका रे।
नाभिकँवल बिच है कस्तूरी, जैसे मिरग फिरे बन का रे।
बिन सतगुरु इतना दुख पाया, वैद मिला नहिं इस तनका रे।
मात-पिता बन्धू सुत तिरिया, संग नहि कोई जाय सका रे।
जबलग जीवै गुरु गुन लेगा, धन-जोबन है दिन दस का रे।
चौरासी जो उबरा चाहे, छोड़ कामिनी का चसका रे।
कहै कबीर सुनो भाई साधो, नखसिख पूर रहा बिस का रे॥५८॥

तोको पीव मिलैंगें घूंघट के पट खोल रे।
घट-घट में वही साईं रमता, कटुक बचन मत बोल रे॥

---

५६. छिया=मलिन, घृणित, धिक्कार; क्षीण हो रहा है—यह अर्थ भी किया जा सकता है।

५७. गुडिया…सुपलिया=लडकियो के खेलने के खिलौने। बुधि=बुद्धि, स्वभाव। चौरासी चलन की=चौरासी लाख योनियों में जन्म लेने की। अजब रँग=अद्भुत शोभा। सजन=स्वामी। हंसा=मुक्त जीवात्मा से अभिप्राय है।

५८. बाय=वायु। गुरु गुन लेगा=परमात्मा लगान या कर्मों का लेखा लेगा।

धन जोबन का गरब न कीजै, झूठा पंचरंग चोल रे।
सुन्न महल में दियना बार ले, आसन सों मत डोल रे॥
जोग जुगत सों रंग महल में, पिय पायो अनमोल रे।
कहै कबीर आनन्द भयौ है, बाजत अनहद ढोल रे॥५९॥

साहेब है रंगरेज चुनरी मेरी रंग डारी।
स्याही रंग छुड़ायके रे, दियो मजीठा रंग।
धोये से छूटे नहीं रे, दिन दिन होत सुरंग॥
भाव के कुण्ड नेह के जल में प्रेम-रंग दई बोर।
दुख देह मैल छुटाय दो रे, खूब रँगी झकझोर॥
साहिब ने चुनरी रंगी रे, पीतम चतुर सुजान।
सब कुछ उन पर वार दूँ रे, तन मन धन औ प्रान॥
कहैं कबीर रंगरेज पियारे मुझपर हुए दयाल।
सीतल चुनरी ओढ़िके रे, भई हौं मगन निहाल॥६०॥

अरे, इन दोहुन राह न पाई॥
हिन्दू अपनी करै बड़ाई, गागर छुवन न देई।
बेस्या के पायन तर सोवै, यह देखो हिन्दुआई॥
मुसलमान के पीर औलिया मुर्गी मुर्गा खाई।
खाला केरी बेटी ब्याहै, घरहिं में करै सगाई॥
बाहर से इक मुर्दा लाये धोय-धाय चढ़वाई।
सब सखियाँ मिलि जेमन बैठीं, घर-भर करै बड़ाई॥
हिंदुन की हिंदुवाई देखी, तुरकन की तुरकाई।
कहै कबीर सुनो भाई साधो, कौन राह ह्वै जाई॥६१॥

---

५९. पंचरंग चोल=पचतत्व का रचा शरीर।

६०. मजीठा=एक लता जिसकी सूखी जड और डठलो को उबालकर पक्का लाल रंग तैयार किया जाता है। सुरंग=लाल; अनुरागमय। सीतल=शान्ति देनेवाली, ताप दूर करनेवाली।

६१. खाला केरी=मौसी की। मुर्दा=हलाल किया हुआ जानवर। चढवाई=देगची में पकाया।

यह जग अंधा मैं केहि समुझावों ॥
इक-दुइ होंय उन्हैं समुझावौं, सब ही भुलाना पेट के धंधा।
पानी के घोड़ा पवन असवरवा, ढरकि परै जस ओस कै बुंदा ॥
गहिरी नदिया अगम बहै धरवा, खेवनहारा पड़िगा फंदा।
घर की वस्तु निकट नहिं आवत दियना बारिके ढूँढ़त अंधा ॥
लागी आग सकल बन जरिगा, बिन गुरुग्यान भटकिया बंदा।
कहै कबीर सुनो भाई साधो, एक दिन जाय लंगोटी झार बंदा ॥६२॥

मोको कहाँ ढूँढ़ो बन्दे मैं तो तेरे पास में।
ना मैं बकरी ना मैं भेड़ी, ना मैं छुरी गँड़ास में ॥
नहीं खाल में नहीं पोंछ में, ना हड्डी ना माँस में।
ना मैं देवल ना मैं मसजिद, ना काबे कैलास में ॥
ना तो कौनो क्रिया-कर्म में, नहीं जोग-बैराग में।
खोजी होय तौ तुरतै मिलिहौं पलभर की तालास में ॥
मैं तो रहौं सहर के बाहर, मेरी पुरी मवास में ॥
कहै कबीर सुनो भाई साधो, सब साँसों की साँस में ॥६३॥

जेहि कुल भगत भाग बड़ होई।
अबरन बरन न गनिय रंक धनि, बिमल बास निज सोई ॥
बाम्हन छत्री बैस सूद्र सब भगत समान न कोई।
धन वह गाँव ठाँव असथाना, ह्वै पुनीत सँग लोई ॥
होत पुनीत जपै सतनामा, आपु तरै तारै कुल दोई।
जैसे पुरइन रह जल भीतर, कह कबीर जग में जन सोई ॥६४॥

---

६२. असवरवा=सवार। पानी के घोड़ा=क्षणभंगुर देह से आशय है। पवन असवरवा=प्राण-वायु से आशय है। धरवा=धार। बंदा=सेवक, जीव.

६३. गँड़ास=गंडासा, घास के टुकड़े करने का हथयार। खोजी=सत्य-शोधक। मवास=दुर्गम गढ़; अन्तरात्मा से आशय है। सहर के बाहर=पंचभौतिक सृष्टि से परे।

६४. लोई=लोग। पुरइन=कमल का पत्ता, जो जल में रहते हुए भी जल से अलिप्त रहता है। जन सोई=वही सच्चा भक्त है।

हूँ बारी, मुख फेरि पिया रे। करवट दे मोहि काहे को मारे ॥
करवत भला, न करवट तेरो। लाग गरे सुन बिनती मेरी ॥
हम तुम बीच भया नहिं कोई। तुमहि सो कंत, नारि हम सोई ॥
कहत कबीर सुनो नर लोई। अब तुम्हरी परतीत न होई ॥६५॥

पंडित बाद बदौ सो झूठा।
राम के कहे जगत गति पावै, खाँड कहे मुख मीठा ॥
पावक कहे पाँव जो दाझै, जल कहे तृषा बुझाई।
भोजन कहै भूख जो भागै, तो दुनियां तरि जाई ॥
नर के संग सुवा हरि बोलै, हरि प्रताप नहिं जानै।
जो कबहूँ उड़िजाय जंगल को, तौ हरि-सुरति न आनै ॥
बिनु देखे बिनु अरस परस बिनु, नाम लिये का होई।
धन के कहे धनिक जो होतो, निरधन रहत न कोई ॥
साँची प्रीति बिषय-माया सों, हरि-भगतन की हाँसी।
कह कबीर एक राम भजे बिन बाँधे जमपुर जासी ॥६६॥

मेरा तेरा मनुआं कैसे इक होइ रे।
मैं कहता हौं आँखिन देखी, तूं कागद की लेखी रे।
मैं कहता सुरझावनहारी, तूं राख्यो अरुझाइ रे ॥
मैं कहता तूं जागत रहियो, तूं रहता है सोइ रे।
मैं कहता निर्मोही रहियो, तूं जाता है मोहि रे ॥
जुगन-जुगन समझावत हारा, कहा न मानत कोइ रे।
तू तो रंडी फिरै बिहंडी, सब धन डार्‌या खोइ रे ॥
सतगुरु-धारा निरमल बाहै, वा में काया धोइ रे।
कहत कबीर सुनो भाई साधो, तबही वैसा होइ रे ॥६७॥

---

६५. हूँ वारी=मै बलैयां लेती हूँ। करवत=लकडी चीरने का बडा आरा। बीच=भेद डालनेवाला। लोई=लोगो।

६६. गति=मोक्ष। दाझै=जले। अरस=मिलन। हाँसी=मजाक, अपमान। जासी=जाओगे।

६७. बिहंडी=नाश करनेवाली। बाहै=बहती है। वैसा होई रे=अरे, तभी तू सद्‌गुरु के समान निर्मल होगा।

अरे मन, समझकै लादु लदनियाँ ।
काहे कै टट्टुवा काहे कै पाखर, काहे क भरी गवनियाँ ।
मन कै टट्टुवा सुरति कै पाखर, भर पुन-पाप गवनियाँ ॥
घर के लोग जगाती लागे, छीन लेयँ कर धनिवाँ ।
सौदा करु तो यहिं करु भाई, आगे हाट न बनियाँ ॥
पानी-पियै तो यहीं पी भाई, आगे देश निपनियाँ ।
कहै कबीर सुनो भाई साधो, सत्तनाम का बनियाँ ॥६८॥

नैहर में दाग लगाय आई चुनरी ।
ऊ रंगरेजवा कै मरम न जानै,
नहिं मिलै धोबिया कवन करै उजरी ॥
तन कै कूँडी ग्यान कै सउँदन,
साबुन महँग बिकाय या नगरी ॥
पहिरि-ओढ़ि कै चली सुसरिया,
गौवाँ के लोग कहैं बड़ी फुहरी ॥
कहत कबीर सुनो भाई साधो,
बिन सतगुरु कबहूँ नहिं सुधरी ॥६९॥

कौन ठगवा नगरिया लूटल हो ।
चंदन-काठ कै बनल खटोलना, ता पर दुलहिन सूतल हो ॥
उठो सखी मोरी माँग सँवारो, दुलहा मोसे रूसल हो ।
आये उमराज पलँग चढ़ि बैठे, नैनन आँसू टूटल हो ॥
चारि जने मिलि खाट उठाइन, चहुँ दिसि धूधू ऊठल हो ॥
कहत कबीर सुनो भाई साधो, जग से नाता छूटल हो ॥७०॥

---

६८. टट्टुवा=छोटा घोड़ा, जिसपर माल लादते हे । पाखर=टाट की झूल । गवनिवाँ=गोन, टाट का थैला, खास । पुन=पुण्य, सत्कर्म । जगाती=महसूल उगाहनेवाला । कर धनियाँ=हाथ का धन या पूँजी । निपनियाँ=बिना पानी का ।

६९. कूँडी=छोटी नाँद । सऊँदन=रेह-मिला पानी, जिसमें धोने से पहले धोबी कपड़ों को भिगोता है । फुहरी=फूहड़, गँवार ।

७०. नगरिया=नगरी, देह से आशय है । दुलहिन=जीव । सूतल=सोगई । रूसल=रूठ गया । टूटल=निकल पड़े । धूधू=आग के दहकने का शब्द ।

रमैया कै दुलहिन लूटा बाजार।
सुरपुर लूट नागपुर लूटा, तीन लोक मचा हाहाकार॥
ब्रह्मा लूटे महादेव लूटे, नारद मुनि कै परी पिछार।
स्त्रिंगी की मिंगी करि डारी, पारासर कै उदर बिदार॥
कनफूँका चिद्कासी लूटे, लूटे जोगेसर करत बिचार।
हम तो बचिगे साहब-दया से, सब्द-डार गहि उतरे पार॥७१॥

साखी

गुरुदेव कौ अंग

राम नाम कै पंटतरै, देबै को कुछ नाहिं।
क्या ले गुर संतोषिए, हौंस रही मन माहिं॥१॥
सतगुरु लई कमांण करि, बांहण लागा तीर।
एक जु बाह्या प्रीति सूं, भीतर रह्या सरीर॥२॥
दीपक दीया तेल भरि, बाती दई अघट्ट।
पूरा किया बिसाहुँणां, बहुरि न आवौं हट्ट॥३॥
चौसठ दीया जोइ भरि, चौदह चंदा मांहिं।
तिहिं घरि किसकौ चानिणौं, जिहि घरि गोबिद नांहिं॥४॥
गुरु गोबिंद तौ एक है, दूजा यहु आकार।
आप मेट जीवत मरै, तौ पावै करतार॥५॥

---

७१. रमैया कै दुलहिन=माया से अभिप्राय है। स्त्रिगी=शृंगी ऋषि। मिगी=गिरी, चूरचूर। चिदकासी=आकाश के समान निर्लिप्त चेतनरूप।

गुरुदेव कौ अंग

१. पटंतरै=तुलना, उपमा। हौंस=साहसरूपी इच्छा, हौसला।
२. कमांण=धनुष। बांहण लागा, चलाने लगा।
३. अघट्ट=जो कभी न घटे, अक्षय। बिसाहुणां=सौदा लेना। हट्ट=हाट, पेठ।
४. चानिणो=चाँदना, उँजेला।
५. आप मेट जीवत मरै=अहंभाव को नष्टकर देहभाव को भूल जाये।

पासा पकड़्या प्रेम का, सारी किया सरीर।
सतगुरु दाव बताइया, खेलै दास कबीर ॥६॥

कबीर बादल प्रेम का, हम परि बरष्या आइ।
अंतरि भीगी आत्मां, हरी भई बनराइ ॥७॥

गुरु गोबिंद दोऊ खड़े, काके लागौं पाँय।
बलिहारी गुरु आपने, गोबिंद दियो बताय ॥८॥

कबिरा ते नर अंध हैं, गुरु को कहते और।
हरि रूठै गुरु ठौर हैं, गुरु रूठे नहिं ठौर ॥९॥

यह तन विष की बेलरी, गुरु अंमृत की खान।
सीस दिये जो गुरु मिले, तो भी सस्ता जान ॥१०॥

सुमिरण कौ अंग

मेरा मन सुमिरै राम कूँ, मेरा मन रामहिं आहि।
अब मन रामहिं ह्वै रह्या, सीस नवावौं काहि ॥१॥

कबीर सूता क्या करे, उठि ना रोवै दुक्ख।
जाका बासा गोर में, सो क्यूँ सोवै सुक्ख ॥२॥

जिहि हरि जैसा जांणियां, तिनकूँ तैसा लाभ।
ओसों प्यास न भाजई, जबलग धसै न आभ ॥३॥

राम पियारा छाड़िकरि, करै आन का जाप।
बेस्वा केरा पूत ज्यूँ, कहे कौन सूँ बाप ॥४॥

---

९. सारी=चौपड।
१०. बेलरी=लता।

सुमिरण कौ अंग

१. रामहिं आहि=राम के ही लिए है।
२. गोर=कब्र।
३. आभ=आब, पानी।
४. बेस्वा=वेश्या।

कबीर राम रिझाइ लै, मुखि अंमृत गुण गाइ।
फूटा नग ज्यूँ जोड़ि मन, संधे संधि मिलाइ ॥५॥
सुमिरन सुरत लगाइके मुख तें कछू न बोल।
बाहर के पट देइके अंतर के पट खोल ॥६॥
माला फेरत जुग भया, फिरा न मन का फेर।
कर का मनका डारिदे, मन का मनका फेर ॥७॥
माला तो कर में फिरै, जीभ फिरै मुख माहिं।
मनुवां तो दहुँदिसि फिरै, यह तो सुमिरन नाहिं ॥८॥
तूँ तूँ करता तूँ भया, मुझमें रही न हूँ।
वारी तेरे नाम पर, जित देखूँ तित तूँ ॥९॥

बिरहा कौ अंग

चकवी बिछुटी रैणि की, आइ मिली परभाति।
जे जन बिछुटे राम सूँ, ते दिन मिले न राति ॥१॥
अंदेसड़ा न भाजिसी, संदेसौ कहियां।
कै हरि आयां भाजिसी, कै हरि ही पासि गयां ॥२॥
जबहूँ मार्‍या खैंचिकरि, तब मैं पाई जांणि।
लागी चोट मरम्म की, गई कलेजा छांणि ॥३॥

---

५. संधे संधि=जोड से जोड।

६. बाहर ' खोल=विषयो के लिए इन्द्रियों के द्वार बंद करदे और अंतर के किवाड स्वरूप-दर्शन के लिए खोलदे।

७. फेर=(१)भेद, द्वैतभाव (२) माला जपना। मनका=गुरिया, सुमिरनी का दाना।

८. दहुँ=दसो।

९. वारी=बलिहारी।

बिरह कौ अंग

१. बिछुटी=बिछुडी। परभाति=प्रभात, सवेरे।

२. अंदेसड़ा न भाजिसी=अंदेशा नही जायेगा।

३. गई छांणि=भेदकर पार कर गई।

जिहि सरि मारी काल्हि, सो सर मेरे मन बस्या ।
तिहि सरि अजहूँ मारि, सर बिन सचु पाऊँ नहीं ॥४॥
बिरह-भुवंगम तन बसै, मन्त्र न लागै कोइ ।
राम-बिवोगी ना जिवै, जिवै त बौरा होइ ॥५॥
सब रग तंत रबाब तन, बिरह बजावै नित्त ।
और न कोई सुणि सकै, कै सांई कै चित्त ॥६॥
अंषड़ियाँ झाँई पड़ी, पंथ निहारि-निहारि ।
जीभड़ियाँ छाला पड़्या, राम पुकारि-पुकारि ॥७॥
इस तन का दीवा करौं, बाती मेल्यूं जीव ।
लोही सींचौं तेल ज्यूँ, कब मुख देखौं पीव ॥८॥
जौ रोऊँ तौ बल घटै, हँसौं तौ राम रिसाइ ।
मनहीं मांहिं बिसूरणां, ज्यूँ घुण काठहि खाइ ॥९॥
कै बिरहनि कूँ मीच दै, कै आपहिं दिखलाइ ।
आठ पहर का दाझणां, मोपै सह्या न जाइ ॥१०॥
सुखिया सब संसार है, खायै अरु सोवै ।
दुखिया दास कबीर है, जागै अरु रोवै ॥११॥
बिरह भुवंगम पैठिकै, किया कलेजे घाव ।
बिरही अंग न मोड़िहै, ज्यों भावै त्यों खाव ॥१२॥
बिरहिन ओदी लाकड़ी, सपचै औ धुँधुआय ।
छूट पड़ौं या बिरह से, जो सगरो जरि जाय ॥१३॥

---

४. सर=सद्गुरु के शब्द-बाण से आशय है । सचु=चैन ।

५. बिवोगी=वियोगी ।

६. तत=तार । रबाव=एक प्रकार का बाजा, इसरार ।

७. झाई=अँधेरा ।

९. बिसूरणां=मन में दुःख मानना, चिंता करना ।

१०. दाझणां=जलना ।

१३. ओदी=गीली । सपचै=सुलगे ।

हिरदे भीतर दव बलै, धुआँ न परगट होय।
जाके लागी सो लखै, की जिन लागी सोय ॥१४॥
मूए पाछे मत मिलौ, कहै कबीरा राम।
लोहा माटी मिलि गया, तब पारस केहि काम ॥१५॥
कबिरा बैद बुलाइया, पकरिके देखी बाहिं।
बैद न वेदन जानई, करक कलेजे माहिं ॥१६॥

परचा कौ अंग

कबीर तेज अनंत का, मानौं ऊगी सूरज सेणि।
पति सँगि जागी सुंदरी, कौतिग दीठा तेणि ॥१॥
अगम अगोचर गमि नहीं, तहाँ जगमगै जोति।
जहाँ कबीरा बंदिगी, (तहाँ) पाप पुन्य नहीं छोति ॥२॥
देखौ कर्म कबीर का, कछु पूरब जनम का लेख।
जाका महल न मुनि लहैं, सो दोसत किया अलेख ॥३॥
पाणीं ही तैं हिम भया, हिम ह्वै गया बिलाइ।
जो कुछ था सोई भया, अब कछु कह्या न जाइ ॥४॥
अंक भरे भरि भेंटिया, मन मैं नांहीं धीर।
कहै कबीर ते क्यूँ मिलैं, जबलग दोइ सरीर ॥५॥

---

१४. दव=आग। लागी=(१) लगी है (२) लगाई है।

१६. वेदन=वेदना, पीड़ा। करक=कसक, दर्द।

परचा कौ अंग

१. सेणि=श्रेणी। सुन्दरी=प्रेम-लक्षणा भक्ति की साधिका जीवात्मा से आशय है। कौतिग=कौतुक, लीला।

२. छोति=छूत, प्रवेश।

३. दोसत=दोस्त, मित्र। अलेख=अलख, जिसका वर्णन न किया जा सके।

४. पाणी ··बिलाइ=आशय यह है कि जीवात्मा परमात्मा का अंश थी, सो उसीमें लीन हो गई, जैसे पानी से बनी बरफ गलकर पानी में ही मिल गई, पानी ही हो गई।

५. मांहि=घट के अंदर।

जा कारणि मैं ढूँढता, सनमुख मिलिया आइ।
धन मैली पिव ऊजला, लागि न सकौं पाइ ॥६॥
लाली मेरे लाल की, जित देखों तित लाल।
लाली देखन मैं गई, मैं भी हो गई लाल ॥७॥
उलटि समाना आप में, प्रगटी जोति अनंत।
साहेब सेवक एक संग, खेलैं सदा बसंत ॥८॥
पंजर प्रेम प्रकासिया, अंतर भया उजास।
सुख करि सूती महल में, बानी फूटी बास ॥९॥
गगन गरजि बरसै अमी, बादल गहरि गँभीर।
चहुँदिसि दमकै दामिनी, भींजै दास कबीर ॥१०॥

रस कौ अंग

कबीर हरि-रस यौं पिया, बाकी रही न थाकि।
पाका कलस कुँभार का, बहुरि न चढ़ई चाकि ॥१॥
कबीर भाठी कलाल की, बहुतक बैठे आइ।
सिर सौंपै सोई पिवै, नहीं तो पिया न जाइ ॥२॥
सबै रसांइण मैं किया, हरि सा और न कोइ।
तिल इक घट मैं संचरै, तौ सब तन कंचन होइ ॥३॥

निहकर्मी पतिव्रता कौ अंग

कबीर. प्रीतड़ी तौ तुझसौं, बहु गुणियाले कंत।
जे हँसि बोलौं और सौं, तौं नील रँगाऊँ दंत ॥१॥

---

८. धन=स्त्री, जीवात्मा।

९. पंजर=शरीर। उजास=प्रकाश।

१०. गगन=समाधि की शून्यस्थिति से आशय है। गरजि=अनाहत नाद से अभिप्राय है।

रस कौ अंग

१. थाकि=अतृप्ति, भूख।

निहकर्मी पतिव्रता कौ अंग

१. नील रँगाऊँ दत=मुहँ काला करूँ, अपने आपको कलंक लगाऊँ।

नैनां अतंरि आव तूँ, ज्यूँ हौं नैन झँपेऊँ।
ना हौं देखौं औरकूँ, ना तुझ देखन देऊँ ॥२॥
कबीर रेख स्यंदूर की, काजल दिया न जाइ।
नैनूँ रमइया रमि रह्या, दूजा कहां समाइ ॥३॥
मन प्रतीति न प्रेम रस, ना इस तन में ढंग।
क्या जाणौं उस पीव सूँ, कैसैं रहसी रंग ॥४॥
उस संम्रथ का दास हौं, कदे न होइ अकाज।
पतिब्रता नांगी रहै, तौ उसही पुरिस कौं लाज ॥५॥
पतिबरता मैली भली, काली कुचिल कुरूप।
पतिबरता के रूप पर, वारौं कोटि सरूप ॥६॥
पतिबरता पति कों भजै, और न आन सुहाय।
सिंह बचा जो लंघना, तौ भी घास न खाय ॥७॥
पतिबरता मैली भली, गले कांच की पोत।
सब सखियन में यों दिपै, ज्यों रवि-ससि की जोत ॥८॥
सती बिचारी सत किया, काँटों सेज बिछाय।
लै सूती पिया आपना, चहुंदिस अगिन लगाय ॥९॥

चितावणी कौ अंग

कबीर नौबति आपणीं, दिन दस लेहु बजाइ।
ए पुर पट्टन ए गलीं, बहुरि न देखन आइ ॥१॥
सातों सबद जु बाजते, घरि-घरि होते राग।
ते मंदिर खाली पड़े, बैसण लागे काग ॥२॥

---

२. झँपेउँ=मूँदलूँ।

४. कैसैं रहसी रंग=कैसे प्रेम रहेगा या मिलेगा।

५. पुरिस=पुरुष, स्वामी।

६. कुचिल=मैले वस्त्रवाली।

७. बचा=बच्चा। लंघना=भूखा।

चितावणी कौ अंग

२. सातों सबद=सातो स्वर। बैसण लागे=बैठने लगे।

कबीर कहा गरबियौ, चाम लपेटे हड्ड।
हैवर ऊपरि छत्र सिरि, तो भी देबा खड्ड ॥३॥
हाड़ जलैं ज्यूँ लाकड़ी, केस जलैं ज्यूं घास।
सब तन जलता देखकरि, भया कबीर उदास ॥४॥
आजि कि कालहि कि पाँच दिन, जंगल होइगा बास।
ऊपरि ऊपरि फिरहिंगे, ढोर चरंदे घास ॥५॥
इहि औसरि चेत्या नहीं, पसु ज्यूँ पाली देह।
रामनाम जाण्या नहीं, अंति पड़ी मुख खेह ॥६॥
मनिषा जनम दुर्लभ है, देह न बारंबार।
तरवर थैं फल झड़ि पड्या, बहुरि न लागै डार ॥७॥
कबीर यहु तन जात है, सकै तौ ठाहर लाइ।
कै सेवा करि साध की, कै गोविंद गुण गाइ ॥८॥
यहु तन कांचा कुंभ है, लिया फिरै था साथि।
ढबका लागा फूटि गा, कछू न आया हाथि ॥९॥
खंभा एक गइंद दोइ, क्यूँ करि बंधसि वारि।
मानि करै तौ पीव नहीं, पीव तौ मानि निवारि ॥१०॥
ऊजल कपड़ा पहरिकरि, पान सुपारी खाहिं।
एकै हरि का नांव बिन, बाँधे जमपुरि जाहि ॥११॥
मैं मैं बड़ी बलाइ है, सकै तौ निकसौ भाजि।
कबलग राखौं हे सखी, रुई-लपेटी आगि ॥१२॥

---

३. हैवर=बढ़िया घोडा। खड्ड=कब्र से मतलब है।

४. उदास=विरक्त।

६. खेह=धूल।

८. ठाहर लाइ=अच्छे ठौर पर लगादे।

९. ढबका=धक्का, ठोकर।

१०. मानि=मान, अहंभाव।

मैं मैं मेरी जिनि करै, मेरी मूल बिनास।
मेरी पग का पैषड़ा, मेरी गल की पास ॥१३॥

कबीर नाँव जरजरी, कूड़े खेवणहार।
हलके-हलके तिरि गये, बूड़े जिनि सिर भार ॥१४॥

पानी केरा बुदबुदा, अस मानुष की जात।
देखत ही छिप जायगा, ज्यों तारा परभात ॥१५॥

आछे दिन पाछे गये, गुरु से किया न हेत।
अब पछतावा क्या करै, चिड़ियाँ चुग गईं खेत ॥१६॥

माटी कहै कुम्हार को, तूँ क्या रूँदै मोहिं।
इक दिन ऐसा होयगा, मैं रूँदूँगी तोहिं ॥१७॥

मोर मोर की जेवरी, बटि बाँधा संसार।
दास कबीरा क्यों बँधै, जाके नाम अधार ॥१८॥

आये हैं सो जायँगे, राजा रंक फकीर।
इक सिंघासन चढि चले, इक बँधि जात जँजीर ॥१९॥

मैं, भँवरा तोहिं बरजिया, बन-बन बास न लेइ।
अटकैगा कहुं बेल से, तड़पि-तड़पि जिय देइ ॥२०॥

इक दिन ऐसा होयगा, कोउ काहू का नाहिं।
घर की नारी को कहै, तन की नारी जाहिं ॥२१॥

चलती चक्की देखिके, दिया कबीरा रोय।
दुइ पट भीतर आइके, साबित गया न कोय ॥२२॥

---

१३. मेरी मूल बिनास=ममता विनाश का मूल है। पैषड़ा=पैरों की बेडी। पास=फाँसी।

१४. कूड़े=अनाड़ी।

१७. रूँदै=पैरों से कुचलता है।

१८. जेवरी=रस्सी।

२०. बरजिया=मना किया। बेल=काम-वासना से तात्पर्य है।

२१. नारी=(१) स्त्री (२) नाडी।

माली आवत देखिके कलियाँ करैं पुकार।
फूली-फूली चुनि लईं, कालिह हमारी बार ।।२३।।
कबिरा रसरी पाँव में, कह सोवै सुख चैन।
स्वाँस-नगाड़ा कूँच का बाजत है दिन-रैन ।।२४।।
दस द्वारे का पींजरा, ता में पंछी पौन।
रहिबे को आचरज है, जाइ तो अचरज कौन ।।२५।।

मन कौ अंग

कबीर मारूँ मन कूँ, टूक-टूक ह्वै जाइ।
बिष की क्यारी बोइकरि लुणत कहा पछिताइ ।।१।।
हिरदा भीतरि आरसी, मुख देषणां न जाइ।
मुख तौ तौपरि देखिए, जे मन की दुबिधा जाइ ।।२।।
मैमंता मन मारि रे, घटहीं मांहैं घेरि।
जबही चालै पीठि दे, अंकुस दे-दे फेरि ।।३।।
मैमंता मन मारि रे, नांन्हां करि-करि पीसि।
तब सुख पावै सुन्दरी, ब्रह्म झलक्कै सीसि ।।४।।
मनह मनोरथ छाड़िदे, तेरा किया न होइ।
पाणी में घीव नीकसै, तौ रूखा खाइ न कोइ ।।५।।
मन-मुरीद संसार है, गुरु-मुरीद कोइ साध।
जो मानै गुरु-बचन को, ताको मता अगाध ।।६।।
मन के मारे बन गये, बन तजि बस्ती माहिं।
कह कबीर क्या कीजिए, यह मन ठहरै नाहिं ।।७।।

---

२५. पंछी पौन=प्राणरूपी पक्षी।

मन कौ अंग

१. लुणत=फसल काटते हुए।

२. आरसी=दर्पण।

३. मैमंता=मतवाला (हाथी)।

६. मुरीद=शिष्य। मता=सिद्धान्त।

पहले यह मन काग था, करता जीवन-घात ।
अब तो मन हंसा भया, मोती चुगि-चुगि खात ॥८॥
अपने-अपने चोर को, सब कोइ डारै मार ।
मेरा चोर मुझे मिलै, सरबस डारूँ वार ॥९॥
कबिरा मनहिं गयंद है, आंकुस दै-दै राखु ।
विष की बेली परिहरी, अंमृत का फल चाखु ॥१०॥
मन के हारे हार है, मन के जीते जीत ।
कह कबीर पिउ पाइए मनहीं की परतीत ॥११॥

सूषिम मारग कौ अंग

उतथैं कोइ न आवई, जाकूँ बूझौं धाइ ।
इतथैं सबै पठाइये, भार लदाइ-लदाइ ॥१॥
चलौ चलौ सब को कहैं, मोहि अँदेसा और ।
साहिब सूँ पर्चा नहीं, ए जाहिंगे किस ठौर ॥२॥
जहाँ न चींटी चढि सकै, राई ना ठहराइ ।
मन पवन का गमि नहीं, तहाँ पहूँचे जाइ ॥३॥
सुर नर थाके मुनिजनां, जहाँ न कोई जाइ ।
मोटे भाग कबीर के, तहाँ रहे घर छाइ ॥४॥
नाँव न जानूँ गाँव का, बिन जानें कित जाँव ।
चलता-चलता जुग भया, पाव कोस पर गाँव ॥५॥

माया कौ अंग

कबीर माया मोहनी, सब जग घाल्या घाणि ।
कोई एक जन ऊबरै, जिनि तोड़ी कुल की काणि ॥१॥

---

९. मेरा चोर=मेरा प्रियतम, जिसने मन को चुरा लिया है ।

सूषिम मारग कौ अंग

४. मोटे=बड़े । तहाँ छाइ=वहां, अर्थात् निर्विकल्प समाधि की सहज शून्य अवस्था में जाकर रम गये ।

माया कौ अंग

१. घाल्या घांणि=घानी (कोल्हू) में पेलने को डाल दिया ।

माया मुई न मन मुवा, मरि-मरि गया सरीर।
आसा त्रिसणां नां मुई, यूँ कहि गया कबीर ॥२॥
कबीर सो धन संचिये, जो आगैं कूँ होइ।
सीस चढायें पोटली, ले जात न देख्या कोइ ॥३॥
माया की झल जग जल्या, कनक कामिणीं लागि।
कहु धौं किहि बिधि राखिये, रुई-लपेटी आगि ॥४॥
माया छाया एक सी, बिरला जानै कोय।
भगतां के पीछैं फिरै, सनमुख भागै सोय ॥५॥
माया तो है राम की, मोदी सब संसार।
जाकी चिट्ठी ऊतरी, सोई खरचनहार ॥६॥
आंधी आई ग्यान की, ढही भरम की भीति।
माया टाटी उड़ि गई, लागी नाम से प्रीति ॥७॥
जिनको साँई रँग दिया, कभी न होइ कुरंग।
दिन-दिन बानी आगरी, चढ़ै सवाया रंग ॥८॥

चाणक कौ अंग

स्वामीं हूणां सोहरा, दोद्धा हूणां दास।
गाडर आणीं ऊन कूँ, बांधी चरै कपास ॥१॥
चारिउं बेद पढ़ाइकरि, हरि सूँ न लाया हेत।
बालि कबीरा ले गया, पंडित ढूँढै खेत ॥२॥
बाह्मण गुरू जगत का, साधू का गुरु नाहिं।
उरझि-पुरझिकरि मरि रह्या, चारिउं बेदन मांहिं ॥३॥

---

४. झल=ज्वाला।

८. बानी=आभा, दमक। आगरी=बढकर, अधिक-अधिक।

चाणक कौ अंग

१. हूणां=होना, बनना। सोहरा=सरल। दोद्धा=दुर्लभ, कठिन। गाडर=भेड़; अर्थात् आशा यह की थी कि स्वामीजी ज्ञानोपदेश देंगे, पर वे उलटे दूसरों को लूट रहे और मौज कर रहे हैं।

कासी कांठै घर करैं, पीवैं निरमल नीर ।
मुकति नहीं हरि-नांव बिन, यूँ कहै दास कबीर ॥४॥

कथणी बिना करणी कौ अंग

कबीर पढ़िबा दूरि करि, पुसतक देइ बहाइ ।
बांवन आषिर सोधिकरि, ररै ममै चित लाइ ॥१॥
कबीर पढ़िबा दूरि करि, आथि पढ्या संसार ।
पीड़ न उपजी प्रीति सूँ, तौ क्यूँकरि करै पुकार ॥२॥
कथनी मीठी खाँड सी, करनी बिष को लोइ ।
कथनो तजि करनी करै, विष से अंमृत होइ ॥३॥
पद जोरैं साखी कहैं, साधन परि गई रौस ।
काढ़ा जल पीवैं नहीं, काढ़ि पियन की हौंस ॥४॥
कहता तो बहुता मिला, गहता मिला न कोइ ।
सो कहता बहि जानदे, जो नहि गहता होइ ॥५॥

कामी नर कौ अग

नर नारी सब नरक है, जबलग देह सकाम ।
कहै कबीर ते राम के, जे सुमिरैं निहकाम ॥१॥
एक कनक अरु कामनी, बिष फल के ये उपाइ ।
देखै हीं थैं विष चढ़ै, खांयें सूँ मरि जाइ ॥२॥

---

४. कांठै=किनारे, पास ।

कथणी बिना करणी कौ अंग

१. आषिर=अक्षर । ररै ममै=रकार और मकार ये दो अक्षर, अर्थात् राम ।

३. लोइ=गोली ।

४. जोरैं=रचता है । रौस=चाल-ढाल, रंग-ढंग ।

५. गहता=सच्चे अर्थ को ग्रहणकर उसके अनुसार आचरण करनेवाला ।

कामी नर कौ अंग

१. सकाम=काम-वासना से युक्त ।

भगति बिगाड़ी कामियां, इन्द्री केरै स्वादि।
हीरा खोया हाथ थैं, जनम गँवाया बादि ॥३॥

कामीं लज्या नां करै, मन मांहैं अहिलाद।
नींद न मांगै सांथरा, भूष न मांगै स्वाद ॥४॥

ग्यानी मूल गँवाइया, आपण भये करता।
ताथैं संसारी भला, मन मैं रहै डरता ॥५॥

परनारी पैनी छुरी, मति कोइ लाओ अंग।
रावन के दस सिर गये परनारी के संग ॥६॥

साँच कौ अंग

लेखा देणां सोहरा, जे दिल सांचो होइ।
उस चंगे दीवांन मैं, पला न पकड़ै कोइ ॥१॥

काजी मुल्लां भ्रंमयां, चल्या दुनीं कै साथि।
दिलथैं दीन बिसारिया, करद लई जब हाथि ॥२॥

साँईं सेती चोरियां, चोरां सेती गुझ।
जाणैंगा रे जीवड़ा, मार पड़ैगी तुझ ॥३॥

खूब खांड है खीचड़ी, मांहिं पड़ै टुक लूँण।
पेड़ा रोटी खाइकरि, गला कटावै कूँण ॥४॥

---

३. बादि=व्यर्थ।

४. अहिलाद=आह्लाद, आनन्द। सांथरा=बिस्तर।

५. आपण भये करता=अहंकारवश अपने आपको सबको कर्त्ता मान बैठे। ताथैं=उससे।

साँच कौ अंग

१. सोहरा=सहल। दीवान=दरबार, कचहरी।

२. दीन=धर्म। करद=बडी छुरी।

३. गुझ=गुह्य, गुप्त भेद या सलाह।

४. खूब=बड़ी बढिया, स्वादिष्ट। टुक लूँण=जरा-सा नमक। कूँण=कौन।

प्रेम-प्रीति का चोलना, पहिरि कबीरा नाच।
तन मन तापर वारहूँ, जो कोई बोलै सांच ॥५॥
सांच कहूँ तो मारिहैं, झूठे जग पतियाइ।
ये जग काली कूकरी, जो छेड़ै तो खाइ ॥६॥

भ्रम-बिधौंसण कौ अंग

मन मथुरा दिल द्वारिका, काया कासी जाणि।
दसवां द्वारा देहुरा, तामें जोति पिछाणि ॥१॥
कबीर दुनियां देहुरै, सीस नवावण जाइ।
हिरदा भीतरि हरि बसैं, तूँ ताही सूँ ल्यौ लाइ ॥२॥
पाथर ही का देहुरा, पाथर ही का देव।
पूजणहारा अंधला, लागा खोटी सेव ॥३॥

भेष कौ अंग

कबीर माला मन की, और संसारी भेष।
माला पहर्‌यां हरि मिले, तौ अरहट कै गलि देष ॥१॥
पष ले बूड़ी पृथमीं, झूठी कुल की लार।
अलष बिसार्‌या भेष मैं, बूड़े काली धार ॥२॥
चतुराई हरि नां मिलै, ए बातां की बात।
एक निसप्रेही निरधार का गाहक गोपीनाथ ॥३॥

---

५. चोलना=लबा ढीला-ढाला कुरता, जिसे फकीर पहनते है।

भ्रम-बिधौंसण कौ अंग

१. दसवां द्वारा=ब्रह्म-रन्ध्र से आशय है। देहरा=देवालय।

३. खोटी सेव=झूठी सेवा-पूजा।

भेष कौ अग

१. अरहट=रहँट। गलि=गले में।

२. पष=पक्ष, संप्रदायवाद। बूडी पृथमी=दुनिया डूब गई। लार=साथ, संबंध।

३. बातां की बात=सौ बात की एक बात। निसप्रेही=निस्पृह, जिसे कोई इच्छा नहीं, कोई स्वार्थ नहीं।

जबलग पीव परचा नहीं, कन्या कँवारी जाणि ।
हथलेवा हौंसें लिया, मुसकल पड़ी पिछाणि ॥४॥
हम तो जोगी मनहि के, तन के हैं ते और ।
मन का जोग लगावते, दसा भई कछु और ॥५॥

संगति कौ अंग

कबीर तन पंषी भया, जहँ मन तहँ उड़ि जाइ ।
जो जैसी संगति करै, सो तैसे फल खाइ ॥१॥
काजल केरी कोठड़ी, तैसा यहु संसार ।
बलिहारी ता दास की, पैसि ज निकसणहार ॥२॥
कबिरा संगत साधु की, जौ की भूसी खाइ ।
खीर खांड भोजन मिलै, साकट संग न जाइ ॥३॥
कबिरा खाई कोट की, पानी पिवै न कोइ ।
जाइ मिलै जब गंग से, सब गंगोदक होइ ॥४॥
तोहिं पीर जो प्रेम की, पाका सेती खेल ।
कांची सरसों पेरिकै खली भया ना तेल ॥५॥
दाग जो लागा नील का, सौ मन साबुन धोइ ।
कोटि जतन परबोधिए, कागा हंस न होइ ॥६॥

साध कौ अंग

मेरे संगी दोइ जणां, एक वैष्णों एक नाम ।
यो है दाता मुकति का, वो सुमिरावै राम ॥१॥

---

४. हथलेवा=विवाह में वर द्वारा कन्या का हाथ अपने हाथ में लेने की रीति; पाणिग्रहण । हौंसें=साहसपूर्ण इच्छा या हौसले से ।

संगति कौ अंग

२. पैसि ज निकसणहार=जो पैठकर बिना कालिख लगाये बाहर निकल आये ।
३. साकट=शाक्त, वाममार्गी जो मद्य-मांस आदि का सेवन करते थे; हरिविमुख ।
५. पाका सेती खेल=पक्के साधु की संगति कर । पेरिकै=पेलकर ।

साध कौ अंग

३. लैहडे=झुंड ।

कबीर सोई दिन भला, जा दिन संत मिलाहिं।
अंक भरे भरि भेंटिया, पाप सरीरौं जाहिं ॥२॥
सिहों के लेंहडे नहीं, हंसों की नहिं पाँत।
लालों की नहिं बोरियाँ, साध न चलें जमात ॥३॥
साध कहावन कठिन है, लंबा पेड़ खजूर।
चढ़ै तो चाखै प्रेमरस, गिरै तो चकनाचूर ॥४॥
गाँठी दाम न बांधई, नहिं नारी सों नेह।
कह कबीर ता साध की हम चरनन की खेह ॥५॥
बृच्छ कबहुं नहिं फल भखैं, नदी न संचै नीर।
परमारथ के कारने साधुन धरा सरीर ॥६॥
जाति न पूछो साध की, पूछ लीजिए ग्यान।
मोल करो तरवार का, पड़ा रहन दो म्यान ॥७॥
हद्द चलै सो मानवा, बेहद चलै सो साध।
हद बेहद दोनों तजै, ता का मता अगाध ॥८॥

साध साषीभूत कौ अंग

संत न छाड़ै संतई, जे कोटिक मिलैं असंत।
चंदन भुवंगा बैठिया, तउ सीतलता न तजंत ॥१॥
कबीर हरि का भावता दूरैं थैं दीसंत।
तन षीणां मन उनमनां, जग रूठड़ा फिरंत ॥२॥
कबीर हरि का भावता, झीणां पंजर तास।
रैणि न आवै नींदडी, अंगि न चढ़ई मांस ॥३॥
राम-बियोगी तन विकल, ताहि न चीन्हैं कोइ।
तंबोली के पान ज्यूँ, दिन-दिन पीला होइ ॥४॥

---

५. खेह=धूल।

साध साषीभूत कौ अंग

२. दीसंत=दीख जाता है। भावता=प्यारा भक्त। षीणां=क्षीण, कृश। उनमनां=उदासीन। रूठडा=विरक्त।

३. पंजर=देह।

जिहि हिरदैं हरि आइया, सो क्यूँ छानां होइ।
जतन-जतन करि दाबिये, तऊ उजाला सोइ ॥५॥
सब घटि मेरा सांइयां, सूनी सेज न कोइ।
भाग तिन्हों का हे सखी, जिहि घटि परगट होइ ॥६॥
पावकरूपी राम है, घटि-घटि रह्या समाइ।
चित चकमक लागै नहीं, ताथैं धूवां ह्वै-ह्वै जाइ ॥७॥

साध-महिमा कौ अंग

है गै गैंवर सघन धन, छत्र धजा फरराइ।
ता सुख थैं भिष्या भली, हरि-सुमिरत दिन जाइ ॥१॥
है गै गैंवर सघन धन, छत्रपती की नारि।
तास पटंतर ना तुलै, हरिजन की पनिहारि ॥२॥
साषत बांभण मति मिलै, बैसनौं मिलै चँडाल।
अंकमाल दे भेंटिये, मानौं मिले गोपाल ॥३॥

विचार कौ अंग

आगि कह्यां दाझै नहीं, जे नहीं चंपै पांइ।
जबलग भेद न जाणिये, राम कह्या तौ कांइ ॥१॥

---

५. छानां=छिपा, गुप्त।

७. चकमक=एक प्रकार का कड़ा पत्थर, जिसपर चोट पड़ने से फौरन आग निकलती है।

साध-महिमा कौ अंग

१. है=हय, घोड़ा। गै=गज. गैबर=गजराज। सघन=अत्यधिक, अखूट। फरराइ=फहराये। भिष्या=भिक्षा।

२. पटंतर=तुलना, उपमा। पनिहारि=पानी भरनेवाली नौकरानी।

३. साषत=शाक्त, वाममार्गी। अंकमाल=आलिंगन, गले लगाना।

विचार कौ अंग

१. आगि ·· पांइ=आग कहदेने मात्र से वह जलाती नहीं है, जबतक कि पैर से दब नहीं जाती। कांइ=क्या होता है।

कबीर सोचि विचारिया, दूजा कोई नाहिं।
आपा पर जब चीन्हियां, तब उलटि समाना माहिं ॥२॥
सहज तराजू आनिकरि, सब रस देखा तोल।
सब रस माहीं जीभ-रस, जो कोइ जानै बोल ॥३॥

उपदेस कौ अंग

बैरागी बिरकत भला, गिरहीं चित्त उदार।
दुहूँ चूकां रीता पड़े, ताकूँ वार न पार ॥१॥
जो तोकों कांटा बुवै, ताहि बोव तू फूल।
तोहि फूल को फूल है, वाको है तिरसूल ॥२॥
दुरबल को न सताइए, जाकी मोटी हाय।
बिना जीव की स्वाँस से लोह भसम ह्वै जाय ॥३॥
या दुनिया में आइके छांड़ि देइ तू ऐंठ।
लेना होइ सो लेइ ले, उठी जात हैं पैंठ ॥४॥
आवत गारी एक है, उलटत होय अनेक।
कह कबीर नहिं उलटिए, वही एक की एक ॥५॥
उदर समाता अन्न लै, तनहिं समाता चीर।
अधिकहि संग्रह ना करै, ताका नाम फ़कीर ॥६॥
पढ़ि-पढ़िके पत्थर भये, लिखि-लिखि भये जो ईंट।
कबिरा अंतर प्रेम की लागी नेक न छींट ॥७॥

---

२. तब उलटि समाना माहि=विषयों की ओर से मुड़कर अंतर्मुखी तथा ब्रह्मलीन हो जाता है।

३. जीभ-रस=सच्ची मीठी वाणी; प्रभु-नाम का उच्चारण।

उपदेस कौ अंग

१. बिरकत=विरक्त। गिरही=गृहस्थ। दुहूं चूकां रीतां पड़ै=यदि वैरागी में वैराग्य न हो और गृहस्थ में उदारता न हो, तो दोनों ही व्यर्थ है।

४. ऐंठ=अभिमान। पेठ=हाट।

६. चीर=कपड़ा। समाता= आवश्यकताभर।

न्हाए धोए क्या भया, जो मन मैल न जाय।
मीन सदा जल में रहै, धोए बास न जाय ॥८॥
ऊँचे गाँव पहाड़ पर, औ मोटे की बांह।
ऐसो ठाकुर सेइए, उबरिय जाकी छांह ॥९॥

समृथाई कौ अंग

सात समंद की मसि करौं, लेखनि सब बनराइ।
धरती सब कागद करौं, तऊ हरिगुण लिख्या न जाइ ॥१॥
सांईं मेरा बांणियां, सहजि करै ब्यौपार।
बिन डांडी बिन पालड़ै, तोलै सब संसार ॥२॥
सांईं सूँ सब होत है, बंदे थैं कुछ नाहिं।
राई थैं परबत करै, परबत राई माहिं ॥३॥
साहेब-सा समरथ नहीं, गरुआ गहिर गँभीर।
औगुन छोडै गुन गहै, छिनक उतारै तीर ॥४॥
जाको राखै सांइयाँ, मारि न सक्कै कोय।
बाल न बांका करि सकै, जो जग बैरी होय ॥५॥
सांईं तुझसे बाहिरा, कौड़ी नाहिं बिकाय।
जाके सिर पर धनी तू, लाखों मोल कराय ॥६॥

सबद कौ अंग

कबीर सबद सरीर में, बिनि गुण बाजै तंति।
बाहरि भीतरि भरि रह्या, ताथैं छूटि भरंति ॥१॥
ज्यूँ-ज्यूँ हरिगुण सांभलौं, त्यूँ-त्यूँ लागै तीर।
लागै थैं भागा नहीं, साहणहार कबीर ॥२॥

समृथाई कौ अंग

१. बनराइ=वृक्ष-समूह।

५. बाहिरा=विना, रहित।

सबद कौ अंग

१. गुण=तार से तात्पर्य है। तंति=तंत्री, वीणा। भरंति=भ्रांति।

२. सांभलौं=स्मरण व ध्यान करता हूँ। साहणहार=सहनेवाला।

सब्द बराबर धन नहीं, जो कोइ जानै बोल।
हीरा तो दामों मिलै, सब्दहिं मोल न तोल ॥३॥
सीतल सब्द उचारिए, अहम् आनिए नाहिं।
तेरा प्रीतम तुज्झ में, सत्रु भी तुझ माहिं ॥४॥

जीवनमृतक कौ अंग

घर जालौं घर ऊबरै, घर राखौं घर जाइ।
एक अचंभा देखिया, मड़ा काल कौं खाइ ॥१॥
जीवन थै मरिबो भलौ, जौ मरि जानैं कोइ।
मरनैं पहलें जे मरैं, तौ कलि अजरावर होइ ॥२॥
आपा मेट्यां हरि मिलैं, हरि मेट्यां सब जाइ।
अकथ कहाणीं प्रेम की, कह्यां न को पत्याइ ॥३॥
मैं मरजीव समुन्द्र का, डुबकी मारी एक।
मूठी लाया ग्यान की, जामें वस्तु अनेक ॥४॥
रोड़ा भया तो क्या भया, पंथी कों दुख देय।
साधू ऐसा चाहिए, ज्यों पैंड़े की खेह ॥५॥
खेह भई तो क्या भया, उड़ि-उड़ि लागै अंग।
साधू ऐसा चाहिए, जैसे नीर निपंग ॥६॥

जीवनमृतक कौ अंग

१. घर जालौं घर ऊबरै=यदि देहभिमान को नष्ट करदूँ, तो आत्मभाव सुरक्षित रहता है। अथवा, विषय-रस जला दे तो ब्रह्म-रस सुलभ हो जाता है। मड़ा=मरा हुआ, जिसने अपने अहंभाव को मार दिया है। काल कौं खाइ=अमर हो जाता है।

२. मरनै···होइ=मरने से पहले ही जो देह को नाशवान या मृत समझले, वह अजर और अमर हो जाये। कलि=कल, तुरन्त।

४. मरजीवा=जो कार्य-सिद्धि के लिए प्राण देने पर उतारू हो जाये।

५. पैंडे की खेह=रास्ते की धूल।

६. निपंग=बिना पंक का; स्वच्छ।

नीर भया तो क्या भया, ताता सीरा जोय ।
साधू ऐसा चाहिए, जो हरि जैसा होय ॥७॥
हरि भया तो क्या भया, करता हरता होय ।
साधू ऐसा चाहिए, हरि भज निरमल होय ॥८॥
निरमल भया तो क्या भया, निरमल माँगै ठौर ।
मल निरमल से रहित है, ते साधू कोइ और ॥९॥

सूरातन कौ अंग

गगन दमामां बाजिया, पड्या निसानैं घाव ।
खेत बुहार्या सूरिवैं, मुझ मरणे का चाव ॥१॥
सूरा तबहीं परषिये, लड़ै धणीं कै हेत ।
पुरिजा-पुरिजा ह्वै पड़ै, तऊ न छाड़ै खेत ॥२॥
अब तौ झूझ्यां हीं बणै, मुड़ि चाल्यां घर दूरि ।
सिर साहिब कौ सौंपतां, सोच न कीजै सूर ॥३॥
कबीर यहु घर प्रेम का, खाला का घर नांहिं ।
सीस उतारै हाथि करि, सो पैसै घर मांहि ॥४॥
प्रेम न खेतौं नीपजै, प्रेम न हाटि बिकाइ ।
राजा परजा जिस रुचै, सिर दे सो ले जाइ ॥५॥
भगति दुहेलो राम की, जसि खांडे की धार ।
जे डोलै तौ कटि पड़ै, नहीं तौ उतरैं पार ॥६॥
भगति दुहेली राम की, जैसि अगनि की झाल ।
डाकि पड़े ते ऊबरे, दाधे कौतिगहार ॥७॥

---

७. ताता-सीरा=गरम और ठंडा ।

सूरातन कौ अंग

१. दमामां=नगाड़ा । पड्या निसांनैं घाव=डंके पर चोट पड़ी । सूरिवैं=शूरवीरों ने ।
२. पुरिजा-पुरिजा=टुकड़ा-टुकड़ा ।
३. झूझ्यां ही बणै=जूझना ही होगा ।
४. खाला=मौसी । पैसै=पैठे ।
७. झाल=ज्वाला । डाकि पडे=फाँद जाये, लांघ जाये । कौतिगहार=तमाशा-देखनेवाले ।

सती जलन को नीकलो, पीव का सुमरि सनेह ।
सबद सुनत जीव नीकल्या, भूलि गई सब देह ॥८॥
सिर राखे सिर जात है, सिर काटे सिर सोय ।
जैसे बाती दीप को, कटि उंजियारा होय ॥९॥
खोजी को डर बहुत है, पल-पल पड़ै बिजोग ।
प्रन राखत जो तन गिरै, सो तन साहेबजोग ॥१०॥
तीर तुपक से जो लड़ै, सो तो सूर न होय ।
माया तजि भक्ती करै, सूर कहावै सोय ॥११॥

काल कौ अंग

आज कहै हरि कालिह भजौंगा, कालिह कहै फिरि कालिह ।
आज ही कालिह करंतड़ां, औसर जासी चालि ॥१॥
बारी बारी आपणीं, चले पियारे म्यंत ।
तेरी बारी रे जिया, नेड़ी आवै निंत ॥२॥
मालिन आवत देखिकरि, कलियां करीं पुकार ।
फूले-फूले चुनि लिए, कालिह हमारी बार ॥३॥
फागुण आवत देखिकरि, बन रूना मन मांहिं ।
ऊंची डाली पात है, दिन-दिन पीले थांहिं ॥४॥
जो ऊग्या सो आँथिवै, फूल्या सो कुमिलाइ ।
जो चिणियां सो ढहि पड़ै, जो आया सो जाइ ॥५॥
पाणीं केरा बुदबुदा, इसी हमारो जाति ।
एक दिनां छिप जांहिंगे, तारे ज्यूँ परभाति ॥६॥
पात पडंता यौं कहे, सुनि तरवर बनराइ ।
अब के बिछुड़े नां मिलै, कहिं दूर पड़ैंगे जाइ ॥७॥

काल कौ अंग

१. करंतडां=करते । जासी चालि=चला जायेगा ।
४. रूना=उदास, दुखी । थाहिं=हो रहे हैं ।
५. जो··· ·आंथिवै=जो उदय हुआ वह अस्त होगा । चिणिया=चिना, बनाया ।

मेरे बीर लुहारिया, तूँ जिनि जालै मोहिं।
इक दिन ऐसा होइगा, हूँ जालौंगी तोहिं ॥८॥
कबीर कहा गरबियौ, काल गहे कर केस।
नां जांणै कहाँ मारिसी, कै घर कै परदेस ॥९॥
काएँ चिणांवै मालिया, लांबी भीति उसारि।
घर तौ साढ़ी तीनि हथ, घणौं तौ पौणां चारि ॥१०॥
बरियां बीतो बल गया, अरु बुरा कमाया।
हरि जिन छाड़ै हाथ थैं, दिन नेड़ा आया ॥११॥
बिष के वन में घर किया, सरप रहे लपटाइ।
ताथैं जियरै डर गह्या, जागत रैंणि बिहाइ ॥१२॥
रोवणहारे भी मुए, मुए जलांवणहार।
हा हा करते ते मुए, कासनि करौं पुकार ॥१३॥

पारिष कौ अंग

हीरा तहाँ न खोलिए, जहँ खोटी है हाटि।
कसकरि बांधो गाठरी, उठकरि चालो बाट ॥१॥
हंसा बगुला एक-सा मानसरोवर माहिं।
बगा ढंढोरैं माछुरी, हंसा मोती खाहिं ॥२॥
चंदन गया बिदेसडे, सब कोइ कहे पलास।
ज्यों-ज्यों चूल्हे झोंकिया, त्यों-त्यों अधको बास ॥३॥
ग्यान-रतन की कोठरी, चुप करि दीन्हों ताल।
पारखि आगे खोलिए, कुंजी बचन रसाल ॥४॥

---

८. वीर=भाई।

१०. मालिया=धनी। उसारि=दालान, बरामदा। घर=कब्र या श्मशान से अभिप्राय है।

११. बरियां=यौवन का अवसर। बुरा कमाया= बुरे कर्म किये। नेड़ा=पास।

पारिष कौ अंग

२. ढंढोरैं=खोजता है।

४. ताल=ताला। कुंजी वचन रसाल=मीठे वचन की चाभी से।

हीरा परा बजार में, रहा छार लपटाय।
बहुतक मूरख चलि गए, पारखि लिया उठाय ॥५॥

निंद्या कौ अंग

दोष पराये देखिकरि, चल्या हसंत हसंत।
अपनैं च्यंति न आवई, जिनका आदि न अंत ॥१॥
निंदक नेड़ा राखिये, आँगणि कुटी बँधाइ।
बिन साबण पाणी बिना, निरमल करै सुभाइ ॥२॥
कबीर घास न नींदिये,जो पाऊँ तलि होइ।
ऊड़ि पड़ै जब आँखि मैं, खरा दुहेला होइ ॥३॥
कबीर आप ठगाइये, और न ठगिये कोइ।
आप ठग्यां सुख ऊपजै, और ठग्यां दुख होइ ॥४॥
अबकै जे सांईं मिलै, तौ सब दुख आषौं रोइ।
चरनूँ ऊपरि सीस धरि, कहूँ ज कहणा होइ ॥५॥
सातो सायर मैं फिरा, जंबुदीप दै पीठ।
निंद पराई ना करै, सो कोई परला दीठ ॥६॥

निगुणां कौ अंग

हरिया जाणैं रूंखड़ा उस पाणीं का नेह।
सूका काठ न जाणई, कबहूँ बूठा मेह ॥१॥

---

५. छार=धूल।

निंद्या कौ अंग

१. च्यंति न आवई=ध्यान में नहीं आते हैं।

२. सुभाइ=सहज ही।

३. न नींदिये=निंदा न करे। खरा दुहेला=बहुत ही मुश्किल, भारी तकलीफ़।

५. आषौं=कहूँ।

६. जंबुदीप दै पीठ=जंबूद्वीप (अपने घर से) चलकर। परला=विरला।

निगुणां कौ अंग

१. रूंषड़ा=पेड़। बूठा=बरसा।

ऊँचा कुल कै कारणैं, बंस बध्या अधिकार।
चंदन बास भेदै नहीं, जाल्या सब परिवार ॥२॥
कबीर चंदन कै निड़ैं, नींव भी चंदन होइ।
बूड़ा बंस बड़ाइतां, यौं जिनि बूड़ै कोइ ॥३॥

बीनती कौ अंग

कबीर सांईं तौ मिलहिंगे, पूछहिंगे कुसलात।
आदि अंति की कहूँगा, उर अंतरि की बात ॥१॥
करता केरे बहुत गुण, औगुण कोई नाहिं।
जे दिल खोजौं आपणा, तौ सब औगुण मुझ मांहिं ॥२॥
ज्यूँ मन मेरा तुझ सौं, यौं जे तेरा होइ।
ताता लोहा यौं मिलै, संधि न लखई कोइ ॥३॥
सुरति करौ मेरे सांइयाँ, हम हैं भवजल माहिं।
आपे ही बहि जाहिंगे, जो नहिं पकरौ बाहिं ॥४॥
क्या मुख लै बिनती करौं, लाज आवत है मोहिं।
तुम देखत अवगुन करौं, कैसे भावों तोहिं ॥५॥
अवगुन मेरे बापजी, बकस गरीब-निवाज।
जो मैं पूत कपूत हौं, तऊ पिता कों लाज ॥६॥
मन परतीति न प्रेमरस, ना कछु तन में ढंग।
ना जानौं उस पीव से, क्योंकरि रहसी रंग ॥७॥
मेरा मुझ में कुछ नहीं, जो कछु है सो तोर।
तेरा तुझको सोंपते, क्या लागत है मोर ॥८॥

---

२. बंस=(१) वंश, कुल (२) बाँस का पेड़, जो लंबा ऊँचा होता है।

३. निडै=पास। बडाइतां=बडाई से, ऊँचा होने से।

बीनती कौ अंग

१. ताता=गरम। संधि=जोड़।

३. रहसी रंग=प्रीति निभेगी।

तुम तो समरथ साँइयाँ, दृढ़करि पकरो बाँहि ।
धुरही लै पहुँचाइयो, जनि छाँड़ो मग माँहि ॥६॥

विविध

तरवर सरवर संतजन, चौथे बरसै मेह ।
परमारथ के कारने, चारौं धारैं देह ॥१॥
कबीरा मैं तो तब डरौं, जो मुझ ही में होय ।
मीच बुढ़ापा आपदा, सब काहू में सोय ॥२॥
देहधरे का दंड है, सब काहू को होय ।
ग्यानी भुगतै ग्यान करि, मूरख भुगतै रोय ॥३॥
जूआ, चोरी, मुखबिरी, ब्याज, घूस, परनार ।
जो चाहै दीदार को, एती बस्तु निवार ॥४॥
राज-दुवारे साधुजन तीनि वस्तु कों जाय ।
कै मीठा, कै मान कों, कै माया की चाय ॥५॥
नाचै गावै पद कहै, नाहीं गुरु सों हेत ।
कह कबीर क्यों नीपजै बीज-बिहूनो खेत ॥६॥
करु बहियाँ बल आपनी, छाँड बिरानी आस ।
जाके आँगन नदी है, सो कस मरै पिआस ॥७॥
लिखापढ़ी में परे सब, यह गुण तजै न कोइ ।
सबै परे भ्रम-जाल में, डारा यह जिय खोइ ॥८॥
मानुष तेरा गुण बड़ा, माँस न आवै काज ।
हाड़ न होते आभरण, त्वचा न बाजै बाज ॥९॥

---

४. धुर ही=ठिकाने पर ही ।

विविध

३. मीच=मौत ।

४. मुखबिरी=भेद की खबर देने का काम, जासूसी । दीदार=ईश्वर का दर्शन ।

१०. सिलिहिली गैल=पैर रपटानेवाला रास्ता । पिपीलिका=चीटी ।

घर कबीरका सिखरपर, जहाँ सिलिहिलो गैल ।
पायँ न टिकै पिपीलिका, खलक न लादै बैल ॥१०॥
एकै साधे सब सधै, सब साधे सब जाय ।
जो तूँ सेवै मूल कों, फूलै फलै अघाय ॥११॥
सब काहू का लीजिये साँचा सब्द निहार ।
पच्छपात ना कीजिए, कहै कबीर बिचार ॥१२॥
रचनहार को चीन्हिले, खाने कों क्यों रोय ।
दिल-मंदिर में पैठकरि तानि पिछौरा सोय ॥१३॥

---

१२. सब्द=उपदेश ।
१३. तानि पिछौरा सोय=चादर फैलाकर सोजा, निश्चिंत होजा ।

रैदास

चोला-परिचय

जन्म-संवत्—अज्ञत; कबीरदास के सम-सामयिक
जन्म-स्थान—काशी
जाति—चमार
पिता—रग्घू
माता—घुरबिनिया
गुरु—स्वामी रामानन्द
आश्रम—गृहस्थ

इतिवृत्त केवल इतना ही कि रैदासजी जाति के चमार थे और काशी के रहनेवाले । रैदासजी ने स्वयं ही अपने को काशी-वासी चमार-कुल का कहा है—

"जाके कुटुँब सब ढोर ढोवंत फिरहिं अजहुँ बानारसी आसपासा ।
आचारसहित बिप्र करहि डंडउति तिन तनै रैदास दासानुदासा ॥"

कबीरदास के यह गुरु-भाई थे, अर्थात् स्वामी रामानन्द के शिष्य। भक्तमाल मे वर्णित इनकी कथा अनेक चमत्कारों से भरी हुई है। चमार-कुल मे जन्म लेने की कथा तो बडी ही विचित्र है, नाभाजी के मूल छप्पय मे यद्यपि वैसा कोई उल्लेख नही है। टीका मे लिखा है कि स्वामी रामानन्दजी का एक शिष्य एक दिन एक ऐसे बनिये के घर से भिक्षा ले आया, जिसका कारबार एक चमार के साथ था। स्वामीजी के ठाकुर-जी ने उस दिन थाल स्वीकार नही किया। पूछने पर जब पता चला कि उनका ब्रह्मचारी शिष्य उस बनिये के यहाँ से सीधा लाया था, तब स्वामी-जी ने शाप दिया कि 'जा, चमार के यहाँ जन्म ले।' बेचारे ब्रह्मचारी ने चमारिन के गर्भ से जन्म तो ले लिया, पर उस अछूत के स्तनो का दूध नही पिया। जब स्वामी रामानन्द ने पूर्वजन्म के ब्राह्मण ब्रह्मचारी को राममत्र का उपदेश किया, तब कही उसने माता के स्तनों का दूध पिया! पूर्वजन्म मे की हुई अपनी उस महाभूल का स्मरण कर शिशु रैदास को बड़ा पश्चात्ताप हुआ। इस विचित्र कथा के पीछे जो कल्पना है उसका इतना ही अर्थ समझा जाये कि चमार-कुलोत्पन्न जीव भगवान् का भक्त हो नही सकता; भक्ति पर तो द्विजाति का ही एकमात्र अधिकार है। रैदास की गणना इसीलिए भक्तो में हुई कि वे पूर्वजन्म के शापित ब्राह्मण थे। अत्यजो के प्रति द्वेषभाव किस सीमातक पहुँचा था, इसका स्पष्ट प्रमाण इस विचित्र कल्पित कथा मे मिलता है। एक ऐसी ही दूसरी कथा के अनुसार रैदासजी ने एक दिन अपने पूर्वजन्म का ब्राह्मणत्व सिद्ध करने के लिए अपने शरीर की त्वचा को उधेड़कर 'स्वर्ण-यज्ञो-पवीत' सबको दिखलाया था।

रैदासजी गृहस्थाश्रम मे रहते हुए भी उच्चकोटि के विरक्त संत थे। जूते सीते-सीते ही उन्होने ज्ञान-भक्ति का ऊँचा पद प्राप्त किया था।

प्रसिद्ध है कि चित्तौर की झाली नाम की एक रानी ने काशी में जाकर रैदासजी से गुरु-मंत्र लिया था। उसकी प्रार्थना पर वे चित्तौर भी गये थे। कहते है कि झाली महाराणा उदयसिंह की रानी थी, किन्तु इसका कोई पुष्ट प्रमाण उपलब्ध नहीं।

मीरां बाई को भी रैदासजी की शिष्या कहा जाता है उनके कुछ पदों के आधार पर, जैसे—

"मेरो मन लाग्यो गुरु सों, अब न रहूँगी अटकी।
गुरु मिलिया रैदासजी म्हानें. दीनी ग्यान की गुटकी।।"
"सतगुरु सत मिले रैदासा, दीनी सुरत सहदानी।"

मीरां की अधिक-से-अधिक पद-रचना सगुणोपासना की होने के कारण, तथा काल की दृष्टि से परवर्ती होने से भी यह कथानक विवादास्पद-सा है। मीरां बाई ने चैतन्य महाप्रभु का भी एक-दो पदों मे गुरुवत् स्तवन किया है, जैसे—

"अब तो हरीनाम लौ लागी।
सब जग को यह माखनचोरा, नाम धर्‌यो बैरागी।।
कित छाँडी वह मोहन मुरली, कित छाँडीं वे गोपी।
मूँड मुडाइ डोरि कटि बाँधी, माथे मोहन-टोपी।।
मात जसोमति माखन कारन, बाँधे जाके पाँव।
स्याम किसोर सोइ तन गोरा, चैतन्य जाको नाँव।।
पीताबर को भाव दिखावै, कटि कोपीन कसै।
गौर कृष्ण की दासी मीरा, रसना कृष्ण बसै।।"

इसी प्रकार मीरां बाई को कुछ विद्वानों ने वल्लभ-कुल की भी शिष्या माना है। इसका समाधान इस प्रकार हो जाता है कि रैदासजी के परवर्ती काल में होते हुए भी मीरां ने उनका पुण्य स्मरण 'सद्गुरु' के रूप मे किया है, अथवा किसी रैदासी साधु के प्रति उनका गुरुभाव रहा हो।

रैदास के समसामयिक तथा परवर्ती सतों ने रैदास को एक बहुत बड़े हरिभक्त के रूप मे स्वीकार किया था। स्वामी दादूदयाल के शिष्य रज्जबजी ने भगवद्-भक्ति के सँबंध मे तो यहाँतक कहा है—

"आदि मिली जयदेव कूं, रैदास समानी।"

रैदासजी का प्रभाव दूर-दूरतक फैला हुआ था, और आज भी भारत के अनेक प्रदेशों में उनके पंथ के अनुयायी रविदासी लाखों की

संख्या में मिलते हैं। रैदासजी 'रविदास' तथा महाराष्ट्र मे 'रोहिदास' नाम से भी प्रसिद्ध हैं।

बानी-परिचय

रैदासजी की बानी के संबंध मे नाभाजी की यह पंक्ति प्रसिद्ध है—

"सन्देह-ग्रन्थि-खंडन-निपुन बानि बिमल रैदास की।"

यह उनकी 'विमल' बानी का ही प्रभाव था कि—

"बर्नाश्रम-अभिमान तजि पद-रज बदहि जासकी।"

महात्मा रैदास की बड़े ऊँचे घाट की बानी है। प्रेमपराभक्ति का कई शब्दों मे बडा ही विशद निरूपण उन्होने किया है। समता और सदाचार पर बहुत बल दिया है। भक्ति-रस का ऐसा सुन्दर परिपाक अन्यत्र कम देखने मे आता है। खंडन-मंडन की ओर उनका ध्यान नहीं था। सत्य की शुद्ध निर्मल अभिव्यक्ति ही, अपरोक्षानुभूति ही उनका परम ध्येय था। भाषाने भी भाव का मूक अनुसरण किया है। अनेक जनपदों के शब्दों का उनकी बानी मे समावेश हुआ है, फिरभी रस एकरस ही सर्वत्र प्रवाहित दीखता है।

आधार

१ श्री गुरु ग्रन्थ साहब—सर्व हिन्द सिक्ख मिशन, अमृतसर

२ रैदास—बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद

३ भक्तमाल—नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ

४ भगवान रविदास की सत्य कथा—महात्मा रामचरण कुरील, कानपुर

रैदास

शब्द

भैरव

बिनु देखे उपजै नहिं आसा।
जो दीसै सो होइ बिनासा॥

शब्द •

१. दीसै=दीखता है। निहकामु=निष्काम, कामना-रहित। रवै=रमण करता है,

बरन सहित जो जापै नामु ।
सो जोगी केवल निहकामु ॥
परचै रामु रवै जो कोई ।
पारसु परसै न दुबिधा होई ॥
सो मुनि, मन की दुबिधा खाइ ।
बिनु द्वारे त्रैलोक समाइ ॥
मन का सुभाव सब कोई करै ।
करता होइ सु अनभै रहै ॥
फल कारन फूली बनराइ ।
फलु लागा तब फूल बिल्हाइ ॥
ग्यानै कारन कर अभ्यासू ।
ग्यान भया तहँ करमह नासू ॥
घृत कारन दधि मथै सयान ।
जीवत मुकत सदा निरबान ॥
कहि रविदास परम बैराग ।
रिदै रामु को न जपसि अभाग ॥१॥

मलार

मिलत पियारो प्राननाथ कवनि भगति ।
साध-संगति पाई परम गति ॥
मैले कपरे कहाँ लउ धोवउँ ॥
आवैगो नींद कहाँ लउ सोवउँ ॥

प्रत्यक्ष अनुभव करता है। पारसु=ब्रह्मरस से तात्पर्य है। दुविधा=द्वैतभाव। सो मुनि······खाइ=जिसके मन में द्वैतभाव का लेश भी नहीं रहा, उसे ही 'मुनि' ·· ··कहना चाहिए। बिनु · ··समाइ=उस मुनि को त्रिलोक का ज्ञान, बाह्य साधनों के बिना ही, प्राप्त हो जाता है। अनभै रहै=अनुभव-ज्ञान पर स्थित रहता है; अथवा, निर्भय रहता है। बनराइ=वृक्षावली। बिल्हाइ=लुप्त हो जाता है। निरबान=मुक्त। रिदै=हृदय में।

२. परमगति=मोक्ष। जोर्यो=सम्बन्ध जोड़ा। फाट्यो=बिछुड गया। बनजि=व्यापार।

जोई-जोई जोर्‌यो सोई-सोई फाट्यो ।
झूठै बनजि उठि ही गई हाट्यो ॥
कहि रविदास भयो जब लेख्यो ।
जोई-जोई कीन्यो सोई-सोई देख्यो ॥२॥

बिलावल

जिहि कुल साधु बैसनौं होइ ।
बरन अबरन रंक नहिं ईस्वर, बिमल बासु जानिये जग सोइ ॥
बाँभन बैस सूद अरु ख्यत्री, डोम चंडाल मलेच्छ किन सोइ ।
होइ पुनीत भगवत-भजन ते आपु तारि तारै कुल दोइ ॥
धनि सु गाउँ धनि धनि सो ठाऊँ, धनि पुनीत कुटंब सभ लोइ ।
जिनि पिया सार-रस तजे आन रस, होइ रसमगन डारे बिषु खोइ ॥
पंडित सूर छत्रपति राजा, भगत बराबरि और न कोइ ।
जैसे पुरैन-पात जल रहै समीप, भनि रविदास जनमे जगि ओइ ॥३॥

राग सूही

सह की सार सुहागनि जानै ।
तजि अभिमान सुख रलिया मानै ॥
तनु मनु देइ न सुनै अंतर राखै ।
अवरा देखि न सुनै न माखै ॥
सो कत जानै पीर पराई ।
जाकै अन्तर दरद न पाई ॥

हाट्यो=हाट, पेठ ।

३. बैसनौं=वैष्णव, हरि-भक्त । ईस्वर=राजा से अभिप्राय है । ख्यत्री=क्षत्रिय । किन=क्यों न । लोइ=लोग । सार-रस=प्रेम-लक्षणा भक्ति से आशय है । आन-रस=विषय-भोग । पुरैन-पात=कमल का पत्ता, जो जल में रहते हुए भी भीगता नहीं । जनमे जगि ओइ=जगत् में उसीका जन्म लेना सार्थक है ।

४. सह=मिलन । सार=सेज का सुख; आनन्द-तत्त्व । सुख रलिया=एकाकार हो जाने का आनन्द । अवरा=अन्य । दुहागनि=अभागिनी । दुइ पखहीनो=लोक

दुखी दुहागनि दुइ पखहीनी।
जिनि नाह निरंतरि भगति न कीनी॥
राम-प्रीति का पंथ दुहेला।
संगि न साथी गवन अकेला॥
दुखिया दरदमंद दरि आया।
बहुतै प्यास जवाब न पाया॥
कहि रविदास सरनि प्रभु तेरी।
ज्यूँ जानहु त्यूँ करि गति मेरी॥४॥

सूही

जो दिन आवहि सो दिन जाहीं।
करना कूच रहन थिरु नाहीं॥
संगु चलत हैं हम भी चलना।
दूरि गवनु सिर ऊपरि मरना॥
क्या तू सोया जाग अयाना।
तैं जीवन जगि सचु करि जाना॥
जिनि दिया सु रिजकु अंबरावै।
सभ घट भीतरि हाटु चलावै॥
करि बंदिगी छाँड़ि मैं-मेरा।
हिरदै नामु सम्हारि सवेरा॥
जनमु सिरानो पंथु न सँवारा।
साँझ परी दह दिसि अँधियारा॥
कह रविदास नदान दिवांने।
चेतसि नाहीं दुनिया फनखाने॥५॥

परलोक जिसके दोनो बिगड गये। नाह=नाथ, स्वामी। दुहेला=कठिन, दुःखदायी।

५. रिजक=रोजी, जीविका। अंबरावै=जुटाता है। हाटु=पेठ, लेन-देन। सम्हारि=स्मरण कर। सवेरा=जल्दी। दह=दस। नदान=नादान, मूर्ख। फनखाने=नाशवान्।

धनाश्री

चित सिमरन करौ नैन अवलोकनो,
स्रवन बानी सुजसु पूरि राखौं ॥
मनु सु मधुकरु करौं चरण हिरदे धरौं
रसन अमृत रामनाम भाखौं ॥
मेरी प्रीति गोबिंद सिउ जनि घटै ।
मैं तो मोलि महँगी लई जीउ सटै ॥
साध संगति बिना भाव नहिं उपजै,
भाव बिन भगति न होय तेरी ॥
कहै रविदास एक बेनती हरि सिउ
पैज राखहु राजाराम मेरो ॥६॥

जैतिश्री

नाथ, कछुवै न जानउँ ।
मनु माया कै हाथि बिकानउँ ॥
तुम कहियत हौं जगतगुर स्वामी ।
हम कहियत कलिजुग के कामी ॥
इन पंचन मेरो मन जु बिगार्‌यो ।
पलु पलु हरिजी ते अंतरु पार्‌यो ॥
जित देखौं तित दुख को रासी ।
अजौं न पत्याइ निगम भये साखी ॥
इन दूतन खलु बध करि मार्‌यो ।
बड़ो निलाजु अजँहु नहिं हार्‌यो ॥
कहि रविदास कहा कैसे कीजै ।
बिनु रघुनाथ सरनि काकी लीजै ॥७॥

---

६. पूरि राखौं=भरलूँ । रसना=रसन, जिह्वा । जीव सटै=प्राणों के मोल । पैज=टेक ।

२. अंतर पार्‌यौ=भेद डाल दिया । पत्याइ=विश्वास करता है । निगम=वेद । साखी=साक्षी, गवाह ।

गौरी

मेरी संगति पोच, सोच दिनु-राती।
मेरा करम-कुटिलता जनमु कुभाँती ॥
राम गुसइयाँ जीउ के जीवना।
मोहिं न बिसारहु मैं जनु तेरा ॥
हरहु बिपति जन करहु सुभाई।
चरण न छांड़ौं सरीर कल जाई।
कहि रविदास परौं तेरी साभा।
बेगि मिलहु जन करि न बिलांबा ॥८॥

रामकली

गाइ गाइ अब का कहि गाऊँ।
गावनहार को निकट बताऊँ ॥
जबलगि है इहि तन की आसा, तबलगि करै पुकारा।
जब मन मिल्यौ आस नहिं तन की, तब को गावनहारा ॥
जबलगि नदी न समुँद्र समावै, तबलगि बढै हँकारा।
जब मन मिल्यौ रामसागर सौं, तब यह मिटी पुकारा ॥
जबलगि भगति मुकति की आसा, परमतत्व सुनि गावै।
जहँ-जहँ आस धरत है इहि मन, तहँ-तहँ कछू न पावै ॥
छाँड़ै आस निरास परम पद, तब सुख सति कर होई।
कहि रैदास जासौं और करत है, परमतत्व अब सोई ॥

राग रामकली

राम-भगत को जन न कहाऊँ, सेवा करूँ न दासा।
जोग जग्य गुन कछू न जानूँ, ताते रहूँ उदासा ॥
भगत भया तो चढ़ै बड़ाई, जोग करूँ जग मानै।
जो गुन भया तो कहैं गुनी जन, गुनी आपको जानै ॥

---

८. पोच=नीच। कल=भले कल ही।

९. हँकारा=अहंकार। सति कर=सत्य का, निश्चय ही। निरास=तृष्णा-रहित, अनासक्त।

ना मैं ममता मोह न महिया, ये सब जाहिं बिलाई ।
दोजख भिस्त दोउ सम करि जानूँ, दुहुं ते तरक है भाई ॥
मैं अरु ममता देखि सकल जग, में से मूल गवाँई ।
जब मन ममता एक-एक मन, तबहि एक है भाई ॥
कृस्न करीम राम हरि राघव, जबलगि एक न पेखा ।
बेद कितेब कुरान पुरानन, सहज एक नहिं देखा ॥
जोइ-जोइ पूजिय सोइ-सोई काँची, सहज भाव सति होई ।
कहि रैदास मैं ताहि को पूजूँ, जाके ठाँव नाँव नहिं होई ॥१०॥

राग रामकली

नरहरि, चंचल है मति मेरी, कैसे भगति करूँ मैं तेरी ।
तूँ मोहिं देखै हौं तोहि देखूँ, प्रीति परस्पर होई ।
तूँ मोहिं देखै तोहि न देखूँ, यह मति सब बुधि खोई ॥
सब घट अंतर रमसि निरंतर, मैं देखन नहिं जाना ।
गुन सब तोर मोर सब औगुन, कृत उपकार न माना ॥
मैं तैं तोरि मोरि असमझि सों, कैसे करि निस्तारा ।
कहि रैदास कृस्न करुनामय, जै जै जगत-अधारा ॥११॥

राग रामकली

भगती ऐसी सुनहु रे भाई । आइ भगति तब गई बड़ाई ॥
कहा भयो नाचे अरु गाये, कहा भयो तप कीन्हें ।
कहा भयो जे चरन पखारे, जौलौं तत्त्व न चीन्हें ॥
कहा भयो जे मूँड़ मुँडायो, कहा तीर्थ ब्रत कीन्हें ।
स्वामी दास भगत अरु सेवक, परम तत्त्व नहिं चीन्हें ॥

---

१०. बड़ाई=महिमा । महिया=मथा । भिस्त=बहिश्त, स्वर्ग । तरक=असहकार, त्याग ।

११. रमसि=रमना है, व्यापक है । कृत=किया हुआ । असमझि=अज्ञान, भ्रान्ति ।

१२. पिपिलक=पिपीलिका, चींटी । धूल में शकर मिल गई हो तो चींटी ही शकर को अलग करके खा सकती है, यह कार्य हाथी नही कर सकता । रस-प्राप्ति के

कहि रैदास तेरी भगति दूरि है, भाग बड़े सों पावै ।
तजि अभिमान मेटि आपा पर, पिपिलक ह्वै चुनि खावै ॥१२॥

राग गौडी

राम मैं पूजा कहा चढ़ाऊँ । फल अरु फूल अनूप न पाऊँ ॥
थनहर दूध जो बछरू जुठारी । पुहुप भँवर जल मीन बिगारी ॥
मलयागिरि बेधियो भुअंगा । त्रिष अंम्रित दोउ एकै संगा ॥
मनही पूजा मनही धूप । मनही सेऊँ सहज सरूप ॥
पूजा अरचा न जानूँ तेरी । कहि रैदास कवन गति मेरी ॥१३॥

राग सोरठ

जो तुम तोरौ राम, मैं नहिं तोरौं ।
तुम सों तोरि कवन सों जोरौं ॥
तीरथ बरत न करौं अँदेसा । तुम्हरे चरनकमल का भरोसा ॥
जहँ-जहँ जावौं तुम्हरी पूजा तुम-सा देव और नहिं दूजा ॥
मैं अपनो मन हरि सों जोर्‌यो । हरि सों जोरि सबन सों तोर्‌यो ॥
सबहीं पहर तुम्हारी आसा । मन क्रम बचन कहै रैदासा ॥१४॥
थोथो जनि पछोरौ रे कोई ।
सोई रे पछोरौ जा में निज कन होई ॥
थोथी काया थोथी माया । थोथा हरि बिन जनम गँवाया ॥
थोथा पंडित थोथी बानी । थोथी हरि बिन सबै कहानी ॥
थोथा मंदिर भोग बिलासा । थोथी आन देव की आसा ॥
साँचा सुमिरन नाम बिसासा । मन बच कर्म कहै रैदासा ॥१५॥

राग बिलावल

मैं बेदनि कासनि आखूँ,
हरि बिन जिव न रहै कस राखूँ ॥

लिए नन्हें-से-नन्हा बनने की आवश्यकता है ।

१३. थनहर=थन से दुहा हुआ । पुहप=पुष्प, फूल । मलयागिरि=मलयगिरि का चन्दन ।

१५. थोथो=पोला, निस्सार । पछोरना=फटकना, सूप में रखकर अन्न साफ करना । निजकन=आत्म-सुख-कणो से आशय है । बिसासा=विश्वास ।

जिव तरसै ज्यौं आसरु तेरा, करहु सँभाल न सुर मुनि मेरा ॥
बिरह तपै तन अधिक जरावै, नींद न आवै भोज न भावै ॥
सखी सहेली गरब गहेली, पिउ की बात न सुनहु सहेली ।
मैं रे दुहागिनि अघ करि जानी, गया सो जोबन साध न मानी ॥
तूँ सांई औ साहिब मेरा, खिजमतगार बन्दा मैं तेरा ।
कहि रैदास अँदेसा येही, बिन दरसन क्यों जिवहि सनेही ॥१६॥

राग कानडा

चल मन, हरि-चटसाल पढ़ाऊँ ।
गुरु की साटि, ग्यान का अच्छर,
बिसरै तौ सहज समाधि लगाऊँ ॥
प्रेम की पाटी, सुरति की लेखनि,
ररौ ममौ लिखि आंक लखाऊँ ।
इहि बिधि मुक्त भये सनकादिक,
रिदै बिचार-प्रकास दिखाऊँ ॥
कागद-कँवल,मति मसि करि निर्मल,
बिन रसना निसिदिन गुन गाऊँ ।
कहि रैदास, राम भजु भाई,
सन्त साखि दे बहुरि न आऊँ ॥१७॥

राग गौड

आज दिवस लेऊँ बलिहारा ।
मेरे घर आया राम का प्यारा ॥टेक॥
आँगन बँगला भवन भयो पावन ।
हरिजन बैठे हरिजस गावन ॥

---

१६. वेदनि=वेदना, पीडा । आखूँ=कहूं । भोज=भोजन । आसरु=आश्रय, शरण । दुहागिनि=अभागिनी । अघ करि जानी=पाप करना ही जाना ।

१७. चटसाल=पाठशाला । साटि=छडी । पाटी=तख्ती । ररौ ममौ=रकार, मकार यही दो अच्चर अर्थात् राम । कंवल=हृदय-कमल से आशय है । मति-मसि= बुद्धिरूपी स्याही । बहुरि न आऊँ=फिर जन्म न लूँ ।

करूँ डँडवत, चरन पखारूँ।
तन मन धन उन ऊपरि वारूँ॥
कथा कहैं अरु अर्थ बिचारैं।
आप तरैं, औरन कों तारैं॥
कहि रैदास मिलैं निज दासा।
जनम-जनम के काटैं पासा॥१८॥

राग धनाश्री

मैं का जानूँ देव, मैं का जानूँ।
मन माया के हाथ बिकानूँ॥
चंचल मनुवां चहूँदिसि धावै।
पाँचों इन्द्री थिर न रहावै॥
तुम तौ आहि जगतगुरु स्वामी।
हम कहियत कलिजुग के कामी॥
लोक बेद मेरे सुकृत बड़ाई।
लोक-लीक मोपै तजी न जाई॥
इन मिलि मेरा मन जो बिगार्‌यो।
दिन-दिन हरि सों अंतर पार्‌यो॥
सनक सनंदन महामुनि ग्यानी।
सुक नारद अरु ब्यास बखानी॥
गावत निगम उमापति स्वामी।
सेस सहसमुख कीरति-गामी॥
जहँ जाऊँ तहँ दुख की रासी।
जो न पतियाइ साधु हैं साखी॥
जमदूतन बहु बिधि करि मार्‌यो।
तऊ निलज अजहूँ नहिं हार्‌यो॥

१८. पासा=(कर्म के) फंदे।

१९. लीक=मर्यादा, नियम। उमापति=शिव। गामी=यहां 'गायक' यह अर्थ लिया

हरिपद-बिमुख आस नहिं छूटै।
तातें तृस्ना दिन दिन लूटै॥
बहु विधि करम लिये भटकावै।
तुम्हें दोष हरि कौन लगावै॥
केवल रामनाम नहिँ लीया।
संतत बिषय-स्वाद चित दीया॥
कहि रैदास कहाँलगि कहिये।
बिनु रघुनाथ बहुत दुख सहिये॥१९॥

राग धनाश्री

दरसन दीजै, राम दरसन दीजै।
दरसन दीजै, बिलँब न कीजै॥
दरसन तोरा जीवन मोरा। बिन दरसन क्यूँ जिवै चकोरा॥
माधो सतगुरु सब जग चेला। अब के बिछुरे मिलन दुहेला॥
धन जोबन की झूठी आसा। सत सत भाषै जन रैदासा॥२०॥

आरती

अब कैसे छूटै नामरट लागी।
प्रभुजी, तुम चन्दन हम पानी। जाकी अँग-अँग बास समानी॥
प्रभुजी, तुम घनबन हम मोरा। जैसे चितवत चंद चकोरा॥
प्रभुजी, तुम दीपक हम बाती। जाकी जोति बरै दिनराती॥
प्रभुजी, तुम मोती हम धागा। जैसे सोनहिं मिलत सुहागा॥
प्रभुजी, तुम स्वामी हम दासा। ऐसी भक्ति करै रैदासा॥२१॥
प्रभुजी, तुम संगति सरन तिहारी।
जग-जीवन राम मुरारी॥
गली-गली को जल बहि आयो, सुरसरि जाय समायो।
संगति के परताप महातम, नाम गंगोदक पायो॥

जायेगा। संतत=सदा।

२१. बास=सुगन्ध।

२२. फनि=साँप। बिषै=विष ही। निपजै=पैदा होता है। अधिकाई=बड़ाई,

स्वाँति-बूँद बरसै फनि ऊपर, सोहि बिषै होइ जाई।
ओहि बूँद कै मोती निपजैं, संगति की अधिकाई ॥
तुम चन्दन हम रेंड बापुरे, निकट तुम्हारे आसा।
संगति के परताप महातम, आवै बास सुबासा ॥
जाति भी ओछी करम भी ओछा, ओछा कसब हमारा।
नीचै से प्रभु ऊँच कियो है, कहि रैदास चमारा ॥२२॥

साखी

हरि-सा हीरा छाँड़िकै, करैं आन की आस।
ते नर जमपुर जाहिंगे, सत भाषै रैदास ॥१॥
अंतरगति राचैं नहीं, बाहर कथैं उदास।
ते नर जमपुर जाहिंगे, सत भाषै रैदास ॥२॥
जा देखे घिन ऊपजै, नरककुण्ड में वास।
प्रेम-भगति सौं ऊधरे, प्रगटत जन रैदास ॥३॥
रैदास राति न सोइये, दिवस न करिये स्वाद।
अहनिसि हरिजू सुमिरिये, छाँड़ि सकल प्रतिवाद ॥४॥
सब सुख पावैं जासुतें, सो हरिजू को दास।
कोउ दुख पावैं जासुतें, सो न दास हरिदास ॥५॥

महिमा। रेंड=रेंडी, अरंट। कसब=पेशा।

साखी

२. राचैं=प्रेम से रँगे। उदास=वैराग्य की बात।

३. ऊधरे=उद्धार हो गया।

४. प्रतिवाद=बकवास, झञ्झट।

●

धनी धरमदास

चोला-परिचय

जन्म-संवत्—अनुमानतः १४९० वि०

जन्म-स्थान—बाँधोगढ़

जाति—बनिया

गुरु—कबीरदास

चोला-त्याग-सवत्—अनुमानतः १६०० वि०

धरमदासजी बाँधोगढ़ के एक बड़े धनी व्यापारी थे। भजन-पूजन, दान-पुण्य और तीर्थाटन पर इनकी भारी श्रद्धा थी। नित्य-नियम से शालिग्राम की पूजा करते और ब्राह्मणो को विधिवत् दान देते थे। भगवान् का कीर्तन भी घर पर नित्य होता था।

कथा है कि एक बार मथुरा मे कबीर साहब से इनकी भेंट हुई। मूर्तिपूजा और तीर्थयात्रा का कबीर साहब ने खडन किया, और निर्गुण निराकार की उपासना का मडन। कबीर साहब की बात इनके मन मे कुछ-कुछ तो धँसी, पर पूरी तरह नही। दूसरी बार धरमदासजी कबीर साहब से काशी मे जाकर मिले, और सत-मत का पूरा उपदेश पाया। सतगुरु ने उनके अन्तर पर पडा पर्दा हटा दिया। **'अमर-सुखनिधान'** मे विस्तार से इस प्रसग का वर्णन आया है। लिखा है कि काशी मे कबीर साहब जिद के रूप मे इनसे मिले थे, किन्तु संतमत का ऊँचा उपदेश सुनकर अन्त मे इन्होने उनको पहचान लिया। कबीर साहब ने जब इन्हे चेताया उस समय की कुछ चौपाइयाँ उक्त ग्रन्थ मे से हम नीचे देते हैं—

धरमदास हरषित मन कीन्हा। बहुरि पुरुष मोहि दरसन दीन्हा॥
मन अपने तब कीन्ह विचारा। इन कर ग्यान महा टकसारा॥
दोइ दीन के करता कहाई। इन कर भेद कोउ नहि पाई॥
इतना कहि मन कीन्ह विचारा। तब कबीर उन ओर निहारा॥
"आओ धरमदास पगु धारो। चिहुँकि चिहुँकि तुम काहे निहारो॥
कहिये छिमा कुसल हौ नीके। सुरत तुम्हार बहुत हम झीके॥
धरमदास हम तुमकों चीन्हा। बहुत दिनन मे दरसन दीन्हा॥
बहुत ग्यान कहसी हम तुमही। बहुरिके अब तुम चीन्हों हमहीं॥
तुम तो भक्त हम जिद फकीरा। सुधि करि देखौ सतमत धीरा॥

भली भई दरसन मिले, बहुरि मिले तुम आय ।
जो कोऊ मोसों मिलै, सो जुग बिछुरि न जाय ।।"

धरमनिदास हिये सुख भरे । सनमुख धाय पायँ जा परे ।।
दयासिधु चितये भरि नैना । धरमदास अकहि भरि लीना ।।
पाई सत्तधाम कै बाटा । सत्त सब्द कै खुले कपाटा ।।

धरमदास ने अपनी सारी धन-सपत्ति लुटादी । उन्हे अब वह अखूट धन मिल गया, जो कितना ही खरचा दिन-दिन बढता ही गया । धनी धरमदास का अब पलटकर यह व्यापार हो गया—

"हम सत्तनाम के बैपारी ।
कोइ-कोइ लादै काँसा-पीतल, कोइ-कोइ लौग सुपारी ।
हम तो लाद्या नाम धनी का, पूरन खेप हमारी ।।
पूँजी न टूटे नफा चौगुना, बनिज किया हम भारी ।
हाट जगाती रोकि न सकिहै, निर्भय गैल हमारी ।।
मोती बिदु घटहि मे उपजै, सुकिरत भरत कोठारी ।
नाम-पदारथ लाद चला है, धरमदास बैपारी ।।"

कबीर साहब जब सवत् १५७५ मे सत्तलोक को सिधारे तब उनकी गद्दी और बीजक आदि ग्रन्थो का अधिकारी धनी धरमदासजी को बनाया गया ।

बानी-परिचय

प्रेम-प्रीति, विरह और शब्द-रहस्य इन अगों मे धरमदासजी ने सद्गुरु कबीर की बानी के साथ तादात्म्य-सा किया है । बानी बडी सरल और सरस है । कठोरता का कही लेश भी नहीं । खंडन के फेर में न पडकर संत-मत की सात्त्विकी साधना से उपलब्ध प्रेम-तत्व का विशद निरूपण किया है । सूक्ष्म भावों की अभिव्यंजना इनकी बडी सुन्दर तथा मार्मिक है ।

मगल, होली और सोहर के गीत इनके बड़े ही हृदयस्पर्शी है । "सूतल रहलौ मै सखियाँ, तो विषकर आगर हो; सतगुरु दिहलै जगाइ पायौ सुख-सागर हो"—यह मंगल तो इनका अत्यत प्राणवान् तथा

रहस्यात्मक है।

भाषा इनकी पूर्वी हिन्दी का अच्छा परिमार्जित रूप है। उसमे ओज भी है, और माधुर्य भी। लोकभाषा का उसमे हम अच्छा निखरा रूप पाते हैं।

धरमदासजी की बानी सचमुच बडे ऊँचे घाट की बानी है। कबीर साहब की उज्ज्वल प्रसादी का इस अति गहरी बानी को विमल प्रतिविम्ब कहा जाये तो अत्युक्ति न होगी।

आधार

१. धनी धरमदासजी के शब्द—वेलिवेडियर प्रेस, इलाहाबाद

२ हिन्दी-साहित्य का इतिहास—रामचन्द्र शुक्ल

धनी धरमदास

गुरु मिले अगम के बासी॥
उनके चरन कमल चित दीजे, सतगुरु मिले अबिनासी।
उनकी सीत प्रसादी लीजै, छूटि जाय चौरासी॥
अमृत बुंद झरैं घट भीतर, साध-संतजन लासी।
धरमदास बिनवै कर जोरी, सार सब्द मन बासी॥१॥

नाम-रस ऐसा है भाई॥
आगे आगे दहि चलै, पाछे हरियर होइ।
बलिहारी वा वृच्छ की, जड़ काटे फल होइ॥
अति कडुवा खट्टा घना रे, वाको रस है भाई।
साधत साधत साध गये हैं, अमली होय सो खाई॥

---

१. अगम=वह लोक, जहाँ पहुँचना महाकठिन है। सीत=गिरा-पड़ा जूठन चौरासी=८४ लाख योनियों का आवागमन। लासी=चाशनी (साधु-सन्तों के लिए) बासी=रहनेवाला, अनुरक्त।

२. आगे-आगे दहि चलै=आगे-आगे कर्मों को जलाता जाता है। पाछे हरियर होइ=पीछे हरा होता जाता है, प्रेम की हरियाली बढाता जाता है। जड काटे फल होइ=बंधन की मूल आसक्ति कट जाने पर मुक्ति-फल लाता है। अमली=

सूँघत के बौरा भये हो, पीयत के मरि जाई ।
नाम-रस्स सो जन पिये, धड़ पर सीस न होई ॥
संत जवारिस सो जन पावै, जाको ग्यान परगासा ।
धरमदास पी छकित भये हैं, और पिये कोइ दासा ॥२॥

हम सत्तनाम के बैपारी ॥
कोइ कोइ लादै काँसा पीतल, कोइ कोइ लौंग सुपारी ।
हम तौ लाद्यौ नाम धनी को, पूरन खेप हमारी ॥
पूँजी न टूटै नफा चौगुना, बनिज किया हम भारी ।
हाट जगाती रोक न सकिहै, निर्भय गैल हमारी ॥
मोती बुंद घटहिं में उपजै, सुकिरत भरत कोठारी ।
नाम-पदारथ लाद चला है, धरमदास बैपारी ॥३॥

थोरे दिन को जिंदगी, मन चेत गँवार ॥
कागद कै तन पूतरा, डोरा साहेब हाथ ।
नाना नाच नचावही, नाचै संसार ॥
काचि माटी कै घइलिया, भरि लै पनिहार ।
पानी परत गल जावही, ठाढ़ी पछिताय ॥
जस धूआँ कै धरोहरा, जस बालू कै रेत ।
हवा लगे सब मिटि गये, जस करतब प्रेत ॥
ओछे जल कै नदिया हो, बहै अगम अपार ।
उहाँ नाव नहिं बेरा हो, कस उतरब पार ॥
धरमदास गुरु समरथ हो, जाको अदल अपार ।
साहेब कबीर सतगुरु मिले, आवागवन निवार ॥४॥

अनुराग-रस का अभ्यासी । बौरा=बावला । सीस=अहंता से तात्पर्य है । जवारिस=एक औसधि । परगासा=प्रकाश ।

३. खेप=लदान । न टूटै=घटती नहीं है । बनिज=व्यापार । जगाती=कर उगाहनेवाला, कर्मों का लेखा माँगनेवाला । गैल=राह । सुकिरत=सत्कर्म, पुण्य ।

४. डोरा=सूत्र । घइलिया=गगरी, नाशवान देह से आशय है । धरोहरा=ऊँचा मीनार । ओछे=थोड़े । बेरा=बेड़ा । अदल=शासन ।

कहो केते दिन जियबौ हो, का करत गुमान ॥टेक॥
कच्चे बाँसन का पिंजरा हो, जामें पवन समान।
पंछी का कौन भरोसा हो, छिन में उड़ि जान॥
कच्ची माटी के घडुवा हो, रस-बूँदन सान।
पानी बीच बतासा हो, छिन में गलि जान॥
कागद की नइया बनी, डोरी साहेब हाथ।
जौने नाच नचैहैं हो, नाचब वोही नाच॥
धरमदास एक बनिया हो, करै झूठी बजार।
साहेब कबीर-बनजारा हो, करैं मत बैपार॥५॥

सतगुरु आवौ हमरे देस, निहारौं बाट खड़ी॥
वाहि देस की बतियाँ रे, लावैं संत सुजान।
उन संतन के चरन पखारौं, तन मन करि कुरबान॥
वाही देस की बतियाँ हमसे, सतगुरु आन कही।
आठ पहर के निरखत हमरे, नैन की नींद गई॥
भूल गई तन मन धन सारा, ब्याकुल भया सरीर।
बिरह पुकारै बिरहनी, ढरकत नैनन नीर॥
धरमदास के दाता सतगुरु, पल में कियो निहाल।
आवागवन की डोरी कटि गई, मिटे भरम-जंजाल॥६॥

मैं हेरि रहूँ नैना सो नेह लगाई॥
राह चलत मोहि मिलि गये सतगुरु, सो सुख बरनि न जाई।
देइ के दरस मोहि बौराये, लै गये चित्त चुराई॥
छबि सत दरस कहाँलगि बरनौं, चाँद सुरज छपि जाई।
धरमदास बिनवै कर जोरी, पुनि पुनि दरस दिखाई॥७॥

---

५. गुमान=गर्व। समान=समाया हुआ है। पंछी=प्राण-पक्षी। घडुवा=घडा। रस-बूँदन-सान=रज-वीर्य या रक्त की बूँदों से सानकर। बतासा=बुलबुला। बाजार=बनिज-व्यापार। बनजारा=सौदागर।

६. बतियाँ=खबरें। कुरबान=न्यौछावर। निहाल=पूर्णकाम, सारी इच्छाएँ पूरी कर देना। आवागमन=जन्म-मरण।

७. बौराये=बावला बना दिया। छपि जाई=निस्तेज पड़ गये।

साहेब, तेरी देखौं सेजरिया हो ॥
लाल महल के लाल कँगूरा, लालिनि लागि किवरिया हो ॥
लाल पलंग के लाल बिछौना, लालिनि लागि झलरिया हो ॥
लाल साहेब की लालिनी मूरत, लालि लालि अनुहरिया हो ॥
धरमदास बिनवै कर जोरी, गुरु के चरन बलिहरिया हो ॥८॥*

पिया बिन मोहिँ नींद न आवै ॥
खन गरजै खन बिजुली चमकै, ऊपर से मोहिं झांकि दिखावै ।
सासु ननद घर दारुनि आहैं, नित मोहि बिरह सतावै ॥
जोगिन ह्वैके मैं बन-बन ढूँढूँ, कोऊ न सुधि बतलावै ।
धरमदास बिनवै कर जोरी, कोई नेरे कोई दूर बतावे ॥९॥

भगति-दान गुरु दीजिये देवन के देवा हो ।
चरनकँवल बिसरौं नहीं, करिहौं पदसेवा हो ॥
तिरथ बरत मैं ना करौं, ना देवल पूजा हो ।
तुमहिं ओर निरखत रहौं, मेरे और न दूजा हो ॥
आठ सिद्धि नौ निद्धि हैं बैकुण्ठ-निवासा हो ।
सो मैं ना कछु माँगहूँ, मेरे समरथ दाता हो ॥
सुख सम्पति परिवार धन, सुन्दर वर नारी हो ।
सुपनेहुं इच्छा ना उठै, गुरु आन तुम्हारी हो ॥
धरमदास की बीनती साहेब सुनि लीजै हो ।
दरसन देहु पट खोलिकै, आपन करि लीजै हो ॥१०॥

बिन दरसन भई बावरी, गुरु द्यौ दीदार ॥टेक॥

---

८. सेजरिया=सेज । किवरिया=किवाड़ । झलरिया=झालर । अनुहरिया=रूप ।
९. खन=क्षण में । दारुनि=निठुर स्वभाव की । नेरे=पास । सुधि=पता ।
१०. तिरथ=तीर्थ-यात्रा । बरत=व्रत । आन तुम्हारी=तुम्हारी सौगन्द । पट खोलिकै=परदा हटाकर ।

---

* कबीर साहब की इस साखी से मिलाइए—

लाली मेरे लाल की, जित देखूँ तित लाल ।
लाली देखन मैं गई, मैं भी हो गई लाल ॥

ठाढ़ि जोहौं तोरी बाट मैं, साहेब चलि आवौ ।
इतनी दया हम पर करौ, निज छबि दरसावौ ॥
कोठरो रतन जड़ाव की, हीरा लागे किवार ।
ताला कुंजी प्रेम की, गुरु खोलि दिखावौ ॥
बंदा भूला बंदगी, तुम बकसनहार ।
धरमदास अरजी सुनो, कर द्यो भव-पार ॥११॥

मैं तौ तोरे भजन-भरोसे अबिनासी ॥टेक॥
तीरथ बरत कछू नहिं करहूँ, वेद पढ़ौं नहिं कासी ।
जंत्र मंत्र टोटका नहिं जानौं, निसदिन फिरत उदासी ॥
यहि घटि भीतर बधिक बसत है, दिये लोभ को टाटी ।
धरमदास बिनवै कर जोरी, सतगुरु चरनन दासी ॥१२॥

अब मोहिं दरसन देहु कबीर ॥टेक॥
तुम्हरे दरस से पाप कटत हैं, निरमल होत सरीर ।
अमृत भोजन हंसा पावै, सब्द-धुनन की खीर ॥
जहं देखौं जहँ पाट पटंबर, ओढन अम्बर चीर ।
धरमदास की अरज गोसाँई, हंस लगावो तीर ॥१३॥

साहेब मोहिं दरसन दीजे हो, करुना-निधि मिहर करीजे हो ।
पपिहा के चित स्वाँति बसै, भावै नहिं जल दूजा हो ।
जैसे काग जहाज चढे, वाकों और न सूझा हो ॥
बारबार बिनती करूँ, मेरी अरज सुनीजे हो ।
भवसागर से काढिके, अपना करि लीजे हो ॥

---

११. द्यो=दो । दीदार=दर्शन । दरसावो=दिखाओ । बंदगी=सेवा । बकसनहार=माफ करनेवाले ।

१२. उदासी=विरक्त, लापर्वाह । बधिक=बहेलिया ।

१३. हंसा=ज्ञानस्वरूप मुक्त जीवात्मा । खीर=क्षीर, दूध । पाटंबर=रेशमी वस्त्र । अंबर=वस्त्र । लगावो तीर=पार उतारदो ।

१४. पपिहा=चातक । स्वाँति=स्वाति-नक्षत्र में बरसा हुआ जल । सुरत=सुध । धर्मनि=धरमदास को ।

सत्त लोक से सुरत करी, तब जग में आये हो।
जम से जीव छोड़ायके, धर्मनि मन भाये हो ॥१४॥

मिहरबान है साहेब मेरा। दिलभर दरसन पाऊँ तेरा ॥
तुम दाता मैं सदा भिखारी। देव दीदार जाउँ बलिहारी ॥
करूँ बंदगी खिजमत दीजै। बकसो चूक दया बहु कीजै ॥
सेवक तें बिगरै सौ बारा। सतगुरु साहेब लेव उबारा ॥
सेवक-औगुन साहेब जानै। साहेब मन में ना गिल्यानै ॥
धरमदास लई तुम्हरि पनाह। अगले पछिले बकस गुनाह ॥१५॥

झरि लागै महलिया, गगन घहराय ॥टेक॥
खन गरजै खन बिजुली चमकै, लहर उठै सोभा बरनि न जाय।
सुन्न महल से अमृत बरसै, प्रेम अनंद होइ साध नहाय ॥
खुलो किवरिया मिटी अँधियरिया, धन सतगुरु जिन दिया है लखाय।
धरमदास बिनवै कर जोरी, सतगुरु चरन में रहत समाय ॥१६॥

मगल

सतगुरु के उपदेस, फिरौ धन बावरी।
उठि चलो आपन देस, इहै भल दाव री ॥
हम कहि दिया है सनेस, तुम्हारे पीव का।
बिनु समुझे नहि काज, आपने जीव का ॥
जुगन जुगन हम आइ कहा समुझाइकै।
बिनु समुझे धनि परिहौ, कालमुख जाइकै ॥

---

१५. दीदार=दर्शन। खिजमत=खिदमत, सेवा। बकसो=क्षमा करो। ना गिल्यानै=घृणा नहीं होती है। पनाह=शरण।

१६. झरि.. घहराय=निर्विकल्प शून्यावस्था में अमृत की झड़ी लग रही है और अनहद नाद हो रहा है। खुली किवरिया=माया द्वारा डाला हुआ परदा हट गया। अँधियरिया=अविद्या का अंधकार।

१७. फिरो= ससारी मार्ग से लौट पड़ो। दाव=अवसर। सनेस=संदेश। काज=लाभ। जुगन...समुझाइकै=हरयुग में सतगुरु के शब्द द्वारा जगत् को चेताया

काम क्रोध मद लोभ, छाँडु सब दुंद रे ।
का सोवै दिन-रैन, बिरहिनी जागु रे ॥
भवसागर की आस, छाँडु सब फंद रे ।
फिरि चलु आपन देस, यही भल रंग रे ॥
सुन सखि पिय कै रूप, तो बरनत ना बने ।
अजर अमर तो देस, सुगंध सागर भरे ॥
फूलन सेज सँवार, पुरुष बैठ जहाँ ।
ढुरै अग्र के चंवर, हंस राजै जहाँ ॥
कोटिन भानु अंजोर, रोम एक में कहा ।
ऊगे चन्द्र अपार, भूमि सोभा जहाँ ॥
सेत बरन वह देस, सिहासन सेत है ।
सेत छत्र सिर धरे, अभय पद देत है ॥
करो अजपा कै जाप, प्रेम उर लाइये ।
मिलो सखो सत पीव, तो मंगल गाइये ॥
जुगन जुगन अहिवात, अखंड सो राज है ।
पिय मिले प्रेमानंद, तो हंस-समाज है ॥
कहैं कबीर पुकार, सुनो धरमदास हो ।
हंस चले सतलोक, पुरुष के पास हो ॥१७॥
सतगुरु सरन में आइ, तो तामस त्यागिये ।
ऊँच नीच कहि जाय, तो उठि नहिं लागिये ॥
उठि बोलैं रारै रार, सो जानो वींच है ।
जेहि घट उपजै क्रोध, अधम अरु नीच है ॥

है । धन=सखी, जीवात्मा से आशय है । अजर=जो जीर्ण न हो, नित्य एकरस । पुरुष=परमपुरुष परमात्मा । अग्र के=आगे से । हंस=मुक्त जीवात्माएँ । अजोर=प्रकाश । ऊगे=उदित हुए । सेत बरन=शुभ्र, निर्मल । अजपा=जो जप वाणी से न होकर हर सांस में सुरत से होता रहता है । अहिवात=सोहाग ।

१८ तामस=क्रोध । ऊँच-नीच=भला-बुरा । नहिं लागिये=मुहँ न लगे, प्रत्युत्तर न

माला वाके हाथ, कतरनी काँख में।
सूझै नाहीं आगि, दबी है राख में।।
अंमृत वाके पास, रुचै नहिं राँड को।
स्वान को यही सुभाव, गहे निज हाड़ को।।
का भे बात बनाये, परचै नहिं पीव सों।
अंतर की बद्फैल, होइ का जीव सों।।
कहैं कबीर पुकारि, सुनो धरम आगरा।
बहुत हंस लै साथ, उतरो भवसागरा।।१८।।

सूतल रहलौं मैं सखियाँ, तो विष कर आगर हो।
सतगुरु दिहलै जगाइ, पायौ सुखसागर हो।।
जब रहली जननी के ओदर, परन सम्हारल हो।
जबलौं तन में प्रान, न तोहि बिसराइब हो।।
एक बुंद से साहेब, मंदिल बनावल हो।
बिना नेंव के मंदिल, बहु कल लागल हो।।
इहवाँ गाँव न ठांव, नहीं पुर पाटन हो।
नाहिन बाट बटोहीं, नहीं हित आपन हो।।
सेमर है संसार, भुवा उधराइल हो।
सुन्दर भक्ति अनूप, चले पछिताइल हो।।
नदी बहे अगम अपार, पार कस पाइब हो।
सतगुरु बैठे मुख मोरि, काहि गोहराइब हो।।

दे। रारै रार=लताई ही लड़ाई से पैदा होता है। घीच=झगड़ा बढ़ानेवाला। काँख=बगल। राँड को=अभागा। परचै=परिचय, पहचान। बद्फैल=कुकर्मी। आगरा=आगर, खान।

१९. विषकर आगर=गाफिल पड़े रहना। विष की खान; या प्रियतम के प्रति अचेत रहना मरण था। दिहलै जगाइ=चेता दिया। ओदर=उदर, गर्भ। परन=प्रण, प्रतिज्ञा। सम्हारल=ध्यान रखा। बिसराइब=भूलूंगा। मदिल=मंदिर; शरीर से तात्पर्य है। बूंद से=वीर्य-विन्दु से। नेंव=नींव, बुनियाद। पाटन=नगर। हित=हितू, प्रिय। उधराइल=उधेड़कर उड़ गया। गोहराइब=पुका-

सत्तनाम गुन गाइब, सत ना डोलाइब हो।
कहैं कबीर धरमदास, अमर घर पाइब हो ॥१९॥

धनुष-बान लिये ठाढ, जोगिनि एक माया हो।
छिनहिं में करत बिगार, तनिक नहिं दाया हो॥
झिरि-झिरि बहै बयार, प्रेम-रस डोलै हो।
चढ़ि नौरंगिया को डार, कोइलिया बोलै हो॥
पिया पिया करत पुकार, पिया नहिं आया हो।
पिय बिन सून मंदिलवा, बोलन लागे कागा हो॥
कागा हो तुम का रे, कियो बटवारा हो।
पिया-मिलन की आस, बहुरि ना छूटहि हो॥
कहैं कबीर धरमदास, गुरू संग चेला हो।
हिलिमिलि करो सतसंग, उतरि चलो पारा हो ॥२०॥

सोहर

कहँवाँ से जीव आइल, कहँवाँ समाइल हो।
कहँवाँ कइल मुकाम, कहाँ लपटाइल हो॥
निरगुन से जिव आइल, सगुन समाइल हो।
कायागढ कइल मुकाम, माया लपटाइल हो॥
एक बुंद से काया-महल उठावल हो।
बुंद पर गलि जाय, पाछे पछितावल हो॥
हंस कहै, भाई सरवर, हम उड़ि जाइब हो।
मोर तोर एतन दिदार, बहुरि नहिं पाइब हो॥
इहवाँ कोइ नहिं आपन, केहि संग बोलै हो॥
बिच तरवर मैदान, अकेला हंस डोलै हो॥

रूँगा। सत ना डोलाइब हो=सत्य पर से न डिगूँगा।

२०. बिगार=विनाश। मदिलवा=मन्दिर। बटवारा=बेठिकाने।

२१. सगुन=सगुण, त्रिगुणात्मिका प्रकृति। उठावल=बनाया। सरवर=सरोवर, तालाब, यहाँ देह से आशय है। हंस=यहाँ जीव से आशय है। दिदार=

लख चौरासी भरनि, मनुष-तन पाइल हो।
मानुष-जनम अमोल, अपन सों खोइल हो॥
साहेब कबीर सोहर सुगावल, गाइ सुनावल हो।
सुनहु हो धर्मदास, एही चित चेतहु हो॥२१॥

सत्तनामै जपु, जग लड़ने दे॥
यह संसार काँट की बारी, अरुझि-अरुझिके मरने दे।
हाथी चाल चलै मोर साहेब, कुतिया भुंकै तौ भुंकने दे॥
यह संसार भादों की नदिया, डूबि मरै तेहि मरने दे।
धरमदास के साहेब कबीरा, पथर पूजें तो पुजने दे॥२२॥

हमरे का करे हाँसी लोग॥
मोरा मन लागा सतगुरु से, भला होय कै खोर।
जब से सतगुरु-ग्यान भयो है, चलै न केहुके जोर॥
मात रिसाई पिता रिसाई, रिसाये बटोहिया लोग।
ग्यान-खडग तिरगुन को मारूँ, पाँच पचीसो चोर॥
अब तो मोहि ऐसी बनि आवे, सतगुरु रचा संजोग।
आवत साध बहुत सुख लागै, जात बियापै रोग॥
धरमदास बिनवै कर जोरी, सुनु हो बंदी-छोर।
जाको पद त्रयलोक से न्यारा, सो साहेब कस होय॥२३॥

साहेब येहि बिधि ना मिलै, चित चंचल भाई॥
माला तिलक उरमाइके, नाचै अरु गावै।
अपना मरम जानै नहीं, औरन समुझावै॥

दीदार, दर्शन, मिलन। तरवर=वृक्ष। अपन सो खोइल=अपने हाथों गँवा दिया। सोहर=बालक के जन्म लेने पर जो गीत स्त्रियाँ गाती है उसे 'सोहर' कहते हैं।

२२. बारी=बाड़ी। भादों की नदिया=वर्षा की तेज धारवाली नदी; तृष्णा से आशय है। पथर पूजै=मूर्ति-पूजा करता है।

२३. खोर=बुरा, बिगाड। रिसाई=नाराज होने हे। तिरगुन=तीनों गुण—सत्त्व, रज और तम। जात बियापै रोग=बिछुडने पर दुःख होता है। बंदी-छोर=संसार-बंधन से छुडानेवाले। कस होय=कैसा होगा।

देखे को बक ऊजला, मन मैला भाई।
आँखि मूँदि मौनी भया, मछरी धरि खाई ॥
कपट-कतरनी पेट में मुख बचन उचारी।
अंतरगति साहेब लखै, उन कहा छिपाई ॥
आदि अंत को बार्ता, सतगुरु से पावो।
कहै कबीर धरमदास-से मूरख समझावो ॥२४॥

गाँठ परी पिया बोलै न हमसे ॥
माल मुलुक कछु संग न जैहै, नाहक बैर कियो है जग से ॥
जो मैं जनितिउँ पिया रिसियैहै, नाहक प्रीति लगाती न जग से ॥
निसुवासर पिया संग में सूतिउँ, नैन अलसानी निकरि गये घर से ॥
जस पनिहार धरे सिर गागर, सुरति न टरै बतरावत सब से ॥
धरमदास बिनवै कर जोरी, साहेब कबीर को पावै भाग से ॥२५॥

मेरे मन बसि गये साहेब कबीर ॥
हिन्दू के तुम गुरू कहावो, मुसलमान के पीर।
दोऊ दीन ने झगड़ा मांडेव, पायो नहीं सरीर ॥
सील संतोष दया के सागर, प्रेम प्रतीत मति-धीर।
बेद कितेब मते के आगर, दोऊ दीनन के पीर ॥
बडे-बडे संतन हितकारी, अजरा अमर सरीर।
धरमदास की बिनय गुसाँई, नाव लगावो तीर ॥२६॥

मुक्ति-लीला

हीरा जन्म न बारम्बार, समुझि मन चेत हो ॥
जैसे कीट पतंग पषान, भये पसु पच्छी।

---

२४. उरमाइके=लटकाकर, पहनकर। मरम=भेद; संसार से तरने का उपाय। बक=बगला। आदि अन्त=जन्म और मरण।

२५. रिसियैहै=रूठ जायगा। सूतिउँ=सोई, साथ रही। नैन अलसानी=जरा-सी असावधानी होने पर। बतरावत=बातचीत करता है। सुरति=ध्यान।

२६. माडेव=मचाया। कितेब=किताब, कुरान से तात्पर्य है। दीनन के=धर्मों के। पीर=धर्मगुरु। अजरा=अजर, जो कभी वृद्ध न हो।

जल तरंग जल माहिं रहे कच्छा औ मच्छी ॥
अंग उघारे रहे सदा, कबहुँ न पावै सुक्ख ।
सत्य नाम जाने बिना, जन्म जन्म बड़ दुक्ख ॥१॥
सीतल पासा ढारि, दाव खेलौ संग्हारी ।
जीतौ पक्की सार, आव जनि जैहौ हारी ॥
रामै राम पुकारिके, लीन्हो नरक निवास ।
मूँड़ गड़ाय रहे जिव, गर्भ माहिं दस मास ॥२॥
नहिं जाने केहि पुन्य, प्रगट भे मानुष-देही ।
मन बच कर्म सुभाव, नाम सों करले नेही ॥
लख चौरासी भर्मिके, पायो मानुष-देह ।
सो मिथ्या कस खोवते, झूठी प्रीति-सनेह ॥३॥
बालक बुद्धि अजान, कछू मन में नहिं आने ।
खेलै सहज सुभाव, जहीं आपन मन माने ॥
अधर कलोले होइ रह्यो, ना काहू का मान ।
भली बुरी ना चित धरै, बारह बरस समान ॥४॥
जोवन रूप अनूप, मसी ऊपर मुख छाई ।
अंग सुगंध लगाय, सीस पगिया लटकाई ॥
अंध भयो सूझै नहीं, फूटि गई हैं चार ।
झटकै पड़ै पतंग ज्यों, देखि बिरानी नार ॥५॥
जोवन जोर झकोर, नदी उर अंतर बाढ़ी ।
संतो हो हुसियार, कियो ना बांहू गाढी ॥

मुक्ति-लीला

(१) कच्छा=कच्छप, कछुवा । (२) सीतल पासा=शील-संतोष से तात्पर्य है । दाव=दाँव=बाजी; जुआ खेलने का पासा, चौसर । आव=आयु । मूँड़ गड़ाइ=नीचे की ओर सिर किये हुए । (३) स्नेही,=स्नेह, प्रेम । मिथ्या=व्यर्थ ।

५. मसी ऊपर मुख छाई=मसि भीग गई, रेख आगई । चार=चारो आँखें, दो चर्मचक्षु और दो ज्ञानचक्षु । बिरानी नार=पराई स्त्री ।

६. दसो दुवार=दसो इन्द्रियाँ–पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, और पाँच कर्मेन्द्रियाँ । मूँदो=

दे गजगीरी प्रेम की, मूँदो दसो दुवार।
वा साँई के मिलन में, तुम जनि लाओ बार ॥६॥
वृद्ध भये पछिताय, जबै तीनों पन हारे।
भई पुरानी प्रीति बोल, अब लागत प्यारे॥
लचपच दुनियां ह्वै रही, केस भये सब सेत।
बोलत बोल न आवई, लूटि लिये जम खेत ॥७॥
माया रंग कुसुम्म महा देखन को नीको।
मीठो दिन दुइ चार, अंत लागत है फीको॥
कोटिन जतन रह्यो नहीं, एक अंग निज मूल।
ज्यों पतंग उड़ि जायगो, ज्यों माया काफूर ॥८॥
नाम क रंग मंजीठ, लगै छूटै नहिं भाई।
लचपच रहो समाय, सार ता में अधिकाई॥
केती बार धुलाइये, देदे करड़ा धोय।
ज्यों-ज्यों भट्ठी पर दिये, त्यों-त्यों उज्जल होय ॥९॥
सोवत हौ केहि नींद, मूढ मूरख अग्यानी।
भोर भये परभात, अबहिं तुम करो पयानी।
अब हम साँची कहत हैं, उड़ियो पंख पसार।
छुटि जैहौ या दुक्ख तें, तन-सरवर के पार ॥१०॥
नाम झाँझरी साजि, बाँधि बैठौ बैपारी।
बोझ लद्यो पाषान, मोहिं डर लागै भारी॥
मांझ धार भव तखत में, आइ परैगी भीर।
एक नाम केवटिया करिले, सोई लावै तीर ॥११॥

विषयों की ओर न जाने दो। बार=देरी।

७. लचपच=मग्न, लीन।

८. एक अंग=एक-सा। निजमूल=अपना असली रंग। काफूर=कपूर।

९. मजीठ=पक्का लाल रंग। लचपच रहौ समाय=घुलमिल जाओ।

१०. पयानी=प्रयाण, कूच।

११. तखत=यहाँ नाव से तात्पर्य है। तीर=किनारा, पार।

सौ भइया की बांह, तपै दुर्जोधन राना।
परे नरायन बीच, भूमि देते गरबाना॥
जुद्ध रच्यो कुरुछेत्र में, बानन बरसे मेह।
तिनहीं के अभिमान तें, गिधहुँ न खायो देह॥१२॥
जोधा आगे उलट-पुलट, यह पुहमी करते।
बस नहिं रहते सोय, छिने इक में बल रहते॥
सौ जोजन मरजाद सिंध के, करते एकै फाल।
हाथन पर्बत तौलते, तिन धरि खायो काल॥१३॥
ऐसा यह ससार, रहँट की जैसी घरियाँ।
इक रीती फिरि जाय, एक आवै फिरि भरियाँ॥
उपजि-उपजि बिनसत करैं, फिरि फिरि जमे-गिरास।
यहो तमासा देखिके, मनुवा भयो उदास॥१४॥
जैसे कलपि-कलपिके, भये है गुड़ की माखी।
चाखन लागी बैठि, लपट गइ दोनों पांखी॥
पंख लपेटे सिर धुनै, मनहीं मन पछिताय।
वह मलयागिरि छाँड़िके, इहाँ कौन बिधि आय॥१५॥
खेत बिरानो देखि, मृगा एक बन को रीझेव।
नितप्रति चुनि चुनि खाय, बान में इक दिन बीधेव॥
उचकन चाहै बल करै, मनहीं मन पछिताय।
अब सो उचकि न पाइहौं, धनी पहूँचो आय॥१६॥

---

१२. तपै=अत्याचार से शासन किया। परे नरायन बीच=श्रीकृष्ण दूत होकर गये, और समझाया। गरबाना=अभिमान किया। गिधहुं=गीधों ने भी।

१३. पुहमी=पृथिवी। फाल=फलाँग।

१४. घरियाँ=घड़ियाँ। रीती=खाली, बिना पानी के। जमे-गिरास=मृत्यु का ग्रास, काल के मुहँ में जाना।

१६. उचकन चाहै=कूदना चाहता है। बल करे=ज़ोर लगाता है। धनी=खेतवाला; काल से आशय है।

गुरु-बानी

"आदि ग्रन्थ" या "गुरु ग्रन्थ साहिब" मे ६ सिक्ख गुरुओं की बानी सगृहीत है। पाँचवे गुरु अर्जुनदेव ने आदिगुरु बाबा नानकदेव की बानी से लेकर अपनी निज की बानीतक को सग्रह कराके भाई गुरुदास के द्वारा गुरुमुखी लिपि मे लिखवाया था। इस महान् सग्रह को "आदि ग्रन्थ" अथवा "गुरु ग्रन्थ साहिब" नाम दिया गया। आदि ग्रन्थ का सकलन भादो सुदी १ सवत् १६६१ को सपूर्ण हुआ। कहते है कि कुछ कोरे पन्ने उन्होने इस विश्वास से छोडवा दिये थे कि नवे गुरु की जो रचनाएँ होगी उनको उन पन्नो पर विभिन्न रागों के अनुसार भविष्य मे लिखा जायगा।

गुरु नानक के पश्चात् जिन परवर्ती गुरुओ ने समय-समय पर रचनाएँ की उनके अत मे अति नम्र भावना से प्रेरित होकर अपने नाम न देकर 'नानक' ही सबने नाम दिया है। यह कठिनाई देखकर कि लोग आखिर कैसे पहचानेगे कि कौन रचना किस गुरु की है, गुरु अर्जुनदेव ने उस-उस रचना के ऊपर 'महला १' 'महला २' 'महला ३' आदि संकेत लिखा दिये, जिनका अर्थ यह हुआ कि 'महला १' की बानी गुरु नानकदेव की है, 'महला २' की बानी गुरु अगद की है, 'महला ३' की बानी गुरु अमरदास की है, 'महला ४' की बानी गुरु रामदास की है, 'महला ५' की बानी गुरु अर्जुन की है और 'महला ६' की बानी गुरु तेगबहादुर की है। छठे, सातवे और आठवे गुरु ने कोई रचना नहीं की। 'महला' या महल्ला आदिग्रन्थरूपी नगर के मानो भिन्न-भिन्न भाग है

इन सब बानियों को गुरुओं के क्रमानुसार न देकर गुरु ग्रन्थ साहिब मे निम्नलिखित ३१ रागो के अनुसार सकलित किया गया है—

सिरी (श्री), गउडी, आसा, गूजरी, देव गंधारी, बिहागडा, वड़हंस, सोरठि, धनासरी, टोडी, बैराड़ी, तिलंग, सूही, बिलावलु, गौड, रामकली, नट-नाराइन, गउड़ा, मारू, तुखारी, केदारा, भैरउ, बसंत, सारंग, मलार,

कानड़ा, कलिग्रान, प्रभाती ग्रौर जैजावंती ।

किन्तु बाबा नानक-रचित जपुजी, सो दरु, सुणि वड्डा ग्रौर सोहिला इनको रागो मे नही बाँधा गया है ।

इन छह गुरुग्रो की बानी के ग्रलावा कबीर, नामदेव रविदास, त्रिलोचन, शेख फरीद ग्रादि कुछ भगतो की भी बानियाँ प्रत्येक राग के ग्रन्त मे सगृहीत है ।

गुरु नानक, गुरु ग्रगद ग्रौर गुरु ग्रमरदास की रचनाएँ प्रायः पजाबी भाषा-बहुल है । गुरु रामदास की रचनाग्रो की भाषा कुछ पजाबी ग्रौर बहुत-कुछ हिन्दी है । गुरु ग्रर्जुन की भाषा मे ग्रपेक्षाकृत हिन्दी के ग्रधिक शब्दो का प्रयोग हुग्रा है । नवे गुरु तेगबहादुर की सारी रचनाएँ शुद्ध हिन्दी मे है । गुरु नानक के नाम से ग्राज हिन्दी-पद-सग्रहो में जितने भी पद मिलते है, उनमे से ग्रधिकाश नवे गुरु तेगबहादुर के रचे हुए है ।

दसवे गुरु श्री गोविद राय (सिह) के भी नाम का एक 'ग्रथ' है, जिसे उनकी मृत्यु के पश्चात् भाई मानीसिह ने सकलित किया था । इसमे गुरु गोविदसिह की इन रचनाग्रो को सगृहीत किया गया है— जापजी, ग्रकाल उसतत, वचित्तर नाटक, देवी माहात्म्य, ज्ञान परबोध, त्रिया चरित्तर ग्रौर जफर नामा ।

प्रस्तुत ग्रंथ मे हमने केवल गुरु ग्रथ साहिब मे से ही उक्त छहों गुरुग्रो की बानियो से पदो व सलोकों का सकलन किया है ।

गुरु नानकदेव का 'जपुजी' सबसे ग्रधिक प्रसिद्ध है ग्रौर यह बड़ी उत्कृष्ट रचना है । इन का 'सो दरु' पद ग्रौर 'सोहिला' भी बड़े भक्ति-भाव से गाये जाते है ।

गुरु ग्रंगद की रची केवल 'वारें है, जो ग्रासा, माझ, सोरठि, सूही, रामकली, सारग ग्रादि कई रागो मे पाई जाती है ।

गुरु ग्रमरदास की 'ग्रानन्दु' नामक रचना बड़ी मनोहारिणी ग्रौर ग्राह्लाद-कारिणी है । उत्सवों पर 'ग्रानन्दु' बड़े चाव से गाया

जाता है।

गुरु रामदास के भी अनेक भावपूर्ण, पद, वारें और छंत है। 'सो पुरखु' पद इनका बहुत प्रसिद्ध है।

गुरु अर्जुन की 'सुखमनी' तो लाखो के कठ की मणिमाला बनी हुई है। बडी ऊँची रचना है। इसके अतिरिक्त, गुरु अर्जुन के रचे हजारों भक्ति-भावपूर्ण पद है।

गुरु तेगबहादुर के पदो और सलोकों मे ससार की अनित्यता एव वैराग्य की तीव्र अभिव्यंजना हुई है। बडे भाव से सिक्ख इन सलोको का पाठ मृतक-सस्कार के अवसर पर करते है।

'जपुजी' का पाठ प्रातःकाल किया जाता है। इसके बाद प्रायः 'आसा दी वार' को कहते है।

सध्या समय 'रहिरास' के पद गाये जाते है, और 'कीर्तन सोहिला' का पाठ रात को सोते समय किया जाता है।

●

गुरु नानकदेव

चोला-परिचय

जन्म सवत्—१५२६ वि०, वैशाख शु० ३

जन्म-स्थान—तलबडी गॉव

जाति—खत्री

पिता—कालूचद

माता—तृप्ता

भेष—गृहस्थ

निर्वाण-संवत्—१५९५ वि०, आश्विन शु० १०

निर्वाण-स्थान—करतारपुर

नानकदेव का जन्म-स्थान तलबंडी गाँव लाहौर के दक्षिण-पश्चिम

लगभग ३० मील दूर है। यह स्थान आजकल नानकाना साहब के नाम से प्रसिद्ध है। सिक्खो का यह बहुत बडा तीर्थ-स्थान माना जाता है।

नानकदेव के पिता कालूचद तलबडी के पटवारी थे और खेती-बाडी भी करते थे।

गुरु नानक बचपन से ही बड़े प्रतिभावान् और शांतस्वभाव के व्यक्ति थे। पिताने इन्हे पजाबी, हिदी, सस्कृत और फारसी की शिक्षा दिलाई, और इन्होने विद्याभ्यास मे असामान्य योग्यता का परिचय दिया। किंतु इनके चित्त का झुकाव तो एकान्त-सेवन, सत्संग और ईश्वर-चितन की ओर ही सदा रहता था।

पिताने इन्हे विवाह-बधन मे बाँध दिया। पत्नी का नाम सुलक्खनी था। वह ज्यादातर मायके मे रहती थी। कालातर मे इन्हे दो पुत्र हुए—श्रीचद और लक्ष्मीचद। श्रीचंद ने सन्यास लेकर सुप्रसिद्ध 'उदासी सप्रदाय' चलाया।

कालूचदने अपने पुत्र नानक को एक मोदी के यहाँ नौकरी मे लगाया, पर उसने इनकी लापर्वाही देखकर इन्हे नौकरी से अलग कर दिया। कहते है कि एक दिन वह आटा तोल रहे थे। जब तोलते-तोलते 'तेरह' पर आये तो वह 'तेरा-तेरा' ही करते रह गये, और न जाने कितने सेर आटा ग्राहक को तोलकर दे दिया।

तब खेती-बाडी मे लगाया, पर वहाँ भी मन नही लगा। पिता को उलटे सच्ची खेती करने का उपदेश करने लगे—

"इहु तनु धरती बीजु करमा करो,
सलिल आपाउ सारगपाणी।
मनु किरसाणु हरि रिदै जम्माइ लै,
इउ पावसि पदु निरबाणी॥—(रागु सिरी)

फिर कुछ बनिज-व्यापार करने के लिए पिताने कहा, जिसका उत्तर यह दिया गया—

"वणजु करहु वणजारि हो, वक्खरु लेहु समालि।
तैसी वसतु विसाहिए, जैसी निबहै नालि॥
अग्गै साहु सुजाणु है, लैसी वसतु समालि॥ —(रागु सिरी)

और कहा—"खोटे वणजि वणंजिए मनु तनु खोटा होइ।" खोटे बनिज-व्यापार पर उनका चित्त नही डोला; वे तो राम-नाम के सच्चे व्यापारी बन चुके थे। पुत्र की यह ऊँचे घाट की वैराग्य-वृत्ति देखकर पिता कालू हैरान थे।

नानकदेव घर से निकल पड़े। देश-विदेश मे भ्रमण करने लगे। साथ मे इनका एक पक्का साथी रवाब बाजे पर भजन गानेवाला हो लिया, जिसका नाम मर्दाना था। इनकी यात्रा के कई सुन्दर प्रसंग प्रसिद्ध है।

सैयदपुर मे, जिसे आजकल अमीनाबाद कहते है, ये दोनों गुरु नानक और मर्दाना लालो नामक एक बढ़ई के घर पर ठहरे। एक शूद्र के घर की रोटी खाते हुए देखकर वहाँ के ब्राह्मण-खत्रियो मे हलचल मच गई। पर गुरु नानक ने उस श्रमजीवी बढई की रोठी को ही श्रेष्ठ ठहराया, और कहा कि, "इस गरीब की रोटी म दूध-ही-दूध है, क्योकि यह इसके पसीने की कमाई की रोटी है। तुम्हारे ज़मीदार मालिक भागो की रोटी में यह स्वाद और यह पवित्रता कहाँ, वह तो ज़ुल्म की कमाई की रोटी है, जो खून से सनी हुई है।"

कुरुक्षेत्र होते हुए गुरु नानक अपने साथी मर्दाना के साथ हरिद्वार पहुँचे। वहाँ देखा कि लोग अपने पितरों को तर्पण कर रहे है। नानकदेव भी वही बैठकर जल उलीचने लगे, मगर पश्चिम की तरफ। पडितों ने आपत्ति की कि तर्पण पश्चिम की तरफ नही, पूर्व की तरफ किया जाता है। गुरु नानकदेव ने इसपर जवाब दिया—"मै पछाहँ का रहनेवाला हूँ; घर पर एक हरा लहलहा खेत छोड़कर आया हूँ। उसे सींचनेवाला वहाँ कोई आदमी नही। सो मै यही से खेत को सींच रहा हूँ, जिससे वह सूख न जाये। जब तुम लोग लाखों कोस पर रहनेवाले अपने प्यासे पितरों को यहाँ से पानी पहुँचा सकते हो, तो मेरा खेत तो यहाँ से बहुत ही पास है।"

हरिद्वार से यह काशी गये। वहाँ से गया और गया से कामरूप व जगन्नाथपुरीतक पूरब के देशों में घूमते रहे। इस यात्रा में गुरु नानक

मुसलमान फकीरो या कलंदरो की जैसी टोपी पहनते थे, और माथे पर हिंदू साधुओं की तरह तिलक भी लगाते थे। गले में माला भी डाल लेते थे। हिंदू और मुसलमान दोनो की मिली-जुली विचित्र-सी वेश-भूषा रखते थे।

जब ये कामरूप से चले तब, कहते है, कलियुग इन्हे डराने व प्रलोभन देने वहाँ पहुँचा। मर्दाना बहुत भयभीत हो गया। गुरु नानक ने उसे धीरज बँधाया और कहा, 'तू कलियुग से डरता है ? अरे, किसीसे डरना ही है, तो एक ईश्वर से डरना चाहिए।' और यह शब्द कहा—

"डरि धरु घरि डरु डरि डरु जाइ।
सो डरु केहा जितु डरि डरु पाइ॥
तुधु बिनु दूजी नाही जाइ।
जो कछु बरतै सभ तेरी रजाइ॥
डरीऐ जे डरु होवै होरु।
डरि डरि डरणा मन का सोरु॥"–(रागु गउडी)

पंजाब वापस आकर ये दोनो यात्री शेख फरीद से मिलने अजोधन पहुँचे, जिसे आजकल पाकपट्टन कहते हैं। शेख फरीद इस पहुँचे हुए फकीर की उपाधि थी। असल नाम शेख ब्रह्म या इब्राहीम था। गुरु नानक और शेख फरीद ने जगल मे काफी देरतक अध्यात्म-विषय पर चर्चा की। दोनों महात्माओं ने घटो खूब घनघोर ब्रह्म-रस बरसाया। मर्दाना ने रवाब का सुर छेडा और गुरु नानक ने यह शब्द कहा—

"जप तप का बधु बेडुला जितु लघहि वहेला।
ना सरवरु ना ऊछलै, ऐसा पथु सुहेला॥
तेरा एको नामु मजीठडा रता मेरा चोला सदरग ढोला॥
साजन चले पिआरिआ किउ मेला होई।
जे गुण होवहि गंठडीऐ मेलेगा सोई॥
मिलिआ होइ न बीछुड़ै जे मिलिया होई।
आवागउणु निवारिआ है साचा सोई॥

हउमै मारि निवारिश्रा सीता है चोला।
गुर वचनी फलु पाइश्रा सह के श्रमृत बोला ॥
नानकु कहै सहेली हो सहु खरा पिश्रारा।
हम सह केरीश्रा दासीश्रा साचा खसमु हमारा ॥-(रागु सूही)

अर्थात्, जप और तप का तू बेडा बनाले, और धार को पार करजा।
न फिर झील है, न प्रवाह; ऐसा सहज पथ है वह।
प्रभो, तेरा नाम ही वह मजीठ है, जिसमे मैं अपना यह चोला रँग डालूँ। प्यारे, वही रग पक्का है।
साजन से तेरी भेट कैसे होगी फिर ?
तेरी गाँठ मे गुण होगे, तभी तो वह तुझे मिलेगा।
और तुझसे मिलकर एकाकार होकर वह फिर बिछुडेगा नही।
आवागमन से वह सच्चा स्वामी ही छुडा सकता है।
जिसने अहंकार को निकाल बाहर कर दिया, उस सखी ने अपने स्वामी को रिझाने के लिए अपना चोला सी लिया।
गुरु के उपदेश से उसे फल मिल गया अपने स्वामी के साथ अमृत-बोल बोल-बोलकर।
नानक कहता है, हे सहेलियो, वह स्वामी पूरा प्यारा है।
हम सब उसकी दासियाँ है, वह हमारा सच्चा स्वामी है।

और फिर इसी मस्ती मे शेख फरीदने कहा--

"दिलहु मुहबति जिन्ह सेई सचिश्रा।
जिन्ह मनि होरु मुखि होरु सि काढे कचिश्रा ॥
रते इसक खुदाइ रगि दीदार के।
बिसरिश्रा जिन्ह नामु ते भुइ भारु थीए ॥
आपि लीए लाड़ लाइ दर दरवेस से।
तिन्ह धनु जणेदी माउ आए सफलु से ॥
परवदगार अपार अगम बेअंत तूँ।
जिन्हा पछाता सचु चुमा पैर मू ॥

तेरी पनह खुदाइ तू बखसंदगी ।
सेख फरीदै खैरु दीजै बंदगी ।।–(रागु आसा)

अर्थात्, जिनकी दिली मुहब्बत है उस परमात्मा के लिए, वे ही सच्चे है। जिनके मन मे कुछ और है, और मुहँ मे कुछ और, उनकी गिनती कच्चों मे की जायेगी।

वे भी सच्चे है, जो खुदा के इश्क मे रँग गये है, और उसके दर्शन के प्यासे है।

जिन्होंने उसका नाम भुला दिया, वे भार है पृथिवी के।

जो उसके दर के दरवेश हो गये, उनको उस प्रियतम ने अपने दामन से बाँध लिया। धन्य है उन माताओ को, जिन्होने कि उन्हे जन्म दिया; उनका ससार मे आना सफल है।

हे पालनकर्त्ता, तू अपार है, अगम है और अनत है।

जिन्होने तुझ सच्चे स्वामी को पहचान लिया, मै उनके पैर चूमता हूँ।

अय खुदा, मै तेरी शरण चाहता हूँ, तू बख्शदे मुझे।

शेख फरीद को अपनी सेवा तू खैरात मे देदे।

शेख फरीद से गुरु नानक का इतना अधिक प्रेम हो गया था कि उनसे यह दोबारा भी मिलने गये थे।

गुरु नानक और मर्दाना ने दक्षिण भारत की भी यात्रा की थी। सिहल द्वीप भी वे पहुँचे थे। कहा जाता है कि 'प्राण-संगली' ग्रन्थ को उन्होने सिहल मे ही बैठकर रचा था।

इसी प्रकार पश्चिम की यात्रा में गुरु नानक मक्केतक गये थे। प्रसिद्ध है कि एक दिन वहाँ क़ाबे की तरफ पैर फैलाकर यह लेट गये। इस बेअदवी को देखकर जब वहाँ के मुल्ले ने डाटते हुए पूछा कि, "अल्लाह की तरफ तुम क्यों अपने पैर फैलाये हुए हो?" तब इन्होने जवाब मे उससे कहा—"अच्छा भाई, तो जिधर अल्लाह न हो उधर मेरे पैर घुमादो।" पर ऐसी कौन-सी दिशा थी, जहाँ अल्लाह का वास न हो? मुल्ला हैरान था।

गुरु नानकदेव ने इस प्रकार देश-देशान्तरों में सत्य और ईश्वर की भक्ति का प्रचार किया और मौज से हरिनाम का अनमोल रस लुटाया। हिन्दू और मुसलमान दोनो ने उनके ऊँचे व गहरे उपदेशों को प्रेम से सुना और ग्रहण किया।

अपने प्रिय शिष्य लहिणा को, जो बाद को गुरु अंगद के नाम से प्रसिद्ध हुए, अपनी गद्दी का उत्तराधिकारी बनाकर गुरु नानकदेव अंतिम समय मे एक पेड के नीचे जा बैठे और प्रभु के नाम-स्मरण में लौलीन हो गये। गुरु अंगद चरणो पर गिर पड़े। सब शिष्य और कुटुम्बी विलाप कर रहे थे। गुरु तो आनन्दमग्न थे। हुक्म किया सिक्ख-मंडली को कि 'सोहिला' गाओ। सोहिला समाप्त होने पर 'जपुजी' का जब अंतिम सलोक कहा गया, चादर ओढली, और 'वाह गुरु' कहते-कहते चोला छोड़ दिया, ब्रह्मलीन हो गये।

बानी-परिचय

'महला १' शीर्षक के जितने भी अनेक रागों मे पद 'गुरु ग्रन्थ साहब' मे संगृहीत है वे सब गुरु नानकदेव के रचे हुए है। ग्रन्थ साहब के आदि मे, जो 'जपुजी' है वह इनकी सबसे प्रसिद्ध रचना है। सिक्खों का 'जपुजी' के प्रति वही श्रद्धा-भाव है जो हिन्दुओ का गीता के प्रति, अथवा बौद्धों का 'धम्मपद' के प्रति है। 'रहिरास' तथा 'सोहिला' नामक पद-सग्रहों मे भी गुरु नानक के अनेक पद या पौड़ियाँ संकलित है। फुटकर तो सैकड़ो ही पद है। 'सोदरु' पद भी इनका बहुत प्रसिद्ध है, और इसी प्रकार 'गगन मे थाल' यह आरती भी।

किंतु 'जपुजी' का स्थान इनकी रचनाओं मे सबसे ऊँचा है। इसे हरेक सिक्ख और पंजाब और सिन्ध के अनेक हिन्दू भी कण्ठस्थ कर नित्य प्रातःकाल इसका भक्तिपूर्वक मंगल-पाठ करते है। प्रस्तुत ग्रन्थ मे 'जपुजी' को हमने पूरा उदुधृत किया है। अर्थ अधिकतर प्रोफेसर तेजासिहजी की टीका के आधार पर किया है। कही-कही पर मॅकालीफ़ महोदय के अँग्रेजी भाषान्तर से भी हमने सहायता ली है। जपुजी के

विषय मे प्रोफेसर तेजासिहजी ने नीचे जो लिखा है वह सर्वथा सही है। वस्तुत: यह बहुत ऊँची रचना है—

"जपुजी मे मनुष्य-जीवन का सबसे उच्चकोटि का ज्ञान निहित है। इसमें हमारे जीवन के वास्तविक मनोरथ और इन्हे प्राप्त करने के साधन बतलाये गये है। इसमे, मन को ऐसे साँचे मे ढालने और उसके ऊपर ऐसी अवस्था लाने का ढग बतलाया है कि जो भी धार्मिक उलझनें आ पडे उन्हे हम सुगमता से सुलझा सके।"

जपुजी की रचना सूत्रात्मक-सी है। गुरु नानक ने इसमे बहुत ही थोड़े शब्दो मे ऊँचे-से-ऊँचे भावो को व्यवत किया है। प्रो० तेजासिह के शब्दो मे "बडे विस्तारवाले विचारों को ऐसा कसकर लिखा है कि मानो कूजे मे दरिया बद कर दिया है। पंजाबी भाषा से इतना कठिन काम पहले कभी नही लिया गया था, और न अबतक ही किसीने लिया है।"

दूसरे अनेक शब्द भी बडे ऊँचे और गहरे भावो से भरे हुए है। अध्यात्म के विविध अंगो का विशद निरूपण चोट करनेवाली भाषा व शैली मे किया गया है। प्रेम और विरह का वर्णन कही-कही बडा ही अनूठा मिलता है। नम्रता तो गुरु नानक की प्रसिद्ध ही है। उत्तरी भारत के संत-साहित्य मे 'गुरु-बानी' का और उसमे भी गुरु नानकदेव की बानी का एक विशिष्ट स्थान है। अनमोल निधि है हमारी यह। हमे यह पछताव है कि 'गुरुग्रन्थ साहब' मे से गुरु नानक के जपुजी को छोडकर, बहुत थोडे पद और सलोक स्थान-संकीर्णता के कारण हम ले सके। हैरानी होती है कि इस गुरु-महोदधि मे से किस रत्न को उठाले और किसे छोडदे।

आधार

१. श्री गुरु ग्रन्थ साहिब—सर्व हिंद सिक्ख मिशन, अमृतसर
२. दि सिक्ख रिलिजन (भाग १) मॅकालीफ़—ऑक्सफोर्ड
३. श्री जपुजी साहिब (सटीक)—टीकाकार प्रो० तेजासिह, स्थानिक कमेटी, श्री दरबार साहिब, अमृतसर

जपुजी

१ ॐकार सति नामु करता पुरखु निरभउ
निरवैरु अकाल मूरति अजूनी सैभं गुर प्रसादि ॥ †
आदि सचु जुगादि सचु है भी सचु नानक होसी भी सचु ॥ ‡
सोचै सोचि न होवई जे सोची लखवार ॥
चुप्पै चुप्प न होवई जे लाइ रहा लिवतार ॥
भुखिआ भुख न उत्तरी जे बंना पुरीआ भार ॥
सहस सिआणपा लख होहि त इक न चल्ले नालि ॥
किव सचिआरा होइऐ किव कूड़ै तुट्टै पालि ।
हुकमि रजाई चल्लणा नानक लिखिआ नालि ॥१॥

---

† उस गुरु की कृपा से, जो एक ही है, जिसका नाम सत्य है अर्थात् जो सदा एकरस रहता है, जो सब का सृष्टा है, जो समर्थ पुरुष है, जिसे किसीका भी भय नहीं, न किसीसे जिसका वैर है, जिसका अस्तित्व काल की पहुंच से परे है, जिसका जन्म नहीं है, जो स्वयंभू है ।

यह सिक्ख धर्म का मूल मंत्र है ।

‡ सब से पहले, जबकि और कुछ भी अस्तित्व में नहीं था, केवल सत्यरूप परमात्मा था । जबकि युगों का विभाग होने लगा, तब भी वह सत्य ही था । अबभी सत्य है । नानक आगे भी वह सत्य ही रहेगा ।

१. चिंतन करने से (सत्य) समझ में नहीं आ जाता, भले ही लाखों बार फिर-फिर उसका मैं चिन्तन करता रहूं ।

चुप या मौन रहने से भी मन में एक-न-एक प्रश्न का उठना रुकता नहीं, चाहे मैं कितने ही एकाग्र चित्त से ध्यान करूं ।

भूखा रहने से उसके मिलन की भूख शान्त होने की नहीं, भले ही मैं सारे संसार को अपने काबू में करलूं ।

लाखो सयानपन हों, उस सत्यतक एक भी नहीं पहुंचता, तो फिर हम सत्यमय हो तो कैसे ? और हमारे उसके बीच में जो दीवार खड़ी है वह कैसे टूटे ? परदा कैसे हटे ? (एक हो उपाय है) उस आदेश देनेवाले परमेश्वर के आदेश पर चलना, उसकी आज्ञा के अनुसार आचरण करना । और वह आज्ञा हमारे साथ ही लिखी हुई है ।

हुकमी होवनि आकार, हुकमु न कहिआ जाई ॥
हुकमी होवनि जीअ, हुकमि मिलै वडिआई ॥
हुकमी उत्तमु नीचु हुकमि लिखि दुख सुख पाईअहि ॥
इकना हुकमी बखसीस इकि हुकमी सदा भवाईअहि ॥
हुकमै अन्दरि सभु को बाहरि हुकम न कोइ ॥
नानक हुकमै जे बुझै त हउमै कहै न कोइ ॥२॥
गावै को ताणु होवै किसै ताणु । गावै को दाति जाणै नीसाणु ॥
गावै को गुण वडिआईआ चार । गावै को विदिआ विखमु वीचारु ॥
गावै को साजि करे तनु खेह । गावै को जीअ लै फिरि देह ॥
गावै को जापै दिसै दूरि । गावै को वेखै हादरा हदूरि ॥

---

२. उस आज्ञा से सृष्टि के सारे आकार बनते हैं। उस आज्ञा को कहा नहीं जा सकता—अनिर्वचनीय है वह।

उसी आज्ञा से जीवों का सृजन होता है, और उसीसे जीवों को मनुष्य की ऊँची श्रेणी प्राप्त होती है।

उसीसे मनुष्य उत्तम गति पाता है, और उसीसे नीच गति, वह आज्ञा जैसे कर्मों को लिख देती है वैसे ही दुःख और सुख सब पाते हैं।

उस आज्ञा से किसीको मुक्ति का दान मिल जाता है, तो कितने ही अनेक योनियों में चक्कर काटते रहते हैं।

सभी उसकी आज्ञा के अन्दर हैं; कोई भी उसकी आज्ञा के बाहर नहीं।

नानक कहते हैं—इस आज्ञा को यदि कोई अच्छी तरह समझले, तो फिर वह कभी यह नहीं कहेगा कि यह या वह मैंने किया है।

अर्थात्, 'अहभाव' का उसमें लेश भी नहीं रहेगा।

३. कोई उसकी शक्ति को गाता है, उसका बखान करता है, जिसे कि उससे शक्ति मिली है;

कोई उसकी दी हुई वस्तुओं को गाता है उसके चिह्न समझकर;

कोई उसके गुणों और उसकी सुन्दर-सुन्दर महिमाओं को गाता है; और कोई कठिन-कठिन विद्याओं के द्वारा उसका गान करता है;

कोई यह समझकर उसका गान करते हैं कि वह देह को बनाकर फिर उसे मिट्टी कर देता है, और कोई-कोई यह समझकर कि वह जीव लेकर फिर दे देता है।

कथना कथी न आवै तोटि । कथि कथि कथी कोटी कोटि कोटि ॥
देदा दे लैदे थकि पाहि । जुगा जुगंतरि खाही खाहि ॥
हुकमी हुकमु चलाए राहु । नानक विगसै बेपरवाहु ॥३॥

साचा साहिबु साचु नाइ भाखिआ भाउ अपारु ॥
आखहि मंगहि देहि देहि दाति करे दातारु ॥
फेरि कि अगै रखीए जितु दिसै दरबारु ॥
मुहौ कि बोलणु बोलीए जितु सुणि धरे पिआरु ॥
अमृत वेला सचु नाउ वडिआई वीचारु ॥
करमी आवै कपड़ा नदरी मोखु दुआरु ॥
नानक एवै जाणीऐ सभु आपे सचिआरु ॥४॥

कोई गाता है कि वह परमात्मा बहुत दूर, परे से परे, प्रतीत होता है; और कोई उसे अपने सामने, बिल्कुल निकट, देखकर गाता है ।

करोडो ने कहा, कहा और फिर कहा, पर उसकी कथनी—उसकी गुण गाथा—कभी समाप्त नहीं हुई ।

वह ऐसा दाता है कि दिये ही जाता है, पर लेनेवाला ही लेते-लेते थक जाता है । युगो-युगो से उसका दिया सब खाते ही आये है ।

आज्ञा देनेवाले की आज्ञा वह सबकुछ चला रही है । नानक कहते है—वह लापरवाह हमेशा खुद आनन्दमग्न रहता है ।

४. वह स्वामी 'सत्य' है, उसका नाम भी सत्य है । और उसका बखान करने के भाव या ढग अनगिनती है ।

लोग निवेदन करते है और मागते है कि, 'स्वामी, तू हमे देदे ।' और उन्हें वह दाता देता है ।

फिर क्या उसके आगे रखे कि जिससे उसका (मेहर का) दरबार दीख पडे ? और इस मुख से हम क्या बोल बोले कि जिन्हे सुनकर वह स्वामी हमसे प्रेम करे ?

अमृत-वेला में—मगलमय प्रभात-काल मे, उसके सत्य नाम का, और उसकी महिमा का विचार करो, स्मरण करो ।

कर्मो के अनुसार चोला तो बदल लिया जाता है; किन्तु मोक्ष का द्वार उसकी दया से ही खुलता है ।

नानक कहते है—यो जानो तुम कि वह सत्यरूप प्रभु आपही सब कुछ है ।

थापिआ न जाइ कीता न होइ । आपे आपि निरंजनु सोइ ॥
जिनि सेविआ तिनि पाइआ मानु । नानक गाविऐ गुणी निधानु ॥
गाविऐ सुणिऐ मनि रखी भाउ । दुख परहरि सुखु घरि लै जाउ ॥
गुरमुखि नादं गुरमुखि वेदं । गुरमुखि रहिआ समाई ॥
गुरु ईसरु गोरखु बरमा गुरु पारबती माई ॥
जे हउ जाणा आखा नाही कहणा कथनु न जाई ॥
गुरा इक देहि बुझाई ॥
सभना जीआ का इकु दाता सो मैं विसरि न जाई ॥५॥
तीरथि नावा जे तिसु भावा विणु भाणे कि नाइ करी ॥
जेती सिरठि उपाई वेखा विणु करमा कि मिलै लई ॥

---

५. न वह किसीके द्वारा स्थापित होता है, और न बनाया जाता है। वह तो स्वय ही है, और निरंजन है—माया से परे है।

जिसने उसकी सेवा की है उसे मान-प्रतिष्ठा मिली है। सो हे नानक, उसी गुण-निधान का गुण-गान किया जाये।

उसके गुण गाने और सुनने चाहिएँ, और भावपूर्वक अपने मन में रखने चाहिएँ।

वह प्रभु हमे दुखो से छुडाकर अपने सुखधाम में ले जायगा।

गुरु की वाणी ही नाद अर्थात् आदि शब्द है, और वही वेद है, कारणकि गुरु के मुख में परमात्मा स्वय वास करता है।

गुरु.ही शिव है, गुरु ही विष्णु और गुरु ही गोरख (गो अर्थात् पृथिवी के रक्षक) है और गुरु ही ब्रह्मा है। पार्वती भी गुरु है, और माता लक्ष्मी भी वही है।

जो मै उसे जानलूँ तो उसका बखान नही कर सकता, क्योंकि वह कथनी से परे है।

किन्तु गुरु ने एक बार मुझे समझा दिया है कि जीव को देनेवाला एक परमात्मा ही है, और मुझे वह कभी नही भूलना चाहिए।

६. यदि मैं उसे रिझा सकूँ तो तीर्थो में स्नान करूँ; यदि मै उसे रिझा नही सकता तो तीर्थों में नहाने से मेरा क्या बनेगा!

देखता हूँ, जितनी भी सृष्टि सिरजी गई है, इसमें बिना कर्म या साधन किये क्या मिल सकता है, जिसे मै लूँ? (फिर परमात्मा का मिलना तो बिना जतन के अत्यंत कठिन है।)

मति विचि रतन जवाहर माणिक जे इक गुर की सिख सुणी ॥
गुरा इक देहि बुझाई ॥
सभना जीआ का इकु दाता सो मैं विसरि न जाई ॥६॥

जे जुग चारे आरजा होर दसूणी होइ ॥
नवा खंडा विचि जाणीऐ नालि चलै सभु कोइ ॥
जे तिसु नदरि न आवई त बात न पुछै केइ ॥
चंगा नाउ रखाइ कै जसु कीरति जगि लेइ ॥
कीटा अंदरि कीटु करि दोसी दोसु धरे ॥
नानक निरगुणि गुणु करे गुणवंतिआ गुणु दे ॥
तेहा कोइ न सुझई जि तिसु गुणु कोई करे ॥७॥

सुणिऐ सिद्ध पीर सुरि नाथ। सुणिऐ धरति धवल आकास ॥
सुणिऐ दीप लोअ पाताल। सुणिऐ पोहि न सकै कालु ॥
नानक भगता सदा विगास। सुणिऐ दूख पाप का नास ॥८॥

यदि गुरु का उपदेश (ध्यान से) सुनोगे तो तुम्हारी बुद्धि मे से हो हीरे-मोती आदि सारे रत्न अर्थात् ऊँचे-से-ऊँचे आध्यात्मिक गुण प्रकट हो पडेगे। (तीर्थों में भटकने की जरूरत नही पडेगी।)

गुरु ने एक बार मुझे समझा दिया है कि जीव को देनेवाला एक परमात्मा ही है, और मुझे वह कभी नही भूलना चाहिए।

७. मनुष्य यदि चारो युग जीये, या इससे भी दसगुनी उसकी आयु हो जाये, और नवों खडों में वह विख्यात हो जाये, सब लोग उसके साथ चलने लगे,

दुनियाभर के लोग उसे अच्छा कहें, और उसके यश का बखान करे, पर यदि परमात्मा ने उसपर अपनी (कृपा) दृष्टि नही की, तो कोई उसकी बात भी पूछनेवाला नही—उसकी कुछ भी कीमत नही।

वह तब कीट से भी तुच्छ कीट माना जायेगा। दोषी भी उसपर दोषारोप करेंगे।

नानक कहते है—वह निर्गुणी को भी गुणी कर देता है, और जो गुणी है उसे और भी अधिक गुण बख्श देता है।

पर ऐसा कोई भी दृष्टि में नही आता, जो परमात्मा को गुण दे सके।

८. गुरु का उपदेश सुनने से सिद्धो, पीरो और बडे-बडे नाथों की असलीयत का पता लग जाता है। (अथवा, असली सिद्धों, पीरों और बडे-बड़े नाथों की अवस्था को वह प्राप्त कर लेता है।)

सुणिऐ ईसरु बरमा इंदु। सुणिऐ मुखि सालाहण मंदु॥
सुणिऐ जोग-जुगति तनि भेद। सुणिऐ सासत सिमृति वेद॥
नानक भगता सदा विगासु। सुणिऐ दूख पाप का नासु॥६॥
सुणिऐ सतु संतोखु गिआनु। सुणिऐ अठिसठि का इसनानु॥
सुणिऐ पढ़ि पडि पावहि मानु। सुणिऐ लागै सहजि धिआनु॥
नानक भगता सदा विगासु। सुणिऐ दूख पाप का नासु॥१०॥

गुरु का उपदेश सुनने से पृथिवी का, उसे टिकाये रखनेवाले (कल्पित) बैल का, और आकाश का सही-सही ज्ञान हो जाता है।

[**विशेष**—'जपुजी' की १६वीं पौडी में इस 'धवल' अर्थात् बैल का स्पष्टीकरण किया गया है।]

गुरु की शिक्षा सुनने से द्वीपो, लोकों और पातालों का ठीक-ठीक पता लग जाता है।

और तब काल की दाल नहीं गल पाती।

नानक कहते है—(गुरु का उपदेश सुननेवाले) भक्तजन सदा प्रफुल्लित रहते हैं। (गुरु का उपदेश) सुनने से उनके सारे दुःख और पाप नष्ट हो जाते है।

९. गुरु का उपदेश सुनने से शिव, ब्रह्मा और इन्द्र की दशा का असली पता लग जाता है।

और मन्दबुद्धि की भी भारी प्रशंसा होने लगती है।

उसे सुनने से योग की युक्ति या मार्ग, और घट के रहस्य खुल जाते हैं।

गुरु का उपदेश सुनने से शास्त्रों, स्मृतियों और वेदों की वास्तविकता का ज्ञान हो जाता है।

नानक कहते है—ऐसे भक्तजन सदा प्रफुल्लित रहते है। (गुरु-उपदेश) सुनने से उनके सारे दुःख और पाप नष्ट हो जाते है।

१०. गुरु का उपदेश सुनने से सत्य, संतोष और दिव्यज्ञान प्राप्त होता है।

उसे सुनना अडसठ तीर्थों में स्नान करने के समान है।

गुरु का उपदेश सुनने से ज्यों-ज्यों उसे मनुष्य पढता है, त्यों-त्यों वह मान-प्रतिष्ठा पाता है।

उसे सुनने से चित्त का निरोध होकर उसका सहज ध्यान लग जाता है।

नानक कहते है—गुरु का उपदेश सुननेवाले भक्तजन सदा प्रफुल्लित रहते है। उनके सारे दुःख और पाप नष्ट हो जाते है।

सुणिऐ सरा गुणा के गाह। सुणिऐ सेख पीर पातिसाह ॥
सुणिऐ अंधे पावहि राहु। सुणिऐ हाथ हाथ होवै असगाहु ॥
नानक भगता सदा विगासु। सुणिऐ दूख पाप का नासु ॥११॥
मंने की गति कहि न जाइ। जे को कहै पिछै पछुताइ ॥
कागदि कलम न लिखणहारु। मंने का बहि करनि विचारु ॥
ऐसा नामु निरंजनु होइ। जे को मंनि जाणै मंनि कोइ ॥१२॥
मंने सुरति होवै मनि बुधि। मंनि सगल भवण की सुधि ॥
मंने मुहि चोटा ना खाइ। मंने जम कै साथि न जाइ ॥
ऐसा नामु निरंजन होइ। जे को मंनि जाणै मनि कोई ॥१३॥

११ गुरु का उपदेश सुनने से मनुष्य गुणो के सागर की थाह पा लेता है—गहन-से-गहन गुणों को दृढतापूर्वक ग्रहण कर लेता है।

उसे सुनने से मनुष्य शेख, पीर और बादशाह बन जाते है। अथवा, यह जान जाते है कि धार्मिक तथा सांसारिक दोनो क्षेत्रो का नेता एकसाथ कैसे बना जाता है।

गुरु का उपदेश सुनने से अन्धे को भी रास्ता सूझ जाता है;

उसे सुनने से वह अथाह की भी थाह पा जाता है।

नानक कहते है—ऐसे भक्तजन सदा प्रफुल्लित रहते है। उनके सारे दुःख और पाप नष्ट हो जाते है।

१२. जो उसकी आज्ञा पर चलता है उसकी (पहुँची हुई) अवस्था का वर्णन नही हो सकता; यदि कोई वर्णन करने का यत्न करता है, तो उसे पीछे पछताना या लज्जित होना पडता है।

लिखने के लिए न कागज है, न कलम, और न लिखनेवाला ही उस अवस्था का, जिसे कि उसकी आज्ञा को माननेवाला प्राप्त कर लेता है।

ऐसा पवित्र और अकथ है उसके लिए है गुरु का नाम—

जो उसकी आज्ञा को हृदय से मानने की रीति जानले।

१३. उसकी आज्ञा पर चलने से ऊँची (आध्यात्मिक) वृत्ति जागृत हो उठती है, अथवा पराबुद्धि विकसित हो जाती है।

उससे सारे लोकों का ज्ञान हो जाता है।

उसे मानने से मनुष्य को दण्ड नही मिलता; और वह यम के मार्ग पर नही जाता—काल की पकड से छूट जाता है।

मंने मारगि ठाक न पाइ । मंने पति सिउ परगटु जाइ ॥
मंने मगु न चलै पंथु । मंने धरम सेती सनबंधु ॥
ऐसा नामु निरंजनु होइ । जो को मंनि जाणै मनि कोइ ॥१४॥
मंने पावहि मोख दुआरु । मंनि परवारै साधारु ॥
मंने तरै तारै गुरु सिख । मंनि नानक भवहि न भिख ॥
ऐसा नामु निरंजनु होइ । जे को मंनि जाणै मनि कोइ ॥१५॥
पंच परवाण पंच परधानु । पंचे पावहि दरगहि मानु ॥
पंचे सोहहि दरि राजानु । पंचा का गुरु इकु धिआनु ॥

ऐसा पवित्र और अकथ है उसके लिए गुरु का नाम,—
जो उसकी आज्ञा को हृदय से मानने की रीति जानले ।

१४. उसकी आज्ञा पर चलने से रास्ते में कोई रोक-टोक नहीं रहती; मनुष्य फिर मान-प्रतिष्ठा के साथ (सन्मार्ग पर) चलता है ।

उसे जो मानता है वह मामूली रास्ते पर नहीं, बल्कि राजपथ पर चलता है । [विशेष—'मगुन' भी एक पाठ है । तब यह अर्थ किया गया है कि वह भगवत्प्रेम में मग्न होकर आगे बढ़ जाता है ।]

उसका धर्म के साथ (दृढ़) सबंध हो जाता है ।
ऐसा पवित्र और अकथ है उसके लिए गुरु का नाम,—
जो उसकी आज्ञा को हृदय से मानने की रीति जानले ।

१५. उसकी आज्ञा मान लेने से मनुष्य मोक्ष के द्वार पर पहुंच जाता है । वह अपने परिवार का भी उद्धार कर लेता है ।

उसकी आज्ञा पर चलने से वह स्वयं तर जाता है, और जिसे वैसा उपदेश देता है वह भी तर जाता है ।

जो उसकी आज्ञा को मानता है, वह भीख नहीं मांगता फिरता ।
ऐसा पवित्र और अकथ है उसके लिए गुरु का नाम—
जो उसकी आज्ञा को हृदय से मानने की रीति जानले ।

१६. (ऐसे गुरु-उपदेश पाये हुए) पंच ही प्रमाणरूप है; अथवा, परमात्मा की दृष्टि में 'स्वीकृत' है, और वे ही सबमें प्रधान है, प्रतिष्ठित है । वे ही उस प्रभु के दरबार में मान पाते है ।

[विशेष—ग्रन्थ साहब की टीका में भाई चंदासिंह ने 'पंच' का अर्थ इस प्रकार किया है—(१) जो ईश्वर की मरजी पर चलते है, (२) जो उसे सत्यरूप मानते

जे को कहै करै वीचारु । करते कै करणै नाही सुमारु ॥
धौलु धरमु दइआ का पूत । संतोखु थापि रखिआ जिनि सूत ॥
जे को बुझै होवै सचिआरु । धवलै उपरि केता भारु ॥
धरती होरु परै होरु होरु । तिसते भारु तलै कवणु जोरु ॥
जीअ जाति रंगा के नाव । सभना लिखिआ वुड़ी कलाम ॥
एहु लेखा लिखि जाणै कोइ । लेखा लिखिआ केता होइ ॥
केता ताणु सुआलिहु रूपु । केती दाति जाणै कौणु कूतु ॥
कीता पसाउ एको कवाउ । तिसते होए लख दरीआउ ॥

है, (३) जो उसका गुन-गान करते है, (४) जो उसका नाम सुनते हैं, और (५) जो उसकी आज्ञा का पालन करते हैं ।]

पचो से ही राजा-महाराजाओं के दरबार शोभायमान होते हैं ।

इनका गुरु केवल परमात्मा का ध्यान होता है ।

यदि कोई मनुष्य कोई बात कहे, तो वे उसपर तात्त्विक विचार करते हैं, उसे बिना विचार किये तुरत मान नहीं लेते ।

सिरजनहार के कार्यों की कोई गिनती नहीं ।

(जो यह विश्वास किया जाता है कि) नन्दी (शिवजी का बैल) पृथिवी को उठाये हुए है वह नन्दी वस्तुत: धर्म है, प्रभु की कृपा का रचा हुआ 'नियम' है, जिसने सारे ब्रह्माड को धैर्य के सहारे थाम रखा है ।

जिसने इसको समझ लिया, वह सत्य का साक्षात्कार कर सकता है ।

नन्दी पर कितना बडा भार लदा होगा !

इस पृथिवी से परे पृथिवी है—उससे भी परे और उससे भी परे पृथिवी है ।

यह सारा भार यदि उस नन्दी के ऊपर रखा हुआ है, तो वह नन्दी फिर किसके आधार पर स्थित है ?

जीवो की अनेक जातियो और अनेक रंगो के नामो को एक चलती हुई कलम ने लिखा है—अर्थात लेखे-हिसाब का प्रवाह अनन्त है ।

इनका कौन लेखा कर सकता है ? और वह कितना बडा लेखा बनेगा !

उसकी कितनी बडी शक्ति है, और कैसा सलोना रूप है ! उसकी बख्शीसो का कोई पार ! कौन कूत सकता है उन्हें ?

एक ही शब्द से, एक ही आज्ञा से सृष्टि को विस्तृत कर दिया; उसकी आज्ञा से सृष्टि की लाखो नदियाँ बह निकली ।

कुदरति कवण कहा वीचार। वारिआ न जावा एक वार ॥
जो तुधु भावै साई भली कार। तू सदा सलामति निरंकार ॥१६॥
असंख जप, असंख भाउ। असंख पूजा असंख तप ताउ ॥
असंख गरंथ मुखि वेदपाठ। असंख जोग मनि रहहि उदास ॥
असंख भगत गुण गिआन वीचार। असंख सती असंख दातार ॥
असंख सूर मुह भख सार। असंख मोनि लिव लाइ तार ॥
कुदरति कवण कहा वीचारु। वारिआ न जावा एक वार ॥
जो तुधु भावै साई भलीकार। सदा सलामति निरंकार ॥१७॥
असंख मूरख अंधघोर। असंख चोर हरामखोर ॥
असंख अमर करि जाहि जोर। असंख गलवढ हतिआं कमाहि ॥
असंख पापी पाप करि जाहि। असंख कूड़िआर कूड़े फिराहि ॥
असंख मलेछ मलु भखि खाहि। असंख निंदक सिरि करहि भारु ॥

---

१७. असंख्य प्रकार के तेरे मंत्र-जप हैं, और असंख्य ही भक्ति-भाव के मार्ग। असंख्य प्रकार की तेरी पूजा है, और असंख्य तप और साधन।

मेरी क्या बिसात, जो मैं तेरा बखान कर सकूँ ?

मैं तो तुझपर एक बार भी निछावर होनेलायक नहीं। अच्छा-भला वही है, जो तुझे भावे। हे निराकार! तू सदा सलामत रहता है।

असंख्य लोग वेदों और अन्य पवित्र ग्रन्थों का मुख से पाठ करते हैं। और असंख्य योगी मन में जगत् की ओर से उदासीन रहते हैं।

असंख्य भक्तजन तेरे गुणों का और तत्त्व-दर्शन का चिंतन करते हैं।

ऐसे ही, सच्चे और दानी असंख्य लोग हैं। और असंख्य शूरवीर तलवार की चोटें सामने खाते हैं।

असंख्य साधक मौन व्रत धारणकर तुझसे लौ लगाते हैं।

मेरी क्या बिसात, जो मैं तेरा बखान कर सकूँ ?

मैं तो तुझपर एक बार भी निछावर होनेलायक नहीं। अच्छा-भला वही है, जो तुझे भावे। हे निराकार! तू सदा सलामत रहता है।

१८. असंख्य लोग मूर्ख और घोर अन्धे हैं;

असंख्य चोर और पराया धन हरण करनेवाले हैं;

असंख्य लोग ऐसे हैं, जो बलात्कारपूर्वक राज्य स्थापित कर लेते हैं;

और गला काटनेवाले और हत्यारे भी असंख्य हैं;

नानकु नीचु कहै वीचारु । वारिआ न जावा एक वार ॥
जो तुधु भावै साई भली कार । तू सदा सलामति निरंकार ॥१८॥
असंख नाव असंख थाव ।
अगंम अगंम असंख लोअ । असंख कहहि सिरि भारु होइ ॥
अखरी नामु अखरी सालाह । अखरी गिआनु गीत गुण गाह ॥
अखरी लिखणु बोलणु बाणि । अखरा सिरि संजोगु वखाणि ॥
जिनि एहि लिखे तिस सिरि नाहि । जिव फुरमाए तिव तिव पाहि ॥
जेता कीता तेता नाउ । विणु नावै नाही को थाउ ॥
कुदरति कवण कहा वीचार । वारिआ न जावा एक वार ॥
जो तुधु भावै साई भली कार । तू सदा सलामति निरंकार ॥१९॥

असख्य पापी है, जिन्हे पाप करते हुए गर्व होता है;
असख्य असत्य बोलनेवाले असत्य मे ही पडे-पडे चक्कर काटते है;
असख्य गदे लोग गदी कमाई से ही अपने पेट भरते है;
और असंख्य निन्दक पराई निन्दा करने और सिर पर पापो की गठरी लादते है ।
तुच्छ नानक कहता है, मै तो तुझपर एक बार भी निछावर होनेलायक नही ।
अच्छा-भला वही है, जो तुझे भावे । हे निराकार ! तू सदा सलामत रहता है ।

१९. असंख्य तेरे नाम है, और असंख्य तेरे धाम;
तेरे अगम्य लोक भी असख्य, असंख्य है;
असख्य कहते हुए भी सिर पर जैसे भार पडता है ।
[अथवा, अपनी सारी बुद्धि समेटकर तेरा नाम जपनेवाले असंख्य है ।
अथवा, जो तेरा वर्णन करने का यत्न करते हैं, वे मानो सिर पर पाप ढोते है; यह उनका अहंकार ही है, जो वर्णनातीत के वर्णन करने का दम भरते हैं ।]
अक्षरों के सहारे हम तेरा नाम लेते है, और अक्षरो के ही सहारे तेरी स्तुति करते है;
अक्षरों के द्वारा हम तत्त्व-विचार करते है, और अक्षरों के द्वारा ही तेरे गुण गाते है;
अक्षरो से हम वाणी को लिखते और बोलते है; अक्षरों केसहारे से ही तेरे साथ हमारा जो संबन्ध है उसका वर्णन करते है ।
भाग्य पर जो अक्षर लिखा दिये गये हैं उन्हीसे भाग्य का हिसाब लगाया जाता है ।

भरीऐ हथु पैरु तनु देह। पाणी धोतै उतरसु खेह ॥
मूत पलीती कपड़ु होइ। दे साबुणु लईऐ ओहु धोइ ॥
भरीऐ मति पापा कै संगि। ओहु धोपै नावै कै रंगि ॥
पुंनी पापी आखणु नाहि। करि करि करणा लिखि लै जाहु ॥
आपे बीजि आपे ही खाहु। नानक हुकमी आवहु जाहु ॥२०॥
तीरथु तपु दाइआ दतु। जे को पावे तिल का मानु ॥
सुणिआ मंनिआ मनि कीता भाउ। अंतरगति तीरथि मनि नाउ ॥
सभि गुण तेरे मै नाही कोइ। विणु गुण कीते भगति न होइ ॥
सुअसति आथि बाणी बरमाउ। सति सुहाणु सदा मनिचाउ ॥

किन्तु जिसने उन अक्षरों को लिखा है, वह उनकी सीमा से परे है।

तू जैसी आज्ञा देता है वैसा हम पाते हैं।

जैसी तेरी सृष्टि की रचना, वैसे ही तेरा नाम भी महान्।

ऐसी कोई जगह नहीं, जहां कि तेरा नाम न हो।

मेरी क्या बिसात, जो मैं तेरा बखान कर सकूँ!

मैं तो तुझपर एक बार भी निछावर होनेलायक नहीं। अच्छा-भला वही है, जो तुझे भावे। हे निराकार! तू सदा सलामत रहता है।

२०. जब हाथ, पैर और शरीर के दूसरे अंग धूल से सन जाते हैं, तो वे पानी से धोने से साफ हो जाते हैं।

मूत्र से जब कपड़े गंदे हो जाते हैं तो साबुन लगाकर उन्हें धो लेते हैं।

ऐसे ही यदि हमारा मन पापों से मलिन हो जाये, तो वह नाम के प्रेम-भाव से स्वच्छ हो सकता है।

केवल कह देने से मनुष्य न पुण्यात्मा बन जाते हैं, न पापी;

किन्तु वे तुम्हारे कर्म हैं, जिन्हें तुम अपने साथ लिखते जाते हो; तुम्हारे कर्म तुम्हारे साथ-साथ जाते हैं।

आपही तुम जैसा बोते हो वैसा खाते हो।

नानक कहते हैं—यह तुम्हारा आवागमन उसकी आज्ञा से ही हो रहा है।

२१. तीर्थाटन, तप, दया और पुण्य-दान जो करता है, उसे भले ही तिलभर मान मिल जाये,—

[अथवा, प्रभु के नाम का एक कण भी किसीको मिल जाये तो मानों उसने तीर्थाटन, तप, दया, और पुण्य-दान कर लिये।]

कवणु सु वेला वखतु कवणु, कवणु थिति कवणु वारु ॥
कवणि सि रुती माहु कवणु, जितु होआ आकारु ॥
वेल न पाईआ पंडती जि होवै लेखु पुराणु ॥
वखतु न पाओ कादीआ जि लिखनि लेखु कुराणु ॥
थिति वारु ना जोगी जाणै रुति माहु न कोई ॥
जा करता सिरठी कउ साजे आपे जाणै सोई ॥
किवकरि आखा किव सालाही किउ वरनी किव जाणा ॥
नानक आखणि सभु को आखै इकदू इकु सिआणा ॥
वड्डा साहिबु वड्डी नाई कीता जाका होवै ॥
नानक जे को आपौ जाणै अगै गइआ न सोहै ॥२१॥

किंतु जो प्रभु का नाम सुनता है, उसपर चलता है, और अंतःकरण से उसकी भक्ति करता है, उसने सारे तीर्थों का स्नान कर लिया, और अपने सब पापों को धो डाला।

जितने भी गुण हैं सब तेरे ही हैं ; मुझमें एक भी गुण नहीं।

आचरित गुण के बिना भक्ति हो नहीं सकती।

धन्य है उसे जो स्वतः माया है, वाणी है और ब्रह्म है !

वह सत्य है, सुन्दर है, और अंतर में सदा आनन्द के रूप में रहता है।

वह कौन-सा समय था, जब सृष्टि रची गई ? वह क्या तिथि थी, और कौन-सा दिन ? वह क्या ऋतु थी, और कौन-सा मास ?

पंडितों को उसका पता नहीं लगा ; यदि पता होता, तो वे उसका अवश्य पुराणों में उल्लेख करते।

काजियों को भी उस वक्त का इल्म नहीं था ; यदि उन्हें इल्म होता तो कुरान में उन्होंने उसे दर्ज किया होता।

और न किसी योगी को उस तिथि, उस वार और उस ऋतु और उस मास का ज्ञान है।

उस करतार को ही उस समय का पता है कि उसने सृष्टि की रचना कब की थी।

मैं उसे क्या कहकर पुकारूँ, और कैसे उसकी स्तुति करूँ ? उसका बखान कैसे करूँ, और कैसे उसे जानूँ ?

नानक ! एक से-एक बुद्धिमान उसके विषय में अपनी-अपनी समझ से कहते हैं कि वह 'कैसा है' और 'कैसा' नहीं।

पाताला पाताल लख आगासा आगास ।
ओडक ओड़क भालि थके वेद कहनि इक बात ।
सहस अठारह कहनि कतेबा असुलू इकु धातु ॥
लेखा होइ त लिखीऐ लेखै होइ विणासु ।
नानक वड्डा आखीऐ आपे जाणै आपु ॥२२॥
सालाही सालाहि एती सुरति न पाईआ ।
नदीआ अंतै वाह पवहि समंदरि न जाणीअहि ।
समुंद साह सुलतान गिरहा सेती मालु धनु ॥
कीड़ी तुलि न होवनी जे तिसु मनहु न वीसरहि ॥२३॥
अंतु न सिफती कहणि न अंतु । अंतु न करणै देणि न अंतु ॥
अंतु न वेखणि सुणणि न अंतु । अंतु न जापै किआ मनि मंतु ॥

पर (समझ में तो इतना ही आया है कि) वह स्वामी महान् है, उसका नाम भी महान् है, उसीका किया-वश सब कुछ होता है ; और कोई कुछ नहीं कर सकता ।

नानक ! जो यह अभिमान करता है कि मैंने यह किया है, वह स्वामी के लोक मे मान नहीं पायेगा ।

२२. लाखों ही पाताल है, और उनके भी पाताल हैं उसकी रचना में;

इसी प्रकार लाखों आकाश है और उनके भी आगे आकाश है ।

उसका अंत खोजते-खोजते वेद थक गये—केवल एक ही बात वेदों ने कही (कि उसकी रचना का अंत नहीं ।)

मुसलमानो की किताबों ने कहा है कि अठारह हजार आलम है उसकी रचना में ।

पर असल में मतलब एक ही है दोनों का–(याने उसकी रचना का अंत नहीं ।)

गिनती हो तो उसे लिखा जाये, लिखनेवाले का ही अंत हो जाता है, पर लेखे का अंत नहीं मिलता ।

नानक कहते है—उसे महान् ही कहना चाहिए ; वह कितना महान् है इसे वह खुद ही जानता है ।

२३. स्तुति करनेवाले स्तुति करते है, पर इसकी महिमा का पता उन्हें भी नहीं ।

जैसे, नदियां और नाले समुद्र मे जाकर गिरते है, पर उसकी पूरी गंभीरता और विशालता का ज्ञान उन्हें नहीं होता ।

जिन राजाओं और सम्राटों के पास संपत्ति के समुद्र और धन के पर्वत हों, वे उस कीड़ी के भी समान नहीं, जो अपने हृदय मे परमात्मा को नहीं बिसराती ।

अंतु न जापै कीता आकारु । अंतु न जापै पारावारु ॥
अंत कारणि केते बिललाहि । ताके अंत न पाए जाहि ॥
एहु अंतु न जाणै कोइ । बहुता कहीऐ बहुता होइ ॥
वड्डा साहिबु ऊचा थाउ । ऊचे उपरि ऊचा नाउ ॥
एवडु ऊचा होवै कोइ । तिसु ऊचे कउ जाणै सोइ ॥
जेवडु आपि जाणै आपि आपि । नानक नदरी करमी दाति ॥२४॥
बहुता करमु लिखिआ न जाइ ।
वडा दाता तिलु न तमाइ । केते मंगहि जोध अपार ॥

---

२४. अंत नहीं परमात्मा के गुणों का, या उसकी स्तुति का ; और न उसके गुणों के वर्णन का अंत है ।

उसकी करणी या रचना का भी अंत नहीं, और न उसके दान का कोई अंत है । उसकी रचना में जो कुछ देखने में और जो कुछ सुनने में आता है उस सबका भी कोई अंत नहीं ।

इसका भी अंत नहीं कि उसके मन में इस सारी रचना के रचने का क्या रहस्य है ।

न तो उसकी सृष्टि का अंत जाना जा सकता है, और न उसके इस पार का और न उस पार का अंत किसीको मिल सका है ।

उसका अंत पाने के लिए कितने ही बिलखते हैं, पर पा नहीं सकते ।

उसे कोई नहीं जानता; जितना कि उसके विषय में कहा जाता है उससे भी कहीं अधिक कहने को रह जाता है ।

वह स्वामी महान् है, उसका पद ऊँचा है, और उस प्रभु का नाम ऊँचे से भी ऊँचा है ।

[**विशेष**—'नाउ' का अर्थ 'प्रकाश' भी किया गया है ।]

हाँ, यदि कोई उसके जितना ऊँचा हो, तभी वह उस ऊँचे और महान् स्वामी को समझ सकता है ।

वह आपही अपने आपको जानता है कि वह कितना बड़ा है, उसे और कोई नहीं जानता ।

नानक, जो कुछ भी किसीको मिलता है, वह उसकी बख्शीस है और उसकी कृपा से वह मिलती है ।

२५. उसकी मेहर और बख्शीस का हिसाब लिखा नहीं जा सकता ।

केतिआ गणत नहीं वीचारु । केते खपि तुटहि वेकार ॥
केते लै लै मुकरु पाहि । केते मूरख खाही खाहि ॥
केतिआ दूख भूख सद मार । एहि भि दाति तेरी दातार ॥
बंदिखलासी भाणै होइ । होरु आखि न सकै कोइ ॥
जे को खाइकु आखणि पाइ । ओहु जाणै जेतीआ मुहि खाइ ॥
आपे जाणै आपे देइ । आखहि सिभि केई केइ ॥
जिसनो बखसे सिफति सालाह । नानक पातिसाही पातिसाह ॥२५॥
अमुल गुण अमुल वापार । अमुल वापारीए अमुल भंडार ॥
अमुल आवहि अमुल लै जाहि । अमुल भाइ अमुला समाहि ॥

वह बहुत बड़ा दाता है; उसमें तिलभर भी लोभ नहीं।

कितने ही, बल्कि अपार योद्धा, उस दाता से मांगते रहते है।

और भी कितने ही, जिनकी गिनती का अनुमान भी नही लगा सकते।

कितने ही विकारो मे भरे मनुष्य विषयों को भोग-भोगकर शरीर को क्षीण कर देते है !

कितने ही (कृतघ्न) ले-लेकर भी इन्कार करते है (कि हमें परमेश्वर ने कुछ दिया ही नही !)

कितने ही मूढ मनुष्य ऐसे है, जो केवल पेट भरते रहते है !

और कितने ही दुःख और भूख की मार से मरा करते है ;

दाता ! यह भी तेरी बख्शीस है।

बंधनो से छुटकारा तेरी मरजी से ही मिलता है ; उसमें कोई दखल नही दे सकता।

कोई मूर्ख यदि उसमें दखल देने का यत्न करे तो वही जानेगा, कि उसे क्या सजा भोगनी पड़ेगी।

वह खुद ही हमारी आवश्यकताओं को जानता है कि किसे क्या-क्या देना है और वही-वही वह देता है।

पर बिरले ही (जो कृतज्ञ होते हैं) ऐसा मानते हैं।

नानक ! वह बादशाहो का भी बादशाह है, जिसे कि उसने उसके गुण गाने और कृतज्ञता प्रकट करने की बख्शीस दी है।

२६. अनमोल हैं तेरे गुण और अनमोल है तेरा लेन-देन;

अनमोल हैं तेरे व्यवहार और अनमोल तेरे गुणों के भंडार।

अमुलु धरमु अमुलु दीवाणु । अमुलु तुलु अमुलु परवाणु ॥
अमुलु बखसीस अमुलु नीसाणु । अमुलु करमु अमुलु फुरमाणु ॥
अमुलो अमुलु आखिआ न जाइ । आखि आखि रहे लिव लाइ ॥
आखहि वेद पाठ पुराण । आखहि पड़े करहि वखिआण ॥
आखहि बरमे आखहि इन्द । आखहि गोपी तै गोविन्द ॥
आखहि ईसर आखहि सिद्ध । आखहि केते कीते बुद्ध ॥
आखहि दानव आखहि देव । आखहि सुरि नर मुनि जन सेव ॥
केते आखहि आखणि पाहि । केते कहि कहि उठि उठि जाहि ॥
एते कीते होरि करेहि । ता आखि न सकहि केई केइ ॥

अनमोल है वे, जो उन्हें बिसाहने आते और बिसाहकर ले जाते है ।
अनमोल है तेरा प्रेम, और अनमोल है वे, जो उसमें डूब गये है ।
अनमोल है तेरा न्याय, और अनमोल है तेरा न्यायालय ।
अनमोल है तेरी तोल, और अनमोल तेरा पैमाना ।
अनमोल है तेरी बख्शीसे, और अनमोल है तेरी परवानगी का निशाना ।
अनमोल है तेरी कृपा, और अनमोल है तेरी आज्ञाऍ ।
अनमोल-ही-अनमोल है तू, कुछ बखान नही करते बनता ।
बखान कर-करके भी अत में चुप हो जाना पड़ा ।
वेदो और पुराणो का पाठ करनेवाले तेरा बखान करते है,
और बड़े-बड़े पडित उनकी व्याख्या करके समझाते है ।
ब्रह्मा तेरा बखान करता है, और इन्द्र भी ;
गोपियाँ और कृष्ण, और शिव तेरा वर्णन करते है ;
इसी प्रकार गोरखनाथ और सिद्ध भी—
और जिन अनेक बुद्धो को तूने रचा वे भी तुझे बखानते है ।
दैत्य और देवता भी तथा सुर, नर, मुनि और भक्तजन तेरे विषय में कहते है ।
अनेक कह रहे है, और अनेक कहने का यत्न करते है—
और कितने ही कहते-कहते उठ जाते है ।
जितने तूने रचे है इतने ही यदि तू और रच डाले, तब भी कोई तेरा यथार्थ वर्णन नही कर सकेगा ।
जितना बड़ा तू चाहे, उतना ही बड़ा हो सकता है ।

जेवडु भावे तेवडु होइ । नानक जाणै साचा सोइ ।
जे को आखै बोलु विगाड़ु । ता लिखीऐ सिरि गावारा गावार ॥२६॥
सो दरु केहा सो घरु केहा । जितु बहि सरब समाले ॥
वाजे नाद अनेक असंखा केते वावणहारे ॥
केते राग परी सिउ कहिअनि केते गावणहारे ॥
गावहि तुहनो पउणु पाणी वैसंतरु गावै राजा धरमु दुआरे॥
गावहि चित्तु गुपतु लिखिजाणहि लिखि लिखि धरमु वीचारे ॥
गावहि ईसरु बरमा देवो सोहनि सदा सवारे ॥
गावहि इन्द इन्दासणि बैठे देवतिआ दरि नाले ॥
गावहि सिद्ध समाधी अन्दरि गावनि साध विचारे ॥
गावहि जती सती संतोखी गावहि वीर करारे ॥
गावहि पंडित पड़नि रखीसर जुगु जुगु वेदा नाले ॥
गावहि मोहणीआ मनु मोहनि सुरगा मच्छ पइआले ॥

नानक ! वह स्वयं सत्यरूप ही जानता है कि वह कितना बड़ा है ।

किंतु यदि कोई बकवादी कहने लगे कि तू इतना बड़ा है, तो उसे गँवार से भी गँवार लिखना चाहिए ।

२७. तेरा वह कैसा द्वार होगा, और कैसा वह घर होगा, जहां तू बैठा-बैठा सारी सृष्टि की सँभाल रखता है ?

वहां अगणित और अनेक प्रकार के बाजे बज रहे हैं ; और उन्हें बजानेवाले भी कितने होंगे वहां !

कितने ही राग-रागिनियों के गान कितने ही गायक वहां गाये जा रहे हैं ! तेरा गुण-गान पवन, जल और अग्नि करते हैं;

धर्मराज तेरे द्वार पर बैठा वहां गारहा है ।

और चित्रगुप्त—मनुष्यों के कर्मों का लेखा रखनेवाला—तेरा गान गाता है ।

शिव, ब्रह्मा और शक्ति, जिन्हें तूने सँवारा है, तेरा यश गाते हैं ।

सिंहासन पर बैठा हुआ इन्द्र भी, देवगणों के साथ, तेरे गुण गा रहा है ।

सिद्धजन समाधि लगाये हुए, और साधुजन ध्यान में मग्न तेरा ही गुणानुवाद करते हैं ।

यति, सत्य-साधक और संतोषी तथा भारी-भारी शूरवीर तेरी कीर्ति का गान करते हैं ।

गावहि रतन उपाए तेरे अठसठि तीरथ नाले ॥
गावहि जोध महाबल सूरा गावहि खाणी चारे ॥
गावहि खंड मंडल वरभंडा करि करि रखे धारे ॥
सेई तुधुनो गावहि जो तुधु भावनि रते तेरे भगत रसाले ॥
होरि केते गावहि से मैं चिति न आवनि नानकु किआ वीचारे
सोई सोई सदा सचु साहिबु साचा साची नाई ॥
है भी होसी जाइ न जासी रचना जिनि रचाई ॥
रंगी रंगी भाती करि करि जिनसी माइआ जिनि उपाई ॥
करि करि वेखै कीता आपणा जिव तिस दी वडिआई ॥
जो तिसु भावै सोई करसी हुकमु न करणा जाई ॥
सो पातिसाहु साहा पातिसाहिबु नानक रहणु रजाई ॥२७॥

वेदपाठी बड़े-बड़े पंडित और ऋषि युग-युग से तेरा गुण-गान करते आ रहे है।

मोहिनी सुन्दर स्त्रिया स्वर्गों की, मध्यलोकों की और पातालो की तेरे गुण गाती है।

तूने जो रत्न उत्पन्न किये है वे, और अड़सठ तीर्थ तेरा गायन करते है।

बड़े-बड़े बलवान योद्धा तेरी महिमा गा रहे है;

और चारो ही प्रकार के जीव—अडज, पिडज, स्वेदज और उद्भिज। समस्त ब्रह्माण्ड, उसके खंड और लोक सभी गा रहे है, जिन्हें कि रच-कर तूने सहारा दे रखा है।

वे ही तेरा गुण-गान करते है, जो कि तुझे भाते है, और जो तेरे अनुराग-रस में डूबे हुए है।

और भी कितने ही तेरा गुण-गान करते है, जो मुझे याद नही आ रहे है।

नानक उन्हें कैसे गिनाये ?

सच्चा, सच्चे नामवाला वह स्वामी सदा वैसे-का-वैसा एकरस रहता है।

जिसने सारी सृष्टि को रचा है, वही अब है, और आगे भी वही रहेगा।

रग-रंग की, तरह-तरह की यह रचना जिसने रची है, वह उसे रच-रचकर जैसा कि वह बडा है उसीके अनुसार उसकी सार-सॅभाल कर रहा है।

वह वही करता है जो उसे भाता है; उसे यह नही कह सकते कि, 'ऐसा कर, और ऐसा न कर।'

मुंदा संतोखु सरमु पतु झोली धिआन की करहि बिभूति ॥
खिंथा कालु कुआरी काइआ जुगति डंडा परतीति ॥
आई पंथी सगल जमाती मनि जीतै जगु जीतु ॥
आदेसु तिसै आदेसु ।
आदि अनीलु अनादि अनाहति जुगु जुगु एको वेसु ॥२८॥
भुगति गिआनु दइआ भंडारणि घटि घटि वाजहि नाद ॥
आपि नाथु नाथी सभ जा की रिद्धि सिद्धि अवरा साद ॥
संजोगु विजोगु दुइ कार चलावहि लेखे आवहि भाग ॥
आदेसु तिसै आदेसु ।
आदि अनीलु अनादि अनाहति जुगु जुगु एको वेसु ॥२९॥

वह स्वामी बादशाहों का भी बादशाह है ।
सब-कुछ उसीकी इच्छा पर निर्भर है ।

२८. मुद्राएँ तू संतोष और शील की बना, और (स्वमानयुक्त) उद्यम की झोली;
और (परमात्मा के) ध्यान की लगाले भस्म ।
काल का (सतत) स्मरण ही तेरी कंथा हो;
और देह को—अपनी रहनी को—कुमारी कन्या की तरह पवित्र रख, और श्रद्धा को अपना दंड बनाले ।
सबको तू अपनी ही जमात का समझ; मानो सारे मनुष्य तेरे 'आईपंथ' के ही हैं ।
[**विशेष**—योगियों के बारह पंथों में से एक पंथ 'आई पंथ' है ।]
और यह मान कि मन को जीत लिया तो जगत् को जीत लिया ।
'आदेश, अर्थात् प्रणाम उसीको कर, जो 'आदि ईश' है ।
[**विशेष**—नाथपंथी योगी आपस में एक दूसरे को 'आदेश' कहकर प्रणाम करते हैं ।]
जो आदि है, जो शुभ्र है, जो अनादि है, जिसका अंत नहीं और युग-युग से जो 'एकरूप' ही है ।

२९. आध्यात्मिक ज्ञान का तू भोजन कर और दया को बनाले अपना भंडारी ।
घट-घट में जो नाद बज रहा है वह तेरी सारंगी है ।
जिसने सारी सृष्टि को (अपनी डोरी से) नाथ रखा है, वही है नाथ तेरा ।
ऋद्धियों और सिद्धियों की (तुच्छ) करामात तेरे लिए नहीं, दूसरों के लिए है—

गावहि रतन उपाए तेरे अठसठि तीरथ नाले ॥
गावहि जोध महाबल सूरा गावहि खाणी चारे ॥
गावहि खंड मंडल वरभंडा करि करि रखे धारे ॥
सेई तुधुनो गावहि जो तुधु भावनि रते तेरे भगत रसाले ॥
होरि केते गावहि से मैं चिति न आवनि नानकु किआ वीचारे
सोई सोई सदा सचु साहिबु साचा साची नाई ॥
है भी होसी जाइ न जासी रचना जिनि रचाई ॥
रंगी रंगी भाती करि करि जिनसी माइआ जिनि उपाई ॥
करि करि वेखै कीता आपणा जिव तिस दी वडिआई ॥
जो तिसु भावै सोई करसी हुकुम न करणा जाई ॥
सो पातिसाहु साहा पातिसाहिबु नानक रहणु रजाई ॥२७॥

वेदपाठी बड़े-बड़े पंडित और ऋषि युग-युग से तेरा गुण-गान करते आ रहे हैं।

मोहिनी सुन्दर स्त्रियां स्वर्गों की, मध्यलोकों की और पातालों की तेरे गुण गाती हैं।

तूने जो रत्न उत्पन्न किये हैं वे, और अड़सठ तीर्थ तेरा गायन करते हैं।

बड़े-बड़े बलवान योद्धा तेरी महिमा गा रहे हैं;

और चारों ही प्रकार के जीव—अंडज, पिंडज, स्वेदज और उद्भिज। समस्त ब्रह्माण्ड, उसके खंड और लोक सभी गा रहे हैं, जिन्हें कि रच-कर तूने सहारा दे रखा है।

वे ही तेरा गुण-गान करते हैं, जो कि तुझे भाते हैं, और जो तेरे अनुराग-रस में डूबे हुए हैं।

और भी कितने ही तेरा गुण-गान करते हैं, जो मुझे याद नहीं आ रहे हैं।

नानक उन्हें कैसे गिनाये ?

सच्चा, सच्चे नामवाला वह स्वामी सदा वैसे-का-वैसा एकरस रहता है।

जिसने सारी सृष्टि को रचा है, वही अब है, और आगे भी वही रहेगा।

रंग-रंग की, तरह-तरह की यह रचना जिसने रची है, वह उसे रच-रचकर जैसा कि वह बड़ा है उसीके अनुसार उसकी सार-सँभाल कर रहा है।

वह वही करता है जो उसे भाता है; उसे यह नहीं कह सकते कि, 'ऐसा कर, और ऐसा न कर।'

मुंदा संतोखु सरमु पतु झोली धिआन की करहि बिभूति ॥
खिंथा कालु कुआरी काइआ जुगति डंडा परतीति ॥
आई पंथी सगल जमाती मनि जीतै जगु जीतु ॥
आदेसु तिसै आदेसु ।
आदि अनीलु अनादि अनाहति जुगु जुगु एको वेसु ॥२८॥
भुगति गिआनु दइआ भंडारणि घटि घटि वाजहि नाद ॥
आपि नाथु नाथी सभ जा की रिद्धि सिद्धि अवरा साद ॥
संजोगु विजोगु दुइ कार चलावहि लेखे आवहि भाग ॥
आदेसु तिसै आदेसु ।
आदि अनीलु अनादि अनाहति जुगु जुगु एको वेसु ॥२९॥

वह स्वामी बादशाहों का भी बादशाह है ।

सब-कुछ उसीकी इच्छा पर निर्भर है ।

२८. मुद्राएँ तू संतोष और शील की बना, और (स्वमानयुक्त) उद्यम की झोली;

और (परमात्मा के) ध्यान की लगाले भस्म ।

काल का (सतत) स्मरण ही तेरी कथा हो;

और देह को—अपनी रहनी को—कुमारी कन्या की तरह पवित्र रख, और श्रद्धा को अपना दंड बनाले ।

सबको तू अपनी ही जमात का समझ; मानो सारे मनुष्य तेरे 'आईपंथ' के ही है ।

[**विशेष**—योगियो के बारह पंथो में से एक पंथ 'आई पंथ' है ।]

और यह मान कि मन को जीत लिया तो जगत् को जीत लिया ।

'आदेश, अर्थात् प्रणाम उसीको कर, जो 'आदि ईश' है ।

[**विशेष**—नाथपंथी योगी आपस में एक दूसरे को 'आदेश' कहकर प्रणाम करते है ।]

जो आदि है, जो शुभ्र है, जो अनादि है, जिसका अंत नही और युग-युग से जो 'एकरूप' ही है ।

२९. आध्यात्मिक ज्ञान का तू भोजन कर और दया को बनाले अपना भंडारी ।

घट-घट में जो नाद बज रहा है वह तेरी सारंगी है ।

जिसने सारी सृष्टि को (अपनी डोरी से) नाथ रखा है, वही है नाथ तेरा ।

ऋद्धियों और सिद्धियो की (तुच्छ) करामात तेरे लिए नहीं, दूसरो के लिए है—

एका माई जुगति विआई तिनि चेले परवाणु ॥
इकु संसारी इकु भंडारी इकु लाइ दीवाणु ॥
जिव तिसु भावै तिवै चलावै जिव होवै फुरमाणु ॥
ओहु वेखै ओना नदरि न आवै बहुता एहु विडाणु ॥
आदेसु तिसै आदेसु ।
आदि अनीलु अनादि अनाहति जुगु जुगु एको वेसु ॥३०॥

आसणु लोइ लोइ भंडार । जो कछु पाइआ सु एका वार ॥
करि करि वेखै सिरजणहारु । नानक सचे की साची कार ॥
आदेसु तिसै आदेसु ।
आदि अनीलु अनादि अनाहति जुगु जुगु एको वेसु ॥३१॥

[वे प्रभु के रास्ते से दूर भटकाकर ले जाती है ।]

सयोग और वियोग ये दोनो नियम जगत् का नियत्रण कर रहे है—

हमारे भाग्य से हमें अपना भाग मिलता है । 'आदेश' अर्थात् प्रणाम उसीको कर, जो आदि है, जो शुभ्र है, जो अनादि ह, जिसका अत नहं, और युग-युग से जो 'एकरूप' ही है ।

३०. एक माया को किसी युक्ति से प्रसव हुआ, और तीन चेले या पुत्र उससे जनमें—

एक तो संसार को रचनेवाला, दूसरा पालन-पोषण की सामग्री रखनेवाला भंडारी और तीसरा मृत्यु दंड देनेवाला न्यायाधीश—अर्थात्, ब्रह्मा, विष्णु और शिव ।

परमात्मा जैसा चाहता है, वैसा आज्ञा उन्हें देता है, और वैसे ही सारी सृष्टि को चलाता है ।

वह तो उन्हें देखता है, पर वह उनको नही दीखता ।

यह बहुत अद्भुत है ।

'आदेश' अर्थात् प्रणाम उसीको कर,

जो आदि है, जो शुभ्र है, जो अनादि है, जिसका अंत नही, और युग-युग से जो 'एकरूप' ही है ।

३१. लोक-लोक में उसका आसन है; और लोक-लोक में उसका भंडार ।

उनमें जो कुछ रखना था वह एक बार ही रख दिया है ।

वह सिरजनहार सृष्टि को रच-रचकर उसे देखता और सँभालता है ।

नानक ! उस सच्चे (परमात्मा) का काम भी सच्चा है ।

इकदू जीभौ लख होहि लख होवहि लख वीस ॥
लखु लखु गेड़ा आखोअहि एकु नामु जगदीस ॥
एतु राहि पति पवड़ोआ चड़िऐ होइ इकीस ॥
सुणि गल्ला आकास की कीटा आई रीस ॥
नानक नदरी पाईऐ कूड़ी कूड़ै ठीस ॥३२॥
आखणि जोरु चुपै नह जोरु । जोरु न मंगणि देणि न जोरु ॥
जोरु न जीवणि मरणि नह जोरु । जोरु न राजि मालि मनि सोरु ॥
जोरु न सुरती गिआनि विचारि । जोरु न जुगति छुटै संसारु ॥
जिसु हथि जोरु करि वेखै सोइ । नानक उत्तमु नीचु न कोइ ॥३३॥
राती रुती थिती वार । पवन पाणी अगनी पाताल ॥
तिसु विचि धरती थापि रखी धरमसाल ॥

'आदेश' अर्थात् प्रणाम उसीको कर,
जो आदि है, जो शुभ्र है, जो अनादि है, जिसका अंत नहीं, और युग-युग से जो 'एकरूप' ही है।

३२. एक जीभ की जगह यदि मेरी लाख जीभें हो जायें, और लाख से बीस लाख, तोभी एक-एक जीभ से मैं लाख-लाख बार एक जगदीश्वर का ही नाम जपूँगा।
इस प्रकार मैं उस स्वामी के मार्ग की सीढ़ियों से चढ़कर उसमें लीन हो जाऊँगा।
वहां की, उस गगन-मंडल की बातें सुन-सुनकर अधम-से-अधम जीव को भी उस स्वामी से मिलने की ईर्ष्या होने लगती है।
नानक ! पर उससे मिलना तो उसकी कृपा-दृष्टि से ही होता है।
बाकी सब झूठी बकवास है झूठों की।

३३. न तो मेरी शक्ति कहने की है, और न चुप रहने की ही।
न मांगने की शक्ति है, और न देने की ही।
न जीने की शक्ति है, और न मरने की ही।
राज्य और सम्पत्ति को प्राप्त करने की भी मुझमें शक्ति नहीं है,
जिनके लिए चित्त इतना चंचल रहता है।
न मेरे पास वह शक्ति है, जिससे कि ध्यान और ज्ञान का चिंतन कर सकूँ।
और न उस युक्ति को खोज निकालने की ही शक्ति है, जिससे कि संसार के बन्धन से छूट जाऊँ।
जिस (प्रभु) के हाथ में शक्ति है, वही सब रचना रचता है, और वही उसे

तिसु विचि जीअ जुगति के रंग । तिनके नाम अनेक अनंत ॥
करमी करमी होइ वीचारु । सचा आपि सचा दरबारु ॥
तिथै सोहनि पंच परवाणु । नदरी करमी पवै नीसाणु ॥
कच पकाई ओथै पाइ । नानक गइआ जापै जाइ ॥३४॥

धरमखंड का एहो धरमु ॥
गिआनखंड का आखहु करमु ॥
केते पवण पाणी वैसंतर केते कान्ह महेस ॥
केते बरमे घाड़ति घडीअहि रूपरंग के वेस ॥
केतीआ करमभूमी मेर केते केते धू उपदेस ॥
केते इन्द चंद सूर केते केते मंडल देस ॥
केते सिध बुध नाथ केते केते देवी वेस ॥
केते देव दानव मुनि केते केते रतन समुंद ॥

सँभालता है ।

नानक ! (ईश्वर के आगे) अपनी शक्ति से न तो कोई ऊँच हो सकता है, और न कोई नीच ।

३४. रात्रियों, ऋतुओं, तिथियो और वारो तथा वायु, जल, अग्नि और पाताल के बीच में पृथिवी को मानों धर्म का मन्दिर बनाकर उसने रखा है ।

उस पृथिवी में उसने नाना स्वभावो और नाना प्रकारो के जीव रख दिये हैं ; उनके अनेक और अनत नाम है ।

उन सबको अपने-अपने कर्मो के अनुसार न्याय मिलता है ।

वह सच्चा है, और न्यायालय उसका सच्चा है ।

वहा, उसके दरबार मे, उसके चुने हुए हो शोभा और प्रतिष्ठा पाते है ।

उन्हे ही उसकी दया-दृष्टि और कृपा से वहा परवानगी मिलती है ।

कच्चे और पक्के की परख भी वहीपर होती है ।

नानक ! वहा पहुंचकर ही इसका पता लगता है ।

३५. धर्मखंड का—कर्त्तव्य कर्म के पद का यह वर्णन है ;

अब ज्ञानखंड अर्थात् तत्त्व-विचार के पद की दशा का वर्णन करता हूँ ।

कितने पवन, कितने जल और कितने अग्नितत्त्व दीख रहे है !

कितने कृष्ण और कितने शिव और कितने ब्रह्मा दीखते है अनेक रूपों और रंगो की रचना रचते हुए !

केतीआ खाणी केतीआ वाणी केते पात नरिंद ॥
केतीआ सुरती सेवक केते नानक अंतु न अंतु ॥३५॥
गिआनखंडमहि गिआनु परचंडु ॥ तिथै नाद-बिनोद कोड अनंदु ॥
सरमखंड की वाणी रूपु ॥ तिथै घाड़ति घड़ीऐ बहुतु अनूपु ॥
ताकीआ गला कथीआ न जाहि ॥ जेको कहै पिछै पछुताइ ॥
तिथै घड़ीए सुरति-मति मनि-बुधि ॥ तिथै घडीऐ सूरा-सिधा की सुधि ॥३६॥
करमखंड की बाणी जोरु । तिथै होरु न कोई होरु ॥
तिथै जोध महाबल सूर । तिनि महि रामु रहिआ भरपूर ॥

कितनी ही कर्मभूमिया और कितने ही सुमेरु पर्वत दीख रहे है वहा !
कितने ही ध्रुव और कितने ही ज्ञानोपदेश लेनेवाले दीखते है !
वहा कितने ही इन्द्र, कितने ही चन्द्र, कितने ही सूर्य और कितने ही नक्षत्र-मडल और लोक दीख रहे है ।
कितने ही सिद्ध, बुद्ध और नाथ !
कितनी ही देविया और अनेक नानारूप दीखते है वहा !
कितने ही देवता, दानव और मुनि,
तथा कितने ही समुद्र और उनमें से निकाले हुए रत्न वहा दीख रहे है !
जीवो की कितनी ही खानें और कितनी ही उनकी बोलिया वहा दीख रही है ! और राजाओ की कितनी ही वशावलियां !
नानक ! वहा कितने ही ध्यानावस्थित और भक्तजन दीखेंगे, जिनका कोई अन्त नहीं !

३६. उस ज्ञानखड मे, आत्म-विचार की उस दशा में ज्ञान-ही-ज्ञान प्रज्वलित रहता है ।
वहां ऐसा नाद सुनाई देता है, जिससे आनन्द की करोडो वृत्तिया विकसित होती है ।
आनद-खंड में पहुँचने से सुन्दर-सुन्दर वाणिया फूटती हैं ।
वहा की, उस खड की रचना अनुपम है ।
वर्णनातीत है वह अवस्था । यदि कोई वर्णन करने का यत्न करेगा, तो उसे लज्जित होना पडेगा ।
वहां ज्ञान-विज्ञान और मन की विशुद्ध वृत्तियों का सृजन होता है,
और सिद्धों और महात्माओं के ऊँचे मनोभावों का भी ।

३७. कर्मखंड अर्थात् आचरित (अमली) अवस्था में पहुंचे हुए (साधक) के कार्य-कलाप सबल होते हैं ।

तिथै सीतो सीता महिमा माहि। ताके रूप न कथने जाहि ॥
ना ओहि मरहि न ठागे जाहि। जिनकै रामु वसै मन माहि ॥
तिथै भगत वसहि के लोअ। करहि अनंदु सचा मनि सोइ ॥
सचखंडि वसै निरंकार। करि करि वेखै नदरि निहाल ॥
तिथै खंड मंडल वरभंड। जे को कथै त अंत न अंत ॥
तिथै लोअ लोअ आकार। जिव जिव हुकम तिवै तिवकार ॥
वेखै विगसै करि वीचारु। नानक कथना करड़ा सारु ॥३७॥
जतु पाहारा धीरजु सुनिआरु। अहरणि मति वेदु हथीआरु ॥
भउ खल्ला अगनि तपताउ ॥ भांडा भांड़ अमृत तितु ढालि ॥

उस अवस्था को और कोइ नही पहुचता; केवल महान् बली शूर-वीर ही वहां पहुंच पाते है।

उनमें राम (का बल) कूट-कूटकर भरा हुआ होता है।

(राम की) उस महिमा मे सीता-ही-सीता रहती है, जिनके रूप का वर्णन नही हो सकता।

[अर्थात, जहा सच्चे पुरुषार्थ की महिमा है, वहा सीता-जैसी पवित्रता निवास करती है।]

वे न मारे जा सकते है, न उन्हें कोई ठग सकता है,
जिनके कि हृदय मे राम बस रहा है।
वहा (प्रभु के) भक्तो की मडली निवास करती है;
वे आनंदित रहते है, क्योकि उनके हृदय मे सत्यरूप परमात्मा वास करता है।
सत्यखड में स्वय निराकार परमेश्वर का वास है।
जो सृष्टि को रच-रचकर दया-दृष्टि से उसे निहाल करता है।
वहा पहुंचकर (सत्य का साधक) देखता है अनेक खंड, अनेक लोक और अनेक ब्रह्माण्ड।
कौन उनका वर्णन कर सकता है? कहीं उनका अत ही नही।
वहा लोको के ऊपर भी लोक है, और उनमें आकार-पर-आकार रचे हुए है।
परमात्मा जैसी-जैसी आज्ञा देता है, वैसे-वैसे ही काम वहां सपन्न होते है।
देख-देखकर और विचार-विचारकर वह प्रसन्न होता है।
नानक! उसका वर्णन करना असभव है। [लोहे के जैसा कठिन है।]

३८. सयम को तू भट्ठी बना, और धैर्य को अपना सुनार;
बुद्धि को बना अहरण (निहाई) और आत्म-ज्ञान को हथौडा।

घड़ीऐ सबदु सची टकसाल ॥ जिन कउ नदरि करमु तिनि कार ॥
नानक नदरी नदरि निहाल ॥३८॥

सलोक

पवणु गुरू पाणी पिता माता धरति महतु ॥
दिवस राति दुइ दाई दाइआ खेलै सगल जगतु ॥
चंगिआईआ बुरिआईआ वाचै धरम हदूरि ॥
करमी आपो आपणी के नेड़ै के दूरि ॥
जिनी नाम धिआइआ गए मसक्कति घालि ॥
नानक ते मख उज्जले केती छुट्टी नालि ॥१॥*

(**विशेष**—'वेदु' का अर्थ 'गुरु-वाणी' भी किया गया है ।)
परमात्मा के भय की धोकनी फूक, और तप की अग्नि जला ।
प्रेम-भाव का साचा बनाकर उसमें नाम का अमृत ढालले ।
उसी सच्ची टकसाल मे 'शब्द' अर्थात् ऊँचा आचरण घडा जा सकेगा ।
ऐसा काम वही कर सकते है, जिनपर कि प्रभुने कृपा-दृष्टि करदी है,
नानक ! मेरा प्रभु एक ही कृपा-दृष्टि से निहाल कर देता है ।

१. पवन गुरु है, जल हमारा पिता है, और इतनी बडी पृथिवी है हमारी माता ;
(**विशेष**—पवन को गुरु यहाँ इसलिए कहा है कि वह परमात्म-ज्ञान का मत्र फूकता है; जल का गुण जीवन-दान देना है, इसीलिए उसका एक नाम 'जीवन' भी है, अतः वह पितृतुल्य हैं; पृथिवी पोषण करती है माता के समान ; दिन कर्म में लगाता है; और रात विश्राम देती है ।)

दिन और रात ये दोनो हमारी धाये है, जिनकी गोद में सारा जगत् खेलता है ।
धर्म हमारा न्यायाधीश है, जो अच्छे और बुरे कर्मो को अपने आगे जाँचता है, हमारे कर्म हममें से किसीको तो परमात्मा के निकट ले जाते है, और किसीको उससे दूर फेंक देते हैं ।

जिन्होने नाम का अभ्यास किया है, वे अपना श्रम सफल कर गये ।
नानक ! उनके मुख प्रकाशमान है, उनके सत्संग से कितने ही लोग (भव-बधन से) मुक्त हो गये ।

* यह सलोक 'माझ की वार' में गुरु अगदकृत लिखा हुआ है ; थोडा-साही पाठान्तर है ।

रागु धनासरी

गगनमै थालु रवि चंदु दीपक बने तारिका मंडल जनक मोती ॥
धूपु मलआनलो पवणु चवरो करे सगल बनराइ फूलंत जोती ॥
कैसी आरती होइ भवखंडना तेरी आरती । अनहता सबद वाजंत भेरी ॥
सहस तव नैन नन नैन हहि तोहि कउ सहस मूरति नना एक तोही ॥
सहस पद बिमल नन एक पद गंध बिनु सहस तव गंध इव चलत मोही।
सभ महि जोति जोति है सोई । तिसदै चानणि सभ महि चानणु होइ ॥
गुर साखी जोती परगटु होइ ॥ जो तिसु भावै सु आरती होइ ॥
हरि चरण कमल मकरंद लोभित मनो अनदिनो मोहि आही पिआसा ॥
कृपाजलु देहि नानक सारिंग कउ होइ जाते तेरै नाइ वासा ॥१॥

---

१. आकाश-मंडल थाल है, और सूर्य और चंद्र उसमे दोनो दीपक; और उसमे जड़े हुए है ताराओ के मोती।

मलयानिल तेरी धूप है, और पवन तुझे चॅवर डुलाता है, और हे ज्योतिस्वरूप! सारे ही कानन तेरे फूल है।

हे भव-खंडन (जन्म-मरण से छुड़ानेवाले) यह तेरी कैसी आरती है! अनहद नाद की तुरुही बज रही है जहा।

तेरी सहस्रो आखे है, और तोभी तू बिना आख का है;

तेरे सहस्रो रूप है, और तोभी तू बिना रूप का है,

तेरे सहस्रो निर्मल चरण है, और तोभी तू बिना चरण का है;

तेरी सहस्रो नासिकाएँ है, और तोभी तू बिना घ्राण का है।

मै तो मुग्ध हूँ तेरी इस लीला पर।

सब तेरी ही ज्योति से ज्योति पा रहे है; तेरे ही प्रकाश से सब प्रकाशित हो रहे है।

गुरु के उपदेश से वह ज्योति प्रकट होती है।

जो तुझे प्रिय लगे वही तेरी आरती है।

तेरे चरणारविन्दों के मकरंद में मेरा मन-(मधुकर) लुब्ध हो गया है—नित्य ही मुझे उस मकरद की प्यास लगी रहती है।

इस नानक-चातक को अपना कृपा-जल देदे, जिससे कि वह तेरे नाम में रम जाये।

आसा

आखा जीवा विसरै मरि जाउ ॥ आखणि अउखा साचा नाउ ॥
साचे नाम की लागै भूख ॥ उतु भूखै खाइ चलीअहि दूख ॥
सो किउ विसरै मेरी माइ ॥ साचा साहिबु साचै नाइ ॥
साचे नाम की तिलु वडिआई ॥ आखि थके कीमति नही पाई ॥
जे सभि मिलिकै आखण पाहि ॥ वडा न होवै घाटि न जाइ ॥
ना ओहु मरै न होवै सोगु ॥ देदा रहै न चूकै भोगु ॥
गुणु एहो होरु नाही कोइ ॥ ना को होआ ना को होइ ॥
जेवडु आपि तेवडु तेरी दाति ॥ जिनि दिनु करिकै कीती राति ॥
खसमु बिसारहि ते कमजाति ॥ नानक नावै बाझु सनाति ॥२॥

---

२. यदि मैं नाम का जप करूँ, तो जीऊ; यदि भूलजाऊँ, तो मरजाऊँ; उस सच्चे के नाम का जप बड़ा कठिन है।

यदि सच्चे नाम की भूख लग उठे, तो खाकर तृप्त हो जाने पर भूख की व्याकुलता चली जाती है।

तब हे मेरी माता! उसे मैं कैसे भुला दूँ?

स्वामी वह सच्चा है, उसका नाम सच्चा है।

उस सच्चे नाम की तिलमात्र भी महिमा बखान-बखानकर मनुष्य थक गये, फिरभी उसका मोल नहीं आंक सके।

यदि सारे ही मनुष्य एकसाथ मिलकर उसके वर्णन करने का यत्न करें, तोभी उसकी बडाई न तो उससे बढ़ेगी, और न घटेगी।

वह न मरता है, और न उसके लिए शोक होता है।

वह देता ही रहता है नित्य सबको आहार, कभी चूकता नहीं देने से।

उसकी यही महिमा है, कि उसके समान न कोई है, न था, न होगा।

तू जितना बडा है उतना ही बडा तेरा दान है।

तूने दिन बनाया है, और रात भी

वे मनुष्य अधम है, जो तुझ स्वामी को भुला बैठे है।

नानक, बिना तेरे नाम के वे बिल्कुल नगण्य हैं।

यह 'रहिरास' में से लिया गया है।

सोहिला-रागु गउडी दीपकी

जै घरि कीरति आखीऐ करते का होइ बीचारो ।
तितु घरि गावहु सोहिला सिवरिहु सिरजणहारो ।।
तुम गावहु मेरे निरभउ का सोहिला ।।
हउ वारी जितु सोहिलै सदा सुखु होइ ।।
नित नित जीअड़े समालीअनि देखैगा देवणहारु ।।
तेरे दानै कीमति ना पावै तिसु दाते कवणु सुमार ।।
संबति साहा लिखिआ मिलि करि पावहु तेलु ।।
देहु सजण असीसड़ीआ जिउ होवै साहिब सिउ मेलु ।।
घरि घरि एहो पाहुचा सदड़े नित पावन्नि ।।
सदणहारा सिमरीऐ नानक से दिह आवन्नि ।।३।।

रागु मलार

करउ बिनउ गुर अपने प्रीतम हरि वरु आणि मिलावै ।
सुनि घनघोर सीतलु मनु मोरा, लाल-रती-गुण गावै ।।

---

३. जिस घर मे परमात्मा का गुण-गान होता है और उसका ध्यान किया जाता है, उस घर में सोहिला गाओ, और सिरजनहार का स्मरण करो ।

तुम मेरे निर्भय प्रभु का सोहिला गाओ ।

मै उस आनन्द-गान पर बलि जाता हू, जिससे कि 'नित्य सुख' प्राप्त होता है ।

नित्य-नित्य सब जीवो की सार-सँभाल रखी जाती है, वह दाता उनकी आवश्यकताओं का ध्यान रखता है ।

जब कि तेरे दान का हिसाब नहीं रखा जा सकता, तब फिर तुझ दानी का हिसाब कौन रख सकता है ?

विवाह का सवत्, और लग्न का समय आक लिया जाता है; तब सब सबंधी मुझ दुलहिन पर तेल चढाते है ।

मेरे साजनो, मुझे आसीस दो कि मेरे स्वामी से मेरा मिलन हो ।

यह सदेसा सदा घर-घर पहुचाया जाता है; ऐसे न्योते हमेशा भेजे जाते है ।

जिसे बुला भेजा है उसे याद करलो; नानक, वह दिन आरहा है ।

४. करउ बिनउ=विनती करता हूं । वरु=वर, प्रियतम । लालरती-गुण=प्रियतम की प्रीति का बखान । भीना=विभोर या सराबोर हो गया । वरि=वरण करके ।

बरसु घना मेरा मनु भीना ।
अमृत बूँद सुहानी हियरै गुरि मोहि मनु हरि रसि लीना ।
सहजि सुखी वर कामणि पिआरी जिसु गुरवचनी मनु मानिआ ।।
हरि वरि नारि भई सोहागणि, मनि तनि प्रेम सुखानिआ ।।
अवगण तिआगि भई बैरागनि असथिरु वरु सोहागु हरी ।
सोगु विजोगु तिसु कदे न विआपै, हरि प्रभ अपणी किरपा करी ।।
आवण जाण नहीं मनु निहचलु पूरे गुर की ओट गही ।
नानक रामनामु जपि गुरमुखि धनु सोहागणि सचु सही ।।४।।

राग बसंत

चंचल चीतु न पावै पारा । आवत जात न लागै बारा ।।
दूखु घणो मरीऐ करतारा । बिनु प्रीतम को करै न सारा ।।
सभ ऊतम किसु आखउ हीना । हरिभगती सचि नामि पतीना ।।
अउखध करि थाकी बहुतेरे । किउ दुखु चूकै बिनु गुर मेरे ।।
बिनु हरिभगती दूख घणेरे । दुख सुख दाते ठाकुर मेरे ।।
रोगु बडो किउ बांधउ धीरा । रोगु बुझै सो काटै पीरा ।।
मैं अवगुण मन माहि सरीरा । ढूढत खोजत गुर मेले बीरा ।।
गुर का सबदु दारू हरिनाउ । जिउ तू राखहि तिवै रहाउ ।।
जगु रोगी कह देखि दिखाउ । हरि निरमाइलु निरमलु नाउ ।।
घर महिं घरु जो देखि दिखावै । गुर महली सो महलि बुलावै ।।
मन महि मनुआ चित महि चीता । ऐसे हरि के लोग अतीता ।।
हरख सोग ते रहहि निरासा । अमृत चाखि हरिनामि निवासा ।।

मनि सुखानिआ=मन और तन में प्रेम-रस का आनन्द भर गया । असथिरु=स्थिर, अविनाशी । सोगु विजोगु=शोक और वियोग । तिसु=उसे । कदे=कभी । आवण-जाण=जन्म-मरण से आशय है । ओट=शरण ।

५. चीतु=चित्त । बारा=देर । सारा=सँभाल, रक्षा । ऊतम=उत्तम, श्रेष्ठ । किसु आखउ हीना=किसे नीच कहूं । सचि नामि पतीना=सत्यनाम पर प्रतीति हो गई है । अउखध=औषधि, उपाय, साधन । चूकै=दूर हो । किउ=कैसे । मेले=मिल गये । दारू=दवा । तिवै=वैसे ही । निरमाइलु=निर्माण किया, रचा । घर....

आपु पछाणि रहै लिव लागा। जनमु जीति गुरमति दुख भागा॥
गुर दीआ सचु अंमृत पीवउ। सहजि मरउ जीवत ही जीवउ॥
अपणे करि राखउ गुर भावै। तुम्हरो होइ सु तुझहि समावै॥
भोगी कउ दुखु रोग विआपै। घटि घटि रवि रहिआ प्रभु जापै॥
सुख दुख ही ते गुर सबदि अतीता। नानक रामु रवै हित चीता॥५॥

सलोक *

जूठि न रागी जूठि न वेदीं। जूठि न चंद सूरज की भेदी॥
जूठि न अंनो जूठि न नाई। जूठि न मीहु वसिऐ सभ थाई॥
जूठि न धरती जूठि न पाणी। जूठि न पउणै माहि समाणी॥
नानक निगुरिआ गुणु नाही कोइ। मुहि फेरिऐ मुहु जूठा होइ॥१॥
नानक चुलीआ सुचीआ जे भरि जाणै कोइ॥
सुरते चुली गिआन की जोगी का जतु होइ॥

दिखावै=घर में ही, अर्थात् इस पिंड के अंदर ही जो असली घर को अर्थात् ब्रह्म-तत्त्व को स्वयं देखकर दूसरों को भी दिखा देना है। महलि=ब्रह्मधाम से तात्पर्य है। अतीता=विषयों से विरक्त। निरासा=अनासक्त। आपु पछाणि=अपने स्वरूप को पहचानकर। जनमु जीति=जीवन को सफल करके। सहजि जीवउ=सहज ही मृत्यु-भय जीतकर जीवन को अमर करलूं। तुझहि समावै=तुझमे ही लीन हो जाता है। रवि रहिआ=रमा हुआ, व्याप्त। भोगी=विषयासक्त। गुरसबदि अतीता=गुरु का उपदेश-रहस्य परे है।

१. अपवित्रता न तो रागों में है, और न वेदों में ;
न चंद्र और सूर्य की भिन्न-भिन्न गतियों में अपवित्रता है ;
[यह मानना कि चंद्र अमुक नक्षत्रगत तथा सूर्य अमुक राशिगत होनेपर शुचि तथा अशुचि या शुभ तथा अशुभ होते है।]
अपवित्रता न अन्न में है, और अरस-परस में है :
न अपवित्रता मेह में है, जो सभी जगह बरसता है ;
न धरती में अपवित्रता है, और न पानी मे ;
अपवित्रता पवन में भी नहीं समाई हुई है।
नानक, उस मनुष्य में, जो बिना गुरु का है, कोई भी गुण नहीं।
अपवित्र तो उस मनुष्य का मुख है, जो परमात्मा से विमुख है।
'सारंग की वार' में से

ब्राह्मण चुली संतोख की गिरही का सतु दानु ।
राजे चुली निम्राव की पडिम्रा सचु धिम्रानु ।।
पाणी चितु न धोपई मुखि पीतै तिख जाइ ।
पाणी पिता जगत का फिरिं पाणी सभु खाइ ।।२।।
कलि होइ कुते मुही खाजु होम्रा मुरदारु ।
कूडु बोलिं-बोलि भउकणा चूका धरमु वीचारु ।।
जिन जीव दिम्रा पति नहीं मुइम्रा मंदी सोइ ।
लिखिम्रा होवै नानका करना करे सु होइ ।।३।।
भृगु तिन्हा का जीविम्रा जि लिखि-लिखि वेचहिं नाउ ।।
खेती जिनकी उजडै खलवाड़े किम्रा थाउ ।।
सचै सरमै बाहरे अगै लहहिं न दादि ।।
अकलि एह न आखीऐ अकलि गवाईऐ वादि ।।
अकली साहिबु सेवीऐ अकली पाईऐ मानु ।

---

२. यदि कोई मरना जानता है तो चुल्लूभर भी पानी पवित्र है—
(कौन-कौन-सी चुल्लू ? यह-यह—)
(अध्यात्म) ज्ञान पंडित के लिए, संयम योगी के लिए,
संतोष ब्राह्मण के लिए, और गृहस्थ के लिए अपनी कमाई में से दान,
राजा के लिए न्याय और विद्वान् के लिए सत्यरूप परमात्मा का ध्यान,
पानी प्यास को तो बुझा देता है, पर उससे (मलिन) चित्त को नहीं धोया जा सकता ।
पानी को जगत् का पिता कहा गया है, अंत में वही सबका विनाश कर देता है।

३. कलियुग में लोगों के मुँह हैं कुत्तों के जैसे, और मुर्दार खाते हैं ।
वे झूठ बोल-बोलकर मानो भोंकते है, और सचाई का कुछ भी विचार नहीं रखते ।
जीते-जी उनकी कोई प्रतिष्ठा नहीं, और मरने पर भी उनकी बदनामी होती है।
जो भाग्य में लिखा है वही होता है, नानक ; वह होकर रहता है, जो कर्त्तार करना चाहता है ।

४. धिक्कार है उनके जीने को, जो प्रभु का नाम लिख-लिखकर बेचते हैं ।
जिनकी खेती उजड चुकी उनका क्या काम खलिहान में ?
जिनके अंतर में सत्य और शील नहीं रहा, उनकी आगे सुनवाई नहीं होगी।

अकली पढ़िकै बूझिऐ अकली कीजै दानु ॥
नानक आखै राहु एहु होरि गलां सैतानु ॥४॥
गिआन विहूणा गावै गीत । भुखे मुलां घरे मसीत ॥
नखट्टू होइ कै कंन पडाए । फकरु करे होरु जाति गवाए ॥
गुरु पीरु सदाए मंगण जाइ । ताकै भूलि न लगीऐ पाइ ॥
घालि खाइ किछु हथहु देइ । नानक राहु पछाणहिं सेइ ॥५॥

पउड़ी

इकन्हा गलीं जंजीर बंदि रबाणीऐ ।
बंधे छुटहि सचि सचु पछाणीऐ ॥
लिखिआ पलै पाइ सो सचु जाणीऐ ।
हुकमी होइ निबेड़ु गइआ जाणीऐ ॥

उसे अक्ल न कहो, जो कि वाद-विवाद में खर्च होती हो ।

अक्ल से तो प्रभु की सेवा का जाती है ; अक्ल से सम्मान मिलता है ।

अक्ल से ही पढ़कर समझा जाता है, और उसीके द्वारा सही रीति से दान दिया जाता है ।

नानक कहता है—यही अक्ल के रास्ते है, और सब रास्ते शैतान के है ।

५. गीत गाने लगते है लोग विना ऊंचे ज्ञान के ।

और भूखा मुल्ला मसजिद को ही अपना घर बना लेता है, दिन-रात मसजिद में ही पडा रहता है ।

निखट्टू अपने कान फड़वा लेते है—कनफटे जोगी बन जाते है ;

और कुछ भिखारी बन जाते है, और अपनी जात गवां देते है ।

भूलकर भी तुम उनके पैर न छूना, जो अपने आपको गुरु और पीर बतलाते है, फिरभी दर-दर भीख मांगते फिरते है ।

नानक, सही रास्ता उन्होने ही पहचाना है, जो अपने पसीने की कमाई खाते हैं और दूसरो को भी कुछ देते है ।

६. कुछ लोगों के गले में जजीरें पडी होती है, और उन्हें जेलखाने में ले जाते हैं;

पर सच्चे से भी सच्चे प्रभु को पहचानकर वे बंधनों से मुक्त हो जायेंगे । बडभागी ही उस सत्यरूप प्रभु को जानता है ।

परमात्मा की आज्ञा से मनुष्य के भाग्य का फैसला होता है; उसके सामने हाज़िर होनेपर ही मनुष्य इसे जानेगा ।

भउजल तारणहारु सबदि पछाणीऐ ।
चोर जार जूआर पीड़े वाणीऐ ।।
निंदक लाइतबार मिले हड़वाणीऐ ।।
गुरमुखि सचि समाइ सुदरगह जाणीऐ ।।६।।

धनु सु कागदु कलम धनु धनु भांडा धनु मसु ।
धनु लेखारी नानका जिनि नामु लिखाइआ सचु ।।७।।

रे मन डोगि न डोलिऐ सीधे मारगि धाउ ।
पाछै बाघु डरावणो आगै अगनि तलाउ ।।१।।
सहसै जीअरा परि रहिओ मोकउ अवरु न ढंगु ।
नानक गुरमुखि छूटिऐ हरि प्रीतम सिउ संगु ।।२।।
बाघु मरै मनु मारिऐ जिसु सतिगुर दीखिआ होइ ।
आपु पछाणै हरि मिलै बहुड़ि न मरणा होइ ।।३।।
सरवरु हंस न जाणिआ काग कुपंखी संगि ।
साकत सिउ ऐसी प्रीति है बूझहु गिआनी रंगि ।।४।।

पहचानले उस 'शब्द' को, जो कि भव-सागर से पार लगायेगा ।

चोर, व्यभिचारी और जुआरी ये सब-के-सब सरसों की तरह पेर दिये जायेंगे ।

निन्दकों और विश्वासघातियों को बाढ बहा लेजायेगी ।

प्रभु के न्यायालय में उन्हीं पवित्रात्माओं को पहचाना जायेगा, जोकि सत्य में लौलीन होंगे ।

७. धन्य वह कागज, धन्य वह कलम, धन्य वह दावात और धन्य वह स्याही,—
और धन्य वह लिखनहार, नानक, जिसने कि उस सत्य-नाम को लिखा है ।

१. डोगि न डोलिए=हिलना-डोलना नहीं, तनिक भी विचलित न होना । तलाउ=तालाब । बाघु=काम से आशय है । अगनि=संभवतः तृष्णा से आशय है ।

२. सहसै ...रहिओ=संशय में अर्थात् दुविधा में मन पड गया है । ढंगु=उपाय, सिउ=से ।

३. आपु पछाणै=निजस्वरूप को पहचानले । बहुडि=फिर ।

४. साकत=शाक्त; आशय है हरि-विमुख से ।

जनमे का फलु किआ गणी जां हरिभगति न भाउ ।
पैधा खाधा वादि है जां मनि दूजा भाउ ॥५॥
सभनि घटी सहु बसै, सहबिनु घटु न कोइ ।
नानक ते सोहागणी, जिन्हा गुरमुखि परगटु होइ ॥६॥
जउ तउ प्रेम खेलण का चाउ । सिरु धरि तली गली मेरी आउ ॥
इतु मारगि पैरु धरीजै । सिरु दीजै काणि न कीजै ॥७॥

---

५. पैधा खाधा वादि है=पीना-खाना व्यर्थ है । जा ''भाउ=जहा मन में ईश्वर-भक्ति को छोड़कर सांसारिक विषय-भोगो पर ध्यान है ।

६. सभनि बसै=सभी घटो अर्थात् शरीरो में प्रभु बसा हुआ है । सह=स्वामी, ईश्वर । जिन्हा होइ=जिसके हृदय मे वह स्वामी सद्गुरु के उपदेश से प्रकट हो गया ।

७. जउ तउ=जो तुझे । सिरु धरि तली=सिर को याने अपनी अहंता को पैरो के नीचे कुचलकर । काणि न कीजै=सकोच न करना ।

●

गुरु अंगद

चोला-परिचय

जन्म-सवत्—१५६१ वि०, वैशाख ११

जन्म-स्थान—हरिके गॉव

पिता—फेरू

माता—दयाकौर

जाति—खत्री

गुरु—बाबा नानकदेव

भेष—गृहस्थ

मृत्यु-संवत्—१६०९ वि, चैत्र शु० १०

फीरोजपुर जिले के अंतर्गत मुक्तसर से लगभग छह मील पर मत्ते दी सराय नाम के एक गॉव मे फेरू नाम का एक व्यापारी रहता था ।

बाद मे वह हरिके नामक एक दूसरे गाँव में जाकर बस गया। यहाँ उसका व्यापार बहुत अच्छा चला। फेरू ने यहाँ दयाकौर के साथ अपना दूसरा विवाह कर लिया। इन्ही दयाकौर के गर्भ से गुरु अगद का जन्म हुआ और इनका नाम लहिणा रखा गया।

लहिणा ने मत्ते दी सराय की एक स्त्री के साथ अपना ब्याह किया, जिसका नाम खीवी था। कालान्तर मे खीवी से एक पुत्री और दो पुत्र हुए। लडकी का नाम था अमरो और लडकों के नाम थ दासू और दातू।

ये लोग हरिके गाँव से उठकर फिर मत्ते दी सराय मे रहने लगे। मगर मुगलो और बलूचियो के हमले से जब मत्ते दी सराय तबाह हो गया, तब ये लोग खडूर नामक गाँव मे चले आये। यह गाँव अमृतसर जिले की तरनतारन तहसील मे है।

लहिणा पहले दुर्गा के उपासक थे। जिस घटना से यह दुर्गा की उपासना छोडकर बाबा नानक के अनन्य भक्त हो गये वह यह है। खडर मे जोधा नाम का एक सिक्ख रहता था। गुरु नानक का यह परमभक्त था। रात के पिछले पहर वह नित्यप्रति जपुजी का तथा आसा दी वार का पाठ किया करता था। एक सुन्दर रात्रि को लहिणा ने जोधा के मुख से ये मधुर कडियाँ बड़े ध्यान से सुनी और वह उधर आकृष्ट होगये—

"जितु सेविऐ सुख पाईऐ सो साहिबु सदा समालीऐ।
जितु कीता पाईऐ आपणा सा घाल बुरि किउ घालीऐ॥
मदा मूलि न कीचई दे लंमी नदरी निहालीऐ॥
जिउ साहिब नालि न हारीऐ तेवे हा पासा ढालीऐ॥
किछु लाहे उप्परि घालिऐ।"

अर्थात्—सदा याद रख तू उस मालिक को, जिसकी सेवा करने से ही तुझे सच्चा सुख मिलेगा.

ऐसे बुरे कर्म तूने किये ही क्यों, जिनके कारण तुझे ये सारे दुःख भोगने पडे ?

तू बुरा काम बिल्कुल न कर, अपनी ओर तू अच्छी तरह नज़र डाल;

ऐसा पासा फेक, जिससे कि तू मालिक के साथ बाज़ी न हारे, बल्कि तुझे कुछ लाभ हो।

सवेरा होते ही लहिणा ने जोधा से पूछा कि, 'वह किसका रचा भजन था, जो तुम बडे प्रेम से रात को गा रहे थे ?'

'बाबा नानक का रचा' जोधा ने कहा, 'परमात्मा के वे बडे ऊँचे भक्त है। रावी के किनारे वे करतारपुर मे विराजते है।'

सुनते ही लहिणा का गुरु-विरहातुर मन व्याकुल हो उठा बाबा नानक के दर्शन को, और वह सयोग भी आ गया। अपने कुटुबियो और कुछ मित्रो को लेकर वे ज्वालामुखी की यात्रा करने जा रहे थे। रास्ते मे करतारपुर पडता था। वहाँ ठहर गये बाबा नानक का दर्शन करने के लिए। दर्शन किया और बाबा के उपदेश भी सुने। अतर का चोला पलट गया। दृष्टि खुलगई। इरादा बदल दिया। आगे नही बढे, हालाकि साथ के यात्रियो ने बहुत समझाया। बाबा के चरणो को पकड़ लिया, वहीं जमकर बैठ गये। पर सद्गुरु ने कहा-'अभी तू घर लौटजा; बाल-बच्चो से मिलकर कुछ दिनो के बाद फिर मेरे पास आ जाना, तब तुझे मे अगीकार करूँगा।'

घर एक बार लौटकर चले तो गये, पर मन को वही छोडकर। घरवालो को समझा-बुझाकर फिर करतारपुर चले आये। साँझ का समय था। बाबा नानक तब खेत पर थे। गाय-भसो के लिए घास लाने गये थे। वही पर लहिणा सीधे पहुँचे और घास के तीन बडे-बडे गट्ठरो को एक साथ ही सिर पर लादकर गुरु के घर ले आये। पानी और गीली मिट्टी से सारे कपडे सन गये थे। घास के इन गठ्टो को एक-एक करके भी ले जाने के लिए बाबा के दोनो पुत्र भी तैयार नही हुए थे। गुरु-सेवा की यह लहिणा की पहली परीक्षा थी।

एक साल गुरु नानकदेव के घर की कच्ची दीवार अति वर्षा के कारण गिर पड़ी थी। गुरु की आज्ञा से उस दीवार को तीन बार गिरा-

गिराकर इन्होने अकेले ही उठाया था। और भी कितने ही अवसरों पर गुरु नानक ने लहिणा की कठिन-से-कठिन परिक्षाएँ ली, और यह उनमे उत्तीर्ण हुए। आज्ञा-पालन मे यह हमेशा सब शिष्यो और दोनो पुत्रों से भी आगे रहते थे। 'टिक्के दी वार' मे आया है—'जिनि कीती सो मनरणा को सालु जिवाहे साली।' अर्थात्, लहिणा ने गुरु नानक की हरेक आज्ञा का पालन किया, चाहे वह आज्ञा आवश्यक हो या अनावश्यक चाहे, भटकँटैया हो, चाहे धान। इस पवित का यह भी एक अर्थ किया जाता है कि, गुरु नानक के दोनो पुत्र भटकँटैया थे और लहिणा था धान। गुरु नानकदेव ने अच्छी तरह परखकर देख लिया कि लहिणा ही उनका एक ऐसा शिष्य है, जो उनकी गद्दी का अधिकारी हो सकता है, और इन्हे ही उन्होने अपनी जगह बिठलाकर भाई बुठ्डा के हाथ से तिलक करा दिया। गुरु की आज्ञा से यह खडूर मे जाकर रहने लगे।

गुरु नानकदेव का शरीर छुट जाने पर गुरु अगद को उनके वियोग का दु.ख इतना अधिक असह्य हुआ कि वे एक बद कोठरी के अदर जाकर बैठ गये और वहाँ एकान्त मे गुरु के ध्यान मे निरन्तर लौलीन रहने लगे। गुरु नानक के एक प्रमुख शिष्य भाई बुठ्डा ने बडी मुश्किल से खोजते-खोजते इनका पता लगाया और उस बंद कोठरी से बाहर निकाला। गुरु अगद ने भाई बुड्डा को छाती से लगाकर उस समय यह सलोक कहे :—

"जिसु पिआरे सिउ नेहु तिसु आगे मरि चल्लिए।
ध्रिगु जीवण संसार ताकै पाछै जीवणा॥
जो सिरु साई ना निवै सो सिरु दीजै डारि।
नानक जिसु पिजर महि विरहा नही, सो पिंजरु लै जारि॥"

गुरु अंगद का नित्य का कार्यक्रम तबसे बराबर यह रहने लगा—बड़े सवेरे उठकर ठडे पानी से नहाना, कुछ समयतक आत्म-चिंतन व जपुजी का पाठ करना, गायको से आसा दी वार का गान सुनना, और फिर दीन-दुखियों और रोगियों, खासकर कोढ़ियों को जाकर देखना और उनकी सेवा-शुश्रूषा करना, लोगों को गुरु नानक की शिक्षाओं का

उपदेश देना और लगर में सबको, बिना किसी-भेद-भाव के, प्रेम के साथ भोजन कराना और किसी-किसी दिन छोटे-छोटे बच्चों के खेल देखना।

शेरशाह द्वारा परास्त हुमायूँ बगाल से जब पश्चिम की तरफ विवश होकर भागा, तब उसे रास्ते मे मालूम हुआ कि गुरु नानकदेव की गद्दी पर गुरु अगद, जो एक पहुँचे हुए फकीर है, उपदेश दे रहे हैं। उसने खडूर जाकर गुरु साहब के दर्शन किये, और उनसे आशीर्वाद माँगा, जो उसे मिला। कुछ दिन मुसीबते झेलने के बाद वह विजयी हुआ।

गुरु अगद ने ही सबसे पहले गुरु नानकदेव के पदो, पौडियो और सलोको का सग्रह कराकर 'गुरुमुखी' नाम की एक नई लिपि मे लिखवाया। इस लिपि का आविष्कार गुरु अगद ने स्वय ही किया। इसमे केवल ३५ अक्षर है।

परम गुरुभक्त शिष्य अमरू को गुरु-गद्दी पर बिठलाकर और पाँच पैसे और एक नारियल उसके आगे भेटस्वरूप रखकर गुरु अंगद ने उसे अपना उत्तराधिकारी बना दिया। अमरू उस दिन से गुरुअमरदास के नाम से प्रख्यात हो गये।

चैत सुदी ३, संवत् १६०९ को गुरु अगद ने सिक्खों को बहुत बड़ा भंडार दिया, और सिक्ख धर्म के सिद्धांतों पर दृढ़ रहने के लिए उन्हे अच्छी तरह समझाया। दूसरे दिन चौथ को बड़े सवेरे स्नान करके जपुजी का पाठ किया, और 'वाह गुरु' कहते हुए चोला छोड दिया।

गुरु अमरदास को गोइदबाल मे जाकर रहने का आदेश दे गये।

बानी-परिचय

गुरु अंगद ने बहुत अधिक रचना नही की। गुरु नानकदेव की सेवा-बंदगी करते और उनकी बानी का अपूर्व रस लेते-लेते ही उनका सारा समय बीता। जो थोडी-सी बानी गुरु अंगद की ग्रन्थ साहब में महला २ के अंतर्गत संगृहीत मिलती है, वह भिन्न-भिन्न रागों की

'वारों' के रूप में है। 'आसा दी वार' में तो इनके अनेक सलोक है ही, रामकली, सारग, मलार, सूही, सिरी, सोरठ और माँझ की भी वारो मे इनके कई सलोक और पौडियाँ है।

गुरु अगद ने सीधी-सादी मगर चुभती भाषा मे प्रेम का और विरह और वैराग्य का बड़ा सुन्दर निरूपण किया है। गुरु-भक्ति की महिमा के कुछ सलोक तो इनके अनूठे है। पद-पद मे आत्मानुभूति छलकती है। कुछ रचना तो इनकी ऐसी है, जो गुरु नानक की बानी से बिल्कुल मिल जाती है। माँझ और सारग की वारे तो बहुत ही मधुर है। कहते है कि 'गुरुमुखी' लिपि का आविष्कार कर चुकने पर आनन्द-विह्वल होकर गुरु अंगद ने सारग की वार की रचना की थी। हरि-नाम का आकठ अमृत पीकर सारंग की वार मे यह सलोक इन्होने वस्तुतः परमतृप्ति की ऊँची अवस्था मे कहा है—

"जिन वडिआई तेरे नाम की यह रते मन माहि।
नानक अमृतु एक है दूजा अमृतु नाहि॥
नानक अमृतु मनै माहि पाईए गुरपरसादि।
तिनी पीतारंग सिउ जिन कउ लिखिआ आदि॥

आधार

१. गुरु ग्रन्थ साहिब, सर्वहिन्द सिक्ख मिशन, अमृतसर
२. दि सिक्ख रिलीजन (भाग २), मॅकालीफ

आसा दी वार

सलोक

जे सउ चंदा उगवहि सूरज चड़हि हजार॥
एते चानण होंदिआँ गुर बिनु घोर अंधार॥१॥

---

१. यदि सौ चंद्र उदय हों, और हजार सूरज भी आकाश पर चढ जायें, तोभी इतने (प्रचंड) प्रकाश-(पुञ्ज) में भी बिना गुरु के घोर अंधकार ही छाया रहेगा।

इहु जगु सचै की है कोठड़ी सचे का विचि वासु ॥
इकन्हा हुकमि समाइ लए इकन्हा हुकमे करे विणासु ॥
इकन्हा भाणै कढ़ि लए इकन्हा माइआ विचि निवासु ॥
एव भि आखि न जापई जि किसै आणे रासि ॥
नानक गुरमुखि जाणीऐ जाकउ आपि करे परगासु ॥

पउडी

नानक जीअ उपाइकै लिखि नावै धरमु बहालिआ ॥
ओथै सचो ही सचि निबडै चुणि वखि कढे जजमालिआ ॥
थाउ न पाइनि कूड़िआर मुह काल्है दोजकि चालिआ ॥
तेरै नाइ रते से जिणि गए हारि गए सि ठगण वालिआ ॥
लिखि नावै धरमु बहालिआ ॥२॥

सलोक

हउमै एहा जाति है हउमै करम कमाहि ॥
हउमै एई बंधना फिरि फिरि जोनी पाहि ॥

---

२. जगत् यह सत्य की कोठरी है; इसके अंदर निवास सत्य का है।

किसीको तो वह अपनी आज्ञा से अपने आपमें लौलीन कर लेता है, और किसीको अपनी आज्ञा से नष्ट कर देता है।

किसीको अपनी मर्जी से वह माया में से खींच लेता है, और किसीको माया में ही रहने देता है।

यह कहा भी नहीं जा सकता कि वह किसे लाभ पहुचाता है।

नानक, उसीको पवित्रात्मा जानना चाहिए, जिसके अंतर में वह अपना प्रकाश भरदे।

नानक, उसने जीवों को जन्म देकर उनके नाम लिखलिये, और (उनके कर्मों के अनुसार न्याय करने के लिए) धर्मराज को नियुक्त कर दिया।

उसके न्यायालय में सच्चों को ही न्याय मिलता है; जो जंजाल-ग्रस्त होते है, उन्हें वह चुन-चुनकर निकाल बाहर कर देता है,

वहा झूठे को जगह नहीं मिलती; वे मुंह को काला करके नरक जाते है।

जो तेरे नाम में अनुरक्त हो गये, उन्हींकी जीत होती है; जो ठग होते हैं वे बाजी हार जाते है।

परमात्मा ने नाम लिख लिये है, और धर्मराज को नियुक्त कर दिया है।

हउमै किथुहु ऊपजै कितु संजमि इह जाइ ॥
हउमै एहो हुकमु है पाइऐ किरति फिराहि ॥
हउमै दीरघ रोगु है दारू भी इसु माहि ॥
किरपा करे जि आपणी ता गुर का सबदु कमाहि ॥
नानकु कहै सुणहु जनहु इतु संजमि दुख जाहि ॥

पउड़ी

सेव कीती संतोखईं जिन्ही सचो सचु धिआइआ ॥
ओन्ही मंदै पैरु न रखिओ करि सुकृत धरमु कमाइआ ॥
ओन्ही दुनीआ तोड़े बंधना अंनु पाणी थोड़ा खाइआ ॥
तूं बखसीसा अगला नित देवहि चड़हि सवाइआ ॥
वडिआई वडा पाइआ ॥३॥

---

३. अहंकार स्वभावतः अहंकार के ही कर्म कराता है।

अहंकार वह (भव)-बन्धन है, जिससे बार-बार जन्म लेना पड़ता है।

अहंकार वह उत्पन्न कहां से होता है, इसका मूल क्या है, और किस साधन से यह नष्ट हो सकता है?

अहंकार वह आदेश है कि मनुष्य अपने कृत कर्मों के अनुसार (संसार-चक्र पर) घूमता ही रहे।

अहंकार जीर्ण रोग अवश्य है, पर उसकी एक औषधि भी है, और वह हमारे अंदर ही है।

यदि परमात्मा अपनी कृपा करदे, तो गुरु का उपदेश सुलभ हो सकता है।

नानक कहता है कि हे मनुष्यो! इसी एक साधन से दुःख का निवारण हो सकेगा।

उन्होंने ही सच्ची सेवा-बंदगी की है, और उन्हें ही संतोष प्राप्त हुआ है, जिन्होंने कि परमसत्य के रूप में परमात्मा का ध्यान किया है।

उन्होंने बुरे मार्ग पर कभी पैर नहीं रखा, सदा सुकर्म ही किया है, और धर्म की ही कमाई की है।

उन्होंने संसार के बंधन तोड़कर फेंक दिये हैं, और थोड़े-से अन्न और जल पर उन्होंने अपना निर्वाह किया है।

तू बड़े-से-बड़ा दाता है, तू सदा ही देता है, जो सवाया हो जाता है।

उसे उन्होंने ही पाया, जिन्होंने कि उसे बड़े-से-बड़ा माना।

सलोक

सलामु जवाबु दोवै करे मुढहु घुथा जाइ ॥
नानक दोवै कूडीआ थाइ न काई पाइ ॥४॥
चाकरु लगै चाकरी नाले गरबु वादु ॥
मल्ला करे घणेरीआ खसम न पाए सादु ॥
आपु गवाइ सेवा करे ता किछु पाए मानु ॥
नानक जिसनो लग्गा तिसु मिलै लग्गा सो परवानु ॥५॥
जो जीइ होइ सु उग्गवै मुह का कहिआ वाउ ॥
बीजै बिखु मंगै अंमृतु देखहु एहु निआउ ॥६॥
नालि इआणे दोसती कदे न आवै रासि ॥
जेहा जाणै तेहो वरते वेखहु को निरजासि ॥
वसतू अंदरि वसतु समावै दूजी होवै पासि ॥

---

४. जो मनुष्य मालिक की बन्दना करता है और साथ-ही-साथ उसे जवाब भी देता है, या उसके कामों में दोष निकालता है, उसने शुरू से ही गलती की हैं।

उसकी बंदना और उसकी आलोचना दोनों ही अर्थहीन हैं; उसे, नानक, मालिक के दरबार मे जगह मिलने की नही।

५. नौकर नौकरी करते हुए जब गरूर करता है, और झगडा भी,

और बहुत बकझक भी करता है, तो इससे वह अपने मालिक को खुश नही करता।

अपने आपको खोकर यदि वह सेवा करे, तो उसे कुछ आदर मिलेगा।

नानक, मालिक को वही पा सकेगा, जिसके मनमें उससे मिलने की अभिलाषा होगी; और उसकी अभिलाषा अवश्य पूरी होगी।

६. जो मनमें होता है वही मुँह से निकलता है।

विष बोता है, और अमृत पाने की आशा करता है, देखो तो इस न्याय को!

७. मूर्ख के साथ मित्रता करने से कभी लाभ नही होगा।

वह अपनी समझ से काम करता है; देखे और परखे कोई उसका काम।

पहले (भांडे में से) दूसरी वस्तु निकाल देने पर कोई वस्तु उसमें रखी जा सकती है।

(अर्थात्, सांसारिक प्रेम से हृदय खाली करने के बाद ही परमात्मा का प्रेम उसमें प्रवेश पायेगा।)

साहिब सेती हुकमु न चल्लै कही बणै अरदासि ॥
कूड़ि कमाणै कूड़ो होवै नानक सिफति विगासि ॥७॥
होइ इआणा करे कंमु आणि न सक्कै रासि ॥
जे इक अध चंगी करे दूजी भी वेरासि ॥

पउड़ी

चाकरु लग्गै चाकरी जे चल्लै खसमै भाइ ॥
हुरमति तिसनो अग्गली ओहु वजहु भि दूणा खाइ ॥
खसमै करे बराबरी फिरि गैरति अंदरि पाइ ॥
वजहु गवाए अग्गला मुहे मुहि पाणा खाइ ॥
जिसदा दित्ता खावणा तिसु कहिऐ साबासि ॥
नानक हुकमु न चल्लई नालि खसम चल्लै अरदासि ॥८॥

सलोक

आपे साजे करे आपि जाई भि रक्खै आपि ॥
तिसु विचि जंत उपाइकै देखै थापि उथापि ॥
किसनो कहीऐ नानका सभु किछु आपे आपि ॥

मालिक के ऊपर हुक्म नहीं चल सकेगा ; वहाँ तो विनती से ही काम चलेगा ।
झूठ की कमाई से झूठ ही हाथ आयेगा ;
नानक ! प्रभु की स्तुति में ही सच्चा आनन्द है ।

८. यदि कोई आप अजान है और वह कोई काम करने बैठ जाये, तो उसे वह ठीक तरह से नहीं कर सकता ;

भलेही एक आध काम वह ठीक तरह से करले, पर बाकी का सारा काम तो वह बिगाड ही देगा ।

यदि नौकर अपने मालिक की मरजी के अनुसार काम करता है, तो उसका अधिक मान होता है, और उसे दूनी तलब मिलती है ।

यदि वह मालिक की बराबरी करता है, तो वह अपनी ईर्ष्या को बढावा देता है, अपनी भारी तलब को गँवा बैठता है, और मुँह पर जूते खाता है ।

धन्य है वह, जिसका दिया हुआ तू खाता है ।

नानक, हुक्म तेरा नहीं चलेगा; मालिक के आगे तेरी एक विनती ही चलेगी ।

पउडी

वडे कीआ वडिआईआ किछु कहणा कहणु न जाइ ॥
सो करता कादर करीमु दे जीआ रिजकु संबाहि ॥
साई कार कमावणी धुरि छोड़ी तिंनै पाइ ॥
नानक एकी बाहरी होर दूजी नाही जाइ ॥
सो करे जि तिसै रजाइ ॥९॥

देंदे थावहु दिता चंगा मनमुखि ऐसा जाणीऐ ।
सुरति मति चतुराई ताकी किआ करि आखि बखाणीऐ ॥
अंतरि बहिके करम कमावै सो चहु कुंडी जाणीऐ ।
जो धरमु कमावै तिसु धरम नाउ होवै पापि कमाणै पापी जाणीऐ ॥
तूं आपे खेल करहि सभि करते किआ दूजा आखि वखाणीऐ ।
जिच्चर तेरी जोति तिंच्चर जोती विचि तू बोलहिं ॥

---

९. आपही वह सजाता है; आपही जहा जिस वस्तु को बनाकर रखना है वहा रख देता है,

इस संसार में जीव-जन्तुओं को पैदा कर वह स्वयं उनका जन्म और उनका मरण देखता रहता है ।

किससे कहें हम, नानक, जबकि वह आपही सब कुछ करता है ?

उस महान् की महामहिमा कुछ कहते नहीं बनती,

वही कर्त्ता है, वही सर्वशक्तिमान है, वही दाता है;

वही अपने पैदा किये जीवों को आहार पहुँचाता है ।

मनुष्य को सिरे से ही वह कर्म करना चाहिए, जिसका कि परमात्मा ने उसे निर्देश कर रखा है ।

नानक, एक वही ऐसा परमपद है जिसमें कि हम रम सकते है दूसरा ऐसा और कोई भी पद नहीं ।

जो उसे भाता है वह वही करता है ।

१०. मनमुखी लोग (दुष्टजन) सोचते है कि दाता की अपेक्षा दान अच्छा है । क्या कहा जाये उनकी बुद्धि को, उनकी समझ को, और उनकी होशियारी को !

जो छिपकर कर्म करता है वह चारों ओर उजागर होजाता है;

जो धर्म का साधन करता है वह धर्मात्मा कहा जाता है, और जो पाप करता है, वह पापी ।

विणु जोती कोई किछु करिहु दिखा सिआणीऐ ॥
नानक गुरमुखि नदरी आइआ हरि इक्को सुघड़ु सुजाणीऐ ॥१०॥
दिसै सुणीऐ जाणीऐ साउ न पाइआ जाइ ॥
रुहला टुंडा अंधुला किउ गलि लगै धाइ ॥
भै के चरण कर भाव के लोइण सुरति करेइ ॥
नानकु कहै सिआणीए इव कंत मिलावा होइ ॥११॥

सलोक

नानक अंधा होइकै रतण परखण जाइ ॥
रतना सार न जाणई आवै आपु लखाइ ॥१॥
जपु जपु सभु किछु मंनिऐ अवरि कारा सभि बादि ॥
नानक मंनिआ मंनीऐ बुझीऐ गुरपरसादि ॥२॥

हे कर्त्तार ! तू स्वयं ही सारी लीला रचता है ।

जबतक इस घट के अंदर तेरी ज्योति जलती है, तबतक तू इसमें बोल रहा है—तेरे बिना यदि किसीने कुछ किया हो तो मुझे वह दिखादे जिससे कि मैं उसे पहचानलूँ ।

नानक, गुरु के उपदेश से ही वह हरि दृष्टि में आता है, और चतुर और बुद्धिमान वही एक है ।

११. हम देखते है, और सुनते है, और जानते है कि परमात्मा सांसारिक विषय-भोगो के बीच प्राप्त नही किया जा सकता ।

बिना पैर, बिना हाथ और बिना आंख के उसे गले लगाने के लिए कैसे दौड़ा जा सकता है ?

(भाव यह है कि जबतक मनुष्य सासारिक भोगों में लिप्त है, तबतक वह बिना पैर का, बिना हाथ का और बिना आंख का ही है ।)

(ईश्वर-) भीरुता के बना तू चरण, भाव के बना हाथ, और सुरति के बना तू नेत्र ।

नानक, गुणवान (पारखी) ही ऐसे रत्नो को बिसाहेंगे; किन्तु जो लोग रत्नो का मोल नही जानते, वे दुनिया में अन्धों की तरह भटकते है ।

१. सार=कीमत । आवै आपु लखाइ=अपना प्रदर्शन करके (अपना मजाक करा-कर) लौट जायेगा ।

२. जप, तप, सबकुछ उसकी आज्ञा पर चलने से प्राप्त हो जाता है; और सब काम व्यर्थ हैं ।

सिफति जिन्हा कउ बखसीऐ सेई पोतेदार ॥
कुंजी जिन कउ दितीआ तिन्हा मिले भंडार ॥३॥
जह भंडारी हू गुण निकलहि ते कीअहि परवाणु ॥
नदरि तिन्हा कउ नानका नामु जिन्हा नीसाणु ॥४॥
कीता किआ सालाहीऐ करे सोइ सालाहि ॥
नानक एकी बाहरा दूजा दाता नाहि ॥५॥
करता सो सालाहीऐ जिनि कीता आकारु ॥
दाता सो सालाहीऐ जि सभसै दे आधारु ॥६॥
नानक आपि सदीव है पूरा जिसु भंडारु ॥
वडा करि सालाहीऐ अंतु न पारावारु ॥७॥
गुरु कुंजी पाहु निवलु मनु कोठा तनु छति ॥
नानक गुर बिनु मन का ताकु न उघड़ै अवर न कुंजी हथि ॥८॥

उसी (मालिक) की आज्ञा तू मान, जिसकी आज्ञा मानने-योग्य है । अथवा उस सतपुरुष की आज्ञा मान, जिसने स्वयं उसकी आज्ञा को माना है); गुरु की कृपासे ही उसे हम जान सकते हैं ।

३ जिनको उसका गुण-गान बख्शीश में मिला है वेही सच्चे हैं;
जिन्हें कुंजी दी गई है, उन्हें ही वे भंडार मिलते हैं ।

४. वे ही भंडार मान्य या प्रमाणित है, जिनसे कि सुकर्म प्रकट होते हैं ।
नानक, उन्हींपर परमात्मा की कृपा-दृष्टि होती है, जिन्होंने कि उसके नाम को अपना निशान बना लिया है ।

५. सृष्टि की सराहना क्यों करता है तू ? तू तो सिरजनहार की सराहना कर ।

६. नानक, सिवा उस मालिक के दूसरा कोई देनेवाला नहीं, जिसने सबको सहारा दे रखा है ।

७. नानक, वह परमात्मा ही सदा रहनेवाला है, जिसने कि सारे भंडारों को भर रखा है !
उसी बडे-से-बडे की तू सराहना कर, जिसका न तो अंत है, न कोई पार ।

८. ताले की कुंजी तो गुरु के ही पास है ; मन तेरा कोठा है और यह शरीर है उसकी छत ।

कथा कहाणी वेदीं आणी पापु पुंनु बीचारु ॥
दे दे लेणा लै लै देणा नरकि सुरगि अवतार ॥
उतम मधिम जातीं जिनसी भरमि भवै संसार ॥९॥
अमृत बाणी ततु वखाणी गिआन धिआन विचिआई ॥
गुरमुखि आंखी गुरमुखि जाती सुरतीं करमि धिआई ॥१०॥
हुकमु साजि हुकमै विचि रखै हुकमै अंदरि वेखै ॥
नानक अगहु हउमै तुटै तां को लिखए लेखै ॥११॥

मलार की वार

सलोक

नानक दुनिआ कीआं वडिआईआं अगी सेती जालि ॥
एन्ही जलीईं नामु विसारिआ इक न चलीआ नालि ॥१॥

नानक, बिना गुरु के मन (हृदय) का द्वार खुल नहीं सकता, क्योंकि किसी दूसरे के पास उसकी कुंजी नहीं है।

९. वेद पढनेवाले (देवताओं की) कथा-कहानियां लेकर आये है और पापपुण्य की उन्होंने व्याख्या की है।

मनुष्य जो-जो देते है वही पाते है, और जो-जो वे पाते है वही देते है, और इसलिए अपने कर्मो के अनुसार वे स्वर्ग या नरक मे जन्म लेते है।

दुनिया भ्रम में भूल रही है कि कौन तो उत्तम जातियां है और कौन मध्यम या नीची, और कितने प्रकार की है।

१०. किंतु (गुरु की) अमृतवाणी तत्त्व (सत्यवस्तु) का वर्णन करती है, ऊँचे-से-ऊँचे ज्ञान और ध्यानतक पहुंचा देती है।

पवित्रात्मा उसका उच्चारण करते है, पवित्रात्मा उसे जानते है;

जिन्हे वह ईश्वरीय ज्ञान प्राप्त हो जाता है, वे उसमें लीन हो जातेहैं, और तदनुसार उनके सब कर्म भी होते है।

११. उसने अपनी आज्ञा से सबको रचा है, और उसी आज्ञा से वह सबको देखता रहता है।

नानक, यदि मनुष्य के अहंकार का अंत हो जाय, तो वह 'उसके' लेखे में आ सकता है।

१. नानक, दुनिया की बडाइयों में लगादे आग;

इन्हीं आग-लगी बडाइयो ने तो उसका नाम बिसार दिया है; इनमें से एक भी

नाउ फकीरै पातिसाहु मूरख पंडित नाउ ॥
अंधे का नाउ पारखू एवै करे गुआउ ॥२॥
इलति का नाउ चउधरी कूड़ी परे थाउ ॥
नानक गुरुमुखि जाणीऐ कलि का एहु निआउ ॥३॥

सूही की वार

सलोक

जा सुखु ता सहु राविओ दुखि भी संम्हालिओइ ॥
नानकु कहै सिआणीए इउ कंत मिलावा होइ ॥१॥
किसही कोइ कोइ मंञु निमाणी इकु तू ॥
किउ न मरीजै रोइ जा लगु चिति न आवही ॥२॥
तुरदे कउ तुरदा मिलै उडते कउ उडता ॥
जीवते को जीवता मिलै, मुए कउ मूआ ॥
नानक सो सालाहीऐ जिनि कारणु कीआ ॥३॥

तो (अंत मे) तेरे साथ चलने की नहीं ।

२ लो, भिखमंगे को तो कहा जाता है बादशाह, और मूर्ख को दे दिया नाम पंडित का,

अंधे को कहते है पारखी—ऐसा बातें चलती है ।

३. बदमाश को कहते है चौधरी, और झूठ बोलनेवाले को पूरा सिद्ध ।

नानक, कलिकाल का यही न्याय है ।

(अच्छे और बुरे की) पहचान कैसे की जाय, यह तो गुरु के मुख (उपदेश) से ही जाना जा सकता है ।

१. जिसका नाम तू सुख में याद करता है, दुःख मे भी उसे याद कर ।

नानक कहता है, हे सयानी, इसी तरह स्वामी से तेरा मिलन होगा ।

२. किसीका कोई मित्र है, तो किसीका कोई; पर मेरा तो—जिसे कोई मान नही देता—एक तू ही है ।

जबतक कि तू मेरे मन मे नही समाता, तबतक मै क्यो न रो-रोकर मरूँ ?

३. तुरदे=उडना=चलनेवालो का मेल चलनेवालों के साथ और उडनेवालों का मेल उडनेवालों के साथ होता है ।

सालाहिए=सराहना करनी चाहिए । कारणु कीआ=इस महान् नियम (कानून) को स्थापित किया ।

जिना भउ तिन नाहि भउ मुचु भउ निभविआह ॥
नानक एहु पटंतरा तितु दीवाणि गइआह ॥४॥
राति कारणि धनु संचीऐ भलकै चलणु होइ ॥
नानक नालि न चालई फिरि पछुतावा होइ ॥५॥
जिन्ही चलणु जाणिआ से किउ करहि विथार ॥
चलण सार न जाणनी काज सवारणहार ॥६॥

माझ की वार

सलोक

अठी पहरी अठ खंड नावा खंडु सरीरु ॥
तिसु विचि नउ निधि नामु इकु भालहि गुणी गहीरु ॥१॥
करमवंती सालाहिआ नानक करि गुरु पीरु ॥
चउथै पहरि सबाह कै सुरतिआ उपजै चाउ ॥२॥
तिना दरीआवा सिउ दोसती मनि मुखि सचा नाउ ॥
ओथै अंमृत वंडीऐ करमी होइ पसाउ ॥३॥

---

४. जो परमात्मा से डरते है, उन्हें दूसरो से कोई डर नहीं; जो उससे नहीं डरते उन्हे (पग-पग पर) बहुत डर है।

नानक, परमात्मा के न्यायालय मे दोनो को सामने खडा करना होगा।

५. राति कारणि=रात के लिए। संचीए=जोडता है, जमा करता है। भलकै= सवेरे। नालि=साथ मे।

६. जो यह जानते है कि एक-न-एक दिन यहा से जाना ही है, वे प्रपच में क्यो पडेगे ?

अरे ! वे अपने जाने की बात नही सोचते, बल्कि (इतनक) दुनिया के काम-काज सँभालने मे ही लगे रहते है।

१. आठ पहरो में मनुष्य दमन करके इन आठो को अपने वश मे करले ; पाचो भयकर पापो अथवा पाचो इन्द्रियो, और तीनो गुणो को और नवे अपने शरीर को।

एक प्रभु के नाम मे नौ निधिया भरी पडी है, जिनकी खोज मे बडे-बडे धर्मात्मा रहते है।

२. नानक, भाग्यवानो ने अपने गुरुओ और पीरो के दिखाये मार्ग से उस प्रभु की स्तुति की है।

सवेरे चौथे पहर जो उसका स्मरण करते है उन्हे अत्यन्त आनन्द होता है ;

कंचन काइआ कस्सीऐ वन्नी चड़ै चड़ाउ ॥
जे होवै नदरी सराफ की बहुड़ि न पाई ताउ ॥४॥
सत्ती पहरी सतु भला बहीऐ पड़िआ पासि ॥
ओथै पापु पुंनु बोचारीऐ कूड़ै घटै रासि ॥५॥
ओथै खोटै सट्टीअहि खरे खीचहि साबासि ॥
बोलणु फादलु नानक दुख सुख खसमै पासि ॥६॥

सोरठ की वार

नकि नथ खसम हथ किरतु धक्के दे ॥
जहाँ दाणे तहाँ खाणे नानक सचुहे ॥१॥

---

३. उन नदी-नालों मे वे प्रेम करते है, (जिनमें कि वे नहाते है।) और सत्यनाम उनके हृदय में, और उनके मुख मे होता है।

वहा अमृत बांटा जाता है, और कर्मों के अनुसार उनकी कृपा भी।

४. कसी जाने पर काया कचन-सी हो जाती है, उसपर खरा रंग चढ जाता है।

सराफ की नजर में चढ जाने पर उसे फिर से ताव पर चढाने की जरूरत नही रहती।

५. बाकी के सातो पहरो में अच्छा होगा कि मनुष्य सदा सत्य बोले और ज्ञानी-जनो की सगति में बैठे।

वहां बुरे और भले कर्मो का विचार होता है, और असत्य की पूंजी घटती है।

६. वहां खोटो को रद कर दिया जाता है, और सच्चों को शाबासी दी जाता है।

नानक, अपना दु:ख और सुख कहना व्यर्थ है स्वामी से, क्योंकि वह सब-कुछ जानता है।

१. नकेल मालिक के हाथ में है; मनुष्य अपने कर्मो के धक्के से चलता है।

नानक! यह सच है कि जहां वह देता है वहीं मनुष्य खाता है।

गुरु अमरदास

चोला-परिचय

जन्म संवत्—१५३६ वि०, वैशाख शु० १४

जन्म-स्थान—बसरका गॉव, (अमृतसर के पास)

पिता—तेजभान

माता—बखतकौर

जाति—खत्री (भल्ला)

भेष—गृहस्थ

मृत्यु-सवत्—१६३१ वि०, भादों पूर्णिमा

तेजभान भल्ला के चार पुत्र थे; अमरदास उनमे सबसे बड़े थे।

अमरदास का विवाह, २४ वर्ष की उम्र मे, मनसा देवी के साथ हुआ। इनको मोहरी और मोहन नाम के दो पुत्र हुए, और दानी और भानी नाम की दो पुत्रियाँ।

अमरदास पक्के वैष्णव धर्मानुयायी थे। हर एकादशी को व्रत रखते, और नित्यप्रति शालिग्राम की पूजा किया करते थे।

किन्तु इनका कोई गुरु नही था, और किसी ऐसे-वैसे को यह गुरु बनाना नही चाहते थे। बिना पूरे गुरु के हरि की बाट बताये तो कौन ? सो सद्गुरु की खोज मे यह व्यकुल रहने लगे।

एक दिन बडे सवेरे इसी सोच-विचार मे पडे थे कि अपने छोटे भाई के घर से गुरु नानकदेव के एक पद की कुछ कडियाँ एक मधुर कठ से निकलती हुई इन्होने सुनी। गुरु अंगद की पुत्री बीबी अमरो, जिनका व्याह कुछ ही दिन पहले अमरदास के एक भतीजे के साथ हुआ था, उस पद को मारू राग मे गा रही थी। कडियाँ वे इस पद की थी—

"करणी कागदु मनु मसवाणी बुरा भला दुइ लेख पए।
जिउ जिउ किरतु चलाए तिउ चलीऐ तउ गुण नाही अतु हरे॥
चित चेतसि की नही बावरिआ। हरि बिसरत तेरे गुण गलिआ॥

इस शब्द-वाण से अमरदास बिध गये। अतर के पट उनके खुल गये। बीबी अमरो से उन्होने इस आकर्षक पद को बार-बार दोहराने के लिए अनुरोध किया, और सुनकर बहुत आनन्दित हुए। उन्हें अब गुरु के निकट पहुँचने की वह विकट बाट सहज ही हाथ लग गई। बीबी अमरो ने गुरु अगद की शरण मे उन्हें पहुँचा दिया। गुरुकी सेवा-बदगी मे वे अब मौज से रहने लगे।

गुरु अगद की आज्ञा से अमरदास गोइन्दवाल नगर मे जाकर बैठ गये। गोविन्द नाम के एक मुकदमे मे फँसे हुए व्यक्ति ने गुरु अंगद के

आगे यह संकल्प किया था कि यदि वह मुकदमे को जीत गया तो एक नगर बसायेगा। भाग्य से वह मुकदमा जीत गया, और उसने व्यास नदी के तट पर उक्त नगर को बसाया। अमरदास ने उस नये नगर का नाम गोइन्दवाल रखा। अमरदास रात को रोज़ गोइन्दवाल मे रहा करते, और दिन मे खडूर आ जाया करते थे। पीछे बसरका छोडकर स्थायी रूप से गोइन्दवाल मे जाकर बस गये।

गोइन्दवाल मे अमरदास की दिन-चर्या यह रहा करती थी : काफी वृद्ध थे, फिरभी खूब सवेरे उठते, और गुरु के स्नान के लिए व्यास नदी का जल लेकर नित्यप्रति खडूर जाया करते। गोइन्दवाल और खडूर के रास्ते मे 'जपुजी' का पाठ करते जाते, जो प्राय: आधे मार्ग मे ही समाप्त हो जाता था। खडूर मे आकर 'आसा दी वार' सुनते, रसोई के बर्तन साफ करते, पानी भरते और जगल से लकडी भी लाकर देते थे। फिर साँझ को 'सोदरु' सुनते, और गुरु के पैर दबाकर और उन्हे सुलाकर गोइन्दवाल जाकर सोते थे। ऐसी ज्वलन्त गुरु-भक्ति थी अमरदास की। यही कारण था कि गुरु अगद ने इन्हे अपनी गद्दी का सच्चा अधिकारी माना।

गुरु अमरदास की अनूठी साधुता और ऊँची रहनी की अनेक सुन्दर कथाएँ प्रसिद्ध है। सत्सग को इन्होने खूब चेताया, और सैकडो साधको को परमात्मा के नाम और भक्ति का ऊँचा उपदेश दिया। इनके उपदेश प्राय: इस प्रकार के हुआ करते थे—

"तुम एक प्रभु का ही नाम सदा सुमरो, हमेशा नम्र रहो और अहकार को त्यागदो; दान-पुण्य और सारे जप-तप को यह अहंकार अग्नि की तरह जलाकर भस्म करदेता है।

"यह ससार स्वप्न अथवा छाया की भाँति है। पुत्र, कलत्र और धन-सपदा सब अनित्य है। सपने मे रक हो जाता है राजा, और राजा हो जाता है रक, पर जागने पर वह वस्तुत: जो होता है वही रहता है। फिर मनुष्य किसके लिए तो आनन्द मनाये, और किसका करे शोक ?

"हमेशा तुम दूसरों का भला करते रहो। यह तीन प्रकार से किया

जा सकता है: अच्छी सलाह देकर, सामने अच्छा उदाहरण, और हृदय मे सदा लोक-कल्याण की कामना रखकर।

"नम्रता और क्षमाशीलता का अभ्यास करो। किसीके भी प्रति अपने मन मे द्वेष-भावना न आनेदो। यदि कोई तुम्हे कटु या अनादर-सूचक शब्द कह जाये, तो उसपर नाराज न होओ, बल्कि उसके साथ नम्रता का व्यवहार करो।

"साधुजनो की सेवा करो; भूखे को भोजन और नगे को वस्त्र दो। बड़े सवेरे उठकर जपुजी का पाठ करो। अपना कुछ समय जरूर पर-मात्मा की सेवा-बंदगी मे खर्च करो। किसीका भी मन न दुखाओ। नम्र बनो, और अहकार छोड़दो, और केवल उस सिरजनहार को ही अपना मालिक मानो।"

गुरु अमरदास की ऊँची साधुता और सहनशीलता इस एक घटना से प्रकट होती है। दातू ने अपने पिता गुरु अगद के खडूरवाले स्थान को खाली पाकर उसपर अपना अधिकार जमा लिया। उसने कहा कि, बुड्ढा अमरू गुरु-गद्दी पर कैसे बैठ सकता है, वह तो हमारे घर का एक नौकर था। वह गोइन्दवाल भी पहुँचा, और गुरु अमरदास को गालियाँ देते हुए ठोकर मारकर नीचे गिरा दिया। पर उन्होने उठकर दातू के पैर पकड लिये, और हाथ जोडकर कहा, 'महाराज, आपके चरणो में चोट तो नही लगी ? कृपाकर मुझे क्षमा कर दीजिए।' गोइन्दवाल की यह घटना क्या भृगु और विष्णु की सुप्रसिद्ध कथा की पुनरावृत्ति नही थी ?

बादशाह अकबर भी गुरु अमरदास का दर्शन करने एक बार गोइन्दवाल गया था, और लगर मे सबके साथ बैठकर उसने भोजन भी किया था।

गुरु अमरदास ने सिक्ख-धर्म के प्रचार के लिए २२ मंजे अर्थात् केन्द्र खोले थे।

अपने दामाद शिष्य जेठा को, जो इनकी सेवा-बंदगी मे आठों पहर रहा करते थे, वरदान के रूप मे अपनी गद्दी देकर संवत् १६३१ के

भादो की पूर्णिमा के दिन वाह गुरु और सतनाम का उच्चारण करते हुए गुरु अमरदास ने शरीर छोडा। जेठा चतुर्थ गुरु रामदास के नाम से प्रसिद्ध हुए। यहाँ से अब गुरु गोविन्दसिहतक क्रमशः जो सात गुरु हुए उनकी परंपरा गुरु अमरदास की पुत्री बीबी भानी और उनके पति जेठा के वश से चली।

गुरु अमरदास की मृत्यु का वर्णन उनके पौत्र आनन्द के पुत्र सुन्दर-दास ने पाँचवे गुरु अर्जुनदेव के अनुरोध पर लिखा था। इस रचना का नाम 'सदु' है, और यह रामकली राग मे गाई जाती है।

बानी-परिचय

गुरु ग्रन्थ साहिब में महला ३ के अतर्गत जितनी भी रचनाएँ सगृहीत है वे सब गुरु अमरदास की रची है। 'आनन्दु' इनकी सबसे प्रख्यात और सुन्दर रचना है। 'आनन्दु' को इन्होने अपने एक पौत्र के जन्म पर रचा था, और उस पौत्र का नाम भी 'आनन्दु' रखा था। 'आनन्दु' को आज भी सिक्ख सप्रदाय आनन्द-उत्सवों पर गाया करता है। यह है भी बड़ी आनन्द-प्रदायिनी रचना।

गुरु अमरदास के भक्ति-रसपूर्ण पद भी सैकड़ो है और वारे भी इनकी कई रागो मे है। बानी इनकी सरस और ऊँचे घाट की है, भाषा तथा भाव दोनों ही दृष्टियो से।

आधार

१ गुरु ग्रन्थ साहिब—सर्व हिन्द सिक्ख मिशन, अमृतसर

२ दि सिक्ख रिलीजन—(भाग ३) मॅकालीफ़

आनंदु

रागु रामकली

आनंदु भइआ मेरी माए सतिगुरु मैं पाइआ ॥
सतिगुरु त पाइआ सहज सेती मनि वजीआ वधाईआ ॥

---

१. सहज सेती=सहज ही, आसानी से। मनि=मन में, हृदय में। राग रतन···

राग रतन परवार परीआ सबद गावण आईआ ॥
सबदो त गावहु हरी केरा मनि जिनी वसाईआ ॥
कहै नानकु अनंदु होआ सतिगुरु मैं पाइआ ॥१॥
ए मन मेरिआ तू सदा रहु हरि नाले ॥
हरि नालि रहु तू मंन मेरे दूख सभि विसारणा ॥
अंगीकारु ओहु करे तेरा कारज सभि सवारणा ॥
सभना गला समरथु सुआमी सो किउ मनहु विसारे ॥
कहै नानकु मंन मेरे सदा रहु हरि नाले ॥२॥
साचे साहिब किआ नाही घरि तेरै ॥
घरी त तेरै सभु किछु है जिसु देहि सु पावए ॥
सदा सिफति सलाह तेरी नामु मनि वसावए ॥
नामु जिनकै मनि वसिआ वाजे सबद घनेरे ॥
कहैं नानकु सचे साहिब किआ नाही घरि तेरै ॥३॥
साचा नामु मेरा आधारो ॥
साचु नामु आधारु मेरा जिनि भुखा सभि गवाईआ ॥
करि सांति सुख मनि आइ वसिआ जिनि इच्छा सभि पुजाईआ ॥
सदा कुरबाणु कीता गुरू विटहु जिस दीआ एहि वडिआईआ ॥
कहै नानक सुनहु संतहु सबदि धरण पिआरो ॥
साचा नामु मेरा आधारो ॥४॥

आइआ=उत्तम राग और स्वर्ग की अप्सराएँ गुणगान करने के लिए आई हैं। सबदो=स्तुति, गुण। केरा=का (पूरवी हिंदी का प्रयोग। मनि जिनि वसाईआ=हृदय में जिसने परमात्मा को बसा लिया।

२. मेरिआ=मेरे। नाले=पास। सवारणा=सँवार लेगा, सुधार देगा। सभना गला समुरथु सुआमी=वह प्रभु सब वस्तुओं में व्यापक तथा शक्तिमान् है।

३. किआ ' तेरै—तेरे घर में क्या नही है? घरि=घर में। जिसु=जिसे। सदा सिफति सलाह तेरी=वह सदा तेरे गुणों की सराहना करेगा। बाजे सबद घनेरे=खूब आनन्द-बधाई बजेगी।

४. आधारो=अवलंब। भुखा सभि गवाईआ=मेरी सारी भूख को तृप्त या शांत करता है। पुजाईआ=पूरा करता है। कीता=किया है।

बाजे पंच सबद तितु घरि सभागै ॥
घरि सभागै सबद बाजे कला जितु घरि धारीआ ॥
पंचदूत तुधु वसि कीते कालु कंटकु मारीआ ॥
धुरि करमि पाइआ तुधु जिन कउ सि नामि हरिकै लागे ॥
कहै नानकु तह सुख होआ तितु घरि अनहद बाजे ॥५॥
साची लिवै बिनु देह निमाणी ॥
देह निमाणी लिवै बाझहु किआ करे वेचारिआ ॥
तुधु बाझु समरथ कोइ नाही कृपा करि बनिवारिआ ॥
एस नउ होरु थाउ नाही सबदि लागि सवारिआ ॥
कहै नानकु लिवै बाझहु किआ करे वेचारिआ ॥६॥
आनंदु आनंदु सभु को कहै आनंदु गुर ते जाणिआ ॥
जाणिआ आनंदु सदा गुर ते कृपा करे पिआरिआ ॥
करि किरपा किलविख कटे गिआन अंजनु सारिआ ॥
अंदरहु जिनका मोह तुटा तिनका सबदु सचै सवारिया ॥
कहै नानकु एहु आनंदु है आनंदु गुर ते जाणिआ ॥७॥

---

५. तितु घरि सभागै—उस भाग्यवान या सुखी घर में, आशय, उस आनंदमय अतः-करण में वह परमात्मा निवास करता है। कला—शक्ति, तेज। पंचदूत तुधु वसि कीते—पांचों इन्द्रियों के विषयों को, अथवा काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहंकार को वश में कर लिया। धुरि करमि पाइआ तुधु जिन कउ—जिनपर तूने आदि से ही कृपा की। अनहद—अनाहत शब्द, जिसे योगी निर्विकल्प समाधि की शून्यावस्था में सुना करता है।

६. साची निमाणी—सच्चे प्रेम के बिना मनुष्य की देह का कोई आदर नहीं; कौड़ी मोल की भी नहीं। लिवै-बाझहु—बिना प्रेम के। बाझु—बिना, सिवाय। वेचारिआ—बेचारा, अभागा। बनिवारिआ—वनमाली; विष्णु का एक नाम। एस ···सवारिआ—उस शब्द के सिवाय दूसरा कोई शरण का स्थान नहीं; उस शब्द में अनुरक्त होकर ही मनुष्य शोभा पाता है।

७. पिआरिआ—प्रिय, यह विशेषण गुरु तथा कृपा दोनों के साथ प्रयुक्त हो सकता है। किलविख—किल्विष, पाप। सारिआ—लगाया। तुटा—दूर हो गया। अंदरहु ···सवारिआ—सत्यरूप परमात्मा ने उनको अपने शब्द से सजाकर शोभित किया।

बाबा जिसु तू देहि सोई जनु पावै ॥
पावै त सो जनु देहि जिसनो होरि किआ करहि बेचारिआ ॥
इकि भरमि भूले फिरहि दहदिसि इकि नामि लागि सवारिआ ॥
गुरपरसादी मनु भइआ निरमलु जिना भाणा भावए ॥
कहै नानकु जिसु देहि पिआरे सोई जनु पावए ॥८॥
आवहु संत पिआरिहो अकथ की करह कहाणी ॥
करह कहाणी अकथ केरी कितु दुआरै पाईऐ ॥
तनु मनु धनु सभु सउपि गुर कउ हुकमि मंनिऐ पाईऐ ॥
हुकमु मंनिहु गुरू केरा गावहु सची बाणी ॥
कहै नानकु सुणहु संतहु कथिहु अकथ कहाणी ॥९॥
ए मन चंचला चतुराई किनै न पाइआ ॥
चतुराई न पाइआ किनै तू सुणि मंन मेरिआ ॥
एह माइआ मोहणी जिनि एतु भरमि भुलाइआ ॥
माइआ त मोहणी तिनै कीती जिनि ठगउली पाइआ ॥
कुरबाणु कीता तिसै विटहु जिनि मोहु मीठा लाइआ ॥
कहै नानकु मन चंचल चतुराई किनै न पाइआ ॥१०॥

है, जिन्होंने हृदय से मोह को, अर्थात् ससार के प्रति आसक्ति को निकाल बाहर कर दिया है ।

८. बाबा=हे पिता । होरि=और । इकि नामि लागि सवारिआ=(और) दूसरे तेरे नाम से प्रीति जोड़कर शोभा पा रहे है । गुरपरसादी=गुरु की कृपा से । जिना भाणा भावए=जिन्होने अपनेको परमात्मा की इच्छा के अनुकूल अथवा कृपा के योग्य बना लिया है । जिसु देहि=जिसे तू (आनन्द) प्रदान करता है ।

९. करह कहाणी=कथा हम करे अर्थात् कहें । कितु दुआरै पाईऐ=किसके द्वारा शब्द पायें अथवा किसके द्वारा उसे हम प्राप्त कर सकेंगे । सउपि=सौंपकर । हुकमि मनिऐ पाईऐ=उसकी आज्ञा पर चलकर प्राप्त कर सको ।

१०. चतुराई किनै न पाईआ=परमात्मा को किसीने चालाकी करके नही पाया । माइआ=माया । तिनै कीती=उसने अर्थात् परमात्मा ने रची । जिनि ठगउली पाईआ=जिसने यह इन्द्रजाल फैलाया । कुरबाणु.. लाईआ=मैने उस परमात्मा पर अपनेको निछावर कर दिया है, जिसने कि मरणशील प्राणियों के लिए सांसारिक मोह को इतना आकर्षक बना रखा है ।

ए मन पिआरिआ तू सदा सचु समाले ॥
एहु कुटंबु तू जि देखदा चलै नाही तेरै नाले ॥
साथि तेरै चले नाही तिसु नालि किउ चितु लाईऐ ॥
ऐसा कंमु मूले न कीचै जितु अंति पछोताईऐ ॥
सतिगुरु का उपदेसु सुणि तू होवै तेरै नाले ॥
कहै नानकु मन पिआरे तू सदा सचु समाले ॥११॥
अगम अगोचर तेरा अंतु न पाइआ ॥
अंतो न पाइआ किनै तेरा आपणा आपु तू जाणहे ॥
जीअ जंत सभि खेलु तेरा किआ को आखि बखाणए ॥
आखहि त वेखहि सभु तू है जिनि जगतु उपाइआ ॥
कहै नानकु तु सदा अगमु है तेरा अंतु न पाइआ ॥१२॥
सुरि नर मुनि जन अंमृतु खोजदे सु अंमृतु गुर ते पाइआ ॥
पाइआ अंमृतु गुरु कृपा कीनी सचा मनि बसाइआ ॥
जीअ जंत सभि तुधु उपाए इकि वेखि परसणि आइआ ॥
लबु लोभु अहंकार चूका सतिगुरु भला भाइआ ॥
कहै नानकु जिसनो आपि तुठा तिनि अंमृतु गुर ते पाइआ ॥१३॥

---

११. पिआरिआ=प्यारे। सचु समाले=याद रख सत्यरूप परमात्मा को। जि=जिसको। नाले=(अंतकाल में) साथ। तिसु लाईऐ=तो उस कुटुंब में क्यो अपना मन लगाता है ? ऐसा ·· · पछोताईऐ=कभी ऐसा न कर जिसे लेकर बाद को तुझे पछताना पडे। होवै तेरै नाले=वही (अंत में) तेरे साथ जायेगा।

१२. आपणा आपु तू जाणहे=तू आपही अपने आपको जानता है। खेलु=लीला। को आखि बखाणए=कौन किन शब्दों से वर्णन कर सकता है ? आखहि=कहता है। वेखहि=देखता है। उपाइआ=पैदा किया।

१३. खोजदे=खोजते है। सचा मनि बसाइआ=सत्य (-रूप परमात्मा) को हृदय में वसा देता है। तुधु उपाए=तूने उत्पन्न किये। इकि वेखि परसणि आइआ=तुझ एक परमात्मा को देखकर मै तेरे चरणो को छूने आया हू। लबु=लालसा। लबु··· भाइआ=सतगुरु जिनपर अच्छी तरह प्रसन्न हो गये, उनके मन में फिर लालसा, लोभ और अहंकार ये दुर्गुण नही रहते। आपि तुठा=परमात्मा स्वयं प्रसन्न हो गया।

भगता की चाल निराली ॥
चाल निराली भगताह केरी विखम मारगि चालणा ॥
लबु लोभु अहंकारु तजि तृसना बहुतु नाही बोलणा ॥
खंनिअहु तिखी वालहु निकी एतु मारगि जाणा ॥
गुरपरसादी जिन्ही आपु तजिआ हरि वासना समाणी ॥
कहै नानकु चाल भगता जुगहु जुगु निराली ॥१४॥

जिउ तू चलाइहि तिव चलह सुआमी होरु किआ जाणा गुण तेरे ॥
जिव तू चलाइहि तिवै चलह जिना मारगि पावहे ॥
करि किरपा जिमि नादि लाइहि सि हरि हरि सदा धिआवहे ॥
जिसनो कथा सुणाइहि आपणी सि गुरदुआरै सुखु पावहे ॥
कहै नानक सचे साहिब जिउ भावै तिवै चलावहे ॥१५॥

एहु सोहिला सबदु सुहावा ॥
सबदो सुहावा सदा सोहिला सतिगुरु सुणाइआ ॥
एहु तिनकै मंनि वसिआ जिन धुरहु लिखिआ आइआ ॥
इकि फिरहि घनेरे गला गलीं किनै न पाइआ ॥
कहै नानकु सबदु सोहिला सतिगुरु सुणाइआ ॥१६॥

हरि आपि अमुलकु मैं मुलि न पाइआ जाइ ॥
मुलि न पाइआ जाइ किसै विटहु रहे लोक विललाइ ॥

---

१४. विखम=विषम, कठिन, टेढा । खनिअहु ·· ·जाणा=वे ऐसे मार्ग पर चलते हैं, जो खाडे (तलवार) से अधिक पैना और बाल से भी अधिक बारीक होता है । आपु तजिआ=अपने अहंकार का त्याग कर दिया है । हरि वासना समाणी=जिनकी इच्छाएँ परमात्मा में केन्द्रित हो गई है ।

१५. होरु . तेरे=और अधिक तेरे गुणो को हम क्या जान सकते हैं ? तिवै=त्यों, वैसे ही । मारगि=सही रास्ता । नामि लाइहि=नाम-(स्मरण) में लगा देता है । सि=वह । गुरदुआरै=गुरु के द्वारा । सुखु=ब्रह्मानन्द । जिउ भावै=जैसा चाहे ।

१६. सोहिला=आनद का गीत । धुरहु लिखिआ आइआ=आदि से ही भाग्य में लिखकर जो आये है । गला गली किनै न पाइआ=बकवाद से किसीने भी उस शब्द को प्राप्त नही किया ।

१७. अमुलकु=अनमोल । मुलि···जाइ=मोल नही ठहराया जा सकता । किसै ·····

ऐसा सतिगुरु जे मिलै तिसनो सिरु सउपीऐ विचहु आपु जाइ ॥
जिसदा जीव तिसु मिलि रहै हरि वसै मनि आइ ॥
हरि आपि अमुलकु है भाग तिना के नानका जिन हरि पलै पाइ ॥१७॥

हरि रासि मेरी मनु वणजारा ॥
हरि रासि मेरी मनु वणजारा सतिगुर ते रासि जाणी ॥
हरि हरि नित जपिहु जीअहु लाहा खटिहु दिहाड़ी ॥
एहु धनु तिना मिलिआ जिन हरि आपे भाणा ॥
कहै नानकु हरि रासि मेरी मन होआ वणजारा ॥१८॥

ए रसना तू अनरसि राचि रही तेरी पिआस न जाइ ॥
पिआस न जाइ होरतु कितै जिचरु हरिरसु पलै न पाइ ॥
हरिरस पाइ पलै पीऐ हरिरसु बहुड़ि न तृसना लागै आइ ॥
एहु हरिरसु करमी पाइऐ सतिगुरु मिलै जिसु आइ ॥
कहै नानकु होरि अनरस सभि वीसरे जा हरि वसै मन आइ ॥१९॥

ए सरीरा मेरिआ हरि तुम महि जोति रखी ता तू जग महि आइआ ॥
हरि जोति रखी तुधु विचि ता तू जग महि आइआ ॥

विललाइ=यद्यपि लोग कितना ही यत्न करें, सिर पटककर मर जायें। आपु जाइ=जिसकी कृपा से अहंकार नष्ट हो जाये। तिसनो सिरु सउपीऐ=उसे अपना सिर सौंपदे, अपने आपको उसके हवाले करदे। जिसदा वसि आइ=जिस परमात्मा का यह जीव है उसीसे मिलने का जतन कर, और वह तेरे हृदय में आ वसेगा।

१८. रासि=पूँजी। मनु वणजारा=मन है व्यापारी। जीअहु=हे मेरे जीव। लाहा खटिहु दिहाड़ी—तुझे हररोज लाभ होगा।

१९. तू अनरसि राचि रही=तू दूसरे रसों (विषय-भोगों के स्वादों) में अनुरक्त या आसक्त हो रही है। पिआस न.. पाइ=तेरी प्यास किसीभी प्रकार से जाने की नहीं, जबतक कि तुझे हरि-रसायन हाथ नहीं लगा। तृसना=तृषा, प्यास। करमी=पूर्व के सत्कर्मों से। होरि अनरस=और दूसरे (विषय-) रस।

२०. ए सरीरा ''आइआ=हे मेरे शरीर, परमात्माने तुझमें अपनी ज्योति भरदी, और तभी तू इस ससार में आया। उपाइ=पैदा करके, बनाकर। गुरु 'आइआ=गुरु-

हरि आपे माता आपे पिता जिनि जीउ उपाइ जगतु दिखाइआ ॥
गुरपरसादीं बुझिआ ता चलतु होआ चलतु नदरी आइआ ॥
कहै नानकु सृसटिका मूलु रचिआ जोति राखी ता तू जगमहि आइआ ॥२०

एहु साचा सोहिला साचै घरि गावहु ॥
गावहु त सोहिला घरि साचै जिथै सदा सचु धिआवहे ॥
सचो धिआवहि जा तुधु भावहि गुरमुखि जिना बुझावहे ॥
इहु सचु सभना का खसमु है जिसु बखसे सो जनु पावहे ॥
कहै नानकु सचु सोहिला सचै घरि गावहे ॥२१॥

अनंदु सुणहु वडभागी हो सगल मनोरथ पूरे ॥
पारब्रहमु प्रभु पाइआ उतरे सगल विसूरे ॥
दूख रोग संताप उतरे सुणी सची बाणी ॥
संत साजन भए सरसे पूरे गुर ते जाणी ॥
सुणते पुनीत कहते पवितु सतिगुरु रहिआ भरपूरे ॥
विनवंति नानकु गुरचरण लागे वाजे अनहद तूरे ॥२२॥

रागु सिरी

पंखी बिरखि सुहावड़ा सचु चुगै गुर भाइ ॥
हरिरसु पीवै सहजि रहै उड़ै न आवै जाइ ॥

कृपा से जिस मनुष्य ने सच्चा आत्मज्ञान प्राप्त कर लिया, उसके लिए यह संसार एक खेल है, या खेल के जैसा मालूम देता है। सृसटि=सृष्टि।

२१ सोहिला—आनन्द-बधाई का गीत। साचै घरि=संत-समाज में। जिथै ··· धिआवहे=जहाँ संतजन सदा सत्यरूप परमात्मा का ध्यान करते हैं। जा तुधु भावहि=जो तुझे प्रसन्न करते हैं। खसमु=स्वामी। जिसु पावहे=जिस जन पर वह कृपा करता है वही उसे पाता है।

२२. अनंदु—आनंद गान। सगल=सकल, सब। उतरे सगल विसूरे=सारे दुःख दूर हो गये। सरसे=आनंदित, प्रफुल्लित। पूरे गुर ते जाणी=पूर्ण सद्गुरु के मुख से सुनकर। सुणते=सुननेवाले। कहते=पाठ करनेवाले। तूरे=बाजे।

१. सुन्दर है वृक्ष पर का वह पक्षी, जो गुरु की कृपा से सत्य को सदा चुगता रहता है।

(पक्षी है यहाँ सतपुरुष, और वृक्ष है उस साधु का शरीर।)

निजघरि वासा पाइआ हरि हरि नामि समाइ ॥
मन मेरे तू गुर की कार कमाइ ॥
गुर कै भाणै जे चलहि ता अनदिनु राचहि हरिनाइ ॥
पंखी बिरख सुहावडे ऊड़हि चहु दिसि जाहि ॥
जेता ऊड़हि दुख घणे नित दाझहि तै बिललाहि ॥
बिनु गुर महलु न जापई ना अंमृत फल पाहि ॥
गुरमखि ब्रहमु हरीआवला साचै सहजि सभाइ ॥
साखा तीनि निवारिआ एक सबदि लिव लाइ ॥
अमृत फलु हरि एकु है आपे देइ खवाइ ॥
मनमुख ऊभे सुकि गए ना फलु तिंन ना छाउ ॥
तिंना पासि न बैसीऐ ओना घरु न गिराउ ॥
कटीअहि तै नित जालीअहि ओन्हा सबदु न नाउ ॥

हरि-नाम का रस वह सतत पान करता है। सहजसुख के बीच बसेरा है उसका, और वह इधर-उधर नहीं उड़ता।

निज नीड में उस पक्षी ने वास पा लिया है, और हरि-नाम में वह लौलीन हो गया है।

हे मन! तब तू गुरु की सेवा में रत होजा।

यदि गुरु के बताये मार्ग पर तू चले, तो फिर हरि-नाम में तू दिन-रात लौलीन रहेगा।

क्या वृक्ष पर के ऐसे पक्षी आदरयोग्य कहे जा सकते हैं, जो चारों दिशाओं में इधर-उधर उड़ते रहते हैं?

जितना ही वे उड़ते हैं, उतना ही दुःख पाते हैं; वे नित्य ही जलते और चीखते रहते हैं।

बिना गुरु के न तो वे परमात्मा के दरबार को देख सकते हैं, और न उन्हें अमृत-फल ही मिल सकता है।

स्वभावतः सत्यनिष्ठ गुरमुखों अर्थात् पवित्रात्माओं के लिए ब्रह्म सदाही एक हरा-लहलहा वृक्ष है।

तीनों शाखाओं (त्रिगुण) को उन्होंने त्याग दिया है, और एक शब्द में ही लौ उनकी लगी हुई है।

एक हरि-नाम ही अमृतफल है; और वह उसे स्वयं ही खिलाता है।

हुकमे करम कमावणे पाइऐ किरति फिराउ ॥
हुकमे दरसनु देखणा जह भेजहि तह जाउ ॥
हुकमे हरि हरि मनि वसै हुकमे सचि समाउ ॥
हुकम न जाणहि बपुड़े भूले फिरहि गवारु ॥
मन हठि करम कमावदे नित नित होहि खुआरु ॥
अंतरि सांति न आवई ना सचि लगै पिआरु ॥
गुरमुखीआ मुह सोहणे गुर कै हेति पिआरि ॥
सच्ची भगती सचि रते दरि सच्चे सचिआर ॥
आए से परवाणु है सभ कुल का करहि उधारु ॥
सभ नदरी करम कमावदे नदरी बाहरि न कोइ ॥

मनमुखी दुष्टजन ठूंठ से सूखे खड़े रहते है, न उनमे फल होते है, न छाह ।

उनके निकट तू मत बैठ; न उनका घर है, न गाव । सूखे काठ की तरह वे काटकर जला दिये जाते है;

उनके पास न शब्द (गुरु-उपदेश) है, न (हरि का) नाम ।

मनुष्य परमात्मा की आज्ञा के अनुसार कर्म करते है, और अपने पूर्व कर्मो के अनुसार अनेक योनियो में चक्कर लगाते रहते है ।

वे उसका दर्शन पाते है तो उसकी आज्ञा से ही, और जहा वह भेजता है वहां वे चले जाते है ।

अपनी इच्छा से ही परमात्मा उनके हृदय में निवास करता है; और उसीकी आज्ञा से वे सत्य मे तल्लीन हो जाते है ।

बेचारे मूर्ख जो उसकी आज्ञा को नहीं पहचानते, भ्रांति के कारण इधर-उधर भटकते रहते हैं ।

उनके सब कर्मो में हठ होता है, वे दिन-दिन गिरते ही जाते हैं । उनके अंतर में शान्ति नही आती; न सत्य के प्रति उनमें प्रेम होता है ।

सुन्दर है उन पवित्रात्माओ के मुख, जिनकी गुरु के प्रति प्रेम-भक्ति है ।

भक्ति उन्हींकी सच्ची है; वे ही सत्य में अनुरक्त है । और सत्य के दरबार में उन्होने सत्यरूप परमात्मा को पाया है ।

संसार में उन्हीका आना सौभाग्य है; अपने सारेही कुल का उन्होने उद्धार कर लिया ।

सबके कर्म उसकी नज़र में है; कोई भी उसकी नजर से बचा नहीं ।

जैसी नदरि करि देखै सच्चा तैसा ही को होइ ॥
नानक नामि वडाईआ करमिं परापति होइ ॥१॥

राग भैरउ

जाति का गरब न करियहु कोइ ।
ब्रहम बंदे सो ब्रहमण होइ ॥
जाति का गरब न करि मूरख गवारा ।
इसु गरब ते चलहि बहुत विकारा ॥
चारे वरन आखै सब कोई ।
ब्रहमु-बिंदु ते सभ ओपति होई ॥
माटी एक सगल संसारा ।
बहु बिधि भांडे घड़ै कुम्हारा ॥
पंच ततु मिलि देही आकारा ।
घटि वधि को करै बीचारा ॥
कहतु नानक इह जीउ करमबंधु होई ।
बिनु सतिगुर भेटे मुकति न होई ॥२॥

राग भैरउ

दुबिधा मनमुख रोगि बिआपे तृसना जलहि अधिकाई ।
मरि-मरि जंमहि ठउर न पावहि बिरथा जनम गवाई ॥
मेरे प्रीतम करि किरपा देहु बुझाई ।
हउमै रोगी जगतु उपाइआ बिनु सबदै रोगु न जाई ॥

वह जैसी नजर से देखता है, मनुष्य वैसाही हो जाता है ।
नानक ! नाम का महिमातक सुकर्मों से ही पहुचा जा सकता है ।

२. चलहि=पैदा होते है । आखै=कहते है । बिदु=वीर्य । ओपति=उत्पत्ति । सगल=सकल, सारा । भांडे=बर्तन । घटि वधि=छोटा-बडा । करम-बधु होई=कर्मो से माया के बधन मे पड़ता है । भेटे=मिलकर ।

३. जमहि=जन्म लेता है । ठउर=स्थिरता, शान्ति । हउमै=अहंकार । उपाइआ=उत्पन्न किया । बिनु सबदै=बिना गुरु के उपदेश के । सिमृति=मनुस्मृति आदि धर्मशास्त्र । सासतर=शास्त्र । सुरति=प्रभु की लौ या ध्यान । ममता सुरति गवाई=

सिमृति सासतर पड़हि मुनि केते बिनु सबदै सुरति न पाई ।
त्रैगुण सभे रोगि विआपे ममता सुरति गवाई ।।
इकि आपे काढि लए प्रभि आपे गुर सेवा प्रभि लाए ।
हरि का नामु निधानो पाइआ सुखु वसिआ मनि आए ।।
चउथी पदवी गुरमुखि वरतहि तिन निज घरि वासा पाइआ ।
पूरै सतिगुरि किरिपा कीन्ही विचहु आपु गवाइआ ।।
एकसु की सिरिकार एक जिनि ब्रहमा बिसनु रुद्र उपाइआ ।
नानक निहचलु साचा एको ना ओहु मरै न जाइआ ।।३।।

राग गउडी

गुरि मिलिऐ हरि मेला होइ । आपे मेलि मिलावै सोइ ।।
मेरा प्रभु सभ विधि आपे जाणै । हुकमे मेलै सबदि पछाणै ।।
सतिगुर कै भइ भ्रमु भउ जाइ । भै राचै सच रंगि समाइ ।।
गुरि मिलिऐ हरि मनि वसै सुभाइ । मेरा प्रभु भारा कीमति नहि पाइ ।।
सबदि सालाहै अंत न पारावारु । मेरा प्रभु बखसै बखसणुहारु ।।
गुरि मिलिऐ सभ मति बुधि होइ । मनि निरमल वसै सचु सोइ ।।
सचि वसिऐ साची सभ कार । ऊतम करणी सबदि बीचार ।।
गुर ते साची सेवा होइ । गुरमुखि नाम पछाणै कोइ ।।
जीवै दाता देवणहारु । नानक हरिनामै लगै पिआरु ।।४।।

अहंकार ने प्रभु के ध्यान को भुला दिया है। काढि लए=अहंकार और माया से मुक्त कर दिया । निधानो=खजाना । मनि=मन में । चउथी पदवी=तुरीया अवस्था से तात्पर्य है, जहां केवल आत्म-स्थिति का अनुभव होता है । निज घरि=स्वरूप की सर्वोच्च स्थिति में । विचहु=आत्मा और परमात्मा के बीच का अंतर ; द्वैतभाव । जाइआ=जन्म लेता है ।

४. मेला=मिलन । हुकमे.. पछाणै=अपनी आज्ञा का रहस्य प्रकटकर परमतत्त्व से वह परिचय करा देता है । भइ=भय । भउ=संशय-जनित भय । भै राचै समाइ= ईश्वर-भीरुता: जो डरकर चलता है वह सत्यरूप परमात्मा के प्रेम में लौलीन हो जाता है । सुभाइ=अनायास ही । भारा=महान्-से-महान् । कीमति नहि पाइ= अनमोल । सालाहे=प्रशंसा पाता है । कार=रचना ।

राग आसा

मनमुखि झूठो झूठु कमावै । खसमै का महलु कदे न पावै ॥
दूजै लागी भरमि भुलावै । ममता बाधा आवै जावै ॥
दोहागणी कामनि देखु सींगारु । पुत्र कलति धनि माइआ चितु लाए,
झूठु मोहु पाखंड वीकारु ॥
सदा सोहागणि जो प्रभ भावै । गुर सबदी सींगारु बणावै ॥
सेज सुखाली अनदिनु हरि रावै । मिलि प्रीतम सदा सुखु पावै ॥
सा सोहागणि साची जिसु साचि पिआरु । आपणा पिरु राखै
सदा उर धारि ॥
नेड़ै वेखै सदा हदूरि । मेरा प्रभु सरब रहिआ भरपूरि ॥
आगै जाति रूपु न जाइ । तेहा होवै जेहे करम कमाइ ॥
सबदे ऊचो ऊचा होइ । नानक साचि समावै सोइ ॥५॥

---

५. मनमुखी मनुष्य झूठ-ही-झूठ का लेन-देन करते रहते है;
स्वामी के महलतक वे कभी नही पहुंचते ।
प्रपच मे लिप्त वे सदा भ्रम में ही भूले रहते हैं,
और ममता में बद्ध फिर जन्मते है, और फिर मरते है ।
देखो तो इस दोहागिन नारी का यह सिंगार !
चित्त इसका लगा हुआ है पुत्र मे, परिवार मे, धन और माया मे,
और झूठ मे, और मोह में, पाखण्ड में और मनोविकारो मे ।
सदा सोहागिन तो वही नारी है, जो अपने स्वामी को भाती है ।
उसका सिंगार सतगुरु का उपदेश होता है ;
उसकी सेज सुखभरी होती है, और अपने स्वामी के साथ वह दिन-रात आनंद-मौज करती है ।
अपने प्रीतम से मिलकर वह सदा सुख में मगन रहती है ।
जो अपने सच्चे स्वामी को प्यार करती है, वही सच्ची सोहागिन है ।
वह अपने प्रीतम को सदा छाती से लगाये रहती है ।
वह अपने पास, अपने सामने उसे निरंतर देखती रहती है ।
मेरा प्रभु सर्वत्र रम रहा है ।
परलोक में तेरे साथ न यह ऊँची जाति जायेगी; न यह रूप जायेगा ;
तेरी वहां की यात्रा तेरे कर्मों के अनुसार ही होगी ।

सलोक

जिन्हा सतिगुरु इकमनि सेविआ तिन जन लागौ पाइ ।
गुर सबदी हरि मनि वसै माया की भुख जाइ ॥१॥
से जन निर्मल ऊजले जि गुरमुखि नामि समाइ ।
नानक होरि पतिसाहिआ कूड़िआ, नामिरते पातसाह ॥२॥
माया मोहि जगु भरमिआ, घरु मूसै खबरि न होइ ।
कामु क्रोधि मनु हरि लइआ मनमुखि अंधा लोइ ॥३॥
गिआन-खडग पंचदूत संघारे गुरमति जागै सोइ ।
नामु रतन परगासिआ मनु तनु निरमलु होइ ॥४॥
मै जानिआ बडहंसु है ता मै कीआ संगु ।
जे जाणा बगु बापुड़ा त जनमि न देदी अंगु ॥५॥
हंसा वेखि तरंदिआ बगां भि आइआ चाउ ।
डूबि मुए बग बापुड़े सिरु तलि ऊपरि पाउ ॥६॥
सतिगुर की सेवा चाकरी सुखी हूं सुख सारु ।
ऐथै मिलनि वडिआईआ दरगह मोख दुआरु ॥७॥
सजण मिले सजणा जिन सतगुर नालि पिआरु ।
मिलि प्रीतम तिनी धिआइआ सचै प्रेमि पिआरु ॥८॥

शब्द (सतगुरु के उपदेश) से ही मनुष्य ऊँचे-से-ऊँचा जाता है,
और नानक, उसीसे वह सत्यरूप परमात्मा मे लीन होता है ।

१. जिन्हा=जिन्होने । इकमनि=अनन्य भाव से । लागौपाइ=उनके पैर पडता हूँ । गुरसबदी=गुरु के उपदेश से । भुख=तृष्णा, आसक्ति ।

२. से=वे । जि=जो । समाई=लौलीन हो गये है । होरि पतिसाहिआ कूडिया=और बादशाही झूठी है । रते=रँगे हुए, अनुरक्त ।

३. मूसे=चोरी करते है (सद्गुणरूपी रत्नों को) । हरि लिया=हरण कर लिया ।

४. पंचदूत सघारे=पाँचो इद्रियों के विषयो को मार दिया, वश में कर लिया ।

५. न देदी अगु=कभी न अपनाता ।

६. वेखि तरदिआ=तैरता हुआ देखकर । चाउ=जोश ।

७. ऐथै=इस लोक में । दरगह=परलोक, ईश्वर का दरवार । मोख=मोक्ष ।

८. सजण=संतजन । सजणा=साजन, स्वामी । नालि=साथ ।

मन ही ते मानिआ गुर कै सबदि अपारि ।
एहि सजण मिले न विछुड़हि जि आपि मेले करतारि ॥९॥
मनमुख सेती दोसती थोडड़िआ दिन चारि ।
इसु परीती तुटदी विलमु न होवई, इसु दोसती चलनि विकारि ॥१०॥
जिन अंदरि सचे का भउ नाही, नामि न करहि पिआरु ।
नानक तिन सिउ किआ कीजै दोसती, जि आपि भुलाए करतारु ॥११॥
गुरमुखि सेवि न कीनिआ, हरिनाम न लगो पिआरु ।
सबदै सादु न आइओ मरि जनमै बारोबार ॥१२॥
मनमुखि अंधु न चेतई कितु आइआ सैसारि ।
नानक जिन कउ नदरि करे से गुरमुखि लंघे पारि ॥१३॥

---

९. जि आपि मेले करतारि=परमात्मा जिन्हे खुद मिला देता है ।

१०. सेती=साथ की । परीति=प्रीति, मित्रता । तुटदी विलमु न होवई=टूटने देर नही लगती ।

११. भउ=भय । पिआरु=प्रेम । तिन सिउ=उनसे । जि आपि भुलाए करतारु=जो खुद ही परमात्मा को भुला बैठे हैं ।

१२. सेवि=सेवा । कीनिआ=की । सादु=स्वाद, रस, आनन्द ।

१३. सैसारि=ससार में । नदरि करे= कृपा-दृष्टि करता है । लंघे पारि=संसार से तर जाता है ।

गुरु रामदास

जन्म-संवत्—१५९१ वि०, कार्तिक कृ० २

जन्म-स्थान—लाहौर

पूर्व नाम—जेठा

पिता—हरिदास

माता—दयाकौर (पूर्व नाम अनूपदेवी)

जाति—सोढी खत्री

भेष—गृहस्थ

मृत्यु-संवत्—१६३८ वि०, भादों शुक्ल ३
मृत्यु-स्थान—गोइन्दवाल

गुरु रामदास का विवाह, जब इनका नाम जेठा था, गुरु अमरदास की पुत्री बीबी भानी के साथ हुआ था। गुरु अमरदास के यह अनन्य भक्त और पट्टशिष्य भी थे। आज्ञा-पालक यह वैसे ही थे, जैसे कि गुरु अमरदास और गुरु अगद।

एक दिन गुरु अमरदास के कुछ शिष्यों ने पूछा कि, 'दामाद तो आपका रामा भी है (जिमके साथ बडी पुत्री बीबी दानी का ब्याह हुआ था) और आपकी वह सेवा भी करता है, पर जेठा को ही आप इतना अधिक क्यो चाहते हैं?' जेठा के अनेक गुणो का वर्णन करते हुए गुरु अमरदास ने कहा कि, 'उसमे नम्रता, भक्ति और श्रद्धा रामा से कही अधिक है, और इसीलिए वह मुझे अधिक प्रिय है। लो, तुम्हारे मामने ही मैं उन दोनो की परीक्षा लेता हूँ।'

गुरु अमरदास ने रामा को हुक्म दिया कि उनके बैठने के लिए बावली के पास वह एक सुन्दर चबूतरा बनादे। रामा ने बड़ी मेहनत से चबूतरा तैयार किया, पर गुरु को वह पसद नही आया। गिराकर फिर से बनाने को कहा। रामा ने उसे फिर बनाया। फिरभी पसद नही आया। रामा ने उसे फिर गिरा तो दिया, पर तीसरी बार बनाने को वह राजी नही हुआ। बोला, 'गुरु बहुत बुड्ढे हो गये हे; इसीसे उनकी बुद्धि काम नही दे रही!'

अब जेठा की बारी थी। उसने चबूतरे को गुरु की आज्ञा से सात बार बनाया और सात ही बार गिराया, पर मुहँ से एक शब्द भी नहीं निकाला। अंत मे गुरु के चरणो को पकडकर बडी नम्रता से उसने कहा, 'मै तो मूर्ख हूँ; सेवा मुझसे कहाँ बन सकती है। मुझसे भूले ही होंगी। पर आप कृपाकर मेरी भूलों को उसी तरह क्षमा कर दिया करे, जैसे कि पिता अपने मूर्ख पुत्र की भूलों को क्षमा कर देता है।'

गुरु अमरदास बहुत प्रसन्न हुए, और जेठा को छाती से लगाकर बोले—'मेरी आज्ञा को मानकर तूने सात बार इस चबूतरे को गिरा-

गिराकर बनाया, इसलिए तेरी सात पीढियाँ गुरु की गद्दी पर बैठेगी।' और सब सिक्खो को बुलाकर कहा कि, 'मैने अपने दोनो दामादो की परीक्षा लेली है। अब तो तुम्हारा सदेह दूर हो गया कि जेठा मुझे क्यों अधिक प्रिय है। मै स्पष्ट देखता हू कि यह जेठा आगे चलकर जगत का उद्धार करेगा।'

चतुर्थ गुरु रामदास जीवनभर गुरु अमरदास के सब सिद्धान्तों और पद-चिह्नो पर चले। गुरु नानक, गुरुअगद और गुरुअमरदास के सारे गुण उनमे पाये जाते थे। 'टिक्के दी वार' की सातवी पउडी मे सत्तैने कहा है—

"नानक तू, लहिणा तू है, गुरु अमर तू वीचारिआ।
गुरु डीठा ताँ मनु साधारिआ।।"

अर्थात्, तू नानक है, तू लहिणा है, तू अमरदास है; मैने तुझे ऐसा ही समझा है।

जब मैने तुझ गुरु को देखा, तब मेरे मन को ऐसा ही आश्वासन मिला।

बाबा नानक के ज्येष्ठ पुत्र श्रीचद, जो उदासी सम्प्रदाय के संस्थापक थे और बडे-बडे जटा बढ़ाये नग्न घूमते रहते थे, एक बार गुरु रामदास से मिलने आये। वे न तो गुरु अगद से कभी मिले थे, और न गुरु अमरदास से ही। गुरु रामदास ने गोइन्दवाल से कुछ दूर जाकर महात्मा श्रीचंद का स्वागत किया, और भेंट के रूप मे उनके सामने मिठाई और पाँच सौ रुपये रखे। गुरु से मिलकर बाबा श्रीचद को बहुत आनन्द हुआ। उन्हे लगा कि रामदास मानो गुरु नानक की ही प्रतिमूर्ति है। उनकी दाढ़ी देखकर श्रीचद ने कहा कि, 'दाढी यह आपने बहुत लबी बढा रखी है!' 'आपके चरणो को पखारने के लिए मैने यह लंबी दाढी रखी है।' और किया भी उन्होने यही। श्रीचद ने अपने पैर हटा लिये, और कहा—'आप यह क्या कर रहे है ! आप तो गुरु है, मेरे पिता की गद्दी पर आसीन है। निश्चय ही आप सिक्खो का उद्धार करेंगे।'

गुरु अमरदास की आज्ञा से गुरु रामदास ने जो एक भारा चिर-

स्थायी कार्य किया, वह था सिक्खो के महान् तीर्थ-स्थान अमृतसर का निर्माण। इस तालाब को उन्होने बडी ही निष्ठा और परिश्रम से खुदवाया। तालाब के आसपास धीरे-धीरे रामदासपुर नाम का एक सुन्दर नगर भी बसने लगा। बाद में तालाब के नाम पर इसका भी नाम अमृतसर पड गया। अमृतसर का तालाब भाई बुड्ढा की देख-रेख मे हजारो सिक्खों और दूसरे मजदूरो ने तैयार किया। उन दिनों गुरु रामदास जिस कुटिया मे रहा करते थे, वह आज भी 'गुरु का महल' के नाम से प्रसिद्ध है।

गुरु रामदास ने धर्म-प्रचार के लिए अनेक सुयोग्य व्यक्तियो को नियुक्त किया, जिन्हे वे 'मसन्द' कहते थे। मसन्दो ने सिक्खधर्म का अनेक स्थानो मे जा-जाकर प्रचार किया।

गुरु रारदास के तीन पुत्र थे—पृथीचद या प्रिथिया, महादेव और अर्जुन। प्रिथिया बडा अभिमानी और दुष्ट स्वभाव का था। महादेव भी अधिक आज्ञापालक नही था। सबसे छोटा पुत्र अर्जुन ही पिता का अनन्य आज्ञाकारी और परमभक्त था। यही कारण था कि अर्जुन पर उनका सबसे अधिक स्नेह था, और उसीको उन्होने अपना उत्तराधिकारी नियुक्त किया। ईर्ष्यालु प्रिथिया ने गुरु अर्जुन के जीवन-काल मे ही और उनके स्वर्गवास के बाद भी अर्जुन को पद-च्युत करने के लिए अनेक षडयत्र रचे, पर वह सफल नही हुआ।

गुरु रामदास ने अपनी गद्दी पर अर्जुन को बिठाते हुए कहा, "गुरु अमरदास ने स्पष्ट कहा था कि गुरु का स्थान ऊँचे सद्गुणों से ही मिलता है। जो सच्चा, सदाचारी और विनीत है वही इस ऊँचे स्थान को प्राप्त कर सकता है। मै तुझे यह स्थान देता हूँ।" पाँच पैसे और एक नारियल अर्जुन के सामने रखकर उन्होंने भाई बुड्ढा के हाथ से उन्हें तिलक करा दिया। अर्जुनदेव को गुरु रामदास ने पाँचवाँ गुरु बना दिया। दीपक ने जैसे अपनी लौ से दूसरे दीपक को जला दिया।

संवत् १६३८ की भादों सुदी ३ को गोइंदवाल मे जाकर 'वाह गुरु' 'वाह गुरु' कहते हुए गुरु रामदास ने चोला छोड़ा।

कवि मथुरा के गुरु रामदास के देहावसान पर यह छप्पय रचा—

देवपुरी महि गयउ आपि परमेश्वर भाइउ ।
हरि सिघासन दिइउ सिरी गुरु तह बैठाइउ ॥
रहसु किअउ सुरदेव तोहि जसु जय जय जपहि ।
असुर गए ते भागि पाप तिन भीतर कपहि ॥
काटे सु पाप तिन नरहु के गुरु रामदास जिन्ह पाइअउ ।
छत्रु सिघासनु पिरथमी गुरु अरजुनकउ दे आइअउ ॥"

बानी-परिचय

गुरु रामदास की बानी गुरु ग्रथ साहिब मे 'महला ४' के अंतर्गत संग्रहीत है। इनका आसा राग का 'सो पुरख' पद बहुत प्रसिद्ध है। इसे 'रहिरास' मे भी लिया गया है। गुरु रामदास-रचित सूही राग की छत के चार पदो का उपयोग सिक्ख लोग अपने विवाह-सस्कार मे करते है। इन्ही गुरु-मन्त्रो से फेरे कराये जाते है। प्राय हरेक ही राग मे इनके अनेक पद मिलते है। प्रेम व विरह के अंगो का निरूपण गुरु रामदास ने बडा विशद और सुन्दर किया है। बानी इनकी मधुर और बहुत कोमल है। गुरु के प्रति ऊँची श्रद्धा, गुरु अगद तथा गुर अमरदास के ही सदृश, इन्होने प्रकट की है। इसके अनेक सलोक भी वैसे ही हृदय-स्पर्शी है। भाषा मे पजाबी का पुट कुछ कम है, और वह सरल भी है।

आधार

१ गुरु ग्रथ साहिब—सर्व हिन्द सिक्ख मिशन, अमृतसर
२ दि सिक्ख रिलीजन (भाग २)—मेकालीफ

रागु आसा

तूं करता सचिआरु मैडा सांई ॥ जो तउ भावै सोई थीसी जो तू देहि सोई हउ पाई ॥

१. तू ही सच्चा कर्त्तार है, मेरे स्वामी !
जो तुझे भाता है वही होगा; जो तू देगा वही मै पाऊँगा ।

सभ तेरी तूं सभनी धिआइआ ॥ जिसनो कृपा करहि तिन नामरतनु पाइआ ॥
गुरमुखि लाधा मनमुखि गवाइआ ॥ तुधु आपि विछोड़िया आपि मिलाइआ ॥
तूं दरीआउ सभ तुझ ही माहि ॥ तुझ बिनु दूजा कोई नाहि ॥
जीअ जंत सभि तेरा खेलु ॥ विजोगि मिलि विछुड़िआ संजोगी मेलु ॥
जिसनो तू जाणाइहि सोइ जनु जाणै ॥ हरिगुण सदही आखि वखाणै ॥
जिनि हरि सेविआ तिनि सुखु पाइआ ॥ सहजे ही हरिनामि समाइआ ॥
तू आपे करता तेरा कीआ सभु होइ ॥ तुधु बिनु दूजा अवरु न कोइ ॥
तू करि करि वेखहि जाणहि सोइ ॥ जन नानक गुरमुखि परगटु होइ ॥१॥

सब कुछ तेरा ही है; सभी तेरा ध्यान करते है।

जिसपर तू कृपा करता है, वही तेरा नामरूपी रत्न पाता है।

गुरु के अनुयायी ने उसे पाया है, और मन के मत पर चलनेवाले ने उसे हाथ से गँवा दिया है।

मनमुखों से तू स्वय बिछुड गया है, और गुरुमुखो से आप जा मिला है।

तू एक समुद्र है; सब-कुछ तुझमें समाया हुआ है।

तेरे सिवा दूसरा कोई है ही नही।

जीव-जतु की सृष्टि सब तेरी लीला है।

जब तूने बिछुडना चाहा, तो वे तुझसे मिले हुए भी बिछुड गये; और जब तूने मिलना चाहा तो वे तुझसे आ मिले।

वही तेरा जन तुझे जानता है, जिसे तू अपने आपको जना देना चाहता है, और सदा वह तेरे गुणो का गान करता रहता है।

सुख उन्हीने पाया, जिन्होने कि तेरी सेवा-बंदगी की, और सहज ही वे हरि-नाम में लौलीन हो गये।

तू आपही कर्त्तार है; सब-कुछ तेरा ही किया होता है।

तेरे सिवा कोई दूसरा है ही नही।

तू ही अपनी रचना को देखता है और उसे जानता है।

दास नानक कहता है—गुरु के उपदेश से तू प्रकट हो जाता है।

राग गउड़ी पूरबी

कामि करोधि नगरु बहु भरिआ मिलि साधू खंडल खंडा हे ॥
पूरबि लिखत लिखे गुरु पाइआ मनिहरि लिव मंडल मंडा हे ॥
करि साधू अंजुली पुनु वड्डा हे ॥ करि डंडउत पुनु वड्डा हे ॥
साकत हरिरस सादु न जाणिआ तिन अंतरि हउमै कंडा हे ॥
जिउ जिउ चलहि चुभै दुखु पावहि जमकालु सहहि सिरि डंडा हे ॥
हरिजन हरि हरि नामि समाणे दुखु जनम मरण भव खंडा हे ॥
अविनासी पुरखु पाइआ परमेसरु बहु सोभा खंडा ब्रहमंडा हे ॥
हम गरीब मसकीन प्रभ तेरे हरि राखु राखु वड वड्डा हे ॥
जन नानक नामु अधारु टेक है हरिनामे ही सुखु मंडा हे ॥२॥

---

२. यह नगर अर्थात् यह शरीर काम और क्रोध से बहुत भरा हुआ है; पर संतजनों से मिलने से दोनों खड-खंड हो जाते है ।

प्रारब्ध में लिखा था, जो गुरु से भेंट हो गई, और भक्ति-भाव में यह जीव लौलीन हो गया ।

हाथ जोडकर तू संतों की वंदना कर—यह भारी पुण्यकर्म है ।

उन्हें साष्टांग दडवत् कर—यह भारी पुण्यकर्म है ।

हरि-रस के स्वादु को नास्तिक या अभक्त नही जानता, क्योंकि वह अपने अंतर में अहंकार के कांटे को स्थान दिये हुए है ।

जितना ही वह चलता है उतना ही वह उसे चुभता है और उतना ही क्लेश पाता है; और यम का डंडा अर्थात् काल का भय उसके सिर पर मँडराता रहता है ।

हरिभक्त हरि के नाम-स्मरण में लीन रहते है, और उन्होने जन्म-मरण का भय नष्ट कर दिया है ।

अविनाशी पुरुष से उनकी भेंट होगई है—

और लोकों और सारे ब्रह्माण्ड में उनकी शोभा-प्रतिष्ठा बढ गई । हे प्रभो, हम गरीब अधम जन तेरे ही हैं; हे महान् से भी महान्, हमारी रक्षा कर, हमारी रक्षा कर ।

दास नानक का आधार और अवलंब तेरा एक नाम ही है; तेरे नाम में डूबकर परमानंद को मैने पाया है ।

रागु गऊडी गुआरेरी

निरगुण कथा कथा है हरि की ॥
भजु मिलि साधू संगति जन की। तरु भउजलु अकथ कथा सुनि हरि की ॥
गोविंद सतसंगति मेलाइ । हरिरसु रसना राम गुन गाइ ॥
जो जन ध्यावहिं हरि हरिनामा । तिन दासनिदास करहु हम रामा ॥
जन की सेवा ऊतम कामा ॥
जो हरि की हरिकथा सुणावै । सो जनु हमरै मनि चिति भावै ॥
जन पग रेणु वड़भागी पावै ॥
संत जना सिउ प्रीति बनि आई। जिन कउ लिखतु लिखिआ धुरि पाई ॥
ते जन नानक नामि समाई ॥३॥

रागु गूजरी

हरि के जन, सतिगुर, सतपुरखा, बिनउ करउ गुर पासि ॥
हम कीरे किरम सतिगुर सरणाई करि दइआ नामु परगासि ॥
मेरे मति गुरदेव मोकउ रामुनामु परगासि ॥
गुरमति नामु मेरा प्रानसखाई हरि कीरति हमरी रहरासि ॥
हरिजन के वड भाग वडेरे जिन हरि हरि सरधा हरि पिआसि ॥
हरि हरि नामु मिलै त्रिपतासहि मिलि संगति गुण परगासि ॥
जिन हरि हरि हरिरसु नामु न पाइआ ते भागहीण जम पिआसि ॥
जो सतिगुर सरणि संगति नहीं आए ध्रिगु जीवे ध्रिगु जीवासि ॥
जिन हरिजन सतिगुर संगति पाई तिन धुरि मसतकि लिखिआ
लिखासि ॥

---

३. भउजलु—संसार-सागर । ऊतम=उत्तम । जन-पग-रेणु—हरिभक्तों के चरणों की धूल । सिउ=से । धुरि=सबसे ऊपर, शीर्षस्थान ।

४. करउ=करता हूं । गुरुपासि=परमात्मा के प्रति । कीरे=कीड़े । किरम=कृमि, बहुत ही छोटे जीव । नामु परगासि=तू अपने नाम का प्रकाश हमारे अंदर भरदे । कीरत=कीर्त्तन, गुणगान । रहरासि=धंधा । सरधा=श्रद्धा । पिआस=प्यास, मिलने की तड़प । त्रिपतासहि=तृप्त या संतुष्ट हो जाते है । संगति=सत्सग । गुणपरगासि= परमात्मा के गुण प्रकट हो जाते है । जमपासि=काल के फंदे में पड़ते हैं । ध्रिगु

धनु धन्नु सतसंगति जितु हरिरसु पाइआ मिलि जन नानक
नामु परगासि ॥४॥

सिरी रागु-छंत

मुंध इआणी पेईअड़ै किउकरि हरि दरसनु पिखै ।
हरि हरि अपनी किरपा करे गुरमुखि साहुरड़ै कंम सिखै ॥
साहुरड़ै कंम सिखै गुरमुखि हरि हरि सदा धिआए ॥
सहीआ विचि फिरै सुहेली हरि दरगह बाह लुडाए ॥
लेखा धरमराइ की बाकी जपि हरि हरि नामु किरखै ॥
मुंध इआणी पेईअड़ै गुरमुखि हरि दरसनु दिखै ॥५॥
वीआहु होआ मेरे बाबुला गुरमुखे हरि पाइआ ।
अगिआनु अंधेरा कटिआ गुर गिआनु प्रचंडु बलाइआ ॥
बलिआ गुरगिआनु अंधेरा बिनसिआ हरिरतन पदारथु लाधा ॥
हउमै रोग गइआ दुखु लाथा आपु आपै गुरमति खाधा ॥

जीवे=धिकार है जीने को । जीवासि=जीने की आशा । धुरि=आदि से ही । मसतकि=माथे पर ।

* यह 'रहिरास' में से लिया गया है ।

५. लड़की वह भोली और अनजान है, वह प्रीतम को भला कैसे देख पायेगी ?

प्रभु जब कृपा करता है, तब पवित्रात्मा परलोक के सुकर्मों को सीखते हैं, और सदा प्रभु का ही ध्यान करते हैं ।

वह सुहागिन तब अपनी सहेलियों के बीच प्रभु के दरबार में अपनी बाँह को गर्व से डुलाती है ।

हरि का नाम जप लेने के बाद धर्मराज की रोकड़-बही में फिर क्या बाकी बचेगा ?

भोली और अनजान होते हुए भी वह लड़की सतगुरु के उपदेश से अपने प्रीतम प्रभु को यहां देख लेगी ।

६. मेरे बाबुल (पिता), व्याह हो गया है; गुरु के दिखाये मार्ग से मैंने अपने स्वामी को पा लिया है ।

मेरा अज्ञान का वह अँधेरा अब हट गया है, और सतगुरु ने ज्ञान का प्रचंड दीपक जला दिया है,

अकाल मूरति वरु पाइआ अबिनासी ना कदे मरे न जाइआ ॥
वीआहु होआ मेरे बाबुला गुरमुखे हरि पाइआ ॥६॥

हरि सति सते मेरे बाबुला हरिजन मिलि जंञ सोहन्दी ॥
पेवकड़ै हरि जपि सुहेली विचि साहुरड़ै खरी सोहन्दी ॥
साहुरड़ै विचि खरी सोहंदी जिनि पेवकड़ै नामु समालिआ ॥
सभु सफलिओ जनमु तिना दा गुरमुखि जिना मनु जिणि ॥
पासा ढालिआ ॥
हरि संतजना मिलि कारजु सोहिआ वरु पाइआ पुरखु अनंदी ॥
हरि सति सति मेरे बाबोला हरिजन मिलि जंञ सोहंदी ॥७॥

हरि प्रभु मेरे बाबुला हरि देवहु दानु मै दाजो ॥

और हरि-नाम का अनमोल रतन मैंने अब खोज लिया है।

अहंकार को काबू में कर लिया है।

उस अमर अविनाशी को अपने स्वामी के रूप में मैंने पा लिया है, वह कभी न जनमता है, न मरता है,

मेरे बाबुल, व्याह मेरा हो गया है; गुरु के दिखाये मार्ग से मैंने अपने स्वामी को पा लिया है।

७. मेरा प्रभु सच्चे से भी सच्चा है, मेरे बाबुल ! जब हरि के जन आ मिलते है, तब बारात की शोभा बहुत बढ जाती है।

जो (जीवात्मा) प्रभु का नाम जपता है, वह इसलोक में तो सुखी रहेगी ही, परलोक मे भी वह सच्ची शोभा पायेगी।

प्रभु के नाम का पासा फेंककर जिन्होंने गुरु के उपदेश से अपने मन को जीत लिया, उनका जीवन सारा सफल होगया।

हरि के संतजनों से मिलकर मेरा काज बन गया; आनन्दमय पुरुष के रूप में मुझे मेरा वर मिल गया।

मेरा प्रभु सच्चे से भी सच्चा है, मेरे बाबुल ! जब हरि के जन आ मिलते हैं, तब बारात की शोभा बहुत बढ जाती है।

८. मेरे बाबुल, तुम मेरे प्रीतम हरि को ही मुझे दान और दहेज के रूप में दो।

हरि कपड़ो हरि सोभा देवहु जितु सवरै मेरा काजो ॥
हरि हरि भगती काजु सुहेला गुरि सतिगुरि दानु दिवाइआ ॥
खंडि वरभंडि हरि सोभा होई इहु दानु न रलै रलाइआ ॥
होरि मनमुख दाजु जि रखि दिखालहि सु कूड़ अहुंकारु कचु पाजो ॥
हरि प्रभु मेरे बाबुला हरि देवहु दानु मै दाजो ॥८॥

हरि राम राम मेरे बाबोला पिर मिलि धन वेल वधंदी।
हरि जुगह जुगो जुग जुगह जुगो सद पीड़ी गुरू चलंदी ॥
जुगि जुगि पीड़ी चलै सतिगुरु की जिनी गुरमुखि नाम धिआइआ ॥
हरि पुरखु न कबही बिनसै जावै नित देवै चढै सवाइआ ॥
नानक संत संत हरि एको जपि हरि हरि नामु सोहंदी।
हरि राम राम मेरे बाबुला पिर मिलि धन वेल वधंदी ॥९॥

राग जैतसरी

हीरा लालु अमोलकु है भारी बिनु गाहक मीका काखा।
रतनु गाहकु गुरु साधू देखिओ तब रतनु बिकानो लाखा ॥

हरि की ही मुझे पोशाक दो, और हरि की ही शोभा, जिससे कि मेरा काज बन जाये।

हरि की भक्ति से व्याह सहल हो जाता है ; सतगुरु दाता ने मुझे अपने नाम का दान दे दिया है।

प्रभु, तेरी शोभा मे सारे खंड और ब्रह्माण्ड शोभायमान हो जायेंगे ; तेरे नाम का यह दहेज दूसरे और दहेजों में नहीं मिलाया जा सकता।

दुनियादार तो अपने दहेज के रूप में झूठे अहंकार और निकम्मे मुलम्मे का ही प्रदर्शन करेगा।

मेरे बाबुल, तुम तो मेरे प्रीतम को ही मुझे दान और दहेज के रूप में दो।

९. मेरे बाबुल, प्रियतम प्रभु से मिलकर वधू (पवित्र) बेल को बढ़ाती है।

हरि ने युग-युग से, सदा ही, गुरु का वंश बढ़ाया है, जिसने उसके उपदेशसे हरि के नाम का ध्यान सदा किया है।

मेरै मनि गुपत हीरु हरि राखा।
दीन दइआलि मिलाइओ गुरु साधु गुरि मिलिऐ हीरु पराखा॥
मनमुख कोठी अगिआनु अँधेरा तिन घरि रतनु न लाखा॥
ते ऊझडि भरमि मुए गावारी माइआ भुअंग बिखु चाखा॥
हरि हरि साध मेलहु जन नीके हरि साधू सरणि हम राखा॥
हरि अंगीकारु करहु प्रभ सुआमी हम परे भागि तुम पाखा॥
जिहवा किआ गुण आखि वखाणह तुम बड अगम बड पुरखा॥
जन नानक हरि किरपा धारी पाखाणु डुबत हरि राखा॥१०॥

राग सूही—छंत

हरि पहिलड़ी लावँ परविरती करम दड़ाइआ बलि रामजी।
बाणी ब्रहमा वेदु धरमु दड़हु पाप तजाइआ बलि रामजी॥

---

१०. हीरा या लाल चाहे कैसाही अनमोल हो, बिना गाहक के वह तिनके के समान तुच्छ है।

जब सतगुरुरूपी गाहक ने उस रतन को देखा, तो उसे उसने लाखों में खरीद लिया।

मेरे हृदय में हरि-हीरा छिपा पड़ा था।

दीनदयालु प्रभु ने सतगुरु से मेरी भेंट करादी, और मैंने अपना हीरा परख लिया।

मन की राह चलनेवालों की कोठरी में अँधेरा-ही-अँधेरा है अज्ञान का; वह रतन नज़र नहीं आता।

वे मूढ़ उजाड़ जंगल में भटक-भटककर मरते हैं माया-नागिनी का ज़हर चख-चखकर।

प्रभो, अपने साधुजनों से मुझे मिलादे; मुझे तू संतजनों की शरण में रखदे।

स्वामी, मुझे तू अब अपनाले, मैं तेरी ओर भाग आया हूँ।

मेरी जिह्वा तेरे गुणों का क्या बखान कर सकती है; तू महान् है, तू अगम्य है, तू पुरुषोत्तम है।

दास नानक विनती करता है—स्वामी, मुझपर दया कर; मुझ पाषाण (जड-बुद्धि) को डूबने से बचाले।

'बलि राम जी'—इसका अर्थ 'हे प्यारे' यह भी किया गया है; पर 'हे राम' मैं तुमपर बलि जाता हूँ, यह अर्थ अधिक समीचीन जँचता है।

धरमु दड़हु हरि नामु धिआवहु सिमृति नामु दड़ाइआ।
सतिगुरु पूरा आराधहु सभि किलविख पाप गवाइआ ॥
सहज अनंदु होआ वडभागी मनि हरि हरि मीठा लाइआ ॥
जनु कहै नानक लावँ पहिली आरंभु काजु रचाइआ ॥११॥
हरि दूजड़ी लावँ सतिगुरु पुरखु मिलाइआ बलि रामजी।
निरभउ भै मनु होइ हउमै मैलु गवाइआ बलि रामजी ॥
निरमलु भउ पाइआ हरि गुण गाइआ हरि वेखै रामु हदूरे।
हरि आतम रामु पसारिआ सुआमी सरब रहिआ भरपूरे ॥
अंतरि बाहरि हरि प्रभु एको मिलि हरिजन मंगल गाए ॥
जन नानक दूजी लावँ चलाई अनहद सबद बजाए ॥१२॥

११. [* गुरु रामदास ने अपने खुद के विवाह के अवसर पर इसे रचा था। जब वर और कन्या गाठ बांधकर गुरु ग्रन्थ साहब के चारों ओर फेरे करते है, तब इसका पाठ किया जाता है।]

परमात्मा ने इस पहले फेरे में प्रवृत्ति-कर्म को दृढ़ किया है।

(गुरु के) शब्द को ब्रह्मा मानो, और धर्म को मानलो वेद;

और परमात्मा तुम्हें पापों से मुक्त कर देगा।

धर्म पर दृढ़ रहो, हरि के नाम का ध्यान करो, और उसे अपनी स्मृति में जमालो।

पूर्ण सद्गुरु की आराधना करो,—तुम्हारे सब पाप दूर हो जायेंगे।

बहुत बड़ा भाग्य है उसका, जिसके हृदय में हरि बस गया—वह उस (ब्राह्मी) अवस्था में आनन्द-ही आनन्द और माधुर्य का अनुभव करता है।

दास नानक ने पहला फेरा पूरा कर लिया, और विवाह का आरम्भ हो गया।

१२. दूसरे फेरे में हरिने सद्गुरु से मेरी भेंट करादी है।

मेरे मन से भय दूर हो गया है, और मन का मैल धुल गया है।

हरि के गुणों को गाकर, और हरि को अपने सामने देखकर मैंने निर्मल पद पा लिया है।

जगदात्मा हरि से सब-कुछ पसारा हुआ, और भरपूर है।

अंदर और बाहर हमारे एक ही हरि है;

हरि के जनों से मिलने पर मंगल-गीत गाये जाते है।

दास नानक ने दूसरा फेरा पूरा कर लिया, और उसने अनहद शब्द सुन-लिया है।

हरि तीजड़ी लावँ मनि चाउ भइआ बैरागीआ बलि रामजी ।
संतजना हरि मेलु हरि पाइआ वड़भागीआ बलि रामजी ॥
निरमलु हरि पाइआ हरिगुण गाइआ मुखि बोली हरि वाणी ।
संतजना वड़भागी पाइआ हरि कथीऐ अकथ कहाणी ॥
हिरदै हरि हरि हरि धुनि उपजी हरि जपीऐ मसतक भागु जी ।
जनु नानकु बोले तीजी लावै हरि उपजै मनि वैरागु जी ॥१३॥
हरि चउथड़ी लावँ मनि सहजु भइआ हरि पाइआ बलि रामजी ।
गुरमुखि मिलिआ सुभाइ हरि मनि तनि मीठा लाइआ बलि रामजी॥
हरि मीठा लाइआ मेरे प्रभ भाइआ अनदिनु हरि लिव लाई ।
मन चिंदिआ फलु पाइआ सुआमी हरि नामि वजी वाधाई ॥

१३. परमात्मा ने तीसरे फेरे मे मन मे आनन्द-उत्साह और वैराग्य की भावना स्फुरित करदी है ।

संतजनो ने मुझे हरि से मिला दिया है, और मैने उसे बड़े सद्भाग्य से पाया है ।

उसके गुण गा-गाकर और उसका नाम रट-रटकर मैने उस निर्मल हरि को पाया है ।

बड़े भाग्य से संतजनो से मेरी भेट हुई है—जो हरि कथन से परे है, वे मुझे उसकी कथा सुना रहे है ।

हृदय मे हरि की ही ध्वनि उठ रही है, मै वही एक नाम जप रहा हूँ—मेरे भाग्य में लिखा भी यही था ।

दास नानक ने तीसरा फेरा पूरा कर लिया और हरि का अनुराग और (जगत् के प्रति) वैराग्य उसके मन में स्फुरित हो गया है ।

१४. चौथे फेरे मे परमात्मा ने सहज ज्ञान मेरे मन मे प्रकाशित कर दिया है, और मैने हरि को पा लिया है ।

गुरु के उपदेश से मुझे सद्वृत्ति प्राप्त हो गई है, और मुझे मेरे मन को और देह को परमात्मा प्रिय लग रहा है ।

वह मुझे प्रिय और मनोहर लग रहा है; मै दिन-रात उसका ध्यान करता हूँ ।

उसके नाम के आनन्द-गीत-गा-गाकर मुझे मनचाहा फल मिल गया है ।

प्रभु ने काज पूरा कर दिया, और वधू का हृदय हरि-नाम ले-लेकर प्रफुल्लित हो गया है ।

हरि प्रभि ठाकुरि काजु रचाइआ धन हिरदै नामि बिगासी ।
जनु नानकु बोले चउथी लावैं हरि पाइआ प्रभु अविनासी ॥१४॥

राग बसंतु—अष्टपदी

काइआ नगरि इकु बालकु वसिआ खिनु पलु थिरु न रहाई ।
अनिक उपाउ जतन करि थाके बारंबार भरमाई ॥
मेरे ठाकुर बालकु इकतु घरि आणु ।
सतिगुरु मिलै त पूरा पाईऐ भजु राम नामु नीसाणु ॥
इहु मिरतक मड़ा सरीरु है सभु जगु जितु राम नामु नहीं वसिआ ।
राम नामु गुरि उदकु चुआइआ फिरि हरिआ होआ रसिआ ॥
मै निरखत निरखत सरीरु सभु खोजिआ इकु गुरमुखि चलतु दिखाइआ ।
बाहरु खोजि मुए सभि साकत हरि गुर मति घरि पाइआ ॥
दीना दीन दयाल भए है जिउ क्रिसनु बिदर घरि आइआ ।
मिलिओ सुदामा भावनी धारि सभु किछु आगै दालदु भंजि समाइआ ॥
राम नाम की पैज वडेरी मेरे ठाकुरि आपि रखाई ।
जे सभि साकत करहि बखीली इक रती तिलु न घटाई ॥
जन की उसतति है राम नामा दह दिसि सोभा पाई ।
निंदकु साकत खवि न सके तिलु आपणै घरि लूकी लाई ॥

दास नानक ने यह चौथा फेरा भी पूरा कर लिया, और अविनाशी प्रभु को पा लिया है ।

१५. बालकु=मन से आशय है । खिनु=क्षण । थिरु=स्थिर, अचंचल । भरमाई=इधर-उधर घूमता रहता है । इकतु घरि आणु=एक नियत घर में लाकर बिठादे । इहु ... बसिआ=इस संसार में उन सभी के शरीर मानो कब्र की मिट्टी है, जिनमें राम-नाम का वास नहीं है । रामनामु···रसिआ=गुरु रामनाम का जल जब ढाल देता है, तब सूखा भी हरा हो जाता है; और उसमें रस भर जाता है । मृतक भी हरिनाम की संजीवनी से प्रफुल्लित हो जाता है । चलतु दिखाइआ=दृष्टि देदी । साकत=नास्तिकों अर्थात् ईश्वर पर ईमान न लानेवालों से आशय है । गुरमति घरि पाइआ=गुरु के उपदेश से परमात्मा को घर बैठे ही पा लिया । दीना दीन=दीनों से भी दीन । बिदर=विदुर । भावनी=भक्ति-भावना । दालदु भंजि=दरिद्रता दूर कर ।

जन कउ जनु मिलि सोभा पावै गुण महि गुण परगासा ।
मेरे ठाकुर के जन प्रीतम पिआरे जो होवहि दासनिदासा ॥
आपै जलु अपरंपारु करता आपै मेलि मिलावै ।
नानक गुरमुखि सहजि मिलाए जिउ जलु जलहि समावै ॥१५॥

सलोक

बड़भागिया सोहागणी जिन्हां गुरमुखि मिलिआ हरिराइ ।
अंतर जोति परगासिया नानक नामि समाइ ॥१॥

वाहु वाहु सतिगुरु सतिपुरख है, जिसनों सिम्रतु सभ कोई ।
वाहु वाहु सतिगुरु निरवैरु है, जिसु निंदा उसतति तुलि होइ ॥२॥

वाहु वाहु सतिगुरु सुजाणु है, जिसु अंतरि ब्रहमु विचारु ।
वाहु वाहु सतिगुरु निरंकारु है, जिसु अंतु न पारावारु ॥३॥

वड़भागो हरि पाइआ पूरन परमानन्दु ।
जन नानक नामु सलाहिआ, बहुडि न मनि तनि भंगु ॥४॥

गुरमुखि सची आसकी जितु प्रीतमु सचा पाईऐ ।
अनदिनु रहहि अनंदि नानक सहजि समाईऐ ॥५॥

सचा प्रेम पिआरु गुर पूरे ते पाइए ।
कबहू न होवै भंगु नानक हरिगुण गाइए ॥६॥

समाइआ=समृद्ध बना दिया । वर्खोली=कलक या अप्रतिष्ठा । उसतति=स्तुति । खवि न सकै=रोक-या अटका नहीं सकते । आपणै घरि लूकी लाई=अपने घरों में आग लगादी । आपे जलु=सिरजनहार समुद्र के समान है । आपे मेलि मिलावै— अपने आपसे मिलन वही कराता है ।

२. जिसनो=जिसको । सिम्रतु=स्मरण करते है । उसतति=स्तुति, प्रशंसा । तुलि= तुल्य, समान ।

४. सलाहिआ=सराहना या स्तुति की । बहुडि=फिर । न मनि तनि भंगु=मन और तन से विलग नहीं होता ।

५. आसकी=प्रीति । अनदिनु=नित्य, निरन्तर ।

गुरु अर्जुनदेव

चोला-परिचय

जन्म-संवत्—१६२० वि, वैशाख कृ० ७
जन्म-स्थान—गोइन्दवाल
पिता—गुरु रामदास
माता—बीबी भानी
भेष—गृहस्थ
मृत्यु-संवत्—१६६३ वि, ज्येष्ठ शु० ४
मृत्यु-स्थान—लाहौर (रावी नदी में)

गुरु अर्जुनदेव बचपन से ही बडे होनहार दीखते थे। इनके नाना गुरु अमरदास की यह भविष्यद्वाणी सर्वथा सत्य सिद्ध हुई कि 'यह मेरा दोहित पानी का बोहित होगा।" इन्होंने अपनी ऊँची रहनी और गहरी बानी के द्वारा हजारो-लाखों को पार लगाया।

विवाह इनका जालन्धर जिले के कृपाचन्द्र की पुत्री गंगा देवी के साथ हुआ। इन्ही गगा के गर्भ से महाप्रतापी छठे गुरु हरगोविन्द का जन्म हुआ।

सबसे पहले गुरु अर्जुनदेव ने सन्तोखसर और अमृतसर इन दोनों तालाबों के घाट बँधवाये, और रामदासपुर शहर को भी विस्तृत किया। रामदाससर (अमृतसर) की महिमा इन्होंने अपने इस पद में गाई है :—

"रामदास सरोवरि नाते। सभि उतरे पाप कमाते॥
निरमल होए करि इसनाना। गुरि पूरे कीने दाना॥
सभि कुसल खेम प्रभ धारे।
सही सलामति सभि लोक उबारे गुरु का सबदु वीचारे॥
साध संगि मलु लाथी। पारब्रहमु भइओ साथी॥
नानक नामु धिआइआ। आदिपुरख प्रभु पाइआ॥"

गुरु अर्जुनदेव ने अमृतसर मे एक सुन्दर मन्दिर भी बनवाया, जिसे

हरि मन्दिर या दरबार साहिब भी कहते है। इस मन्दिर मे गुरुगंथ साहिब की सेवा-पूजा की जाती है।

गुरु अर्जुनदेव ने तरनतारन का भी निर्माण किया, और वहाँ भी एक तालाब खुदवाया।

इसी प्रकार ब्यास और सतलज नदियों के बीच एक दूसरा शहर भी इन्होंने बसाया, जिसे कर्त्तारपुर कहते है।

इनका प्रायः सारा ही जीवन सघर्ष में बीता। इनके प्रति एक-न-एक कारण से ये तीन व्यक्ति द्वेष रखते थे—(१) बादशाह अकबर का मन्त्री राजा बीरबल, (२) इनका बडा भाई प्रिथिया, और (३) बादशाह का एक अर्थमन्त्री चन्दूशाह।

बीरबल का तो गुरु अर्जुनदेव के साथ केवल धार्मिक मत-भेद था। उसने इन्हे कई बार अपमानित करने का प्रयत्न किया, पर वह सफल नही हुआ।

प्रिथिया को गुरु की गद्दी नही मिली थी, इसीलिए वह इनका शत्रु बन बैठा। इनके विरुद्ध उसने अनेक षडयंत्र रचे। इनके पुत्र हरगोविन्द को विष दिलानेतक का प्रयत्न किया। बादशाह को भी इनके खिलाफ कई बार उसने उभाडा। जितनी भी दुष्टता और नीचता हो सकती थी प्रिथिया ने उस सबका प्रयोग किया। उसकी स्त्री गुरु का सर्वनाश करने-कराने के प्रयत्नो मे उससे भी हमेशा चार कदम आगे रहती थी।

चन्दूशाह भी गुरु का जानी दुश्मन था। वह दिल्ली में रहता था। उसको अपनी एक लडकी के लिए सुयोग्य वर की आवश्यकता थी। उसके आगे गुरु अर्जुनदेव के लडके हरगोविन्द का प्रस्ताव रक्खा गया। पहले तो उसे यह प्रस्ताव पसन्द नही आया और यह कहकर गुरु का घोर अपमान किया कि–'राजमहल की सुन्दर खपरैल को भला कोई नाली मे फेकेगा ?' किंतु अंत मे अपनी स्त्री के आग्रह पर उसने उक्त बात को मान लिया। पर अब गुरु के सिक्ख राजी नहीं हुए। गुरु का अपमान उन्हे सहन नही हुआ। परिणामतः चन्दूशाह का प्रस्ताव ठुकरा

दिया गया। इस घटना ने उसे गुरु अर्जुनदेव का घोर शत्रु बना दिया। उसने उनको मिट्टी में मिला देने की प्रतिज्ञा की। चन्दूशाह ने कितने ही षडयत्र गुरु अर्जुनदेव के विरुद्ध रचे, और प्रिथिया ने भी उसका इन कुकृत्यो मे साथ दिया।

गुरु अर्जुनदेव ने अपने सतत सघर्षमय जीवन मे भी हमेशा शाति, गम्भीरता, क्षमाशीलता और तितिक्षा का परिचय दिया। वे अपने धर्म-पथपर से अततक विचलित नही हुए। रचनात्मक कार्य उनका बराबर जारी रहा। अपने जीवन मे उन्होने जो सबसे महान् और चिरस्थायी कार्य किया वह था गुरु ग्रथ साहिब का सुन्दर संकलन तथा सम्पादन। चारो पूर्व गुरुओ की यथार्थ बानी का रागबद्ध सग्रह करना कोई साधारण काम नही था। गुरु अमरदास अपनी रचना 'अनदु' की २३वी तथा २४वी पउडी मे कह गये थे कि सिक्खो को गुरु के सच्चे पदो का ही पाठ करना चाहिए। गुरु अर्जुनदेव की आज्ञा से भाई गुरदास ने इस भगीरथ-कार्य को हाथ मे लिया। गुरु अमरदास के जेठे पुत्र मोहन को प्रसन्न करके गोइन्दवाल से गुरु अर्जुनदेव गुरुओ की सारी सच्ची बानी को ले आये। उस सब बानी का तथा अपनी भी बानी का उन्होने सग्रह और सम्पादन कराया, और जयदेव, कबीर, रैदास, फरीद आदि भक्तो की भी कुछ चुनी हुई बानियो को ग्रथ साहिब मे आदरपूर्वक स्थान दिया। गुरु अर्जुनदेव ने बोल-बोलकर सब पदो और सलोको को भाई गुरदास से गुरुमुखी मे लिखवाया। गुरु अर्जुनदेव ने यह एक बहुत बडा काम किया, और इससे वे अमर हो गये। सत्तै ने बलबड की लम्बी रचना मे निम्नलिखित पउडी जोड़कर गुरु अर्जुनदेव की गुरु ग्रन्थ साहिब-संपादन-विषयक जो ऊँची प्रशसा की वह सर्वथा योग्य है:—

चारे जागे चहु जुगी पंचाइणु आपे होआ ॥
आपीनै आपु साजिओनु आपेहि थम्हि खलोआ ॥
आपे पटी कलम आपि आपि लिखणहारा होआ ॥
सभ उमति आवण जावणी आपेही नवा निरोआ ॥

तखति बैठा अरजन गुरु सतिगुर का खिवै चदोआ ।।
उगवणहु तै आथवणहु चहु चकी कीअनु लोआ ।।
जिन्ही गुरु न सेविओ मनमुखा पइआ मोआ ।।
दूणी चउणी करामाति सचे का सजा ढोआ ।।
चारे जागे चहु जुगी पचाइणु आपे होआ ।।

अर्थात्, चारो गुरुओं ने जगत के चारो युगो को जगमगा दिया; अर्जुन, तू उनके स्थान पर पाँचवाँ है।

तूने स्वयं ही यह सब रचा है; तू ही इस रचना का आधार-स्तम्भ है।

तू ही पट्टी है, तू ही कलम है, तू ही लिखनेवाला है।

मनुष्य आते है और चले जाते है; पर तू सदाही नवीन और पूर्ण है।

गुरु अर्जुन गुरु के तख्त पर बैठा है, सतगुर का छत्र उसके ऊपर दिप रहा है।

उदयाचल से अस्ताचलतक सारी दिशाएँ तूने प्रकाशित करदी है।

जिन्होने सतगुरु की सेवा नही की, उन्हे बार-बार जन्म लेना होगा।

तेरे चमत्कार दूने चौगुने बढेगे; सच्चे गुरु का तू सच्चा उत्तराधिकारी है।

चारो गुरुओ ने जगत् के चारो युगो को जगमगा दिया; अर्जुन, ! तू उनके स्थान पर पाँचवाँ है।

अत मे, ४३ वर्ष की अल्पायु मे, महान् सत गुरु अर्जुनदेव को धर्म की वेदी पर बलि होना पड़ा। प्रिथिया के पुत्र मिहरबान और चन्दू अपने महान् कुकृत्य मे सफल हो गये। गुरु अर्जुनदेव की झूठी-झूठी शिकायते जहाँगीर बादशाह के कानों मे पहुँचाई गई। उन्हे छल-बल से पकड़वाकर बादशाह के आगे पेश किया गया और इस्लाम का विरोधी ठहराया गया। फैसला यह सुनाया गया कि वे दो लाख रुपये बतौर जुर्माने के दें, और गुरु ग्रथ साहिब मे से आपत्तिजनक अंश को

निकालदे। उन्होंने दोनों ही बातें नामंजूर करदी। उन्होने कहा कि "ग्रथ साहिब मे ऐसी एक भी पवित नही, जिसमे हिंदू अवतारो और मुस्लिम पैगबरो की निन्दा की गई हो। हाँ, यह जरूर उसमे कहा गया है कि पैगम्बर, पीर और अवतार सब उसी अकाल परमात्मा के सिरजे हुए है, जिसका अन्त आजतक किसीको भी नही मिला। मेरा मुख्य उद्देश्य है सत्य का प्रचार और असत्य का निवारण, इसमे अगर मेरा यह नाशवान् शरीर भी चला जाये, तो उसे मै अपना अहोभाग्य मानूंगा।" बादशाह इसपर बहुत बिगडा। गुरु अर्जुनदेव को जेलखाने मे डाल दिया गया, और वहाँ उन्हे अनेक अमानुषिक यातनाएँ दी गई। आग-सी गरम रेत उनके ऊपर डाली गई, और जलती हुई लाल कड़ाही मे उन्हे बिठाया गया। पर उन्होने सारी यातनाओ को शाति से सहन कर लिया। उन्होने हँसते हुए आततायी चन्दू से दृढता के स्वर मे कहा कि, अरे मूर्ख !

'फूटो अडा भरम का, मनहि भइउ परगासु।
काटी बेडी पगह ते, गुरि कीता बदि खलासु ॥

जन्म-जन्म की बेडी कट चुकी थी, सतगुरु ने माया के बदीगृह से मुक्त कर दिया था। भ्रम का पर्दा हट चुका था, और अब मन के अन्दर दिव्य प्रकाश जगमग-जगमग हो रहा था।

पाँच दिन कारागार मे बीत गये। छठे दिन उन्होने रावी नदी में स्नान कर आने की इजाजत माँगी, और वह मिल गई। अपने साथ पाँच प्यारे सिक्खो को लेकर वे हथियारबन्द सिपाहियो की निगरानी मे नहाने के लिए बन्दीगृह से निकले। सारे बदन पर फफोले पड़े हुए थे, और पैरो मे कई घाव हो गये थे। लेकिन चेहरे पर प्रेम की वही मस्ती खेल रही थी, मानो बन्दी-गृह से छटकर अपने प्यारे प्रभु से मिलने जा रहे थे। ध्यान मे मग्न थे, मुख से 'वाहगुरु वाहगुरु' निकल रहा था।

रावी मे उतरकर स्नान किया, और फिर 'जपुजी' का मंगल पाठ, और वहीं पर शांतिपूर्वक अपना चोला छोड़ दिया। वह संवत् १६६३

की जेठ सुदी चौथ का दिन था—बहुत बड़े बलिदान का चिरस्मरणीय सुदिन !

बानी-परिचय

गुरु अर्जुनदेव की बानी बहुत बड़ी है, ६००० से भी अधिक इनके पद और सलोक है। 'महला ५' के अन्तर्गत जितने भी पद और सलोक मिलते है वे सब इन्हीके रचे हुए है। 'बावन अखरी', सवैये, छंत, फुनहे, अनेक रागों मे वारे, तथा 'सहसकृति के सलोक' इनके प्रसिद्ध है। पर इनकी 'सुखमनी' नाम की आनन्ददायिनी सुन्दर सरस रचना सबसे अधिक प्रसिद्ध है। इसमे २२ अष्टपदियाँ है। हमने प्रस्तुत संग्रह मे सारी सुखमनी तो नही, पर उसकी कुछ अष्टपदियाँ संकलित की है। यह इनकी अति लोक-प्रिय रचना है। इसके पाठ से चित्त को बहुत शान्ति मिलती है। प्रात.काल 'जपुजी' के पश्चात् 'सुखमनी का' पाठ किया जाता है भाषा सरस तथा साधु है। पंजाबी का पुट कम और हिंदी का रँग अधिक है। इनके कितने ही पद बहुत मधुर और प्रसाद गुण से युक्त है। भक्ति-भावना उनमे कूट-कूटकर भरी है। हमें इस बात का पछतावा है कि स्थल-सकीर्णता के कारण गुरु अर्जुनदेव के हजारों पदों मे से हम बहुत ही थोड़े पद इस सक्षिप्त-सग्रह मे ले सके।

आधार

१. गुरु ग्रथ साहिब—सर्व हिन्द सिक्ख मिशन, अमृतसर
२. दि सिक्ख रिलीजन (भाग ३)—मेकॉलीफ

रागु सारंग

जा की रामनाम लिव लागी।
सजनु सुहृद सुहेला सहजे, सो कहिए बड़भागी
रहित-बिकार अलिप माइआते अहंबुद्धि-बिखु तिआगी ॥
दरस पिआस आस एकहि की, टेक हिये प्रिय पागी ॥

---

१. लिव=प्रीति, ध्यान। सजनु=सम्बन्धी, प्यारा। सुहेला=सुन्दर। अलिप=निर्लेप।

अचिंत सोइ जागनु उठि बैसनु अचिंत हसत बैरागी ॥
कहु नानक जिनि जगतु ठगाना, सु माइआ हरिजन ठागी ॥१॥

माई री मनु मेरो मतवारो ।
पेखि दइआल अनंद सुख पूरन हरि-रसि पिओ खुमारो ॥
निरमल भइउ उजल जसु गावत बहुरि न होवत कारो ॥
चरनकमल सिउ डोरी राची भेटिओ पुरखु अपारो ॥
करु गहि लीने सरबसु दीने, दीपक भइउ उजारो ॥
नानक नामि-रसिक बैरागी कुलह समूहा तारो ॥२॥

राग् प्रभाती

राम राम राम राम जाप ।
कलि-कलेस लोभ-मोह बिनसि जाइ अहं-ताप ॥
आपु तिआगि, संतचरन लागि, मनु पवितु, जाहि पाप ॥
नानकु बारिकु कछू न जानै, राखन कउ प्रभु माई बाप ॥
चरनकमल-सरनि टेक ।
ऊच मूच बेअंतु ठाकुरु, सरब ऊपरि तुही एक ॥
प्रानअधार दुख बिदार, देनहार बुधि-बिवेक ॥
नमसकार रखनहार मनि अराधि प्रभू मेक ॥
संत-रेन करउ भजनु नानकु पावे सुख अनेक ॥४॥

रागु रामकली

जपि गोबिन्दु गोपाल लालु ।
रामनाम सिमरि तू जीवहि फिरि न खाई महाकालु ॥

अहबुधि बिखु=अहंकाररूपी विष । अचित=निश्चिन्त । बैसनु=बैठना । ठागी=हरि-भक्तों द्वारा ठगी गई ।

२. खुमारो=नशा । कारो=काला, मलिन । डोरी राची=प्रीति लगी । कुलह समूहा=अनेक कुलों को ।

३. अहंताप=अहंकार की आग, जो निरंतर जलाती रहती है । आपु=अहंकार । पवितु=पवित्र । बारिकु=बालक । कउ=को ।

४. ऊच मूच=ऊँचे से ऊँचा । बेअंतु=अनंत । मनि अराधि=मनमें आराधना करने योग्य । संत ·····मंजनु=संतो की चरण-रज से मन को माँजकर निर्मल करूँ ।

कोटि जनम भ्रमि भ्रमि भ्रमि आइओ। बडै भागि साधु-संगु पाइओ ॥
बिनु गुर पूरे नाही उधारु। बाबा नानकु आखै एहु बीचारु ॥५॥

कोई बोले राम नाम कोई खुदाइ।
कोई सेवै गुसइआ कोई अलाहि ॥
कारणेकरण करीम।
किरपा धारि रहीम ॥
कोई नावै तीरथि कोई हज जाइ। कोई करै पूजा कोई सिरु निवाइ ॥
कोई पढै बेद कोई कतेब। कोई ओढै नील कोई सुपेद ॥
कोई कहै तुरकु कोई कहै हिन्दू। कोई बाछै भिसतु कोई सुरगिदू ॥
कहु नानक जिनि हुकमु पछाना। प्रभ साहिब का तिनि भेदु जाना ॥६॥

रागु भैरउ

तू मेरा पिता तू है मेरी माता। तू मेरे जीअ प्रान-सुखदाता ॥
तू मेरा ठाकुर हउ दासु तेरा। तुझ बिनु अवरु नही को मेरा ॥
करि किरपा करहु प्रभ दाति। तुमरी उसतति करउं दिनराति ॥
हम तेरे जंत तू बजावनहारा। हम तेरे भिखारी दानु देहि दातारा ॥
तउ परसादि रंगरस्म माणे। घट घट अंतरि तुमहि समाणे ॥
तुमरी कृपा ते जपीऐ नाउ। साध संगि तुमरे गुण गाउ ॥
तुमरी दइआ ते होइ दरद बिनासु। तुमरी मइआ ते कमल बिगासु ॥
हउ बलिहारि जाउं गुरदेव। सफल दरसनु जाकी निरमल सेव ॥
दइआ करहु ठाकुर प्रभ मेरे। गुण गावै नानकु नित तेरे ॥७॥

---

५. उधारु=उद्धार, मुक्ति। आखै=कहता है। बीचारु=सार-तत्त्व की बात।

६. गुसइआ=गोसाईं, परमात्मा। अलाहि=अल्लाह। कारण-करण=कारण का भी कारण। करीम=कृपालु। रहीम=दयालु। नावै=स्नान करता है। सिरु निवाइ=नमाज पढता है। कतेब=कुरान से आशय है। नील=नीला कपडा, जिसे मुसलमान फकीर ओढते है। सुपेद=सफेद वस्त्र। बाछै=चाहता है। भिसतु=बहिश्त, स्वर्ग। सुरगिदू=सुरलोक। भेदु=मर्म, असली रहस्य।

७. ठाकुर=स्वामी। हउ=हौं, मै। दाति=दान। उसतति=स्तुति। जंत=यंत्र, बाजा। तउ परसादि=तेरी कृपा से। रंगरस=परमानन्द। तुमरी मइआ… …बिगासु=

श्रीधर मोहन सगल उपावन निरंकार सुखदाता।
ऐसा प्रभु छोड़ि करहि अनसेवा कवन बिखिआ रसमाता॥
रे मन मेरे तू गोविंद भाजु।
अवर उपाव सगल मै देखे जो चितवीए तितु बिगरसि काजु॥
ठाकुर छोड़ि दासी कउ सिमरहि मनमुख अंध अगिआना।
हरि की भगति करहि तिन निंदहि निगुरे पसू समाना॥
जीउ पिंडु तनु धनु सभु प्रभु का, साकत कहते मेरा।
अहंबुधि दुरमति है मैली बिनु गुर भवजलि फेरा॥
होम जग्य जप तप सभि संजम तटि तीरथि नही पाइआ॥
मिटिआ आपु पए सरणाई गुरमुखि नानक जगतु तराइआ॥८॥

सुखमनी*

रागु गउडी

सिमरउ सिमरि सिमरि सुखु पावउ। कलि कलेस तन माहि मिटावउ॥
सिमरउ जासु बिसुंभर एकै। नामु जपत अनगनत अनेकै॥
बेद पुरान सिंमृति सुधाख्यर। कीने रामनाम इक आख्यर॥

तुम्हारी स्नेहमयी कृपामे हृदयरूपी कमल प्रफुल्लित अर्थात् आनन्दित होता है। सेव=सेवा।

८. सगल उपावन=सारी सृष्टि को उत्पन्न करनेवाला। अनसेवा=दूसरे की सेवा। बिखिआ=विषय-भोग। भाजु=भज, स्मरण कर। चितवीए=चित्त लगाने पर। दासी कउ=माया को। निगुरे=बिना गुरु की शरण लिये हुए। साकत=शाक्त; यही निरीश्वरवादी से तात्पर्य है। भवजलि फेरा=ससार-सागर मे चक्कर लगाते रहना। मिटिआ आपु पए सरणाई=गुरु की शरण में जाने मे अहकार नष्ट हो गया।

* 'सुखमनी में कुल २४ अष्टपदिया है और प्रत्येक अष्टपदी में ८० पपंक्तियां। 'सुखमनी' का पाठ प्रातःकाल 'जपुजी' के पश्चात् किया जाता है। प्रस्तुत संग्रह में हमने सपूर्ण 'सुखमनी' को न लेकर कतिपय अष्टपदियों के ही अशों को लिया है, अतः क्रम नही रह सका। इसके लिए हमें क्षमा किया जाये—सं०

१. तन माहि=हृदय में से। बेद पुरान ····इकआख्यर=वेदों, पुराणों और स्मृतियों में से साररूप 'राम' यह एक शब्द शोध निकाला है। किनका ··बसावै=

किनका एक जिसु जीव बसावै। ता की महिमा गनी न आवै।
कांखी एकै दरस तुहारो। नानक उन संगि मोहि उधारो ॥१॥
सुखमनी सुख अंमृत प्रभ नामु। भगत जना कै मनि बिस्रामु ॥
प्रभ कै सिमरनि गरभि न बसै। प्रभ कै सिमरनि दूखु जमु नसै ॥
प्रभ कै सिमरनि कालु परहरै। प्रभ कै सिमरनि दुसमनु टरै ॥
प्रभ कै सिमरन कछु बिघनु न लागै। प्रभ कै सिमरनि अनदिनु जागै ॥
प्रभ कै सिमरनि भउ ना बिआपै। प्रभ कै सिमरनि दुखु न संतापै ॥
प्रभ का सिमरनु साध कै संगि। सरब-निधान नानक हरि-रंगि ॥२॥
प्रभ का सिमरनु सभ ते ऊचा। प्रभ कै सिमरनि उधरे मूचा ॥
प्रभ कै सिमरनि तृसना बुझै। प्रभ कै सिमरनि सभु किछु सुझै ॥
प्रभ कै सिमरनि नाही जमत्रासा। प्रभ कै सिमरनि पूरन आसा ॥
प्रभ कै सिमरनि मन की मलु जाइ। अंमृत नामु रिद माहि समाइ ॥
प्रभजी बसहि साध की रसना। नानक जन का दासनि दसना ॥३॥

सलोक

दीन-दरद-दुखु-भजना घटि घटि नाथ-अनाथ।
सरनि तुम्हारी आइओ नानक के प्रभ साथ ॥

अष्टपदी

सगल सृसटि को राजा दुखिआ। हरि का नामु जपत होइ सुखिआ ॥
लाख करोरी बंधनु परै। हरि का नामु जपत निसतरै ॥
अनिक माया रंग तिख न बुझावै। हरि का नामु जपत आघावै ॥

एक क्षण भी जिसने उस नाम को अपने हृदय में बसा लिया। कांखी=आकांक्षी, चाहनेवाले। उधारो=उद्धार करो।

२. सुखमनी=मन को आनन्द या शान्ति देनेवाली इस रचना में। गरभि न बसै=फिर जन्म नहीं लेता, मुक्त हो जाता है। अनदिनु=नित्य। जमु=यम, मृत्यु। भउ=भय। रंगि=प्रेम-भक्ति।

३. मूचा=अनेक, बहुत-से (पापी)। बुझै=शान्त हो जाती है। सुझै=दीख जाता है, अनुभव में आ जाता है। मलु=मलिन वासना से अभिप्राय है। रिद=हृदय। रसना=वाणी। जन=हरिभक्त। दासनिदसना=दासानुदास।

४. रंग=सुख, विषय-भोग। तिख=तृषा, प्यास। आघावै=शान्त हो जाती है।

जिह मारग इहु जात अकेला । तह हरिनामु संगि होत सुहेला ॥
ऐसा नामु मन सदा धिआइए । नानक गुरमुखि परमगति पाइए ॥४॥
सगल पुरख महि पुरखु प्रधानु । साध-संगि जा का मिटै अभिमानु ॥
आपस कउ जो जाणै नीचा । सोऊ गनीए सभ ते ऊचा ॥
जा का मनु होइ सगल की रीना । हरि हरि नामु तिनि घटि घटि चीना ॥
मन अपुने ते बुरा मिटाना । पेखै सगल सृसटि साजना ॥
सूख दूख जन सम द्रिसटेता । नानक पाप पुन्न नहीं लेपा ॥५॥
निरधन कउ धनु तेरो नाउ । निथावे कउ नाउ तेरा थाउ ॥
निमाने कउ प्रभ तेरो मान । सगल घटा कउ देवहु दान ॥
करन करावनहार सुआमी । सगल घटा के अन्तरजामी ॥
अपनी गति मिति जानहु आपे । आपन संगि आपि प्रभ राते ॥
तुमरी उसतुति तुम ते होइ । नानक अवरु न जानसि कोइ ॥६॥
आदि अंति जो राखनहारु । तिस सिउ प्रीति न करै गवारु ॥
जाकी सेवा नवनिधि पावै । ता सिउ मूढा मन नही लावै ॥
जो ठाकुर सद सदा हजूरे । ता कउ अंधा जानत दूरे ॥
जाकी टहल पावे दरगह मानु । तिसहि बिसारै मुगधु अजानु ॥
सदा सदा इहु भूलनहारु । नानक राखनहारु अपारु ॥७॥

सुहेला=आनन्ददायक । गुरमुखि—जिसने गुरु से उपदेश लिया हो । परमगति= मोक्ष ।

५. प्रधानु=सर्वश्रेष्ठ । आपस कउ=अपने आपको । सगल की रीना=सबके चरणों की धूल । बुरा=द्वेषभाव । साजना=मित्र । द्रिसटेता=द्रष्टा, देखनेवाला । लेपा= लिप्त ।

६. निथावे कउ=जिसका कोई ठौर नहीं उसे । थाउ=ठौर । निमाने कउ तेरो मान= जो किसीसे मान नहीं पाता, उसे तू मान देता है । सगल घटा कउ=सब घटों अर्थात् प्राणियों को । मिति=सीमा । आपन संगि ·····राते=प्रभो, तू स्वयं अपने आपपर अनुरक्त है । उसतुति=स्तुति, प्रशंसा ।

७. गवारु=मूढ । मन नहीं लावै=प्रेम नहीं करता । हजूरे=विद्यमान । टहल= सेवा,चाकरी । पावे दरगह मानु=परमात्मा के दरबार में आदर पाता है । मुगधु= मुग्ध, मूढ । इहु=यह जीव । राखनहारु=बचानेवाला ।

रतनु तिआगि कउड़ी संगि रचै। साचु छोडि झूठ संगि मचै ॥
जो छड़ना सु असथिरु करि मानै। जो होवनु सो दूरि परानै ॥
छोडि जाइ तिसका स्रमु करै। संगि-सहाई तिसु परहरै ॥
चंदन-लेपु उतारै धोइ। गरधब-प्रीति भसम संगि होइ ॥
अंधकूप महि पतित बिकराल। नानक काढि लेहु प्रभ दइआल ॥८॥
संगि-सहाई सु आवै न चीति। जो बैराई ता सिउ प्रीति ॥
बलुआ के ग्रिह भीतरि बसै। अनंद-केल माइआ-रंगि रसै ॥
द्रिड़ु करि मानै मनहि परतीति। कालु न आवै मूड़े चीति ॥
बैर बिरोध काम क्रोध मोह। झूठ बिकार महा लोभ ध्रोह ॥
इआहू जुगति बिहाने कई जनम। नानक राखि लेहु आपन करि करम ॥९॥

सलोक

काम क्रोध अरु लोभ मोह बिनसि जाइ अहमेव।
नानक प्रभ सरनागती करि प्रसादु गुरदेव ॥

अष्टपदी

जिह प्रसादि छतीह अंम्रित खाहि। तिसु ठाकुर कउ रखु मन माहि ॥
जिह प्रसादि सुगंध तनि लावहि। तिस कउ सिमरत परमगति पावहि ॥
जिह प्रसादि बसहि सुमंदरि। तिसहि धिआइ सदा मन अंदरि ॥

---

८. रचै=प्रीति जोड़ता है। मचै=आसक्त हो जाता है।
असथिरु=स्थिर। जो होवनि ··· परानै=मृत्यु का ख्याल, जो अवश्यभावी है, भुला देता है। तिसु=उसको। गरधब=गर्दभ, गदहा। भसम=राख, मिट्टी। विकराल=भयंकर; अंधकूप का विशेषण है।

९. आवै न चीति=ध्यान में नहीं आता। बलुआ के ग्रिह=बालू के घर में: क्षणभंगुर शरीर में। माइआ रंगि=अनित्य विषय-भोगों में। रसै=सुख मानता है। द्रिड़ुकरि··· ···परतीति=निश्चय करके मानता है कि सांसारिक सुख सदा रहनेवाले हैं। मूड़े=मूर्ख के। चीति=चित्त में। ध्रोह=द्रोह। इआ हू जुगति=इसी रीति से, इसी प्रकार। बिहाने=बीतगये। करम=कृपा।

१० अहमेव=अहंता, खुदी। प्रसादि=कृपा से। छतीह अंम्रित=छत्तीस प्रकार के

जिह प्रसादि गृह संगि सुख बसना। आठ पहर सिमरौ तिसु रसना॥
जिह प्रसादि रंग-रस-भोग। नानक सदा धिआईए धिआवनजोग॥१०॥
आपि जपाए जपै सो नाउ। आपि गवाए सु हरिगुन गाउ॥
प्रभ किरपा ते होइ प्रगासु। प्रभू दइआ ते कमल-बिगासु॥
प्रभ सुप्रसन्न बसै मनि सोइ। प्रभ-दइआ ते मति ऊतम होइ॥
सरबनिधान प्रभ तेरी मइआ। आपहु कछू न किनहू लइआ॥
जितु जितु लावहु तितु लगहि हरि नाथ। नानक इनकै कछू न हाथ॥११॥
साध कै संगि मुख ऊजल होत। साध संगि मलु सगली खोत॥
साध कै संगि मिटै अभिमानु। साध कै संगि प्रगटै सुगिआनु॥
साध कै संगि बुझै प्रभ नेरा। साध संगि सभु होत निबेरा॥
साध कै संगि पाए नामरतनु। साध कै संगि एक ऊपरि जतनु॥
साध की महिमा बरनै को प्रानी।
नानक साध की सोभा प्रभ माहि समानी॥१२॥
साध कै संगि नहीं कछु घाल। दरसनु भेटत होत निहाल॥
साध कै संगि कलूखत हरै। साध कै संगि नरक परहरै॥
साध कै संगि ईहा ऊहा सुहेला। साध संगि बिछुरत हरि मेला॥
जो इच्छै सोई फलु पावै। साध कै संगि न बिरथा जावै॥
परब्रहमु साध रिद बसै। नानक उधरै साध सुनि रसै॥१३॥

अमृत-जैसे व्यंजन। तनि लावहि=शरीर में लगाता है। सुख=आराम से। मंदिर=घर में।

११. आपि=स्वयं वह परमात्मा। कमल बिगासु=हृदय-कमल खिल जाता है। ऊतम=उत्तम। मइआ=कृपा। लइआ=प्राप्त किया। जितु" नाथ=जिस-जिस काम में तू लगा देता है उसमें हम लग जाते हैं। कछू न हाथ=अपना कुछ भी सामर्थ्य नहीं।

१२. मलु सगली खोत=सारी गंदगी अर्थात् मलिन वासना दूर हो जाती है। बुझै=बोध हो जाता है, दीख जाता है। नेरा=निकट। निबेरा=निर्णय। एक ऊपरि जतनु=एक परमात्मा को पाने का ही यत्न करे।

१३. घाल=परिश्रम, कष्ट। कलूखत=कलंक, दोष। ईहा ऊहा=यह लोक और परलोक। सुहेला=आनन्दित। बिछुरत हरि मेला=परमात्मा से वे मिल जायेंगे, जो बिछुड चुके थे। रिद=हृदय। रसै=आनन्दित होता है।

ब्रहमगिआनी कै एकै रंग। ब्रहमगिआनी कै बसै प्रभु संग ॥
ब्रहमगिआनी कै नामु अधारु। ब्रहमगिआनी कै नामु परिवारु ॥
ब्रहमगिआनी सदा सद जागत। ब्रहमगिआनी अहंबुधि तिआगत ॥
ब्रहमगिआनी कै मनि परमानंद। ब्रहमगिआनी कै घरि सदा अनंद ॥
ब्रहमगिआनी सुख सहज निवास। नानक ब्रहमगिआनी का नहीं बिनास ॥१४॥

मिथिआ नाहीं रसना परस। मन महि प्रीति निरन्जन-दरस ॥
परत्रिय रूपु न पेखै नेत्र। साध की टहल संत संगि-हेत ॥
करन न सुनै काहू की निंदा। सब ते जानै आपस कउ मंदा ॥
गुरप्रसादि बिखिआ परहरै। मन की बासना मन ते टरै ॥
इन्द्रीजित पंच दोख ते रहत। नानक कोटि मधे को ऐसा अपरस ॥१५॥

बैसनो सो जिसु ऊपर सु प्रसन्न। बिसन की माया ते होइ भिन्न ॥
करम करत होवै निहकरम। तिसु बैसनो का निरमल धरम ॥
काहू फल की इच्छा नहीं बाछै। केवल भगति कीरतन संगि राचै ॥
मन तन अंतरि सिमरन गोपाल। सभ ऊपरि होवत किरपाल ॥
आपि दृड़ै अवरहु नामि जपावै। नानक ओहु बैसनो परमगति पावै ॥१६॥

सलोक

गिआन-अंजनु गुरि दीआ, अगिआन-अंधेर बिनासु।
हरि-किरपा ते संत भेटिआ, नानक मनि परगासु ॥

---

१४. परवारु=कुटुंब। सदासद=निरन्तर।

१५. मिथिआ परस=जिनकी जिह्वा कभी असत्य का स्पर्श भी नहीं करती; जो स्वप्न में भी असत्य नहीं बोलते। निरंजन=अव्यय, अविनाशी। टहल=सेवा। हेत=प्रेम। आपस कउ=अपने आपको। मंदा=नीच, बुरा। बिखिआ=विषय। दोख=दोष (पंचविषयजनित) पाप। कोटि मधे को=करोड़ों में कोई विरला। अपरस=जो विषयों का स्पर्श नहीं करता, अनासक्त विरक्त; रूढ़ार्थ में जो छूतछात बहुत मानता है।

१६. बैसनो=वैष्णव। सु=वह, परमात्मा। बिसन की माया=व्यसनों का प्रभाव; विष्णु की दैवी माया। भिन्न=अलिप्त। बांछै=चाहता है। दृड़ै=दृढ़ रहता है।

अष्टपदी

संत-संगि अंतरि प्रभु डीठा। नामु प्रभू का लागा मीठा ॥
सगल समिग्री एकसु घट माहि। अनिक रंग नाना द्रिसटाहि ॥
नउ निधि अंमृतु प्रभ का नामु। देही महि इसका बिस्राम ॥
सुन्न समाधि अनहत तह नाद। कहनु न जाई अचरज बिसमाद ॥
तिनि देखिआ जिसु आपि दिखाए। नानक तिसु जन सोझी पाए ॥१७॥

सलोक

पूरा प्रभु आराधिआ, पूरा जाका नाउ।
नानक पूरा पाइआ, पूरे के गुन गाउ ॥

अष्टपदी

पूरे गुर का सुनि उपदेसु। पारब्रहमु निकटि करि पेखु ॥
सासि सासि सिमरहु गोबिंद। मन अंतर की उतरै चिंद ॥
आस अनित तिआगहु तरंग। संतजना की धूरि मन मंग ॥
आपु छोड़ि बेनती करहु। साध संगि अगनि-सागरु तरहु ॥
हरि धन के भरि लेहु भण्डार। नानक गुर पूरे नमसकार ॥१८॥
खेम कुसल सहज आनन्द। साध संगि भजु परमानन्द ॥
नरक निवारि उधारहु जीउ। गुन गोबिन्द अंमृतरसु पीउ ॥
चिति चितवहु नारायण एक। एक रूप जाके रंग अनेक ॥
गोपाल दामोदर दीनदयाल। दुखभंजन पूरन किरपाल ॥
सिमरि सिमरि नामु बारंबार। नानक जीअ का इहै अधार ॥१९॥
प्रभ की उसतति करहु सन्त मीत। सावधान एकागर चीत ॥
सुखमनी सहज गोबिंद गुन नाम। जिसु मनि बसै सु होत निधान ॥

---

१७. मनि परगासु=मन में स्वरूप-दर्शन से प्रकाश हो गया। संत···डीठा=सत्संग के प्रभाव से प्रभु को अपनी अतरात्मा में ही देख लिया। सगल समिग्री=नाना प्रकार की सृष्टि। द्रिसटाहि=दीखते है। बिसमाद=चमत्कार। सोझी=सुबुद्धि, विवेक।

१८. पेखु=देख। चिंद=चिंता। मन मंग=हृदय से माँग। आपु=अहकार। धन=यहाँ भगवद्भक्ति से आशय है।

१९. निवारि=दूर कर, बचाकर। चितवहु=ध्यान कर। रंग=आकार, प्रकार।

सरब इच्छा ताकी पूरन होइ । प्रधान पुरखु प्रगटु सभ लोइ ॥
सभ ते ऊच पाए असथानु । बहुरि न होवै आवन जानु ॥
हरि धनु खाटि चलै जनु सोइ । नानक जिसहि परापति होइ ॥२०॥
इहु निधानु जपै मनि कोइ । सभ जुगमहि ताकी गति होइ ॥
गुण गोबिंद नाम धुनि बाणी । सिमृति सासत बेद बखाणी ॥
सगल मतांत केवल हरिनाम । गोबिंद भगत कै मनि बिस्राम ॥
कोटि अपराध साध संगि मिटै । संतकृपा ते जम ते छुटै ॥
जाकै मस्तकि करम प्रभि पाए । साध सरणि नानक ते आए ॥२१॥
जिसु मनि बसै सुनै लाइ प्रीति । तिसु जन आवै हरि प्रभु चीति ॥
जनम मरण ताका दूखु निवारै । दुलभ देह ततकाल उधारै ॥
निरमल सोभा अंमृत ताकी बानी । एकु नामु मन माहि समानी ॥
दूख रोग बिनसे भै भरम । साध नाम निरमल ताके करम ॥
सभ ते ऊच ताकी सोभा बनी । नानक इह गुणि नामु सुखमनी ॥२२॥

गाउडी माला

उबरत राजाराम की सरणी ।
सरब लोक माया के मंडल गिरि गिरि परते धरणी ॥
सासत सिमृति बेद बीचारे महापुरखन इउ कहिआ ॥
बिनु हरिभजन नाही निसतारा सुखु ना किनहू लहिआ ॥
तीनि भवन की लखमी जोरी बूझत नाही लहरे ॥
बिनु हरिभगति कहा थिति पावै, फिरतो पहरे पहरे ॥

२०. उसतति=स्तुति । एकागर=एकाग्र, एकही ओर स्थिर, अनन्य । निधान=परमात्मा की भक्ति का धनी । आवन-जान=जन्म और मृत्यु । खाटि=कमाकर ।

२१. निधान=अनमोल । गति=मोक्ष । सासत=शास्त्र । मतात=सिद्धांत; धर्म-संप्रदाय । बिस्राम=परमशान्ति । मसतकि=भाग्य में ।

२२. चीति=चित्त में, ध्यान मे । दुलभ=दुर्लभ (मनुष्य-देह, जिसे साधन-धाम कहा गया है ।) भरम=अविद्या । सोभा=कीर्त्ति ।

२३. सरणी=शरण में । सासत सिमृति=शास्त्र और स्मृति-ग्रन्थ । इउ=ऐसा । निसतारा=उद्धार । लखमी=संपत्ति । लहरे=बावले । थिति=स्थिरता, शांति । मोहन=

अनिक बिलास करत मन मोहन पूरन होत न कामा ॥
जलतो जलतो कबहु न बूझत सगल बिरथे बिनु नामा ॥
हरि का नामु जपहु मेरे मीता, इहै सार सुख पूरा ॥
साध-संगति जनम-मरणु निवारै, नानकु जन की धूरा ॥२३॥

रागु गउडी अष्टपदी

जब इहु मन महि करत गुमाना ।
तब इहु बावरु फिरत बिगाना ॥
जब इहु हूआ सगल की रीना । ताते रमईआ घटि घटि चीना ॥
सहज सुहेला फलु मसकीनी । सतिगुर अपुनै मोहि दानु दीनी ॥
जब किसकउ इहु जानसि मंदा । तब सगले इसु मेलहि फन्दा ॥
मेर तेर जब इनहि चुकाई । ताते इसु संगि नही बैराई ॥
जब इनि अपुनी अपुनो धारी । तब इसकउ है मुसकलु भारी ॥
जब इनि करणैहारु पछाना । तब इसनो नाही किछु ताना ॥
जब इनि अपुनो बाधिओ मोहा । आवै जाइ सदा जमि जोहा ॥
जब इसने सभ बिनसे भरमा । भेदु नही है पारब्रहमा ॥
जब इनि किछु करि माने भेदा । तबते दूख डण्ड अरु खेदा ॥
जब इनि एको एकी बूझिआ । तबते इसनो सभु किछु सूझिआ ॥
जब इहु धावै माइआ अरथी । नह तृपतावै नह तिस लाथी ॥
जब इसने इहु होइआ जउला । पीछै लागि चली उठि कउला ॥

आकर्षक । कामा=वासना । नबूझत=नही बुझता, शान्त नही होता । जन की धूरा= भक्तों के चरणों की धूल ।

२४. इहु=यह मनुष्य । गुमाना=अभिमान, गर्व । बावरु=पागल । बिगाना=ईश्वर से विलग, बिछुड़ा हुआ । रीना=रेणु, पैरों की धूल । रमईआ=राम, परमात्मा । चीना= पहचाना, देखा । सहज ⋯ मसकीनी=गरीबी या नम्रता का फल स्वभावतः सुन्दर होता है । किसकउ=किसी दूसरे को । मंदा=बुरा । सगले ⋯ फन्दा=सब उसके विरुद्ध हो जाते हैं । चुकाई=समाप्त कर देता है । बैराई=शत्रुता । मेर तेर ⋯ बैराई='यह मेरा है, वह तेरा है' ऐसा भेद-भाव जब वह त्याग देता है तब उसके साथ किसीका द्वेषभाव नहीं रहता । अपुनी-अपुनो=स्वार्थ-भावना । करणैहारु पछाना=सिरजनहार परमात्मा को जान लिया । ताना=कष्ट । बाधिओ=बाँध लिया ।

करि किरपा जउ सतिगुरु मिलिओ । मंदिर महि तब दीपकु जलिओ ॥
जीत हार की सोझी करी । तउ इस घर की कीमत परी ॥
करन करावन सभु किछु एकै । आपे बुद्धि बिचारि बिबेकै ॥
दूरि न नेरै सभकै संगा । सचु सालाहण नानक हरि रंगा ॥२४॥

फुनहे

सखी काजल हार तंबोल सभै किछु साजिआ ।
सोलह कीए सीगार कि अंजनु पाजिआ ॥
जे घरि आवै कंतु त सभु किछु पाईऐ ।
हरि हां, कंतै बाझु सीगारु सभु बिरथा जाईऐ ॥१॥
जिसु घरि वसिआ कंतु सा वड़भागणे ।
तिसु बणिआ सभु सीगारु साई सोहागणे ॥
हउ सूती होइ अचिंत मनि आस पुराईआ ।
हरि हां, जा घरि आइआ कंतु त सभु किछु पाइआ ॥२॥
मेरे हाथि पदमु आंगनि सुख बासना ।
सखी मोरै कंठि रतनु पेखि दुख नासना ॥
बासउ संगि गुपाल सगल सुखरासि हरि ।
हरि हाँ, रिधि सिधि नव निधि बसहि जिसु सदा करि ॥३॥

आवै जाइ=बारबार जन्मता और मरता है । खेदा=क्लेश । एको एकी=एक अद्वितीय परमात्मा । नह तिस लाथी=न प्यास (तृष्णा) दूर होती है । जब इसने··· कउला=जब मनुष्य माया से भागता है तब वह उसका पीछा करने को दौडती है । सोझी=विचार । कीमति परी=मोल आँकता है । आपे=परमात्मा खुद ही । सालाहण=गुणगान कर । रंगा=प्रेम-भक्ति से ।

१. सीगार=शृंगार । पजिआ=लगाया । जे=जो । त ······पाइऐ=तो उसने सब कुछ पा किया; उसका सोलह शृंगार सजाना सफल हो गया । कंतै बाझु=बिना स्वामी के ।

२. जा घरि=जिस स्त्री के घर में । सा=वह । सभु=सब । साई=वही । सोहागणे=सोहागिन । हउ सूती=मैं सो रही हूँ अब । पुराईआ=पूरी हो गई ।

३. मेरे हाथि पदमु=मेरे हाथ में कमल की रेखा है, (जो सामुद्रिक शास्त्र के अनुसार बडी शुभ है) । आंगनि सुख वासना=गृह-आँगन में आनन्द-ही आनंद

ऊपरि बनै अकासु तलै धर सोहती ।
दहदिसि चमकै बीजुलि मुख कउ जोहती ॥
खोजत फिरउ बिदेसि पीउ कत पाईऐ ।
हरि हाँ, जे मसतकि होवै भागु त दरसि समाईऐ ॥४॥
मित का चित्तु अनूपु मरंमु न जानीऐ ।
गाहक गुनी अपार सु तत्त पछानीऐ ॥
चित्तहि चित्तु समाइ त होवै रंगु घना ।
हरि हाँ, चंचल चोरहि मारि त पावहु सचु धना ॥५॥
सुपनै ऊभी भई गहिओ की न अंचला ।
सुन्दर पुरख बिराजित पेखि मनु बंचला ॥
खोजउ ताके चरण कहहु कत पाईऐ ।
हरि हाँ, सोई जतनु बताइ सखी पिरु पाईऐ ॥६॥
नैण न देखहि साध सि नैण बिहालिआ ।
करन न सुनही नादु करन मुंदि घालिआ ॥

का वास है । रतनु=(हरिनामरूपी) रत्न । पेखि=उस रत्न को देख-देखकर । वासउ=रहती हूं । मगल=मचल । सुखरासि=आनन्दघन । करि=हाथ में ।

४. बनै=दीप्तिमान हो रहा है । धर=धरती । सोहती=शोभायमान है । बीजुलि=दिव्य प्रकाश से आशय है । मुख कउ जोहती=मैं उस स्वामी का सुन्दर मुख देखती हूं । बिदेसि=देश-देश में, सर्वत्र । जे मसतकि होवै भागु=जो मेरा सद्भाग्य होगा । त दरसि समाइऐ=तो दर्शन उसका हो जायेगा ।

५. मित=मित्र; परमात्मा से आशय है । चित्त अनूपु=हृदय अनुपम है । मरंमु=रहस्य । ततु=आत्मतत्त्व, परमसत्य । चित्तहि ''घना=जब हमारा चित्त प्रभु में लय हो जायेगा, तभी हमें प्रेम-जनित आत्यन्तिक आनंद होगा । चोरहि मारि=जो मन-रूपी चोर को वश में कर लेता है । धना-धन ।

६. सुपनै ''अंचला=सपने में वह (मोहिनी) मूर्ति आकर खड़ी हो गई, पर हाय, मैं उसका अंचल न पकड़ सकी । पेखि मन बचला=उसे देखकर मेरा मन ठग गया । खोजउ ताके चरण=उनके चरण-चिन्हों को खोजती फिरती हूं । पिरु=प्रियतम ।

७. नैण''बिहालिया=जो नेत्र साधुपुरुष को नहीं देखते, वे बेकार है । करन=

रसना जपै न नाम तिलु तिलु करि कटीऐ ॥
हरि हाँ, जब बिसरै गोविदराइ दिनो दिनु घटीऐ ॥७॥
धावउ दिसा अनेक प्रेम प्रभ कारणे ।
पंच सतावहि दूत कउन विधि मारणे ।
तीखण बाण चलाइ नामु प्रभ धिआईऐ ।
हरि हाँ, महा बिखादी घात पूरन गुरु पाईऐ ॥८॥
जिथै जाए भगतु सु थानु सुहावणा ।
सगले होए सुख हरि नामु धिआवणा ॥
जोअ करनि जैकारु निंदक मुए पचि ।
साजन मनि आनंदु नानक नाम जपि ॥९॥
अउखधु नाम अपारु अमोलकु पीजई ।
मिलि मिलि खावहि संत सगल कउ दीजई ।
जिसै परापति होइ तिसै ही पावणे ॥
हरि हाँ, हउ बलिहारी तिन जि हरि रंगि रावणे ॥१०॥

सलोक

हरि हरि नाम जो जनु जपै सो आइआ परवाणु ।
तिसु जनकै बलिहारणै जिनि भजिआ प्रभु निरवाणु॥१॥
सतिगुरु पूरै सेविए दूखा का होइ नासु ।
नानक नाम अराधिए कारजु आवै रासु ॥२॥

कान । नादु=गुरु के सदुपदेश से तात्पर्य है। मुंदि घालिआ=बंद कर दिया जाये । तिलु तिलु करि=छोटे-छोटे टुकड़े करके । घटीऐ=गिरता है ।

८. धावउ=दौड़ता हूं । प्रेम प्रभ कारणे=प्रभु के प्रेम की खातिर । पंचदूत=इन्द्रियों के पांच विषय, जो शत्रु हैं । बिखादी=विषय आदि । घात=घातक, नाशक ।

९. जिथै=जहां भी । भगतु=हरिभक्त, संतजन । थानु=स्थान । साजन=सज्जन ।

१०. अउखधु=औषधि । पीजई=पीले । सगल कउ=सब भव-रोगियों को । जि हरि-रंगि रावणे=जो भगवत्प्रेम में रम रहे हैं ।

१. सो आइआ परवाणु=उसीका संसार में आना सच्चा है । निरवाणु=मोक्ष-दायक ।

२. कारजु आवे रासु=हरि-नाम की पूंजी (अंत समय) काम आये ।

जिसु सिमरत संकट छुटहि अनंद मंगल बिस्राम ।
नानक जपीए सदा हरि निमख न बिसरउ नाम ॥३॥
बिखै कउड़त्तणि सगल महि जगत रही लपटाइ ।
नानक जनि वीचारिआ मीठा हरि का नाउ ॥४॥
गुरु कै सबदि अराधिए नामि रंगि बैरागु ।
जीते पंच बैराइआ नानक सफल मारू रागु ॥५॥
पतित उधारण पारब्रहमु संम्रथ पुरखु अपारु ।
जिसहि उधारे नानका सो सिमरे सिरजणहारु ॥६॥
पंथा प्रेम न जाणई भूली फिरै गवारि ।
नानक हरि बिसराइकै पउदे नरक अँधिआर ॥७॥
फूटो अंडा भरम का मनहि भइओ परगासु ।
काटी बेरी पगह ते गुरि कीनी बंदि खलासु ॥८॥
तू चउ सजण मैडिआ देई सीसु उतारि ।
नैण महिंजे तरसदे कदि पसी दीदारु ॥९॥
नोहु महिंजा तऊ नालि बिआ नेह कूड़ावै डेखु ।
कपड़ भोग डरावणे जिचरु पिरी न डेखु ॥१०॥

---

३. बिस्राम—शान्ति । निमख=निमिष, पल ।

४. बिखै कउड़त्तणि=विषयरूपी कड़वी बेल ।

५. गुरु कै ''बैरागु=गुरु के उपदेश की आराधना करनी चाहिए, जिससे हरि-नाम के प्रति प्रेम और विषयों के प्रति वैराग्य उत्पन्न हो । पंच बैराइआ=विषयरूपी पाँचों शत्रुओं को । मारू राग=जो युद्ध में उत्साह बढ़ाने के लिए गाया जाता है ।

६. संम्रथ=समर्थ, सर्वशक्तिमान ।

८. मनहि भइओ परगासु=मन के अंदर दिव्य प्रकाश भर गया । बेरि=बेडी । पगह ते=पैरों में से । बंदि खलासु=बंधन-मुक्त ।

९. अय मेरे साजन, अगर तू कहे, तो मैं अपना सिर उतारकर तुझे देदूँ । मेरी आँखे तरसती है कि कब तुझे देखूँ ।

१०. मेरी प्रीति तेरे ही साथ है; मैने देख लिया कि और सब प्रीति झूठी है । तुझे देखे बिना ये वस्त्र और ये भोग मुझे डरावने लगते हैं ।

उठी झालू कंतड़े हउ पसी तउ दीदारु।
काजल हारु तमोल रसु बिनु पसे सभि रस छारु ॥११॥
पहिला मरण कबूलि करि जीवण की छड्डि आस।
होहु सभना की रेणुका तउ आउ हमारे पास ॥१२॥
जिसु मनि बसै पारब्रहमु निकटि न आवै पीर।
भुख तिख तिसु न विआपई जमु नहीं आवै नीर ॥१३॥
धणी विहूणा पाट पटंबर भाही सेती जाले।
धूड़ी विचि लुडंदड़ी साहां नानक तै सह नाले ॥१४॥
सोरठि सो रसु पीजिए कबहू न फीका होइ।
नानक राम नाम गुन गाइअहि दरगह निरमल सोइ ॥१५॥
जाको प्रेम सुआउ है चरन चितव मन माहि।
नानक बिरही ब्रहम के आन न कतहू जाहि ॥१६॥
मगनु भइओ प्रिअ प्रेम सिउ सूध न सिमरत अंग।
प्रगटि भइओ सभ लोअ महि नानक अधम पतंग ॥१७॥

---

११. मेरे प्यारे ! तेरे दर्शन के लिए मैं बडी भोर उठ जाती हूँ। काजल, हार और पान और सारे मधुर रस, बिना तेरे दर्शन के धूल की तरह लगते हैं।

१२. कबूलि करि=स्वीकार करले। छड्डि=छोड़कर। रेणुका=पैरों की धूल ; अत्यंत=तुच्छ।

१३. पीर=दुःख। तिख=तृषा, प्यास। जमु=काल। नीर=निकट।

१४. मेरा प्रीतम मेरे पास नही, तो इन रेशमी वस्त्रो को लेकर क्या करूँगी, मैं तो इनमें आग लगा दूँगी ;

प्यारे, तेरे साथ धूल में लोटती हुई भी मै सुन्दर दीखूँगी।

१५. सोरठि=एक राग का नाम। सो रसु=ब्रह्म-रस से आशय है। दरगह=परमात्मा का दरबार। निरमल=निष्पाप।

१६. सुआउ=स्वभाव। चरन चितव मन माहि=परमात्मा के चरणों का ध्यान हृदय में करते हैं। बिरही=अत्यंत प्रेमातुर। आन=अन्य स्थान, सांसारिक भोगों से आशय है।

१७. सूध=सुध, ध्यान। लोअ=लोक।

गुरु तेगबहादुर

चोला-परिचय

जन्म-सवत्—१६७६ वि०, वैशाख कृ० ५

जन्म-स्थान—अमृतसर

पिता—गुरु हरगोविद

माता—नानकी

भेष—गृहस्थ

मृत्यु-सवत्—१७३२ वि,० अगहन शु० ५

छठे गुरु हरगोविद के पाँच पुत्र थे—गुरुदित्ता, सूरजभान, अनीराय, बाबा अटल और तेगबहादुर। सातवे गुरु थे गुरुदित्ता के छोटे पुत्र हरराय, और आठवे गुरु हुए गुरु हरराय के छोटे पुत्र हरकृष्ण राय। इनकी मृत्यु केवल ८ वर्ष की अवस्था मे ही हो गई।

गुरु हरगोविद की मृत्यु के पश्चात् तेगबहादुर अपनी माता तथा पत्नी गूजरी के साथ बाकला नाम के एक गाँव मे रहने लगे थे। गुरु हरकृष्ण राय से जब लगभग बेहोशी की अवस्था मे उतराधिकारी का नाम पूछा गया, तब उन्होने बाबा बाकले बतलाकर अपना हाथ दो-तीन बार हिलाया। बाकला के २२ सोढी खत्रियो ने गुरु-गद्दी पर अधिकार जमाने का प्रयत्न किया। किंतु अत मे चैत्र शु० १४ सं० १७७२ को साधुता, सतोष और शाति की मूर्ति तेगबहादुर को गुरु हरगोविद तथा गुरु हरराय के सभी अनुयायी सिक्खो ने गुरु-गद्दी पर आसीन करा दिया।

गुरु तेगबहादुर पाँच वर्ष की अवस्था से ही एकात मे प्राय. विचार-मग्न रहा करते थे, और किसीसे बोलते नही थे। इनके पिता हर-गोविद ने इनकी साधुता एवं दृढता देखकर भविष्यद्वाणी की थी कि 'तेगबहादुर' अवश्य किसी दिन गुरु बनेगा और धर्म की वेदी पर अपने प्राणो को चढादेगा।'

इनके बडे भाई गुरुदित्ता का पुत्र धीरमल इनसे अत्यत द्वेष रखता

था। इन्हे मार डालने के लिए कुछ मसन्दों को उसने इनकी ताक मे भेजा, पर वह सफल नही हुआ। साधुप्रकृति गुरु तेगबहादुर ने कीरतपुर को छोडकर वहाँसे छह मील दूर आनदपुर नामक एक नये शहर की नीव डाली, और वहीपर रहने का निश्चय किया। पर वहाँ भी वे धीरमल और रामराय के षडयन्त्रों के कारण चैन से नही बैठ सके। वह स्थान भी उन्होने छोड दिया और सिक्खधर्म का प्रचार करने के लिए वे लम्बी-लम्बी यात्राओ पर निकल पडे। गुरु तेगबहादुर पंजाब के कई स्थानों का भ्रमण करते हुए कडा मानिकपुर (जहाँ प्रसिद्ध सत बावा मलूकदास रहते थे) प्रयाग, काशी और गया भी गये। काशी मे जिस स्थान पर यह रहे थे, उसे 'शब्द का कोठा' कहते है, जो 'रेशम कटरा' मोहल्ले मे है।

जयपुर के महाराजा जयसिंह के पुत्र रामसिंह के प्रस्ताव पर उसके साथ औरगजेब बादशाह की ओर से शाही फौज के साथ गुरु तेगबहादुर बगाल होते हुए कामरूप (आसाम) भी गये। राजा रामसिंह ने कामरूप के विरुद्ध चढाई मे इनकी मदद चाही थी। पर चढाई करने का अवसर ही नही आया। गुरु के आत्मबल के आगे कामरूप के राजा की एक नही चली। उन्होने बिना ही भयकर रक्त-पात के कामरूप राज्य को शन्तिपूर्वक दो हिस्सो मे बँटवा दिया, और कहा कि, 'बादशाह और कामरूप का राजा दोनो इन दोनो भागो मे अपना-अपना राज्य करे और पुरानी शत्रुता भूल जाये।' कामरूप का राजा इनसे बहुत प्रभावित हुआ। धूबरी मे आजभी गुरु तेगबहादुर के अनुयायी सिक्खो के कुछ वशज पाये जाते है।

पटना मे यह अपनी माता और पत्नी को छोड गये थे। आसाम मे पटने से इन्हे यह शुभ समाचार मिला कि इनकी पत्नी गूजरी ने एक सुदर पुत्र को जन्म दिया है। राजा रामसिंह ने इस मगल समाचार को सुनकर वहाँ भारी उत्सव मनाया। गुरु तेगबहादुर पटना लौट आये, और वहाँ अपने परिवार के साथ शाति से रहने लगे। मगर पंजाब की याद इन्हे रह-रहकर व्याकुल करने लगी। अतः परिवार को

पटने मे ही छोड़कर यह पंजाब को चल पडे। आनन्दपुर मे पीछे कुछ दिनो बाद अपनी माता, पत्नी और पुत्र गोबिदराय को भी बुला लिया।

औरंगजेब का शासन-काल था यह। धर्मान्धता उसकी भारत के इतिहास मे प्रसिद्ध है। धर्मान्तरित करने का आदोलन उसका कई प्रातों मे चल रहा था। कश्मीर भी नही बचा। वहाँ के पडितों ने छह महीने की मोहलत माँगी। कश्मीर के सूबेदार शेर अफ़गान खां ने औरगजेब की आज्ञा से कश्मीरी पडितो के आगे यह प्रस्ताव रखा था कि या तो वे सब-के-सब इस्लाम धर्म को ग्रहण करले, या क़त्ल होने को तैयार हो जाये। यह सुनकर कि गुरु तेगबहादुर ही एक ऐसे महान् वीरपुरुष है, जो इनके शिखा-सूत्र और तिलक की रक्षा कर सकते है, उनके कुछ प्रतिनिधि आनन्दपुर पहुँचे। उनकी करुण-कहानी सुनकर गुरु साहब इस निश्चय पर पहुँचे कि धर्म की खातिर मुझे अपने प्राणों की बलि अब देनी ही होगी। उन्होने उन पडितो से कहा—'आप लोग दिल्ली जाकर बादशाह से कहे—"गुरु नानक के तख्त पर आसीन तेगबहादुर को पहले तुम मुसलमान बनालो; उसके बाद हम सब-के-सब अपने-आप इस्लाम धर्म स्वीकार करलेंगे।"

औरंगजेब यह सुनकर फूला नही समाया। गुरु साहब को दिल्ली ले आने के लिए उसने कुछ अधिकारियों को आनन्दपुर भेजा। गुरु तेगबहादुर ने उनसे कहा, कि बरसात के बाद में खुद दिल्ली आजाऊँगा। पर तबतक रुकना उन्होने ठीक नही समझा। वे गर्मियो मे ही कुछ अच्छे वफ़ादार सिक्खो को लेकर दिल्ली को रवाना हो गये। रास्ते मे सैफ़ाबाद में अपने परममित्र सैफुद्दीन से मिले, जिसने गुरु साहब से प्रभावित होकर सिक्ख-धर्म स्वीकार कर लिया। तीन महीने वे उसके अनुरोध पर सैफ़ाबाद मे ही रहे।

रास्ते मे कई स्थानों पर ठहरते और धर्मोपदेश करते हुए वे दिल्ली पहुँचे, और उन्हे गिरफतार कर लिया गया, इस अपराध पर कि इतने दिनोंतक वे कहीं छिपे हुए थे। उनकी गिरफ़तारी से बादशाह को बेहद खुशी हुई।

उनके सामने इस्लाम धर्म स्वीकार कर लेने का प्रस्ताव रखा गया। गुरु तेगबहादुर ने बादशाह को यह जवाब दिया—"ईश्वर की मरज़ी से कोई बाहर नही जा सकता। अगर उसकी यही मरज़ी होती कि दुनिया मे एक ही धर्म होना चाहिए, तो एक ही समय मे साथ-साथ इस्लाम और हिन्दूधर्म को वह न रहने देता। उसकी मरजी के खिलाफ़ न मै जा सकता हूँ, न तुम। मै इस्लाम को कभी स्वीकार करनेवाला नही। दुनिया पर एक ही धर्म आरोपित करने का जो काम तुम्हारे मक्का के पैगबर से भी नही हो सका, तब तुम्हारी तो बिसात ही क्या? ईश्वर के आगे हम सब समान है नाचीज है, उससे डरो, बहुत जुल्म न करो।"

यह सुनकर औरंगजेब आग-बबूला हो उठा। गुरु साहब को उसने जेलखाने मे डाल दिया। बाद मे कितने ही भय दिखाये गये, कितने ही प्रलोभन दिये गये, पर गुरु तेगबहादुर अपने सत्य पर वज्र की तरह अडिग रहे।

पीछे लोहे के पिजडे मे उन्हे बद कर दिया गया। संतरी हमेशा नंगी तलवार लिये पहरे पर खडा रहता था।

आनन्दपुर से जब एक हरकारा उनकी पत्नी और पुत्र का पत्र लेकर मिलने आया, तो जवाब मे उसके हाथ गुरु साहब ने अपनी चिताग्रस्त पत्नी गूजरी को यह सलोक लिख भेजे—

"राम गइओ रावनु गइओ जाको बहु परवार।
कहु नानक थिरु कछु नही सुपने जिउ संसार॥
चिता ताकी कीजिए जो अनहोनी होइ।
इहु मारगु ससार को नानक थिरु नहि कोइ॥"

और भी कितने ही वैराग्यपूर्ण सलोक बंदीगृह के दिनों में उन्होंने लिखे।

अंत मे, औरंगजेब ने फिर एक बार उन्हें धर्मान्तरित करने का प्रयत्न किया। पर गुरु साहब तो वैसे ही अपने धर्म पर अटल थे। उनका वही जवाब था, "प्राण रहते मै कभी अपने धर्म को नहीं छोड़

सकता। मौत के डर से मै काँपनेवाला नही। मै जानता हूँ कि एक-न-एक दिन तो इस देह को छूटना ही है। मौत को छाती से लगाने के लिए मै तैयार हूँ।"

पिजडे से उन्हे निकाला गया। उन्होने स्नान किया, और फिर एक बरगद के नीचे बैठकर जपुजी का पाठ। वे शात थे, ध्यान-मग्न थे। सैयद आदम शाह ने, जिसके पास कत्ल का शाही हुक्म था, गुरु तेगबहादुर का सर धड से अलग कर दिया।

यह महान् बलिदान सवत् १७३२ की अगहन सुदी ५ के दिन हुआ। धर्मान्धता पर धर्म की विजय का महामगल दिन था वह।

बानी-परिचय

गुरु ग्रथ साहिब मे 'महला ९' के अतर्गत जितने पद और सलोक सग्रहीत है वे सब गुरु तेगबहादुर के रचे हुए है। हिदी के अनेक पद-संग्रहो मे जो पद लिये गये है, वे गुरु तेगबहादुर के ही है, आदिगुरु नानक के नही। इनके पदो व सलोको की भाषा शुद्ध हिदी है और वह बहुत प्राजल और मधुर है। कुछ पद तो इनके सूरदास के पदो से मिलते है। भक्ति और वैराग्य का इन्होने बडा सुदर निरूपण किया है। बानी सरल, प्रसादगुणमयी और अतिमधुर है।

आधार

१ गुरु ग्रथ साहिब—सर्व हिद सिक्ख मिशन, अमृतसर
२ दि सिक्ख रिलीजन (भाग ३) मॅकालीफ

राग सोरठि

भाई, मनु मेरो बसि नाहि ॥
निसबासुर बिखिअन कउ धावउ किहि बिधि रोकत ताहि ॥
बेद पुरान सिम्रिति के मति सुनि निमख न हीए बसावै ॥
परधन परदारा सिउ रचिओ बिरथा जनमु सिरावै ॥

---

१. बिखिअन कउ=विषयों को, इन्द्रियों के भोगों की ओर। मति=मत, सिद्धान्त।

मदि माइआ कै भाइओ बावरो सूझत नह कछु गिआना ॥
घट ही भीतरि बसत निरंजनु ताको मरमु न जाना ॥
जब ही सरनि साध की आइओ दुरमति सगल बिनासी ॥
तब नानक चेतिओ चिंतामनि काटी जम की फांसी ॥१॥

प्रानी कउनु उपाउ करै ।
जाते भगति राम की पावै जम को त्रासु हरै ॥
कउनु करम बिदिआ कहु कैसो धरमु कउनु फुनि करई ॥
कउनु नामु गुर जाकै सिमरै भवसागर कउ तरई ॥
कल मै एकु नामु किरपानिधि जाहि जपै मति पावै ॥
अउर धरम ताकै समि नाहिन इह विधि बेदु बतावै ॥
सुखु दुखु रहत सदा निरलेपी जाको कहत गुसाई ॥
सो तुमही महो बसै निरंतरि नानक दरपनि निआई ॥२॥

मन की मन ही माहि रही ।
ना हरि भजे न तीरथ सेए चोटी कालि गही ॥
दारा मीत पूत रथ संपति धन पूरन सभु मही ।
अउर सगल मिथिआ ए जानउ भजनु राम को सही ॥
फिरत फिरत बहुते जुग हारिओ मानसदेह लही ।
नानक कहत मिलन की बिरीआ सिमरत कहा नही ॥३॥

रे मन, राम सिउ करि प्रीति ॥
स्रवन गोबिंद गुनु सुनउ अरु गाउ रसना गीति ॥

सिउ=से । निरजनु=निराकार परमात्मा । मरमु=भेद, रहस्य । चेतिओ=चिंतामनि=समस्त चिंताओं को दूर करनेवाला, परमात्मा ।

२. जम को त्रासु=मृत्यु का भय । विदिआ=विद्या । फुनि=पुनः, फिर । सिमरै=स्मरण करने से । मति पावै=बुद्धि स्थिरता को प्राप्त कर लेती है । दरपनि निआई=दर्पण में प्रतिबिम्ब की तरह ।

३. हारिओ=व्यर्थ बिता दिये । बिरीआ=बेर, समय । कहा=क्यों ।

४. सिउ=से । बिआलु=व्याल, सर्प । मुखु पसारे मीति=मौत मुँह खोले खड़ी है ।

करि साध संगति सिमरु माधो होहि पतित पुनीति ॥
कालु-बिआलु जिउ परिओ डोलै मुखु पसारे मीति ॥
आजु कालि फुनि तोहि ग्रसिहै समझि राखउ चीति ॥
कहै नानकु रामु भजिलै जातु अउसरु बीति ॥४॥

जो नरु दुख मैं दुखु नहि मानै ॥
सुख सनेहु अरु भैं नही जाकै कंचन माटी मानै ॥
नहि निंदिआ नहीं उसतति जाकै लोभु मोहु अभिमाना ॥
हरख सोग ते रहै निआरउ नाहि मान अपमाना ॥
आसा मनसा सगल तिआगै जग ते रहै निरासा ॥
कामु क्रोधु जिह परसै नाहिन तिह घट ब्रहमुनिवासा ॥
गुर किरपा जिह नर कउ कीनी तिह इह जुगति पछानी ॥
नानक लीन भइओ गोबिंद सिउ जिउ पानी संगि पानी ॥५॥

मन रे, गहिओ न गुर उपदेसु ॥
कहा भइओ जउ मूड मुडाइओ भगवउ कीनो भेसु ॥
साच छाडिकै झूठहि लागिओ जनमु अकारथु खोइओ ॥
करि परपंच उदर निज पोखिओ पसु की निआईं सोइओ ॥
रामभजन की मति नहि जानी माइआ हाथि बिकाना ॥
उरझि रहिओ बिखिअन संगि बउरा नामुरतनु बिसराना ॥
रहिओ अचेतु न चेतिओ गोबिंद बिरथा अउध सिरानी ॥
कहु नानक हरि बिरदु पछानउ भूले सदा परानी ॥६॥

फुनि=पुनः, फिर । चीति=चित्त में ।

५. सुख सनेहु=सुख के प्रति आसक्ति या मोह । उसतति=स्तुति । सोग=शोक । निआरउ=अलिप्त । निराशा=अनासक्त । जिह नर कउ=जिस मनुष्य पर । जुगति=युक्ति, भेद, रहस्य । पछानी=पहचानली ।

६. जउ=जो । भगवउ कीनो भेसु=भगवा अर्थात् गेरुवे वस्त्र पहन लिये, संन्यास ले लिया । अकारथु=व्यर्थ । निआईं=नाईं, तरह । बउरा=पागल, मूर्ख । बिसराना=भुलादिया । अउध=अवधि, आयु । सिरानी=बीत गई । बिरदु=पतितोद्धार का यश या बाना । परानी=प्राणी, जीव ।

राग बिलावल

जामें भजनु राम को नाहीं ।
तिह नर जनम अकारथ खोइउ इह राखहु मन माहीं ॥
तीरथ करै बिरत पुनि राखै, नहि मनुवा बसि जाको ।
निहफल धरम ताहि तुम मानो सांचु कहत मैं याको ॥
जैसे पाहन जल महि राखिउ भेदै नहि तिहि पानी ।
तैसे ही तुम ताहि पछानो भगतिहीन जो प्रानी ॥
कलि में मुकति नाम ते पावत गुर इह भेद बतावै ।
कहु नानक सोई नरु गरुआ जो प्रभ के गुन गावै ॥७॥

राग टोडी

कहउँ कहा अपनी अधमाई ।
उरझिओ कनक कामिनी के रस नहि कीरति प्रभु गाई ॥
जग झूठे कउ साँचु जानिकै तासिउ रुचि उपजाई ।
दीनबंधु सिमरिओ नहि कबहूँ होत जु संगि सहाई ॥
मगन रहिओ माइआ में निसिदिन छुटी न मन की काई ।
कह नानक अब नाहि अनत गति बिनु हरि की सरनाई ॥८॥

राग धनासरी

काहे रे बन खोजन जाई ।
सरबनिवासी सदा अलेपा तोही संगि समाई ॥
पुहपमध्य जिउ बासु बसतु है, मुकुर माहि जैसे छाई ।
तैसे ही हरि बसे निरंतर, घट ही खोजहु भाई ॥
बाहरि भीतरि एकै जानहु, इह गुरु गिआनु बताई ।
जन नानक बिनु आपा चीन्हे, मिटै न भ्रम की काई ॥९॥

---

७. अकारथ=बेकार । बसि=वश में । पाहन=पत्थर । पछानो=पहचानो, जानो । भेद=रहस्य । गरुआ=बडा ।

८. रस=सुख, प्रेम । रुचि उपजाई=प्रीति जोडी । सिमरिओ=स्मरण किया । काई=मैल; बुरी वासना । अनत=अन्यत्र, और कहीं भी ।

९. समाई=व्याप्त । बासु=गंध । मुकुर=दर्पण । आपा=स्वरूप ।

रागु गउडी

साधो, मन का मान तिआगो ।
काम क्रोध संगति दुरजन की, ताते अहनिसि भागो ॥
सुखु दुखु दोनो सम करि जानै, और मानु अपमाना ।
हरख सोग ते रहै अतीता तिनि जगि तत्तु पछाना ।
उसतुति निंदा दोऊ त्यागै, खोजै पदु निरबाना ।
जन नानक इहु खेलु कठन है, किनहू गुरमुखि जाना ॥१०॥

साधो, इहु मनु गहिओ न जाई ॥
चंचल तृसना संगि बसतु है इआते थिरु न रहाई ॥
कठिन करोध घट ही के भीतरि जिह सुधि सभ बिसराई ।
रतनु गिआनु सभको हिरि लीना, ता सिउ कछु न बसाई ॥
जोगी जतन करत सभ हारे, गुनी रहे गुन गाई ।
जन नानक हरि भए दइआला तउ सब बिधि बनि आई ॥११॥

नर अचेत, पाप ते डरु रे ।
दीनदइआल सगल भैभंजन, सरनि ताहि तुम परु रे ॥
बेद पुरान जासु गुन गावत ताको नाम हिए में धरु रे ।
पावननाम जगति में हरिको, सिमरि-सिमरि कसमल सभ हरु रे ॥
मानुस-देह बहुरि नहि पावै, कछू उपाव मुकति का करु रे ।
नानक कहत गाइ करुनामय, भवसागर के पारि उतरु रे ॥१२॥

---

१०. मान=अभिमान, मत । अतीता=रहित । जगि=संसार में । तत्तु=परमवस्तु; स्वरूप । पछाना=पहचाना, जाना । निरबाना=मोक्ष । खेल=साधन । किनहू=किसी बिरले ने ।

११. इआते=या ते, इससे । सुधि=स्मृति । हिरि लीना=हर लिया । गुनि=विद्वान् । हरिभये ⋯ ⋯आई=यदि परमात्मा कृपा-दृष्टि करदे, तो सब बिगड़ी बात भी बन जायेगी ।

१२. परु=पड रह, चलाजा । कसमल=पाप ।

राग रामकली

साधो, कउन जुगति अब कीजै ।
जाते दुरमति सकल बिनासै, रामभगति मनु भीजै ॥
मनु माइआ में उरझि रहिओ है, बूझै नहिं कछु गिआना ॥
कउन नाम जग जाके सिमरै पावै पदु निरबाना ॥
भए दइआल कृपाल संतजन तब इह बात बताई ॥
सरब धरम मानो तिह कीए जिह प्रभ-कीरति गाई ॥
रामनाम नर निसिबासुर में निमख एक उर धारै ।
जम को त्रासु मिटै नानक तिह, अपुनो जनम सवारै ॥१३॥

राग जैजावंती

राम सिमर राम सिमर इहै तेरो काजु है ।
माइआ को संगु तिआगि, प्रभजू की सरनि लागि,
जगत सुख मानु मिथिआ, झूठो सब साजु है ॥
सुपने जिउ धनु पिछानु, काहे पर करत मानु,
बारू की भीत जैसे बसुधा को राजु है ।
नानक जन कहत बात बिनसि जैहै तेरो गात,
छिन-छिन करि गइओ कालु तैसे जातु आजु है ॥१४॥
राम भजु राम भजु जनमु सिरातु है ।
कहों कहा बारबार, समझत नहिं किउ गवार,
बिनसत नाहि लगै बार ओरे समु गातु है ॥
सगल भरम डारि देहि, गोविंद को नाम लेहि,
अन्ति बार संग तेरे इहै एकु जातु है ।

---

१३. भीजै=भीगे, विभोर हो जाये । निरबाना=मोक्ष । सरब...गाई=मानो उसने सब धर्म-कर्म कर लिये जिसने प्रेम से परमात्मा का गुण-गान किया । निमख=निमिष, पल । सवारै= सुधार लेता है ।

१४. मानु=गर्व । बारू=बालू, रेत; जरा में ढहजानेवाली । भीत=दीवार । जातु=बीत रहा है ।

१५. सिरातु है=बीत जाता है । किउ=क्यों । गवार=गँवार, मूर्ख । ओरे सम=ओले

बिखिआ बिख जिउ बिसारि, प्रभ को जसु हिए धार,
नानक जन कहि पुकार अउसरु बिहातु है ॥१५॥

पापी हिये में काम बसाइ। मन चंचलु इआते गहिओ न जाइ ॥
जोगी जंगम अरु संनिआसि। सभ ही परि डारी इह फाँसि ॥
जिहि-जिहि हरि को नामु सम्हारि। ते भवसागर उतरे पारि ॥
जन नानक हरि की सरनाइ। दीजै नामु, रहै गुन गाइ ॥१६॥

रागु तिलंग

हरिजसु रे मना गाइलै जो संगी है तेरो।
अउसरु बीतिओ जात है कहिओ मानिलै मेरो ॥
संपति रथ धन राज सिउ अति नेहु लगाइओ ॥
काल-फास जब गलि परी सभ भइओ पराओ ॥
जानि बूझिकै बावरे तै काजु बिगारिओ ॥
पाप करत सकुचिओ नहीं नहिं गरबु निवारिओ ॥
जिह बिधि गुर उपदेसिओ सो सुन रे भाई।
नानक कहत पुकारिकै गहु प्रभु-सरनाई ॥१७॥

सलोक

गुन गोबिंद गाइओ नहीं, जनमु अकारथ कीन।
कहु नानक हरि भजु मना, जिहि बिधि जल कौ मीन ॥१॥
बिखिअन सिउ काहे रचिओ, निमिख न होहि उदास।
कहु नानक भजु हरि मना, परै न जम की फाँस ॥२॥
तरनापो योंही गइओ, लिइओ जरा तनु जीति।
कहु नानक भजु हरि मना, अउधि जाति है बीति ॥३॥

की तरह। गातु=शरीर। बिखिआ-बिखजिउ=विषयों को विष की तरह। बिहातु है=बीत रहा है।

१६. गहिओ न जाइ=काबू में नहीं आता है। सम्हारि=स्मरण किया।

१७. नहि गरबु निवारिओ=अभिमान दूर नहीं किया।

३. तरनापो=तरुणाई, जवानी। जरा=बुढापा। अउधि=अवधि, आयु।

बिरध भइओ सूझै नहीं, काल पहूंचिओ आन।
कहु नानक नर बावरे, किउ न भजै भगवान ॥४॥
पतित-उधारन भै-हरन, हरि अनाथ के नाथ।
कहु नानक तिह जानिहो सदा बसतु तुम साथ ॥५॥
तनु धनु जिह तोकउ दिओ, तासिउ नेहु न कीन।
कहु नानक नर बावरे, अब किउ डोलत दीन ॥६॥
सभ सुखदाता रामु है, दूसर नाहिन कोइ।
कहु नानक सुनि रे मना, तिह सिमरत गति होइ ॥७॥
जिह सिमरत गति पाइए, तिहि भजु रे तै मीत।
कहु नानक सुन रे मना, अउधि घटति है नीत ॥८॥
घटि घटि मै हरिजू बसै, संतन कहिओ पुकारि।
कहु नानक तिह भजु मना, भउनिधि उतरहि पारि ॥९॥
सुख दुख जिह परसै नही, लोभ मोह अभिमानु।
कहु नानक सुन रे मना, सो मूरत भगवान ॥१०॥
उसतति निंदा नाहिं जिहि, कंचन लोह समान।
कहु नानक सुन रे मना, मुकत ताहि तैं जानि ॥११॥
हरख सोग जाके नहीं, बैरी मीत समान।
कहु नानक सुन रे मना, मुकत ताहि तैं जानि ॥१२॥
भै काहूकउ देत नहिं, नहिं भै मानत आनि।
कहु नानक सुन रे मना, गिआनी ताहि बखानि ॥१३॥

---

४. बिरध=वृद्ध।
७. गति=सद्गति, मुक्ति।
८. नीत=नित्य।
९. भउनिधि=ससार-समुद्र।
१०. परसै नही=छूता भी नही।
११. उसतति=स्तुति, प्रशंसा। मुकत=जीवन्मुक्त।
१३. आनि=दूसरो से।

जिहि माइआ ममता तजी, सभते भइओ उदास।
कहु नानक सुन रे मना, तिह घटि ब्रहम-निवास ॥१४॥
भै-नासन दुरमति-हरन, कलि में हरि को नाम।
निसदिन जो नानक भजै, सफल होहि तिह काम ॥१५॥
जिहवा गुन गोबिंद भजहु, करन सुनहु हरिनाम।
कहु नानक सुन रे मना, परहि न जम कै धाम ॥१६॥
जो प्रानी ममता तजै, लोभ मोह अहँकार।
कहु नानक आपन तरै, औरन लेत उधार ॥१७॥
जैसे जल ते बुदबुदा, उपजै बिनसै नीत।
जगरचना तैसे रची, कहु नानक सुन मीत ॥१८॥
जो सुख को चाहे सदा, सरनि राम की लेह।
कहु नानक सुन रे मना, दुरलभ मानुख-देह ॥१९॥
जो प्रानी निसिदिन भजै, रूप राम तिह जानु।
हरिजन हरि अंतरु नहीं, नानक साची मानु ॥२०॥
मनु माइआ में फंधि रहिओ, बिसरिओ गोबिंद नाम।
कहु नानक बिनु हरिभजन, जीवन कउने काम ॥२१॥
सुख में बहु संगी भए, दुख में संगि न कोइ।
कहु नानक हरि भजु मना, अंति सहाई होइ ॥२२॥
जतन बहुत मैं करि रहिओ, मिटिओ न मन को मान।
दुरमति सिउ नानक फँधिओ, राखि लेहु भगवान ॥२३॥
मन माइआ में रमि रहिओ, निकसत नाहिन मीत।
नानक मूरति चित्र जिउ, छाडत नाहिन भीत ॥२४॥

---

१४. उदास=अनासक्त।
१६. करन=कान से। परहि न जम कै धाम=मृत्युभय से छुटकारा पा जाता है।
१८. बुद-बुदा=बुलबुला। नीत=नित्य, सदा।
२०. रूप राम तिह जानु=उसे राम का ही रूप समझो।
२१. फँधि रहिओ=फंदे में पड़ गया।
२३. फँधिओ=फँस गया।
२४. भीत=दीवार।

जतन बहुत सुख के किए, दुख को किओ न कोइ ।
कहु नानक सुन रे मना, हरि भावै सो होइ ।।२५।।
झूठै मानु कहा करै, जगु सुपने जिउ जान ।
इनमें कछु तेरो नही, नानक कहिओ बखान ।।२६।।
जिह घटि सिमरनु राम को, सो नरु मुकता जानु ।
तिह नर हरि अंतरु नहीं, नानक साची मानु ।।२७।।
सिरु कंप्यो पगु डगमगै, नैन जोति ते हीन ।
कहु नानक इह बिधि भई, तऊ न हरिरस लीन ।।२८।।
राम गइओ रावनु गइओ, जाको बहु परिवार ।
कहु नानक थिरु कछु नहीं, सुपने जिउ संसार ।।२९।।
चिंता ताकी कीजिए, जो अनहोनी होइ ।
इह मारगु संसार को, नानक थिरु नहिं कोइ ।।३०।।
जो उपजिओ सो बिनसिहै, परो आजु कै काल ।
नानक हरिगुन गाइले, छाडि सगल जंजाल ।।३१।।
संग सखा सभ तजि गए कोऊ न निबहिओ साथ ।
कहु नानक इह विपत में, टेक एक रघुनाथ ।।३२।।

---

२८. इह बिधि भई=ऐसी दुर्दशा हो रही है। हरिरस=प्रभु के नाम-स्मरण का आनन्द ।

३१. परो=परसों । सगल=सकल, सारा ।

शेख फ़रीद

चोला-परिचय

जन्म-काल—अनिश्चित

पिता—ख्वाजा शेख मुहम्मद

निवास-स्थान—अजोधन (पाकपट्टन)

भेष—गृहस्थ

मृत्यु-काल—९६० हिजरी, २१ रजब (सन् १५५२)

असल नाम इनका शेख बिरहम या इब्राहीम था। पाकपट्टन के आदि फरीद हजरत बाबा फ़रीदुद्दीन मसऊद शकरगंज के यह वशज थे, और फरीद इनकी उपाधि थी। इन्हे फ़रीद सानी अर्थात् फरीद द्वितीय भी कहते है। शेख बिरहम कला, बलराजा, शेख बिरहम साहब और शाह बिरहम नामो से भी यह प्रसिद्ध है।

आदि फरीद याने हजरत बाबा फरीदुद्दीन ईसा की तेरहवीं शती मे विद्यमान थे। यह बहुत बड़े पहुँचे हुए सूफी फकीर थे। दिल्ली के सुप्रसिद्ध हजरत निजामुद्दीन औलिया इनको अपना गुरु मानते थे। निजामुद्दीन ने इनकी प्रशसा मे एक बार कहा था :—

"मेरे पीर पवित्रात्मा मौलाना फ़रीद है;
उनके समान परमेश्वरने इस लोक मे दूसरा नही सिरजा।"

यह द्वितीय फरीद या शेख बिरहम उनकी ११ वीं पीढ़ी मे आते है। आदिगुरु बाबा नानक के साथ इन्हीका सत्सग हुआ था, और गुरु ग्रथ साहिब मे इन्ही फरीद के २ पदो और १३० सलोकों का संग्रह मिलता है।

आदि फ़रीद की तरह यह भी ऊँची गति के महात्मा थे। इनके अनेक चमत्कारों की भी कथाएँ प्रसिद्ध है। एक कथा है कि एक रात को एक चोर इनके घर मे चोरी करने आया, और वह अंधा हो गया। सवेरा होते ही उसने शेख साहब से माफ़ी माँगी, और प्रतिज्ञा की कि आगे वह कभी ऐसा बुरा काम नही करेगा। शेख बिरहम ने उसके लिए ईश्वर से प्रार्थना की, और उस चोर को फिर से दृष्टि मिल गई।

बाबा नानक दो बार अजोधन मे जाकर इनसे मिले थे। इन दोनों महात्मओं का सत्संग प्रसिद्ध है। उस सत्संग में शेख फ़रीद ने कई आध्यात्मिक प्रश्न किये थे और बाबा नानक ने उन्हे उनके समुचित उत्तर दिये थे।

कहा जाता है कि शेख बिरहम के दो पुत्र भी थे—शेख ताजुद्दीन महमूद और शेख मुनव्वरशाह शहीद। शेख ताजुद्दीन भी एक ऊँचे

फ़कीर थे। शेख बिरहम के कई शागिर्द थे, जिनमे शेख सलीम चिश्ती फतेहपुरी बहुत प्रसिद्ध थे।

शेख बिरहम की मृत्यु २१ रजब, ६६० हिजरी सन् मे हुई। ४२ बरसतक इन्होने प्रेम व परमार्थ की अनमोल दौलत को दोनो हाथो से लुटाया, और खूब लुटाया।

बानी-परिचय

शेख फरीद की बानी बहुत रसभरी, खूब गहरी, और मरम पर सीधे चोट करनेवाली है। उनके कई सलोकों के अंदर गहरा रहस्य भरा हुआ है, और उन्हीमे उसके खोलने की कुंजी भी है। स्वरूप का साक्षात्कार करने के बाद ही इस आध्यात्मिक गहराई और ऊँचाईतक पहुँचा जा सकता है। वैराग्य की भी लहरे शेख फरीदने ऊँची-से-ऊँची उठाई है। इनका एक-एक शब्द अनूठा है। इनकी प्रेम-प्रीति की मीठी बानी मे सूफी-रंग बहुत निखरा हुआ पाया जाता है।

भाषा पंजाबी-हिन्दी है, और बहुत मीठी और रसीली। कहने का ढंग ऐसा, मानो कूजे मे समुन्दर भर दिया है। इनकी बानी जब पढ़ते है और सुनते है, तो तबीअत मस्ती मे झूमने लगती है।

आधार

१ गुरुग्रंथ साहिब—सर्व हिन्द सिक्ख मिशन, अमृतसर
२ दि सिक्ख रिलीजन—मॅकालीफ

शेख फ़रीद

रागु आसा

बोलै सेख फरीदु पिआरे अलह लगे।
इहु तनु होसी खाक निमाणी गोर घरे॥

---

१. शेख फरीद कहता है—मेरे प्यारे मित्रो! अल्लाह से जोड़लो अपनी प्रीति। यह शरीर तो खाक हो जायेगा, और इसका घर निगोड़ी क़ब्र में जा बनेगा। आज

वाट हमारी खरी उडीणी। खंनिग्रह तिखी बहुतु पिईणी ॥
उसु ऊपरि है मारगु मेरा। सेख फरीदा पंथु सम्हारि सवेरा ॥२॥

सलोक

जितु दिहाड़ै धनवरी साहे लए लिखाइ ।
मलकु जिकंनी सुणीदा मुहु देखाले आइ ॥
जिंदु निमाणी कढीऐ हडा कूं कडकाइ ।
साहे लिखे न चलनी जिंदू कूं समझाइ ॥
जिंदु वहूटी मरणु वरु लैजासी परणाइ ।
आपण हथी जोलिकै कै गलि लगै धाइ ॥
वालह निकी पुरसलात कंनी न सुणीआइ ।
फरीदा किडी पवंदई खड़ा न आपु मुहाइ ॥१॥

न उसकी वहा कोई महेली है, न कोई वेली,
मेरी बड़ी हा विकट बाट है,
दोधारी तलवार से भी तेज और बहुत पैनी;
उसपर मुझे चलना है ;
शेख फरीद, तैयार होजा उस मार्ग पर चलने को—अभी समय है ।

१. वह दिन पहले ही लिख दिया गया था, जिस दिन कि धनवंती का ब्याह होना था ।

जिस दूलह के बारे मे सुन रखा था वह अपना मुखड़ा दिखाने आ पहुँचा है । हाडो को कडकाकर वह उस बेचारी धनवती को खींचकर अपने साथ ले जायेगा ।

अपनी जीवात्मा को तू समझादे, कि जो घड़ी नियत हो चुकी उसे बदला नही जा सकता ।

जीवात्मा दुलहिन है, और मृत्यु है दूलह; वह उसे ब्याहकर अपने साथ ले जायेगा ।

बिदा होते समय, वह बेचारी किसके गले में अपनी बाहें डालेगी ?

क्या तुमने सुना नही कि वह दुलहिन बाल से भी कहीं अधिक महीन है ?

फरीद, जब तेरा बुलावा आये, उठकर खड़ा हो जाना और अपने आपको धोखा न देना ।

किछु न बुझै किछु न सुझै दुनीआ गुझी भाहि ।
साईं मेरैं चंगा कीता नाही त हंभी दझां आहि ॥२॥
फरीदा जे तू अकलि लतीफ काले लिखु न लेखु ।
आपनड़े गिरीवान महि सिरु नीवां करि देखु ॥३॥
फरीदा जो तैं मारनि मुकीआं तिन्हा न मारे घुंमि ।
आपनड़े घरि जाईए पैर तिन्हादे चुंमि ॥४॥
फरीदा जां तउ खटण वेल तां तू रता दुनी सिउ ।
मरग सवाई नीहि जां भरिआ तां लदिआ ॥५॥
देखु फरीदा जु थीआ दाड़ी होई भूर ।
अगहु नेड़ा आइआ पिछा रहिआ दूर ॥६॥
देखु फरीदा जु थीआ शकर होई विसु ।
साईं बाझहु आपणे वेदण कहीऐ किसु ॥७॥

---

२. मैं न कुछ जानता हूं, न कुछ देखता हूं—दुनिया यह गोया धधकती हुई आग है,

मेरे साईं ने अच्छा किया कि मुझे चेता दिया, नहीं तो मैं भी इसमें जलबल गया होता ।

३. फरीद, अगर तू तेज अक्ल रखता है, (तो दूसरों के खिलाफ) काले अंक मत लिख ।

अपना सिर झुकाकर तू तो अपने ही गरीवां की तरफ देख ।

(मतलब यह कि दूसरों के दोष मत देख ; तू तो अपने दिल को देख कि उसमें कितने क्या दोष भरे पड़े हैं ।)

४. फरीद, अगर लोग तुझे मुक्कों से मारें, तो बदले में तू उन्हें मत मार, तू तो उनके कदमों को चूमकर अपने घर चला जा ।

५. फरीद, जब तेरे कमाने के दिन थे, तब तो तू दुनिया के रंग में रँगा हुआ था

मौत की नींव मजबूत है, खेप के भरते ही वह लादनहार लेकर चल देगा ।

(मतलब यह कि आखिरी सांस पूरी हुई कि मौत उसी पल जीव को खींचकर ले जायेगी ।

६. फरीद, देख तो ज़रा, यह क्या हुआ—तेरी दाढ़ी सफेद हो गई;

आगा तेरा नजदीक है, और पीछा दूर छूट गया ।

७. फ़रीद देख तो जरा यह क्या हुआ—शक्कर भी विष हो गई ।

फरीदा कालीं जिन्ही न राविश्रा धउली रावै कोइ ।
करि साईं सिउ पिरहड़ी रंगु नवेला होइ ॥८॥
फरीदा जिन्ह लोइण जगु मोहिश्रा से लोइण मैं डिठु ।
काजल रेख न सहदिश्रा से पंखी सूइ बहिठु ॥९॥
फरीदा खाकु न निदीऐ खाकू जेडु न कोइ ।
जीवदिया पैरा तलै मुइश्रा ऊपरि होइ ॥१०॥
फरीदा जा लबु त नेहु किश्रा लबु त कूड़ा नेहु ।
किचरु झति लघाईऐ छपरि तुटै मेहु ॥११॥
फरीदा जंगलु जंगलु किश्रा भवहि वणि कंडा मोड़ेहि ।
वसी रबु हिश्रालीऐ जंगलु किश्रा ढूढेहि ॥१२॥

अपने स्वामी को छोड़ अब मैं और किसे अपना दुखड़ा सुनाऊँ ?

८. क्या किसी नारीने, जब उसके केश काले थे, स्वामी के साथ रमण न कर, तब रमण किया, जब कि उसके केश पककर श्वेत हो गये ?

खैर, साईं से तू अब भी प्रीति जोड़ले, जिससे कि तेरे केशों का रँग फिर से नया हो जाये ।

('रंगन बेला' भी एक पाठ है—जिसका अर्थ यह हुआ कि यही स्वामी के साथ रंग खेलने का याने प्रेम करने का समय है ।)

९. फरीद, मैंने उन नयनों को देखा है, जिन्होंने दुनिया को मोह लिया था—

और जो काजल की रेख भी सहन नहीं करते थे; अब चिड़ियां उनमें अपने अंडे रख रही हैं ।

१०. फरीद, मत खाक की निंदा कर, खाक के बराबर कोई चीज नहीं;

जीते-जी वह हमारे पैरों के तले रहती है, और हमारे मरने पर हमारे ऊपर ।

११. फ़रीद, जहां लोभ है, वहां प्रेम कहां से होगा ? लोभ होगा तो प्रेम वहाँ झूठा होगा ।

टूटे छप्पर के नीचे मेह में तू आखिर कितने दिन गुजारेगा ?

१२. फरीद, शाखों और काँटों को तोड़ता हुआ एक जंगल से दूसरे जंगल में तू क्यों भटकता फिरता है ?

रब तो तेरे हिये में बस रहा है; फिर जंगल में उसे तू क्यों ढूंढ रहा है ।

फरीदा इनी निकी जंघीऐ थल डूगर भविओम्हि ।
अजु फरीदै कूजड़ा सै कोहां थीओमि ॥१३॥
फरीदा राती वडीआं धुखि धुखि ऊठनि पास ।
धिगु तिन्हादा जीविआ जिन्हा विडाणी आस ॥१४॥
फरीदा गलीए चिकड़ु दूरि घरु नालि पिआरे नेहु ।
चला त भीजै कंबली रहां त तुटै नेहु ॥१५॥
भिजउ लिजउ कंबली अलह वासहु मेहु ।
जाइ मिला तिन्हा सजणा तुटउ नाही नेहु ॥१६॥
फरीदा मैं भोलावा पगड़ी मत मैली होइ जाइ ।
गहिला रूहु न जाणई सिरु भी मिटी खाइ ॥१७॥
फरीद सकर खंडु निवात गुड़ु माखिउ मांझा दुधु ।
सभे वसतू मिठीआं रब न पुजनि तुधु ॥१८॥

---

१३. फरीद, इन पतली जांघो व पिंडलियो से कितने ही मैदानों और पहाड़ों को मैंने तय किया ।

पर, आज फरीद के लिए अपना कूजा उठाना भी मानों सैंकड़ों कोसों की मंजिल तय करना हो गया ।

१४. फरीद, रातें लंबी हो गईं; पसलियों में हूक उठ रही है—दर्द से करवटें बदलनी पड़ रही है ।

१५. फरीद, गलियों में कीचड़-ही-कीचड़ है; और प्यारे का घर, जिससे कि मैंने प्रीति जोड़ी है, दूर है;

अगर मै उसके पास जाऊँ तो मेरी कंबली भींग जायेगी, और मैं अपने घर रहूँ तो मेरी प्रीति टूट जायेगी ।

१६. अल्लाह, भले ही तू मेह बरसाये, और मेरी कम्बली को भिगो-भिगोकर तर करदे, फिरभी अपने प्यारे साजन से मेरा मिलना होकर ही रहेगा, ताकि हमारी प्रीति न टूटे ।

१७. फ़रीद, मै डरता हू कि कहीं मेरी पगडी मिट्टी से मैली न हो जाये;

मेरा बावला जी यह नही जानता कि पगडी तो क्या मेरे इस सिर को भी यह मिट्टी सड़ा-गलाकर खा जायेगी ।

१८. फरीद ! शकर, खांड, कंद, गुड़ और शहद और भैंस का दूध—

ये सभी चीजें मीठी हैं, पर अय मेरे रब, उतनी मीठी नहीं, जितना कि तू मीठा है ।

फरीद रोटी मेरी काठ की लावणु मेरी भुख ।
जिन्हा खाधी चोपडी घणे सहनिगे दुख ॥१९॥
आजु न सूती कंत सिउ अंगु मुड़े मुडि जाइ ।
जाइ पुछुहु डोहागणी तुम किउ रैणि बिहाइ ॥२०॥
जोबन जांदे ना डरां जे सह प्रीति न जाइ ।
फरीदा किती जोबन प्रीति बिनु सूकि गए कुमलाइ ॥२१॥
फरीदा ए विसु गंदला धरीआं खंडु लिवाड़ि ।
इकि राहेदे रहि गए इकि राधी गए उजाड़ि ॥२२॥
फरीदा दरि दरवाजै जाइकै किउ डिठो घडीआलु ।
एहु निदोसां मारीऐ हम दोसा दां किआ हालु ॥२३॥
घड़ीए घडीए मारीए पहरी लहै सजाइ ।
सो हेड़ा घडीआल जिउ डुखी रैणि बिहाइ ॥२४॥

---

१९. मेरी काठ की जैसी तो रोटी है, और लावण (तरकारी या चटनी) है मेरी भूख ।
जो घी-चुपडी खाते है, उन्हे बहुत दुख उठाना पड़ेगा ।

रात को मै अपने स्वामी के साथ नही सोई, मेरा अंग-अंग मरोड़ा ले रहा है ।
गई दोहागिन (परित्यक्ता) से जाकर पूछ कि 'तू रात कैसे काटती है ?'

किस
यौवन जाने से मै नही डरती, यदि उसके साथ प्रीतम की प्रीति न जाये;
२१. फरीद ! कितना बार बिना प्रीति के यौवन सूख गया, कुम्हला गया !

फरीद, ये (संसारी) सुख खांड से चुपडे विष के अंकुरे है;
२२. कुछ तो उनको रोपते हुए ही चल बसे; और कुछ उजड गये उन्हें चुनते हुए ।

२३. फरीद, न्यायालय के दरवाजे पर जब तू गया, तब तूने क्या उस घडियाल को नही देखा ?

जब उस बेगुनाह को वहॉ इस तरह पीटा जाता है, तब हम गुनहगारों का क्या हाल होगा ?

२४. घडी-घडी उसपर मार पडती, और हर पहर उसे पूरी सज़ा मिलती है; ऐसेही घड़ियाल की तरह यह देह दरदभरी रैन काटती है ।

बुढा होआ सेख फरीदु कंबणि लगी देह ।
जे सउ वहिंणा जीवणा भी तनु होसी खेह ॥२५॥
फरीदा बारि पराइऐ बैसणा साईं मुझै न देहि ।
जो तू एवै रखसी जीउ सरीरहु लेहि ॥२६॥
फरीदा इकना आटा अगला इकना नाहीं लोणु ।
अगै गए सिञापन्हि चोटां खासी कोणु ॥२७॥
पासि दमामे छतु सिरि भेरी सडो रड ।
जाइ सुते जीराण महि थीए अतीमा गड ॥२८॥
फरीदा कोठे मंडप माडीआ उसारेदे भी गए ।
कूड़ा सउदा करि गए गोरी आइ पए ॥२९॥
फरीदा खिंथड़ि मेखा अंगलीआ जिदु न काई मेख ।
वारी आपो आपणी चले मसाइक सेख ॥३०॥

---

२५. शेख फरीद अब बुड्ढा हो गया, और देह उसकी लड़खड़ाने लगी है। वह यदि सौ बरस भी जीये; तोभी उसकी देह को आखिर खाक में ही मिलना है।

२६. साईं, मुझे किसी दूसरे के दरवाजे पर न बिठाना, न मँगवाना;

अगर तू ऐसाही कराना चाहे, तो उससे पहले ही मेरे प्राणों को देह से निकाल लेना।

२७. फरीद, किसीके पास तो बहुत सारा आटा है, और किसीके पास नमक भी नहीं;

यह तो उन सबके यहा से जाने के बाद ही मालूम हो सकेगा कि सज़ा किसे मिलेगी।

२८ जिनके साथ नगाड़े और तुरही बजते थे, जिनके सिर पर राज-छत्र रहते थे, और जिनकी विरुदावली चारण गाते थे—

वे कब्रस्तान में सोने के लिए चले गये, और वहा गरीब यतीमों की तरह दफना दिये गये।

२९. फरीद, जिन्होंने मकान, हवेलियां और ऊँचे-ऊँचे महल बनवाये थे, वे भी चले गये;

वे झूठा सौदा करके गये, और कब्र में डाल दिये गये।

३० फरीद, अंगरखे में, टिकाऊ बनाने के लिए, बहुत सारे टाँके लगा दिये हैं, पर जिंदगी में ऐसा कोई टाँका नहीं लगा हुआ है।

फरीदा कंनि मुसला सूफूगलि दिलि काती गुड़ु वाति।
बाहरि दिसै चानणा दिलि अंधिआरी राति ॥३१॥
फरीदा रती रतु न निकलै जे तनु चीरै कोइ।
जो तन रते रब सिउ तिन तन रतु न होइ ॥३२
फरीदा कोठे मंडप माड़ीआ एतु न लाए चित्तु
मिटी पई अतोलवी कोइ न होसी मित्तु ॥३३॥
फरीदा मंडप मालु न लाइ, मरग सताणी चित्त धरि।
साईं जाइ सम्हालि, जिथैं ही तउ वंञणा ॥३४॥
फरीदा काले मैंडे कपड़े काला मैंडा वेसु।
गुनही भरिआ मैं फिरा लोकु कहै दरवेसु ॥३५॥

(मतलब यह कि ऐसी कोई चीज नहीं, जो शरीर के पिंजड़े में से प्राण-पक्षियों को उड़जाने से रोक सके।)

शेख और उनके शागिर्द, जब जिसकी बारी आई, सभी चल दिये।

३१ फरीद, वे कंधे पर मुसल्ला रखते है, सूफी की कफनी पहनते है, और मीठी-मीठी बात करते हैं, पर दिलों में वे छुरी रखते है;

बाहर तो वे चाँदनी फैलाते रहते है, मगर दिलों में उनके काली अँधेरी रात झुक रही है।

३२. फरीद कहता है—अगर कोई मेरे इस शरीर को चीरे, तो इसमें से रत्तीभर भी रक्त नहीं निकलेगा;

जो शरीर रब के रंग में रंग गया है, उसमें फिर रक्त नहीं रहता।

३३. फरीद, इन मकानों, हवेलियों और ऊँचे-ऊँचे महलों में मत लगा अपने मन को;

जब तेरे ऊपर बिनतोल मिट्टी पड़ेगी, तब वहां तेरा वहां कोई भी मीत नहीं होगा।

३४. फरीद, हवेलियां और दौलत में अपना दिल न लगा; तो क़ब्र का ध्यान कर—याद कर उस जगह को, जहां तुझे जाना ही होगा।

३५. फरीद, काले मेरे कपड़े है, और काला ही मेरा भेष है,
मैं तो फिर रहा हूँ गुनाहों से भरा हुआ, और लोग कहते है मुझे दरवेश!

जां कुआरी तां चाउ वीवाही तां मामले ।
फरीदा एहो पछोताउ पति कुमारी ना थीऐ ॥३६॥
चलि चलि गईआं पंखिआ जिनी वसाये तल ।
फरीदा सरु भरिआ भी चलसी थके कवल इकल ॥३७॥
फरीदा इंट सिराणे भुइ सवणु कीड़ा लड़िओ मासि ।
केतड़िआ जुग वापरे इकतु पइआ पासि ॥३८॥
उठु फरीदा उजू साजि सुबह निवाज गुजारि ॥
जो सिरु साईं ना निवै सो सिरु कपि उतारि ॥३९॥
जो सिरु साईं ना निवै सो सिरु कीजै कांइ ।
कुंने हेठि जलाईऐ बालण संदै थाइ ॥४०॥
फरीदा किथै तैडे मा पिआ जिन्ही तू जणिओहि ।
तै पासहु ओइ लदि गए तू अजै न पतीणोहि ॥४१॥

---

३६. जबतक वह कुवारी है, तभीतक उसमें उछाह है; ब्याह होते ही आफतो में पड़ जाती है ।

फरीद, उसे पछताव है कि वह फिर से कुवारी नही हो सकती ।

(विवाह-बन्धन से तात्पर्य है मायाकृत बन्धन से; 'कुमारी' से आशय शुद्ध आत्मा से है ।)

३७. वे सब पक्षी, जिनसे कि तालाब आबाद था, उड गये;

फरीद, यह भरा तालाब भी रहने का नही, अकेले कमल ही रहेंगे ।

(पक्षी=राजे-महाराजे और उच्च पदाधिकारी । तालाब=ससार । कमल=संतजन ।)

३८. फरीद, ईटे तो होगी तेरा तकिया, और तू सोयेगा जमीन के नीचे; कीड़े तेरे मांस को खायेंगे;

एक ही करवट पड़े-पडे कितने जुग बीत जायेंगे तेरे !

३९. उठ सवेरे, फरीद, वजू कर और नमाज पढ ;

काटकर फेकदे उस सर को, जो मालिक के आगे नही झुकता ।

४०. उस सर को लेकर करेगा क्या, जो रब के आगे नही झुकता ? ईधन की बजाय जलादे उसे घड़े के नीचे ।

४१. फरीद, कहाँ है तेरे माँ-बाप, जिन्होंने कि तुझे जनम दिया था ?

तेरे पास से वे चले गये; आजभी तुझे विश्वास नही होता कि दुनिया यह नापायदार है ?

फरीदा मै जानिआ दुखु मुझकू दुखु सबाइऐ जगि।
ऊचे चढ़िकै देखिआ तां घरि घरि एहा अगि ॥४२॥

कागा करंग ढढोलिआ सगल खाइआ मासु।
ए दुइ नैना मति छुइउ पिर देखन की आसु ॥४३॥

फरीदा गोर निमाणी सडुकरे निघरिआ घरि आउ।
सरपर मैथै आवणा मरणहु ना डरिआहु ॥४४॥

इन्ही लोइणी देखिदिआ केती चलि गई।
फरीदा लोकां आपो आपणी मै आपणी पई ॥४५॥

कंधी उतै रूखड़ा किचरकु बंन्है धीरु।
फरीदा कचै भांडै रखीऐ किचरु ताई नीरु ॥४६॥

फरीदा दरीआवै कंनै बगुला बैठा केल करे।
केल करेदे हंझ नो अचिंते बाज पए॥

---

४२. फरीद, मै समझता था कि दुख मुझे ही है, मगर दुख तो सारी ही दुनिया को है;

जब ऊँचे चढ़कर देखा, तब मैने पाया कि यह आग तो हरघर में लग रही है।

४३. कौवो! तुमने मेरी ठठरी का खोज-खोजकर सारा मांस खा डाला; पर इन दो नयनों को चोंच न लगाना, क्योंकि मुझे अबभी अपने प्रीतम के देखने की आस है।

४४. फरीद, निगोडी कब्र बुला रही है, 'अय बेघरवालो! इस घर में आ बसो।
मेरे यहा तो तुम्हें आना ही होगा; मत डरो मौत से।'

४५. मेरी इन्ही आँखों के आगे कितने यहा से चले गये!
फरीद, लोग अब अपनी-अपनी फिक्र में है, और मै अपनी फिक्र में हूँ।

४६. तट पर के वृक्ष कबतक अपना ठौर बनाये रहेंगे?
फरीद, कच्चे घडे में तू पानी रखेगा तो वह कबतक उसमें रह सकेगा?

४७. फरीद, नदी के तीर बगुला बैठा हुआ कलोल कर रहा है;
उसके कलोल करते समय बाज अचानक उसपर आ झपटता है;

बाज पए तिसु रब दे केलां विसरीआं ।
जो मनि चिति न चेते सनि सो गाली रब कीआं ॥४७॥
फरीदा हउ बलिहारी तिन्ह पंखिआ जंगलि जिना वासु ।
कंकरु चुगति थलि वसनि रब न छोड़न्हि पासु ॥४८॥
फरीदा तिना मुख डरावणे जिना विसारिओनु नाउ ।
ऐथै दुख घणेरिआ आगै ठउरु न ठाउ ॥४९॥
फरीदा पिछल राति न जागिओहि जोवदड़ो मुइओहि ॥
जेनै रबु विसारिआ त रबि न विसारिओहि ॥५०॥
ढूढेदीए सुहाग कू तउ तनि काई कोर ।
जिन्हा नाउ सुहागणी तिना झाक न होर ॥५१॥
तनु तपै तनूर जिउ बालणु हड बलंन्हि ।
पैरी थकां सिरि जुलां जे मूं पिरी मिलंन्हि ॥५२॥

रब का भेजा बाज जब उसपर झपटता है, वह अपना सारा केल-कलोल भूल जाता है ।

रब ऐसी-ऐसी चीज कर बैठता है, जिसका मन में खयाल भी नहीं आता ।

४८. फरीद, बलिहारी उन पक्षियों पर, जो जगल में रहते हैं, फल खाते है, जमीन पर सोते है, और रब का आसरा नही छोडते ।

४९. फरीद, भयावने है उनके चेहरे, जिन्होंने उस मालिक का नाम भुला दिया; यहाँ तो उन्हें भारी दुख है ही, आगे भी उनके लिए कोई ठौर-ठिकाना नही ।

५०. फरीद, अगर तू रात के पिछले पहर नही जागता, तो तू जिंदा भी मरा हुआ है । तू रब को भुला भी दे, पर रब तुझे भूलने का नही ।

५१. तू अपने सुहाग को, अपने प्रीतम को खोज रही है, तो तेरे अन्दर जरूर कोई-न-कोई कमी है;

जिसे सुहागिन कहते हैं वह किसी और की तरफ झाकती भी नही ।

५२. शरीर मेरा तन्दूर की तरह तप रहा है, मेरी हड्डियाँ ईंधन की लकडी की तरह जल रही है;

मेरे पैर अगर थक जायें, तोभी मै अपने प्रीतम से मिलने सिर के बल चलकर जाऊँगी ।

सरवर पंखी हेकड़ो फाहीवाल पचास ।
इहु तनु लहरी गडु थिआ सचे तेरो आस ॥५३॥
कवणु सु अखरु कवणु गुणु कवणु सु मणीआ मंतु ।
कवणु सु वेसो हउ करी जितु वसि आवै कंतु ॥५४॥
निवणु सु अखरु खवणु गुणु जिहवा मणीआ मंतु ।
एत्रै भैणे वैस करि ता वसि आवी कंतु ॥५५॥
मति होदी होइ इआणा, ताण होदे होइ निताणा ।
अणहोंदे आपु वंडाए, कोई ऐसा भगतु सदाए ॥५६॥
इक फिका ना गालाइ सभना मैं सचा धणी ।
हिआउ न कैही ठाहि माणिक सभ अमोलवे ॥५७॥
सभना मन माणिक ठाहणु मूलि म चांगवा ।
जे तउ पिरी आसिक हिआउ न ठाहे कहीदा ॥५८॥

---

५३. तालाब में पत्ती तो अकेला एक है, और फँसाने के जाल है पचास; यह शरीर लहरों में डूब रहा है; अय सच्चे मालिक ! मुझे अब एक तेरी ही आशा है । (पक्षी=जीवात्मा । जाल=सांसारिक प्रलोभन ।)

५४. वह कौन-सा शब्द है, वह कौन-सा गुण है, वह कौन-सा अनमोल मन्त्र है; मै कौन-सा भेष धारूँ, जिससे कि मैं अपने स्वामी को बस में करलूँ ?

५५. दीनता वह शब्द है; धीरज वह गुण है, शील वह अनमोल मन्त्र है; तू इसी भेष को धारण कर, बहिन, तेरा स्वामी तेरे बस में हो जायेगा ।

५६. प्रभु के ऐसे बिरले ही भक्त है,—
जो, बुद्धिमान होते हुए भी, सरल है,
जो, बलवान होते हुए भी, निर्बल है,
और, जो अकिंचन होते हुए भी, अपना सर्वत्र दे डालते है ।

५७. एक भी अप्रिय बात मुँह से न निकाल, क्योंकि सच्चा मालिक हर प्राणी के अंदर है ।
किसीके दिल को तू मत दुखा; हर दिल एक अनमोल रतन है,

५८. हर दिल एक रतन है; उसे दुखाना किसी भी तरह अच्छा नहीं
अगर तू प्रीतम का आशिक है, तो किसीके भी दिल को न सता ।

स्वामी दादू दयाल

चोला-परिचय

जन्म-सवत्—१६०१ वि०

जन्म-स्थान—अहमदाबाद (गुजरात)

कुल—नागर ब्राह्मण; मतातर से धुनिया मुसल्मान

साधन तथा उपदेश-स्थान—मध्यदेश, जयपुर राज्यातर्गत साँभर, आबेर तथा नराणा ग्राम

निर्वाण-सवत्—१६६० वि०

निर्वाण-स्थान—नराणा ग्राम (जयपुर से २० कोस दूर)

स्वामी दादू दयाल की जन्म-कथा ठीक वैसी ही लोक-प्रचलित है, जैसी कि कबीरदासजी की जन्म-कथा। कहते है कि लोदीराम नामक एक नागर ब्राह्मण को साबरमती नदी के तट पर एक नवजात बालक बहता हुआ मिला, और उसे उठाकर वह अपने घर ले आया। यही बालक पीछे दादू के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

१२ वर्ष की अवस्था मे ही दादूजी सत्संग के लिए घर से निकल पडे। किंतु माता-पिता ने पीछा करके इन्हे पकड लिया, और इनका विवाह कर दिया। पर ससारी बंधन इन्हे बाँध नही सका। सात बरस बाद यह फिर घर से निकल गये। साँभर पहुँचे, और वहाँ धुनिये का काम करने लगे। इसपर से एक मत यह भी हुआ कि दादू दयाल धुनिये जाति के थे।

दादूजी ने १२ वर्षतक सतत सहजयोग की कठिन साधना की। निरन्तर भक्ति-रस मे लौलीन रहने की अति ऊँची अवस्था को इन्होंने प्राप्त कर लिया, और यह अंतर्मुख हो गये।

दादूजी का दया का अग तो पराकाष्ठा को पहुँच गया। दया-पारमिता को सहजयोग से प्राप्त कर लिया। लोग इन्हें 'दयाल' के प्यारभरे नाम से पुकारने लगे। दया-दर्शन का एक इनका बड़ा सुदर प्रसंग है। एक दिन अपनी कोठरी में यह ध्यान-मग्न बैठे थे। कुछ

ईर्ष्यालु ब्राह्मणों ने ईटों से कोठरी का द्वार चिन दिया। ध्यान से जागने पर द्वार बंद पाया, और जब बाहर निकलने का रास्ता नहीं मिला तो फिर उसी प्रकार ध्यान लगाकर बैठ गये। इस तरह कई दिनोतक यह ध्यानस्थ कोठरी मे बंद रहे। लोगो को जब मालूम हुआ तो द्वार खोला, और उन दुष्टो को दड देना चाहा। दयाल ने दंड देने से मना किया। बोले—"इन लोगो ने तो कोठरी के द्वार को ईटो से चिनकर अच्छा ही किया था, इनकी कृपा मे ही तो इतने दिनोतक मैं भगवान् के ध्यान मे लौलीन रहा। धन्य है इनकी कृपा-भावना को।"

संवत् १६४२ मे अकबर बादशाह से दादू दयाल फतेहपुर सीकरी मे मिले थे। अकबर के पूछने पर कि खुदा की जात, अग, वजद और रंग क्या है, इन्होने जवाब दिया—

"इमक अलाह की जाति है, इसक अलाह का अग।
इमक अलाह औजूद है, इसक अलाह का रग॥"

दादू दयाल के यो तो सैकडो-सहस्रो शिष्य थे, पर १५२ उनके प्रमुख शिष्य थे, और उनमे भी ५२ और भी अंतरग थे, यद्यपि किसी-को वे गुरु-दीक्षा नही देते थे। उनके महान् त्याग, ऊँचे प्रेम और अथाह दया ने हजारो को खीच लिया था। गरीबदास, बखना, रज्जब, सुदर-दास ये दादू-सौर-मण्डल के अत्यत प्रकाशमान नक्षत्र गिने जाते है।

दादू-पथ मे सैकडो सत कवि हुए है। बहुत बडा साहित्य है इस संप्रदाय का। माधोदास का 'सतगुणसागर,' जनगोपाल की 'जन्म-लीला,' राघौदास की 'भक्तमाल,' जग्गाजी की 'भक्तमाल' और जैमल की 'भक्तविरुदावली' दादू-पथी परपरा के प्रमुख प्रामाणिक ग्रथ माने जाते है।

स्वामी दादूजी महाराज ने नराणे ग्राम मे सवत् १६६० मे देहत्याग किया। इसी स्थान मे दादूपथियो की मुख्य गद्दी है, जिसे दादूद्वारा कहते है। दादू-पंथी साधु हाथ मे सुमरनी रखते है, और आपस मे 'सत्तराम' कहकर अभिवादन करते है।

बानी-परिचय

दादू दयाल की बानी को कबीरदास की बानी के जोड की कहा जाये तो अत्युक्ति न होगी। सगुणपक्ष में भक्त कवियो मे जैसे तुलसी और सूर, वैसे ही निर्गुणपक्ष के सत-कवियो मे कबीर और दादू। इनकी प्रेमतत्त्व की व्यजना तो बहुत ही ऊँची और गहरी है। कितने ही शब्दो व साखियों मे प्रेम और विरह का निरूपण अत्यत निर्मल और अनुपम हुआ है। इतने ऊँचे घाट की बानी अन्यत्र बहुत ही कम देखने मे आती है। दादू के शब्दो मे आप अन्तर को वेधनेवाली सूक्ष्म-से-सूक्ष्म दृष्टि और अमृत-रस से सीचा हुआ स्वानुभव पायेगे।

अनेक शब्दो व साखियो मे कबीर का रग देखने मे आता है, पर कहने का ढग दादू का अपना है। कबीर को यह गुरुवत् मानते भी थे। इनकी इन दो साखियो को देखिए :—

"जो था कत कबीर का सोई बर बरिहूँ।
मनसा वाचा कर्मना मै और न करिहूँ॥
साचा सबद कबीर का मीठा लागै मोहि।
दादू सुनता परमसुख केता आनद होहि॥"

किंतु कबीर की तरह इन्होंने सत्य की राह से भटकानेवाले पंडितों और मुल्लो पर प्रहार नही किये। खडन-मडन से इन्हे रुचि नहीं थी। संतमत का मथनकर सद्यः प्रेम-नवनीत ही दया के समभाव से दादू दयाल ने दोनो हाथों से लुटाया है।

भाषा भी इनकी बड़ी जानदार है। अनेक जनपदों के शब्दों का मुक्त प्रयोग इन्होंने किया है। फारसी के भी सैकड़ो शब्द इनकी रस-वती बानी मे आये है। कुछ पद इनके पजाबी और गुजराती के भी मिलते हैं।

जैसे एक दीये से सैकडो दीयों को जलाते है, उसी तरह दादू दयाल की बानी से अलौकिक प्रकाश ले-लेकर अनेक संत कवियो ने साखियों व शब्दो की अमृत प्रसादी लोक में वितरण की है।

आधार

१ श्री स्वामी दादू दयाल की वाणी (अंगबंधू सटीक)—चद्रिका-प्रसाद त्रिपाठी, जोन्सगज, अजमेर

२ साध-संग्रह अथवा नूतन भक्तमाल—स्वामीबाग, आगरा

३ गरीबदासजी की बानी—स्वामी मंगलदास, श्री स्वामी लक्ष्मी-राम ट्रस्ट, जयपुर

स्वामी दादू दयाल

शबद

राग गौडी

अजहुँ न निकसै प्राण कठोर ।
दर्सन बिना बहुत दिन बीते, सुन्दर प्रीतम मोर ।।
चारि पहर चार्यौं जुग बीते, रैनि गँवाई भोर ।
अवधि गई अजहूँ नहि आये, कतहूँ रहे चितचोर ।।
कबहूँ नैन निरखि नहि देखे, मारग चितवत तोर ।
दादू ऐसैं आतुर बिरहणि, जैसैं चंद चकोर ।।१।।

बिरहनि कौं सिंगार न भावै, है कोई ऐसा रांम मिलावै ।
बिसरे अंजन मंजन चीरा, बिरह बिथा यहु ब्यापै पीरा ।।
नवसत थाके सकल सिंगारा, है कोइ पीड़ मिटावणहारा ।
देह ग्रेह नहीं सुधि सरीरा, निसिदिन चितवत चात्रिग नीरा ।।
दादू ताहि न भावै आंन, रांम बिना भई मृतक समांन ।।२।।

मन निर्मल तन निर्मल भाइ, आंन उपाइ बिकार न जाइ ।
जो मन कोयला तौ तन कारा, कोटि करै नहि जाइ बिकारा ।।

---

१. चारि पहर…बीते=चार पहर चार युग की तरह कटे । भोर=सवेरा । रैनि गँवाई भोर=सारी रात तडपते-तडपते काटी तब कही सवेरा हुआ ।

२. चीरा=वस्त्र । नवसत=सोलह (श्रृंगार) । थाके=व्यर्थ गये । चात्रिग=चातक, पपीहा । नीरा=जल; यहाँ दर्शन से आशय है । आन=दूसरी कोई चीज़ ।

जो मन बिसहर तौ तन भुवंगा, करै उपाइ बिषै फुनि संगा।
मन मैला तन उज्जल नांहीं, बहुत पचिहारे बिकार न जाहीं॥
मन निर्मल तन निर्मल होई, दादू साच बिचारै कोई॥३॥
ऐसा जनम अमोलिक भाई, जाथैं आइ मिलै रांम राई।
जाथैं प्राण प्रेम रस पीवै, सदा सुहाग सेज सुख जीवै॥
आतम आइ रांम सौं राती, अखिल अमर धन पावै थाती।
परगट परसन दरसन पावै, परम पुरिख मिलि मांहिं समावै॥
ऐसा जनम नहीं नर आवै, सो क्यूं दादू रतन गँवावै॥४॥
रांम रस मीठा रे, कोई पीवै साध सुजाण।
सदा रस पीवै प्रेम सौं, सो अविनाशी प्रांण॥
इहि रसि मुनि लागे सबै, ब्रह्मा बिश्न महेस।
सुर नर साधू सन्त जन, सो रस पीवैं सेस॥
सिध साधिक जोगी जती, सती सबै सुखदेव।
पींवत अन्त न आवई, ऐसा अलख अभेव॥
इहि रसि राते नांमदेव, पीपा अरु रैदास।
पिवत कबीरा ना थक्या, अजहूँ प्रेम पियास॥
यहु रस मीठा जिन पिया, सो रस मांहिं समाइ।
मीठे मीठा मिलि रह्या, दादू अनत न जाइ॥५॥
भेष न रीझै मेरा निज भर्तार, ताथैं कीजे प्रीति बिचार॥
दुराचारिनी रचि भेष बनावै, सील साच नहिं, पिव क्यों भावै॥
कंत न भावै करै सिंगार, डिंभपणैं रीझै संसार॥

---

३. बिसहर=विषधर, सर्प। फुनि=पुनः, फिर। पचिहारे=यत्न करते-करते थक गये।

४. राई=राजा, स्वामी। राती=रँग गई, अनुरक्त हो गई। थाती=पूँजी। पुरिख=पुरुष, परमात्मा. मांहि=अंतर में।

५. प्राण=प्राणी, जीव। जती=यति, संन्यासी। सती=गृहस्थ। सुखदेव=शुकदेव मुनि। अभेद=जिसका भेद नहीं पाया। राते=अनुरक्त। पीपा=एक राजा, जो ऊँचे भक्त थे। रस ही मांहि समाइ=रस में लीन हो गये, रसरूप हो गये।

६. भेष=ऊपरी बनाव, शृंगार। डिंभपणैं=दंभ-पाखंड से। धन=स्त्री।

जोपै पतिब्रता ह्वै है नारी, सो धन भावै पियहिं पियारी ॥
पीव पहिचानैं आंन नहिं कोई, दादू सोइ सुहागिन होई ॥६॥

मुझ थीं कुछ न भया रे, यहु यूं हि गया रे, पछितावा रह्या रे ॥
मैं सीस न दीया रे, भरि प्रेम न पीया रे, मै क्या कीया रे ॥
हौं रंग न राता रे, रस प्रेम न माता रे, नहि गलित गाता रे ॥
मैं पीव न पाया रे, कोया मन का भाया रे, कुछ होइ न आया रे ॥
हूं रहूं उदासा रे, मुझ तेरी आसा रे, कहै दादू दासा रे ॥७॥

राग केदारो

अरे मेरा अमर उपावणहार रे खालिक, आशिक तेरा ॥
तुम्ह सौं राता तुम्ह सौं माता, तुम्ह सौं लागा रंग, रे खालिक ॥
तुम्ह सौं खेला तुम्ह सौं मेला, तुम्ह सौं प्रेम सनेह, रे खालिक ॥
तुम्ह सौं लेणा, तुम्ह सौं देणा, तुम्ह ही सौं रत होइ रे खालिक ॥
खालिक मेरा, आशिक तेरा, दादू अनत न जाइ, रे खालिक ॥८॥

पीव घरि आवै रे, वेदन मारी जाणीं रे ।
बिरह संताप कोण पर कीजे, कहूं छूं दुख नी कहाणी रे ॥
अन्तरजामी नाथ मारो, तुज बिण हूं सीदाणी रे ।
मन्दिर मारे केम न आवै, रजनी जाइ बिहाणी रे ॥
तारी बाट हूं जोइ थाकी, नेण निखूट्या पाणी रे ।
दादू तुज बिन दीन दुखी रे, तू साथी रह्यो छे ताणी रे ॥९॥

---

७. यहु=यह जीवन । रंग=भक्ति-भाव । राता=रंगा, अनुरक्त हुआ । माता=मस्त हुआ । गाता नहि गलित=शरीर को तप से गलाया या कसा नहीं । भाया=प्रिय । उदासा=खिन्न, निराशा ।

८. उपावणहार=उत्पन्न करनेवाला, सिरज्नहार । मेला=मिलन । रत=अनुरक्त । अनत=और किसी जगह ।

९. वेदन=वेदना; पीड़ा (बिरह की) । कहूं छुं=कहती हूं । नी=की । मारो=मेरा । तुज बिण=विना तेरे । सीदाणी=दुख से मुरझा रही हूं । केम=क्यों । बिहाणी जाइ=बीती जाती है । तारी=तेरी । हूं=मै । नेण=नयन । निखूट्या पाणी=पानी (आंसू) भी घट गया । ताणी रह्यो छे=तन या खिच रहा है ।
(इस पद में अनेक गुजराती शब्दों और विभक्तियों का प्रयोग हुआ है ।)

वाहला हूं जाणूं जे रंग भरि रमिये, मारो नाथ निमिष नहिं मेलूं रे।
अंतरजामी नाह न आवे, ते दिन आव्यो छेलो रे॥
वाहला सेज अमारी एकलडी रे, तहं तुजने केम न पामूं रे।
आ दत्त अमारो पूरबलो रे, तेता आव्यो सामो रे॥
वाहला मारा हृदया भीतर केम न आवे, मने चरणबिलंब न दीजे रे।
दादू तो अपराधी तारो, नाथ उधारी लीजे रे॥१०

राग मारू

जागि रे रेणि बिहाणीं, जाइ जन्म अंजुली को पाणीं।
घड़ी घड़ी घड़ियाल बजावै, जे दिन जाइ सो बहुरि न आवै॥
सूरिज चंद कहै समझाइ, दिन दिन आव घटती जाइ॥
सरवर पांणी तरवर छाया, निसिदिन काल गरासै काया॥
हंस बटाऊ प्रांण पयांना, दादू आतमरांम न जानां॥११॥

सांई कौ साच पियारा,
साचै साच सुहावै देखौ, साचा सिरजनहारा॥
ज्यूं घण घावां सार घड़ीजै, झूठ सबै झड़ि जाई।
घण के घांऊ सार रहेगा, झूठ न माहिं समाई॥
कनक कसौटी अगनि मुखि दीजे, कंप सबै जलि जाई।
यौंतो कसणीं साच सहेगा, झूठ सहै नहि भाई॥
ज्यूं घृत कूं ले ताता कीजे, ताइ ताइ तत कीनां।
ततै तत्त रहेगा भाई, झूठ सबै जलि खीनां॥

---

१०. वाहला=प्यारे। जे रंग भरि रमिये=कि मैं रंगभर, मौजभर खेलूं। निमिष नहि मेलू=पल भी न गिराऊं। नाह=नाथ, स्वामी। छेलो=अंतिम या निकृष्ट। एकलडी =अकेली। तुजने=तुझको। केम=क्यो, कैसे। पामू=पाती हूं। दत्त=फल (कर्मों का)। पूरबलो=पूर्वजन्म का। सामो=सामने। बिलब=अवलंब, शरण। तारो=तेरा।
(इस पद मे भी बहुत-से गुजराती शब्द आये है।)

११. आव=आयु। गरासै=ग्रस रहा है। पयाना=प्रयाण, चल देना।

१२. सार घड़ीजै=पक्का लोहा बनाते है। घण घावा=घन की चोटे। कंप=खोट, मैल। कसणी=कसौटी, परीक्षा। ताता=गरम। ताइ ताइ=तपा-तपाकर। तत=

यौं तौ कसणी साच सहैंगा, साचा कसि कसि लेवै ।
दादू दरसन साचा पावै, झूठे दरस न देवै ॥१२॥

चलु रे मन, जहाँ अमृत बनां, निर्मल नीके सन्तजनां ॥
निर्गुण नांउं फल अगम अपार, संतन जीवनि प्रांण अधार।
सीतल छाया सुखी सरीर, चरणसरोवर निर्मल नीर ॥
सुफल सदा फल बारह मास, नांनां बाणी धुनि परकास ।
तहाँ बास बसि अमर अनेक, तहं चलि दादू इहै बवेक ॥१३॥

बाबा, नांहीं दूजा कोई,
एक अनेक नांउ तुम्हारे, मोपैं और न होई ॥
अलख इलाही एक तूं, तूंही रांम रहीम ।
तूंही मालिक मोहना, केसौ नांउं करीम ॥
सांई सिरजनहार तूं, तूं पावन तूं पाक।
तूं काइम करतार तूं, तूं हरी हाजरी आप ॥
रमिता राजिक एक तूं, तूं सांरग सुबहान।
कादिर करता एक तूं, तूं साहिब सुलतान ॥
अविगत अल्लः एक तूं, गनी गुसांई एक ।
अजब अनूपम आप है, दादू नांउं अनेक ॥१४॥

राग सारग

तौ निबहै जन सेवग तेरा, ऐसैं दया करि साहिब मेरा ॥
ज्यूं हम तोरैं त्यूं तूं जोरै, हम तौरैं पैं तूं नहि तोरैं ॥

निर्मल, खरा। खीनां=नष्ट हो गया।

१३. बनां=वन। नाना बाणी=अनेक संतों की वाणियां। धुनि=अनहद नाद। परकास=आत्म-ज्ञान का प्रकाश। बिवेक=बिवेक, सार की बात।

१४. मोपै और न होई=मुझसे और भेदबुद्धि की बात नहीं सोचते बनती। काइम=नित्य। हाजरी-सर्वव्यापक। राजिक=प्रकाशमान, दीप्तिकारक। सुबहान=वाह! धन्य हो! अविगत=अव्यक्त, जो जाना न जा सके। गनी=धनी।

१५. सेवग=सेवक। तोरैं=तेरे साथ का नाता तोड़ते है। अगि लगावै=अंगीकार

हम बिसरैं पै तूं न बिसारै, हम बिगरैं पै तूं न बिगारै ॥
हम भूलैं तूं आनि मिलावै, हम बिछुरैं तूं अंगि लगावै ॥
तुम्ह भावै सो हमपै नांही, दादू दरसन देहु गुसांई ॥१५॥
निर्पख रहणां रांम नांम कहणां, काम क्रोध में देह न दहणां ॥
जेणें मारिग संसार जाइला, तेणें प्राणी आप बहाइला ॥
जे जे करणी जगत करीला, सो करणी सन्त दूरि धरीला ॥
जेणें पंथें लोक राता, तेणें पंथें साध न जाता ॥
रांम नांम दादू ऐसैं कहिये, रांम रमत रांमहि मिलि रहिये ॥१६॥

राग नटनारायण

गोबिंद कबहुँ मिलै करि पिव मेरा ।
चरणकवंल क्यूं ही करि देखौं, राखौं नैनहुँ नेरा ॥
निरखण का मोहि चाव घणेरा, कब मुख देखौं तेरा ।
प्रांण मिलन कौं भये उदासी, मिलि तूं मींत सवेरा ॥
व्याकुल तातैं भई तन देहा, सिर पर जम का हेरा ।
दादू रे जन रांम-मिलन कूं तपई तन बहुतेरा ॥१७॥

करणी पोच सोच सुख करई, लोह की नाव कैसें भौजल तिरई ॥
दिखन जात पछिम कैसें आवै, नैन बिन भूलि बाट कत पावै ।
बिष बन बेलि, अमृत फल चाहै, खाइ हलाहल, अमर उमाहै ॥
अगनिगृह पैसि, सुख क्यूं सोवै । जलणि जागी घणीं,सोत क्यूं होवै ॥

करता है; छाती से लगाता है । हमपै=हमारे पास ।

१६. निर्पख=पक्षपात छोड़कर । दहणां=जलाना । जेणें=जिस । तेणें=उसमें । करीला=की । दूरि धरी=दूर रखदी, त्यागदी । लोक राता=साधारण लोग रँगे हुए या मस्त है ।

१७. नेरा=निकट । उदासी=व्याकुल । सवेरा=जल्दी ही । हेरा=दाव । तपई=जल रहा है ।

१८. पोच=नीच, हीन । सोच सुख करई=विचार करता है सुख करने का । लोह की नाव=पाप-कर्मों से आशय है । दिखन=दक्षिण दिशा । अमर उमाहै=तू अमर होने का उत्साह या चाव करता है । पैसि=पैठकर । पुनि=पुण्य (का फल)।

पाप पाषंड कीयें, पुनि क्यूं पाइये। कूप खनि पड़िबा, गगन क्यूं जाइये॥
कहै दादू मोहिं अचिरज भारी, हिरदै कपट क्यूं मिलै मुरारी ॥१८॥

राग बिलावल

सोई साध-सिरोमणी, गोविन्द-गुण गावै।
राम भजै बिषिया तजै, आपा न जनावै॥
मिथ्या मुखि बोलै नहीं, परन्यंदा नांहीं।
औगुण छाड़ै गुण गहै, मन हरिपद मांहीं॥
निर्वैरी सब आतमा, पर आतम जानै॥
सुखदाई समता गहै, आपा नहीं आनै॥
आपा पर अन्तर नहीं, निर्मल निज सारा॥
सतवादी साचा कहै, लैलीन बिचारा॥
निर्भै भजि न्यारा रहै, काहू लिपत न होई।
दादू सब संसार मैं ऐसा जन कोई॥१९॥

जब मैं रहते की रह जानीं।
काल काया के निकटि न आवै, पावत है सुख प्राणी॥
सोग संताप नैन नहिं देखौं, राग दोष नहिं आवै॥
जागत है जासौं रुचि मेरी, सुपिनै सोई दिखावै॥
भरम करम मोह नहिं ममिता, बाद बिबाद न जानौं।
मोहन सौं मेरी बनि आई, रसना सोई बखानौं॥
निसबासरि मोहन मनि मेरे, चरन कवँल मन मानै।
सोई निधि निरखिदेखि सचु पाऊँ, दादू और न जानै॥२०॥

खनि=खोदकर। पड़िबा=गिरना (पापकर्म करके नीचे गिरना)। गगन=ऊँचा (ब्रह्म-) पद।

१९. आपा न जनावै=अपने आपको बड़ा नहीं जतलाना। न्यंदा=निंदा। पर आतम जानै=दूसरे की आत्मा को अपनी ही आत्मा समझता है, समदृष्टि रखता है। सुखदाई=मुदिता, सदा प्रसन्नता। लैलीन बिचारा=तत्त्वज्ञान में तन्मय। संसार=संसार। जन कोई=विरला भगवद्भक्त।

२०. रहते की रह=नित्यस्थिर (ब्रह्म) की राह। सोग=शोक। दोष=द्वेष। रुचि=प्रीति। मनि=मन में। सचु=सुख, शांति।

राम मिल्या यूं जानिये, जाकौं काल न ब्यापै ।
जुरा मरण ताकौं नहीं, अरु मेटै आपै ।।
सुख दुख कबहूँ न ऊपजै, अरु सब जग सूझै ।
करम कों बांधै नहीं, सब आगम बूझै ।।
जागत ह्वै सो जन रहै, अरु जुगि-जुगि जागै ।
अन्तरजामी सौं रहै, कुछु काई न लागै ।।
कांम दहै सहजै रहै, अरु सुन्य बिचारै ।
दादू सो सबकी लहै, अरु कबहूँ न हारै ।।२१।।

रहु रे रहु मन मारौंगा, रती रती करि डारौंगा ।।
खंड खंड करि नाखौंगा, जहां रांम तहं राखौंगा ।।
कह्या न मानैं मेरा, सिर भानौंगा तेरा ।।
घर मैं कदे न आवै, बाहरि कौं उठि धावै ।।
आतम रांम न जानै, मेरा कह्या न मानै ।।
दादू गुरमुखि पूरा, मन सौं झूझै सूरा ।।२२

अलह कहौ भावै राम कहौ, डाल तजौ सब मूल गहौ ।।
अलह रांम कहि कर्म दहौ, झूठे मारगि कहा बहौ ।।
साधू संगति तौ निबहौ, आइ परै सो सोसि सहौ ।।
काया कवँल दिल लाइ रहौ, अलख अलह दीदार लहौ ।।
सतगुर की सुणि सीख अहौ, दादू पहुँचै पार पहौ ।।२३।।

---

२१. जुरा=जरा, बुढापा। आपै=अहंभाव को। सूझै=यथार्थ ज्ञान पा लेता है। सब आगम बूझै=आगे की, अथवा लोकोत्तर जीवन की बात जानता है। काई=मैल, खोट। सुंन्य विचारै= शून्य अर्थात् निर्विकल्प समाधिगत अवस्था का ध्यान करता है। सबकी लहै=सब कुछ प्राप्त कर लेता है।

२२. करि नाखौंगा=कर डालूंगा। भानौंगा=तोड दूंगा। घर मैं=आत्मज्ञान की ओर। बाहरि कौं=विषयों की ओर। झूझै=जूझता है, लडता है।

२३. भावै=चाहे। बहौ=भटक रहे हो। कवँल दिल=हृदयरूपी कमल। दीदार लहौ=दर्शन लो। पार पहौ=पार होकर पाओ (ब्रह्मानंद-रस); 'परलापार' यह अर्थ भी हो सकता है।

हिन्दू तुरक न जाणौं दोइ ।
साईं सबनि का सोई है रे, और न दूजा देखौं कोइ ॥
कीट पतंग सबै जोनिन मैं, जल थल संगि समानां सोइ ।
पीर पैगम्बर देवा दानव, मीर मलिक मुनिजन कौं मोहि ॥
कर्ता है रे सोई चीन्हौं, जिन्वै क्रोध करै रे कोइ ।
जैसैं आरसी मंजन कीजे, रांम रहीम देही तन धोइ ॥
साईं केरो सेवा कोजैं, पायो धन काहे कौ खोइ ।
दादू रे जन हरि जपि लीजैं, जनमि जनमि जे सुरिजन होइ ॥२४॥

कोई स्वामी कोई सेख कहे, इस दुनिया का मर्म न कोइ लहै ॥
कोई रांम कोई अलह सुनावै, पुनि अलह रांम का भेद न पावै ॥
कोई हिन्दू कोई तुरक करि मानैं, पुनि हिंदू तुरक की खबरि न जानैं ॥
यहु सब करणी दून्यूं वेद, समझ परी तब पाया भेद ॥
दादू देखै आतम एक, कहिबा सुनिबा अनन्त अनेक ॥२५

राग धनाश्री

कतहूं रहे हो बिदेस, हरि नहिं आये हो ।
जन्म सिरानौं जाइ, पीव नहिं पाये हो ॥
बिपति हमारी जाइ, हरि सौं को कहै हो ।
तुम्ह बिन नाथ अनाथ, बिरहनि क्यूं रहै हो ॥
पीव के विरह बिवोग, तन की सुधि नहीं हो ।
तलफि तलफि जिव जाइ, मृतक ह्वै रही हो ।
दुखित भई हम नारि, कब हरि आवै हो ।
तुम्ह बिन प्रांण अधार, जीव दुख पावै हो ।
प्रगटहु दीनदयाल, बिलम न कोजिये हो ।
दादू दुखी बेहाल, दरसन दीजिये हो ॥२६॥

---

२४. जोनिन मैं=योनियो में । जिनिवै=निश्चय ही नही । आरसी=दर्पण । मंजन कीजे=मांजते या साफ करते है । सुरिजन=सुलझन, मुक्ति ।
२५. खबरि=सही मतलब । दून्यूं वेद=दोनों मतो से आशय है ।
२६. सिरानौ जाइ=बीता जाता है । विवोग=वियोग । बिलम=विलंब, देरी ।

डरिये रे डरिये, परमेसुर थैं डरिये रे।
लेखा लेवै भरि भरि देवै, ताथैं बुरा न करिये रे॥
साचा लीजी साचा दीजी, साचा सौदा कीजी रे।
साचा राखी झूठा नांखी, विष ना पीजी रे॥
निर्मल गहिये, निर्मल रहिये, निर्मल कहिये रे।
निर्मल लीजी निर्मल दीजी, अनत न बहिये रे।
साहिब ठाया बनिज न आया, जिनि डहकावै रे॥
झूठ न भावै फेरि पठावै, कीया पावै रे॥
पंथ दुहेला जाइ अकेला, भार न लीजी रे।
दादू मेला होइ सुहेला, सो कुछ कीजी रे॥२७॥
डरिये रे डरिये, देखि देखि पग धरिये रे।
तारे तरिये मारे मरिये, ताथैं गर्ब न करिये रे।
देवै लेवै संम्रथ दाता, सब कुछ छाजै रे।
तारै मारै गर्ब निवारै, बैठा गाजै रे॥
राखे रहिये बाहें बहिये, अनत न लहिये रे।
भानै घड़ै संवारै आपै, ऐसा कहिये रे।
निकटि बुलावै दूरि पठावै, सब बनि आवै रे।
पाके काचे काचे पाके, ज्यूं मन भावै रे॥
पावक पांणी पांणी पावक करि दिखलावै रे।
लोहा कंचन कंचन लोहा, कहि समझावै रे।

---

२७. लेखा लेवै=एक-एक कर्म का हिसाब लेता है। भरि-भरि देवै=अखूट दान देता है। नांखी=त्याग देना चाहिए। अनत न बहिये=इधर उधर नहीं भटकना चाहिए। बनिज=सत्य का व्यापार। दुहेला=कठिन। भार=पापों का बोझा। मेला=मिलन। सुहेला=सुन्दर। सो कुछ=ऐसा कोई साधन।

२८. ताथैं=उस परमात्मा से। संम्रथ=समर्थ। छाजै=शोभा देता है। गाजै=राज चलाता है। भानै=भंग करता है, तोड देता है। घड़ै=बनाता है। सँवारै=सजाता है। पाके काचे,काचे पाके=यदि चाहै तो पक्के को कच्चा और कच्चे को पक्का कर देता है। ससिहर=चन्द्र। सूर=सूर्य। अंबर=आकाश। मेलै=मिला देता या एक कर देता है।

ससिहर सूर सूर थैं ससिहर परगट खेलै रे ।
धरती अम्बर अम्बर धरती, दादू मेलै रे ॥२८॥

साखी

गुरदेव कौ अंग

दादू गैब मांहि गुरदेव मिल्या, पाया हम परसाद ।
मस्तकि मेरे कर धर्‌या, देख्या अगम अगाध ॥१॥
दादू सतगुर सूं सहजैं मिल्या, लीया कंठि लगाइ ।
दाया भई दयाल की, तब दीपक दिया जगाइ ॥२॥
सबद दूध घृत रांमरस, कोइ साध बिलोवणहार ।
दादू अंमृत काढिले, गुरमुखि गहै बिचार ॥३॥
घीव दूध मैं रमि रह्या, ब्यापक सबही ठौर ॥
दादू बकता बहुत हैं, मथि काढ़ैं ते और ॥४॥
दीवै दीवा कीजिये, गुरमुखि मारगि जाइ ।
दादू अपणे पीव का, दरसन देखै आइ ॥५॥
मानसरोवर माहिं जल, प्यासा पीवै आइ ।
दादू दोष न दीजिये, घर घर कहण न जाइ ॥६॥
देवै किरका दरद का, टूटा जोड़ै तार ।
दादू सांधै सुरति कूं, सो गुर पीर हमार ॥७॥
ना घरि रह्या न बनि गया, ना कुछ किया कलेस ।
दादू मन हीं मन मिल्या, सतगुर के उपदेस ॥८॥

गुरदेव कौ अंग

१. गैब=रहस्य की रसात्मिका अवस्था । परसाद=कृपा से ।

३. बिलोवणहार=मंथन अर्थात् तत्व-विचार करनेवाला ।

५. दीवै दीवा कीजिये=आशय यह कि गुरुद्वारा उपदिष्ट आत्मज्ञान से अपना आत्मज्ञान बढाना चाहिए ।

६. माहि=मध्य में, अन्दर उतर या डूबकर ।

७. किरका=एक कण । दरद=परमात्मा के आत्यंतिक विरह की वेदना से आशय है ।

दादू यहु मसीति यहु देहुरा, सतगुरु दिया दिखाइ ।
भीतरि सेवा बंदिगी, बाहरि काहे जाइ ॥९॥
घरि घरि घट कोल्हू चलै, अमी महारस जाइ ।
दादू गुर के ग्यान बिन, बिखै हलाहल खाइ ॥१०॥
सोने सेती बैर क्या, मारै घण के घाइ ।
दादू काढ़ि कलंक सब, राखै कंठि लगाइ ॥११॥
गुर पहली मन सौं कहै, पीछै नैन की सैंन ।
दादू सिख समझै नहीं, कहि समझावै बैन ॥१२॥
कहैं लखै सो मानवी, सैंन लखै सो साध ।
मन की लखै सु देवता, दादू अगम अगाध ॥१३॥
दादू आपा उरझें उरझिया, दीसै सब संसार ।
आपा सुरझें सुरझिया, यहु गुर ग्यान विचार ॥१४॥
दादू बिन पाइन का पंथ है, क्यौंकरि पहुँचै प्रांण ।
विकट घाट औघट खरे, मांहिं सिखर असमांन ॥१५॥
सूरिज सनमुख आरसी, पावक किया प्रकास ।
दादू सांई साध बिचि, सहजैं निपजै दास ॥१६॥

---

९. मसीति=मसजिद । देहुरा=देवालय ।

१०. घरि घरि=घड़ी घड़ी, निरन्तर । महारस=ब्रह्मानंद । जाइ=व्यर्थ जा रहा है ।

११. सोने सेती=सुवर्ण के साथ; यहाँ शिष्य से तात्पर्य है । घण के घाइ=घन की चोटें । कलंक=मैल, खोट ।

१२. पहली=पहले तो । सैंन=संकेत ।

१३. लखै=समझले । मानवी=मनुष्य ।

१४. जो अपने आप जगत्-जाल में उलझ रहे हैं उनको सारा जगत् उलझा हुआ ही दीखता है, और जो स्वरूप-दर्शन द्वारा सुलझ गया है अर्थात् जाल से मुक्त हो गया है उसे सब-कुछ सुलझा-ही-सुलझा दीखता है । इस प्रकार का महाज्ञान अथवा महामनन ही 'गुरुज्ञान-विचार' है । दादू-पंथ में इस साखी की गणना दादू दयालजी के महावाक्यों में की गई है ।

१५. बिन पाइन का=अपने अहंबल द्वारा अगम्य । प्राण=प्राणी । औघट खरे=अत्यन्त कठिन । असमांन=आसमान, मन के अत्यन्तिक लय की शून्यावस्था से आशय है ।

सुमिरण कौ अंग

सासैं सास सँभालतां, इकदिन मिलिहै आइ ।
सुमिरण पैंडा सहज का, सतगुर दिया बताइ ॥१॥
सोई सांस सुजाण नर, सांई सेती लाइ ।
करि साटा सिरजनहार सूं, मंहगे मोलि बिकाइ ॥२॥
हरि भजि साफलि जीवना, परउपगार समाइ ।
दादू मरणा तहँ भला, जहँ पसु-पंखी खाइ ॥३॥
दादू सांई सेवैं सब भले, बुरा न कहिये कोइ ।
सारौं मांहे सो बुरा, जिस घटि नांव न होइ ॥४॥
दादू का जाणौं कब होइगा, हरिसुमिरण इकतार ।
का जाणौं कब छोड़िहै, यहु मन विखै विकार ॥५॥
ज्यूं जल पैसै दूध में, ज्यूं पाणी मैं लूण ।
ऐसैं आतमराम सौं, मन हठ साधै कूंण ॥६॥
अपणी जाणैं आप गति, और न जाणैं कोइ ।
सुमिर सुमिर रस पीजिये, दादू आनन्द होइ ॥७॥
दादू यहु तन पिंजरा, मांही मन सूवा ।
एकै नांव अलाह का, पढि हाफिज हूवा ॥८॥
नांव लिया तब जाणिये, जे तन मन रहै समाइ ।
आदि अंति मधि एकरस, कबहूँ भूलि न जाइ ॥९॥

---

१६. आरसा=आतशी शीशा । साईं=परमेश्वर । निपजै=प्रकट होना है । दास=दास्य-भाव, अनन्य भक्ति-भाव ।

सुमिरण कौ अंग

१. सँभालतां=नामस्मरण करते हुए । पैंडा=मार्ग ।
२. साटा=सौदा ।
३. उपगार समाइ=उपकार में लगादे । साफिल=सफल ।
४. सारौं मांहै=सबमें, सबसे अधिक ।
५. इकतार=निरन्तर एकाग्र चित से ।
६. पैसे=प्रवेश कर जाता है, मिल जाता है । लूण=नमक । कूंण=कौन ।
८. माही=अंदर । अलाह=अल्लाह । हाफिज=विद्वान् ।

कहि कहि केते थाके दादू, सुणि सुणि कहु क्या लेइ ।
लूंण मिलै गलि पाणियां, तासमि चित यौं देइ ॥१०॥

मिलै तो सब सुख पाइये, बिछुरे बहु दुख होइ ।
दादू सुख दुख रांम का, दूजा नाहीं कोइ ॥११॥

दादू सब जग नीधना, धनवंता नहिं कोइ ।
सो धनवंता जाणिये, जाकै रांमपदारथ होइ ॥१२॥

अगम अगोचर राखिये, करि करि कोटि जतन ।
दादू छाना क्यौं रहैं, जिस घटिं रांम-रतन ॥१३॥

दादू सिरि करवत बहै, बिसरै आतम रांम ।
माहिं कलेजा काटिये, जीव नहीं विश्राम ॥१४॥

जेता पाप सब जग करै, तेता नांव बिसारैं होइ ।
दादू रांम संभालिये, तौ येता डारै धोइ ॥१५॥

बिरह कौ अंग

रतिवंती आरति करै, रांम सनेही आव ।
दादू औसर अब मिलै, यहु बिरहनि का भाव ॥१॥

सबद तुम्हारा ऊजला, चिरिया क्यौं कारी ।
तुंहीं तुंहीं निसदिन करौं, बिरहा की जारी ॥२॥

दादू इस संसार में, मुझसा दुखी न कोइ ।
पीव मिलन के कारणैं, मैं जग भरिया रोइ ॥३॥

---

१०. पाणियां=पानी में ।

१३. छाना=गुप्त, अप्रकट ।

१४. करवत बहै=करौत या आरा चलाये ।

१५. संभालिए=स्मरण करे ।

बिरह कौ अंग

१. रतिवंती=प्रेमपरा भक्ति में तन्मय जीवात्मा । आरति=आर्ति; वेदनापूर्वक याचना ।

२. ऊजला=उज्ज्वल, पवित्र ।

ना वहु मिलै न मैं सुखी, कहु क्यौं जीवन होइ ।
जिन मुझकौं घायल किया, मेरी दारू सोइ ॥४॥
श्रवना राते नाद सौं, नैनां राते रूप ।
जिभ्या राती स्वाद सौं, त्यौं दादू एक अनूप ॥५॥
मूए पीड़ पुकारतां, बैद न मिलिया आइ ।
दादू थोड़ी बात थी, जे टुक दरस दिखाइ ॥६॥
दादू इस हिवड़े ये साल, पिव बिन क्योंहि न जाइसी ।
जब देखौं मेरा लाल, तब रोम रोम सुख आइसी ॥७॥
गई दसा सब बाहुड़ै, जे तुम प्रगटहु आइ ।
दादू ऊजड़ सब बसै, दरसन देहु दिखाइ ॥८॥
हम कसियें क्या होइगा, विड़द तुम्हारा जाइ ।
पीछें ही पछताहुगे, ता थें प्रगटहु आइ ॥९॥
दादू इसक अल्लाह का, जे कबहूं प्रगटै आइ ।
तौ तन मन दिल अरवाह का, सब पड़दा जलि जाइ ॥१०॥
ग्यान ध्यान सब छाड़िदे, जप तप साधन जोग ।
दादू बिरहा लै रहै, छाड़ि सकल रसभोग ॥११॥
दादू बिरह बिवोग न सहि सकौं, निसदिन सालै मोहि ।
कोइ कहौ मेरे पीवकों, कब मुख देखौं तोहि ॥१२॥
दादू चोट न लागी बिरह की, पीड़ न उपजी आइ ।
जागि न रोवै धाह दे, सोवत गई बिहाइ ॥१३॥

---

४. दारू=दवा ।

५. राते=अनुरक्त । त्यौं दादू एक अनेक=वैसे ही दादू उस एक अद्वितीय अनुपम परमात्मा के प्रेम में रंग गया है ।

७ हिवडे=हृदय में । साल=पीडा, वेदना । क्योहि न जाइसी=किसीभी तरह नही जायगी । आइसी=आयगी, मिलेगी ।

८. बाहुडै=लौट आयेगी ।

९. कसियें=कसने से, कष्ट दे-देकर परीक्षा लेने से । विडद=विरुद, यश, प्रतिज्ञा ।

१०. अरवाह=रूहें, जीवात्माएँ ।

१२. सालै=कसकता है ।

अंदरि पीड़ न ऊभरै, बाहरि करै पुकार ।
दादू सो क्यौंकरि लहै, साहिब का दीदार ॥१४॥

मनहीं मांहे झूरणा, रोवै मनहीं मांहि ।
मनहीं मांहे धाह दे, दादू बाहरि नांहि ॥१५॥

दादू पाती प्रेम की, बिरला बाँचै कोइ ।
वेद पुरान पुस्तक पढ़ै, प्रेम बिना क्या होइ ॥१६॥

रोम रोम रस प्यास है, दादू करहि पुकार ।
रांम घटा-दल उमंगिकरि, बरसहु सिरजनहार ॥१७॥

प्रीति जु मेरे पीव की, पैठी पिंजर मांहि ।
रोम रोम पिव पिव करै, दादू दूसर नांहिं ॥१८॥

राति दिवस का रोवणां, पहर पलक का नांहि ।
रोवत रोवत मिलि गया, दादू साहिब मांहिं ॥१९॥

जब बिरहा आया दरद सौं, तब मीठा लागा रांम ।
काया लागी काल ह्वै, कड़वे लागे कांम ॥२०॥

दादू प्रीतम के पग परसिये, मुख देखण का चाव ।
तहाँ ले सीस नवाइये, जहां धरे थे पाव ॥२१॥

आग्या अपरंपार की, बसिअंबर भरतार ।
हरे पटंबर पहिरि करि, धरती करै सिंगार ॥२२॥

बसुधा सब फूलै फलै, पिरथी अनन्त अपार ।
गगन गरजि जल थल भरै, दादू जैजैकार ॥२३॥

---

१४. धाह दे=धाड देकर । सोवत गई विहाइ=तब समझलो कि गफलत में ही सारी जिन्दगी चली गई ।

१५. झूरणा=जलना ।

१६. मांहि=हृदय के अन्दर ही ।

२०. काम= विषय-वासना ।

२२. बसिअम्बर=विश्वंभर । हरे पटंबर=हरी कोमल दूब से आशय है, जो वर्षा-काल में उगती है ।

परचा कौ अंग

साधू जन क्रीला करैं, सदा सुखी तिहि गाँउ ।
चलु दादू उस ठौर की, मैं बलिहारी जाँउ ॥१॥
दादू मिहीं महल बारीक है, गाँउ न ठाँउ न नाँउ ।
तासौं मन लागा रहै, मैं बलिहारी जाँउ ॥२॥
दादू खेल्या चाहै प्रेमरस, आलम अंगि लगाइ ।
दूजे कौं ठाहर नही, पुहप न गंध समाइ ॥३॥
जहाँ रांम तहँ मैं नहीं, मैं तहँ नाहीं रांम ।
दादू महल बारीक है, द्वै कौं नाहीं ठाम ॥४॥
दादू देखु दयाल कौं, रोकि रह्या सब ठौर ।
घटि घटि मेरा सांईयां, तू जिनि जाणै और ॥५॥
दादू अविनासी अंग तेज का, ऐसा तत्त अनूप ।
सो हम देख्या नैनभरि, सुन्दर सहज सरूप ॥६॥
तेजपुंज की सुन्दरी, तेजपुंज का कंत ।
तेजपुंज की सेज परि, दादू बन्या बसन्त ॥७॥
पुहप प्रेम बरिखैं सदा, हरिजन खेलैं फाग ।
ऐसा कौतिग देखिये, दाद मोटे भाग ॥८॥
कामधेन करतार है, अंमृत सरवै सोइ ।
दादू बछरा दध कौं पीवै तौ सुख होइ ॥९॥

परचा कौ अंग

१- क्रीला=क्रीडा, केलि; ब्रह्मविहार से आशय है ।

२. मिहीं=महीन, सूक्ष्म । महल=ब्रह्मधाम; आत्म-स्थिति ।

३. खेल्या चाहै=चखना चाहता है । आलम अंगि लगाइ=संसार में लिप्त होकर । ठाहर=स्थान । पुहप न गंध समाइ=फूल में दूसरी गंध समा नहीं सकती ।

५. रोकि रह्या=बस रहा है ।

७. तेजपुंज···बसंत=आशय यह कि रमणी भी ब्रह्म है, रमण भी ब्रह्म है, दृश्य भी ब्रह्म है और समय भी ब्रह्म ही है । सब कुछ ब्रह्म-विहार ही है ।

८. कौतिग=कौतुक, लीला । मोटे भाग=बड़े भाग्य से ।

९. सरवै=स्रवै, चुवाती है ।

दादू दया दयाल की, सो क्यों छानी होइ ।
प्रेम-पुलक मुलकत रहै, सदा सुहागनि सोइ ॥१०॥

दादू जल पाषाण ज्यूं, सेवै सब संसार ।
दादू पाणी लूण ज्यूं, कोइ बिरला पूजणहार ॥११॥

मिश्री मांहैं मेलिकरि, मोल बिकाना बंस ।
यौं दादू महिंगा भया, पारब्रह्म मिलि हंस ॥१२॥

दादू जिहि घटि दीपक रांम का, तिहिं घटि तिमिर न होइ ।
उस उजियारे जोति के, जग सब देखै सोइ ॥१३॥

दादू देही मांहैं दोइ दिल, इक खाकी इक नूर ।
खाकी दिल सूझै नहीं, नूरी मंझि हजूर ॥१४॥

दाद प्याला नूर दा, आसिक अरसि पीवति ।
अठे पहर अल्लाह दा, मुँह दिट्ठे जीवंति ॥१५॥

दादू जे जन वेधे प्रीति सौं, सो जन सदा सजीव ।
उलटि समाने आपमैं, अन्तर नांहीं पीव ॥१६॥

दादू सेवग सांई बस किया, सौंप्या सब परिवार ।
तब साहिब सेवा करै, सेवग के दरबार ॥१७॥

प्रेम-लहरि की पालकी, आतम बैसैं आइ ।
दादू खेलै पीव सौं, यह सुख कह्या न जाइ ॥१८॥

---

१०. छानी=छिपी हुई, गुप्त । मुलकत रहै=मुसकराती रहती है ।

१२. बंस=बाँस की खपच्ची, जिसपर मिश्री को जमाते हैं । हंस=जीवात्मा ।

१४. खाकी=मलिन । नूर=उज्ज्वल, शुद्ध । मंझि=बीच में । हजूर=परमात्मा ।

१५. नूर दा=परम प्रकाशमय का (पंजाबी विभक्ति का प्रयोग) । मुँह दिट्ठे=मुख देखता हुआ ।

१६. उलटि समाने आपमें=अन्तर्मुखी वृत्तियाँ करके अपने-आपमें लीन हो गये, प्रियतम में एकरस हो गये ।

१८. बैसै=बैठती है ।

फल पाका बेली तजी, छिटकाया मुख मांहिं।
सांई अपणा करि लिया, सो फिरि ऊगै नांहि ॥१६॥
दादू हरिरस पीवतां, कबहूँ अरुचि न होइ।
पीवत प्यासा नित नवा, पीवणहारा सोइ ॥२०॥
ज्यौं घटि आतम एक है, ऐसे हूँहिं असंख।
भरि भरि राखै रांमरस, दादू एकै अंक ॥२१॥
रोम रोम रस पीजिये, एती रसना होइ।
दादू प्यासा प्रेम का, यौं बिन तृपित न होइ ॥२२॥
चिड़ी चंच भरि ले गई, नीर निघटि नहि जाइ।
ऐसा वासण नां किया, सब दरिया मांहि समाइ ॥२३॥

हैरान कौ अंग

केते पारिख जौहरी, पंडित ग्याता ध्यान।
जाण्या जाइ न जाणिये, का कहि कथिये ग्यान ॥१॥
केते पारिख पचि मुए, कीमति कही न जाइ।
दादू सब हैरान हैं, गूंगे का गुड़ खाइ ॥२॥
पाया पाया सब कहैं, केतक देहुँ दिखाइ।
कीमति किनहूँ ना कही, दादू रहु ल्यौं लाइ ॥३॥
पार न देवै आपणा, गोप गूझ मन मांहि।
दादू कोई ना लहै, केते आवैं जांहि ॥४॥
दादू केते कहि गये, अन्त न आवै और।
हमहूँ कहने लात हैं, केते कहसी होर ॥५॥

---

१६. छिटकाया=डाल लिया। सो फिरि ऊगै नांहि=वह फिर नहीं उगता; अर्थात् जन्म नहीं लेता।

हैरान कौ अंग

१. ध्यान=ध्यानी।

४. गूझ=गुह्य, गुप्त।

५. कहसी=कहेंगे। होर=और (पंजाबी प्रयोग)।

ना कहिं दिठ्ठा ना सुण्या, ना कोइ आखणहार।
ना कोइ उत्थौं थी फिर्या, ना उर वार न पार ॥६॥

लै कौ अंग

किहि मारग ह्वै आइआ, किहिं ह्वै जाइ।
दादू कोई नां लहै, केते करै उपाइ ॥१॥
सून्यहि मारग आइया, सून्यहि मारग जाइ।
चेतन पैंडा सुरति का, दादू रहु ल्यौ लाइ ॥२॥
दादू गावै सुरति सौं, बाणी बाजै ताल।
यहु मन नाचै प्रेम सौं, आगैं दीनदयाल ॥३॥
दादू ज्यौं वै बरत गगन थैं टूटैं, कहाँ धरणि कहँ ठांम।
लागी सुरति अंगथैं छूटै, सौ कत जीवै रांम ॥४॥
आदि अंति मधि एकरस, टूटै नहिं धागा।
दादू एकै रहि गया, तब जाणी जागा ॥५॥

निहकर्मी पतिव्रता कौ अंग

गोब्यंद गोसांई तुम्हें अम्हंचा गुरू, तुम्हें अम्हंचा ग्यान।
तुम्हे अम्हंचा देव, तुम्हें अम्हंचा ध्यान ॥१॥

---

६. आखणहार=कहनेवाला। उत्थौं थी=वहां से, परलोक से। उर=वहाँ का।

लै कौ अंग

१. ना लहै=भेद नहीं मिलता है।
२. पैंडा=मार्ग। सुरति=लय, तन्मयता। ल्यौ=एकाग्रता से ध्यान।
३. बाजै=बजाती है।
४. दादू ज्यौं ... जीवै रांम=नट लय लगाकर रस्सी पर अधर नाचता है। पीछे उसकी लय टूट जाय तो उसे फिर उस धरती को छोड और कहाँ ठौर है, इसी प्रकार प्रभु से लगी लय यदि छूट जाय तो साधक कैसे जी सकता है?
५. धागा=लय से आशय है। जागा=आत्म-बोध हुआ।

निहकर्मी पतिव्रता कौ अंग

१. अम्हंचा अम्हची=हमारा-हमारी (मराठी प्रयोग।)

तुम्हें अम्हंची पूजा, तुम्हे अम्हंचा पाती।
तुम्हें अम्हंचा तीर्थ, तुम्हे अम्हंचा जाती ॥२॥
तुम्हे अम्हंचा सील, तुम्हें अम्हंचा सन्तोख।
तुम्हे अम्हंची मुकति, तुम्हे अम्हंचा मोख ॥३॥
दादू मेरे हिरदै हरि बसै, दूजा नांही और।
कहौ कहाँधौं राखिये, नहीं आन कौं ठौर ॥४॥
पतिव्रता गृह आपणै, करै खसम की सेव।
ज्यौं राखै त्यौंही रहै, आग्याकारी टेव ॥५॥
दादू नीच ऊँच कुल सुन्दरी, सेवा सारी होइ।
सोई सुहागनि कीजिये, रूप न पीजै धोइ ॥६॥
पर पुरिखा सब परहरै, सुन्दरि देखै जागि।
आपण पीव पिछाणकरि, दादू रहिये लागि ॥७॥
आन पुरिख हूँ बहनड़ी, परम पुरिख भर्त्तार।
हूँ अबला समझौं नहीं, तूं जाणै कर्त्तार ॥८॥
दादू सारौं सौं दिल तोरिकरि, सांई सौं जोरै।
सांई सेती जोड़िकरि, काहेकौं तोरै ॥९॥
कीया मन का भावतां, मेटी आग्याकार।
क्या ले मुख दिखलाइये, दादू उस भरतार ॥१०॥
करामाति कलंक है, जाकै हिरदै एक।
अति आनन्द बिभचारिणी, जाकै खसम अनेक ॥११॥

---

५. टेव=स्वभाव।

६. सेवा सारी होइ=यदि सेवा अच्छी हो। रूप‥‥धोइ=केवल सुन्दर रूप का आदर नहीं किया जाता।

७. परहरै=छोडदे। रहिये लागि=प्रीति जोडकर चिपट रहे।

८. बहनडी=बहन। भर्त्तार=स्वामी।

९. तबलगैं=तबतक। परसै=प्रीति करे।

११. करामाति=चमत्कार। आनंद=संसारी विषय-सुख।

साहिब का दर छाड़िकरि, सेवग कहीं न जाइ ।
दादू बैठा मूल गहि, डालौं फिरै बलाइ ॥१२॥
सब आया उस एक मैं, डाल पांन फलफूल ।
दादू पीछैं क्या रह्या, जब निज पकड़्या मूल ॥१३॥
कोटि बरस क्या जीवणां, अमर भये क्या होइ ।
प्रेमभगति रस रांम बिन, का दादू जीवनि सोइ ॥१४॥
सुत बिन मांगैं बावरे, साहिब सी निधि मेलि ।
दादू वे निर्फल गये, जैसे नागरबेलि ॥१५॥
दादू सांई कौं संभालतां, कोटि विघन टलि जांहिं ।
राई मांन बसंदरा, केते काठ जलांहि ॥१६॥

चितावणी कौ अंग

दादू जे साहिब कौं भावै नहीं, सो सब परहरि प्रांण ।
मनसा बाचा कर्मना, जे तूं चतुर सुजांण ॥१॥
दादू जे साहिब कौं भावै नहीं, सो जीव न कीजो रे ।
परहरि बिषै-बिकार सब, अंमृत-रस पीजी रे ॥२॥
दादू कर सांई की चाकरी, ये हरिनांव न छोड़ ।
जाणा है उस देसकौं, प्रीति पिया सौं जोड़ ॥३॥

मन कौ अंग

कीया मन का भावता, मेटी आग्याकार ।
क्या ले मुख दिखलाइये, दादू उस भरतार ॥१॥
दादू पंचौं का मुख मूल है, मुख का मनवां होइ ।
यहु मन रोकै जतनकरि, साध कहावै सोइ ॥२॥

---

१५. मेलि=फेंककर । नागरवेलि=एक लता जो न फूलती है न फलती है ।
१६. सभालता=स्मरण करते हुए । राई मान=एक राईभर; जरा-सी । बसंदरा=आग ।

चितावणी कौ अंग
१. प्राण=हे प्राणी !

मन कौ अंग
२. मुख=वाणी ।

दादू पंचौं ये परमोधिले, इनहीं कौं उपदेस।
यहु मन अपणा हाथि करि, तौ चेला सब देस ॥३॥
अगनि धोम ज्यौं नीकलै, देखत सबै बिलाइ।
त्यौं मन बिछुट्या रांम सौं, दह दिसि बीखरि जाइ ॥४॥
तन में मन आवै नहीं, चंचल चहुँ दिसि जाइ।
दादू मेरा जिव दुखी, रहै न रांम समाइ ॥५॥
कोटि जतन करि करि मुये, यहु मन दह दिसि जाई।
रांम नांम रोक्या रहै, नांहीं आन उपाइ ॥६॥
दादू जिसका दर्पण ऊजला, सो दर्सण देखैं मांहिं।
जिसकी मैली आरसी, सो मुख देखै नांहिं ॥७॥
वरतणि एकै भांति सब, दादू संत असंत।
भिन्न भाव अन्तर घणा, मनसा तहँ गच्छंत ॥८॥

माया कौ अंग

दादू माया का सुख पंचदिन, गर्ब्यौ कहा गंवार।
सुपिनें पायौ राजधन, जात न लागै बार ॥१॥
मन की मूठि न मांडिये, माया के नीसाण।
पीछैं ही पछताहुगे, दादू खोटे बाण ॥२॥
मांखण मन पाहण भया, मायारस पीया।
पाहण मन मांखण भया, रांमरस लीया ॥३॥

---

३. पंचौं=पाचों इन्द्रियों को। परमोधिले=प्रबोधले या ज्ञान देदे।

४. धोम=धूआं।

५. तनमें मन आवै नहीं=मन अन्तर्मुखी नहीं हो रहा है।

८. वरतणि=ऊपरी चेष्टा। मनसा तहँ गच्छंत=वहां मन कहां जा रहा है यह देखा जाता है।

माया कौ अंग

२. मन की मूठि ˙ बाण=मनरूपी तीर को कमानपर चढाकर माया के निशान पर न छोडे, अर्थात् मन को माया में न लगाये, नहीं तो इस खोटी तीरन्दाजी से बहुत पछताना पडेगा।

दादू नगरी चैन तब, जब इक राजी होइ।
दोइ राजी दुख दुंद मैं, सुखी न बैसै कोइ ॥४॥
ज्यों घुन लागै काठ कौं, लोहै लागै काट।
काम किया घट जाजरा, दादू बारह बाट ॥५॥
सांपणि इक सब जीव कौं, आगै पीछै खाइ।
दादू कहि उपगार करि, कोइ जन ऊबरि जाइ ॥६॥
दादू माया कारणि जग मरै, पीव के कारणि कोइ।
देखौ ज्यौं जग परजलै, निमष न न्यारा होइ ॥७॥
सुर नर मुनियर बस किये, ब्रह्मा बिश्न महेस।
सगल लोक के सिर खड़ी, साधू के पग हेठ ॥८॥
दादू माया चेरी सन्त की, दासी उस दरिबारि।
ठकुराणी सब जगत की, तीन्यूं लोक मंझारि ॥९॥
दादू जेहि घट ब्रह्म न प्रगटै, तहँ माया मंगल गाइ।
दादू जागै जोति जब, तब माया भरम बिलाइ ॥१०॥
माता नारी पुरिख की, पुरिख नारि का पूत।
दादू ग्यान बिचारि करि, छाड़ि गये अवधूत ॥११॥
सूरिज फटिक पषाण का, तासौं तिमर न जाइ।
साचा सूरिज परगटै, दादू तिमर नसाइ ॥१२॥
मूरति घड़ी पखाण की, कीया सिरजनहार।
दादू साच सूझै नहीं, यूं डूबा संसार ॥१३॥
माया सांपणि सब डसै, कनक कामणी होइ।
ब्रह्मा बिश्न महेस लौं, दादू बचै न कोइ ॥१४॥

---

४ इक राजी=केवल एक राजा का राज्य। दोई राजी=एक साथ दो-दो राजाओं के राज्य।

५. काट=मोरचा, जंग। जाजरा=जर्जर। बारहबाट=सत्यानाश।

८. मुनियर=मुनिवर। हेठ=नीचे दबी पड़ी है।

११. अवधूत=विशुद्धात्मा, मुक्तपुरुष।

१२. फटिक=स्फटिक, बिल्लौर।

१३. घडी=बनाई। कीया=रचा।

साच कौ अंग

सो काफिर जे बोलै काफ, दिल अपणा नहिं राखै साफ।
सांई कौ पहचानै नांहीं, कूड़ कपट सब उनहीं मांहीं ॥१॥

सांई का फुरमान न मानैं, कहां पीव ऐसैं करि जानैं।
मन आपणैं मैं समझत नांहीं, निरखत चलै आपणी छांहीं ॥२॥

जोर करै, मसकीन सतावैं, दिल उसकी मैं दर्द न आवै।
सांई सेती नांही नेह, गर्व करै अति अपणी देह ॥३॥

इन बातन क्यौं पावै पीव, परधन ऊपरि राखै जीव।
जोर जुलम करि कुटम्ब सूं खाइ, सो काफिर दोजग मैं जाइ ॥४॥

मुसलमान जो राखै मान, सांई का मानै फुरमान।
सारौं कौं सुखदाई होई, मुसलमान करि जानूं सोई ॥५॥

दादू मुसलमान मिहर गहि रहै, सबकौं सुख, किसही नहिं दहै ॥
मुवा न खाइ, जिवत नहिं मारै, करै बंदगी राह संवारै ॥६॥

सो मोमिन मनमैं करि जाणि, सति सबूरी बैसे आणि।
चलैं साच संवारै बाट, तिनकूं खुले भिसत के पाट ॥७॥

सो मोमिन मोमदिल होइ, सांई को पहचानै सोइ।
जोर न करै, हराम न खाइ, सो मोमिन भिसत मैं जाइ ॥८॥

साच कौ अंग

१. काफ=नास्तिकता, ईश्वर पर अविश्वास। कूड=झूठ।

२. फुरमान=आदेश। निरखत चलै आपनी छांहीं=ऐंठकर चलता है।

३. जोर=जुल्म। मसकीन=गरीब।

४. दोजग=दोजख, नरक।

५. मान=ईमान; सत्य पर विश्वास।

६. दहै=जलाता है, दुख देता है। मुवा=मुर्दार मांस। राह सँवारै=धर्म-कर्म से अपने परलोक का रास्ताब नाता है।

७. सबूरी=सन्तोष। मोमिन=धार्मिक मुसलमान। सँवारै बाट=जो परलोक का रास्ता बनाता है। भिसत=बहिश्त, स्वर्ग।

इस कलि केते ह्वै गये, हिन्दू मूसलमान।
दादू साची बंदगी, झूठा सब अभिमान ॥९॥

दादू काया-महल में निमाज गुजारूं, तहँ और न आवन पावै।
मन मणके करि तसबी फेरूं, तब साहिब के मन भावै ॥१०॥

दिल दरिया में गुसल हमारा, ऊजू करि चित लाऊँ।
साहिब आगै करूँ बंदगी, बेर बेर बलि जाऊँ ॥११॥

दादू हिन्दू मारग कहै हमारा, तुरक कहै रह मेरी।
कहां पंथ है कहो अलह का, तुम तौ ऐसी हेरी ॥१२॥

कहिबे सुनिबे मन खुसी, करिबा औरै खेल।
बातौं तिमर न भाजई, बिन दीवा बाती तेल ॥१३॥

दादू बातौं ही पहुँचे नहीं, घर दूरि पयाना।
मारग पंथी उठि चलै, दादू सोइ सयाना ॥१४॥

दादू निवरे नांव बिन, झूठा कथैं गियान।
बैठे सिर खाली करैं, पंडित बेद पुरान ॥१५॥

मसि कागद के आसिरे, क्यों छूटै संसार।
रांम बिना छूटै नहीं, दादू भर्म बिकार ॥१६॥

कागद काले करि मुये, केते बेद पुरान।
एकै अखिर पीव का, दादू पढै सुजान ॥१७॥

दादू दुन्यूँ भरम हैं, हिन्दू तुरक गँवार।
जे दुहुवाँ थैं रहित हैं, सो गहि तत्त बिचार ॥१८॥

---

१० तसबी=तसबीह, माला।

११ ऊजू=वजू, नमाज से पहले हाथ-मुँह धोने की क्रिया।

१३. बाती तेल=बिना दिये, बत्ती और तेल की कोरी बातों से अंधेरा दूर नहीं होता। तुलसीदास ने भी कहा है, 'निसि ग्रहमध्य दीप की बातन्हि तम निवृत्त नहिं होई।'

१४. पयाना=प्रयाण, कूच।

१५. निवरे=बहुत सारे।

१७. आखिर=अक्षर।

दादू जिन कंकर पत्थर सेविया, सो अपना मूल गँवाइ।
अलख देव अंतरि बसै, क्या दूजी जागह जाइ ॥१६॥
पत्थर पीवैं धोइकरि, पत्थर पूजैं प्राण।
अन्तिकालि पत्थर भये, बहु बूड़े इहि ग्यान ॥२०॥
दादू केइ दौड़े द्वारिका, केई कासी जांहि।
केई मथुरा कौं चले, साहिब घटहीं मांहि ॥२१॥
सोई काजी, सोई मुल्ला, सोई मोमिन मूसलमान।
सोई सयाने सब भले, जे राते रहिमान ॥२२॥
कबीर बिचारा कह गया, बहुत भांति समझाइ।
दादू दुनिया बावरी, ताके संगि न जाइ ॥२३॥
जे पहुँचे ते कहि गये, तिनकी एकै बात।
सबै सयाने एकमत, उनकी एकै जात ॥२४॥
जे पहुँचे ते पूछिये, तिनकी एकै बात।
सब साधौं का एकमत, बिच के बारह बाट ॥२५॥

साध कौ अंग

साध-नदी, जल रांमरस, तहाँ पखालै अंग।
दादू निर्मल, मल गया, साधू जनके संग ॥१॥
दादू पाया प्रेमरस, साधू-संगति माहिं।
फिरि फिरि देखै लोक सब यहु रस कतहूँ नाहिं ॥२॥
दादू चन्दन कदि कह्या, अपना प्रेमप्रकास।
दह दिसि परगट ह्वै रह्या, सीतल गन्ध सुवास ॥३॥
दादू पारस कदि कह्या, मुझ थी कंचन होइ।
पारस परगट ह्वै रह्या, साच कहै सब कोइ ॥४॥

---

१६. जागह=जगह, तीर्थस्थानों से तात्पर्य है।

साध कौ अंग

१. पखालै=पखारे, धोये, निर्मल करे।

परउपगारी सन्त सब, आये इहि कलि माहिं ।
पिवैं पिलावैं रांमरस, आप सवारथ नाहिं ॥५॥
चन्द सूर पावक पवन, पाणी का मत सार ।
धरती अम्बर रातिदिन, तरवर फलैं अपार ॥६॥
दादू इस संसार मैं, ये द्वै रतन अमोल ।
इक सांई अरु संतजन, इनका मोल न तोल ॥७॥
साध सदा संजमि रहै, मैला कदे न होइ ।
दादू पंक परसै नहीं, कर्म न लागै कोइ ॥८॥
को साधू जन उस देस का, आया इहि संसार ।
दादू उसकौं पूछिये, प्रीतम के समचार ॥९॥
सबही मृत्तक ह्वै रहे, जीवैं कौन उपाइ ।
दादू अंमृत रांमरस, को साधू सींचैं आइ ॥१०॥
हरिजल बरिखे, बाहिरा, सूके काया-खेत ।
दादू हरिया होइगा, सींचणहार सुचेत ॥११॥
विष का अंमृत करि लिया, पावक का पाणी ।
बांका सूधा करि लिया, सो साध बिनाणी ॥१२॥
दादू ऊरा पूरा करि लिया, खारा मीठा होइ ।
फूटा सारा करि लिया, साध बमेकी सोइ ॥१३॥

---

५. सवारथ=स्वार्थ ।

६. चन्द... ...अपार=चन्द्र, सूर्य, अग्नि, पवन, जल, पृथ्वी, आकाश और वृक्ष सदा दूसरों के लिए ही अपनी अखूट सम्पत्ति लुटाते रहते हैं—अथवा, 'परोपकाराय सता विभूतयः' ।

८. सजमि=संयमी, निर्मल । पंक=कर्म की आसक्ति से आशय है ।

११. हरिजल... ...सुचेत=यदि सींचनेवाला साधक सुचेत हो, तो हरि-जल के बरसते ही जिन कायारूपी खेतों को काम-क्रोध के उष्ण वायु ने सुखा दिया था, वे हरे हो जायेंगे ।

१२. विनाणी=विज्ञानी ।

१३. ऊरा=अधूरा । सारा=साबत, अखण्ड । बमेकी=विवेकी ।

मधि कौ अंग

मति मोटी उस साध की, द्वै पख-रहित समान ।
दादू आपा मेटिकरि, सेवा करै सुजान ॥१॥
कछु न कहावै आपकौ, काहू संगि न जाइ ।
दादू निर्पख ह्वै रहै, साहिब सौं ल्यौ लाइ ॥२॥
एक देस हम देखिया, तहँ रुति नहिं पलटै कोइ ।
हम दादू उस देस के, जहँ सदा एकरस होइ ॥३॥
घर बन मांहैं सुख नहीं, सुख है सांई पास ।
दादू तासौं मन मिल्या, इन थैं भया उदास ॥४॥
सुरग नरक संसै नहीं, जीवन मरण भै नांहि ।
रामविमुख जे दिन गये, सो सालैं मन मांहि ॥५॥
दादू हिन्दू तुरक न होइबा, साहिब सेती कांम ।
षट दर्सन संगि न जाइबा, निर्पख कहिबा रांम ॥६॥
दादू ना हम हिन्दू होहिंगे, ना हम मूसलमान ।
षट दर्सन मैं हम नहीं, हम राते रहिमान ॥७॥
दादू करणी हिन्दू तुरक की, अपणी अपणी ठौर ।
दुहुं बिचि मारग साध का, यहु संतौं की रह और ॥८॥
दादू हिन्दू लागे देहुरा, मूसलमान मसीति ।
हम लागे एक अलेख सौं, सदा निरन्तर प्रीति ॥९॥

मधि कौ अंग

१. द्वै पख रहित=दोनो पक्षों, अर्थात् मित्र-पक्ष तथा शत्रु-पक्ष दोनों से दूर, तटस्थ, उदासीन ।

३. रुति=ऋतु ।

४. उदास=तटस्थ ।

५. संसै=भय । सालैं=कष्ट देते हे ।

६. षटदर्शन=छह शास्त्र ।

८. रह=राह ।

९. देहुरा=मन्दिर । मसीति=मसजिद ।

ना तहँ हिन्दू देहुरा, ना तहँ तुरक मसीति।
दादू आपै आप है, नहीं तहाँ रह रीति ॥१०॥

यहु मसीति यहु देहुरा, सतगुर दिया दिखाइ।
भीतरि सेवा बंदिगी, बाहरि काहे जाइ ॥११॥

पीव पिछाण कौ अंग

सब लालौं सिरि लाल है, सब खूबौं सिरि खूब।
सब पाकौं सिरि पाक है, दादू का महबूब ॥१॥
जे था कंत कबीर का, सोई बर बरिहूँ।
मनसा वाचा कर्मना, मैं और न करिहूँ ॥२॥
लोहा पारस परसिकरि, पलटै अपना अंग।
दादू कंचन ह्वै रहे, अपने सांई संग ॥३॥

जीवतमृतक कौ अंग

जीवत माटी मिलि रहै, सांई सन्मुख होइ।
दादू पहली मरि रहै, पीछै तौ सब कोइ ॥१॥
दादू मेरा बैरी मैं मुवा, मुझे न मारै कोई।
मैं ही मुझकौं मारता, मैं मरजीवा होई ॥२॥
दादू तौ तूं पावै पीव कौं, जे जीवतमृतक होइ।
आप गँवाये पिव मिलै, जानत है सब कोइ ॥३॥

पीव पिछाण कौ अंग

१. सब लालो सिरि=सब प्यारो से ऊपर, अत्यन्त उत्कृष्ट। खूबौं सिरि=सब सुन्दरों से ऊपर, अनुपम सुन्दर। महबूब=प्रियतम।
२. सोई बर बरिहूं=उसी नर के साथ व्याह करूँगी।

जीवतमृतक कौ अंग

१. जीवत माटी मिलि रहै=जीते जी ही अंहकार को नष्टकर अपने आपको शून्यवत् मानले।
२. मैं मुवा=अहंभाव मर गया। मरजीवा=अहंकार को मारकर अमर हो जाना।

मेरे आगै मैं खड़ा, ताथैं रह्या लुकाइ।
दादू परगट पीव है, जे यहु आपा जाइ ॥४॥

तन मन मैदा पीसिकरि, छाणि छाणि ल्यौ लाइ।
यौं बिन दादू जीव का, कबहूँ साल न जाइ ॥५॥

सूरातन कौ अंग

जे मुझ होते लाख सिर, तौ लाखौं देती वारि।
सह मुझ दीया एक सिर, सोई सौंपै नारि ॥१॥
पीछै कौं पग ना भरै, आगैं कौं पग देइ।
दादू यहु मत सूर का, अगम ठौर कौ लेइ ॥२॥
जे सिर सौंप्या राम कौं, सो सिर भया सनाथ।
दादू दे ऊरण भया, जिसका तिसकै हाथ ॥३॥
सिर कै साटै लीजिये, साहिबजी का नांव।
खेलै सीस उतारिकरि, दादू मैं बलि जांव ॥४॥
दादू मरणा खूब है, मरि मांहै मिलि जाइ।
साहिब का संग छांड़िकरि, कौन सहै दुख आइ ॥५॥
दादू जे तूं प्यासा प्रेम का, तौ जीवन की क्या आस।
सिर कै साटै पाइये, तौ भरि भरि पीवै दास ॥६॥

---

४ ताथैं रह्या लुकाइ=प्रियतम इसीलिए छिपा हुआ है।

५. मैदा ‥ लाइ=मन को मैदा की तरह बारीक पीसकर व छानकर परमात्मा से लौ लगानी चाहिए। आशय यह कि यदि परमात्मा से प्रीति लगानी है तो मन को इतना काबू में कर लेना चाहिए कि उसमें वासना का लेश भी न रह जाये, सूक्ष्मतम होकर शून्यवत् हो जाये।

सूरातन कौ अंग

१. सह=स्वामी।

२. भरै=रखना है।

३. ऊरण=ऋणमुक्त।

४. साटै=सौदे में, बदले में।

५. माहैं=(परमात्मा) में।

दादू जे तूं प्यासा प्रेम का, तौ किसकौं सैंतै जीव।
सिर कै साटै लीजिये, जे तुझ प्यारा पीव ॥७॥

काल कौ अंग

दादू यहु घट काचा जल भरचा, बिनसत नाहीं बार।
यहु घट फूटा जल गया, समझत नहीं गंवार ॥१॥

सब जग सूता नींदभरि, जागै नांहीं कोइ।
आगै पीछै देखिये, परतखि परलै होइ ॥२॥

दादू अवसर चलि गया, बरियां गई बिहाइ।
कर छिटकें कहँ पाइए, जन्म अमोलिक जाइ ॥३॥

दादू प्राण पयाण करि गया, माटी धरी मसांणा।
जालणहारे देखिकरि, चेतै नहीं अजाणा ॥४॥

अविनासी कै आसरै, अजरावर की ओट।
दादू सरणै साच कै, कदे न लागै चोट ॥५॥

बाहरि गढ़ निरभै करैं, जीबे के ताईं।
दादू मांहैं काल है, सो जाणै नाहीं ॥६॥

दादू विष अंमृत घट मैं बसैं, दून्यूँ एकै ठाँव।
माया बिषै बिकार सब, अंमृत हरि का नाँव ॥७॥

आपै मारैं आपकौं, आप आपकौं खाइ।
आपै अपना काल है, दादू कहि समझाइ ॥८॥

---

७. सैंतै=बचाकर रखता है।

काल कौ अंग

२. परतखि=प्रत्यक्ष। परलै=प्रलय, मृत्यु।

३. बरियां=अवसर। कर छिटकें=हाथ से छूटे।

४. मसांणा=श्मशान, मरघट। माटी=मृत शरीर। अजाणा=मूर्ख।

५. अजरावर की ओट=अजर-अमर परमात्मा की शरण। कदे=कभी।

सजीवन कौ अंग

जे जन बेधे प्रीति सौं, ते जन सदा सजीव ।
उलटि समाने आपमैं, अन्तर नाहीं पीव ॥१॥
देह रहै संसार मैं, जीव राम के पास ।
दादू कुछ व्यापै नहीं, काल-झाल दुख त्रास ॥२॥
दिन दिन लहुड़े हूहिं सब, कहैं मोटा होता जाइ ।
दादू दिन तेही बढ़े, जे रहे रांम ल्यौ लाइ ॥३॥
जीवत पद पाया नहीं, जीवत मिले न जाइ ।
जीवत जे छूटे नहीं, दादू गये बिलाइ ॥४॥
मूवां पीछैं मुकति बतावैं, मूवां पीछैं मेला ।
मूवां पीछैं अमर अभैपद, दादू भूले गहिला ॥५॥
मूवां पीछैं बैकुंठबासा, मूवां सुरग पठावैं ।
मूवां पीछैं मुकति बतावैं, दादू जग बौरावैं ॥६॥
साहिब मारे ते मुये, कोई जीवैं नांहि ।
साहिब राखे ते रहे, दादू निजघर मांहि ॥७॥

दया निर्वैरता कौ अंग

सब हम देख्या सोधिकरि, दूजा नाहीं आन ।
सब घट एकै आत्मा, क्या हिन्दू मूसलमान ॥१॥

सजीवन कौ अंग

१. उलटि ⋯ ⋯आपमै=वृत्तियों को विषय की ओर से अन्तर्मुखी करके आत्मस्थित हो गये ।

अन्तर नाही पीव=उनमें और परमात्मा में फिर कोई भेद नही रहा, दोनो एक हो गये ।

२. झाल=ज्वाला ।

३. लहुडे=लघु, छोटे, अल्पायु । दिन तेही बढे=आयु के दिन उन्हीके बढे अर्थात् सफल हुए ।

५. मेला=परमात्मा से मिलन । गहिला=पागल, मूर्ख ।

दादू दोनौं भाई हाथ पग, दोनौं भाई कान ।
दोनौं भाई नैन हैं, हिन्दू मूसलमान ॥२॥

किससौं बैरी ह्वै रह्या, दूजा कोई नांहिं ।
जिसके अंग थैं ऊपजे, सोई है सब मांहिं ॥३॥

काहेकौं दुख दीजिये, सांई है सब मांहिं ।
दादू एकै आत्मा, दूजा कोई नांहिं ॥४॥

काहेकौं दुख दीजिये, घटि घटि आतम राम ।
दादू सब संतोखिये, यह साधू का काम ॥५॥

दादू मन्दिर काच का, मर्कट सुनहां जाइ ।
दादू एक अनेक ह्वै, आप आपकौं खाइ ॥६॥

दादू अरस खुदाय का, अजरावर का थान ।
दादू सो क्यौं ढाहिये, साहिब का नीसाण ॥७॥

दादू आप चिणावै देहुरा, तिसका करहि जतन ।
प्रत्यख परमेसुर किया, सो भानै जीव-रतन ॥८॥

मसीति संवारी माणसौं, तिसकौं करै सलाम ।
ऐन आप पैदा किया, सो ढाहैं मूसलमान ॥९॥

काला मुँह करि करद का, दिल थैं दूरि निवार ।
सब सूरति सुबहान की, मुल्ला मुग्ध न मार ॥१०॥

दया निर्बैरता कौ अंग

६. मर्कट=बन्दर । सुनहां=कुत्ता । आप आपकौं खाइ=अपना ही प्रतिबिम्ब देख-देखकर समझते हैं कि दूसरा बंदर और दूसरा कुत्ता आ गया है और अपने आपको काट-काटकर खाते हैं । दूसरों के साथ वैर नहीं, अपने ही साथ वैर करते हैं ।

७. अरस=अर्श, उत्तम स्थान । अजरावर=अजर, जो वृद्ध नहीं होता और अमर ; परमात्मा । सो क्यों ढाहिये=उसे अर्थात् जीव के शरीर का क्यों घात करे ।

८. जतन=रक्षा । किया=रचा । भानै=तोड़ता है, मारता है ।

१०. करद=छूरी । मुग्ध=मूर्ख ।

सुन्दरी कौ अंग

दादू हूँ सुख सूती नींदभरि, जागै मेरा पीव ।
क्यौंकरि मेला होइगा, जागै नांहीं जीव ॥१॥
परपुरिखा सब परिहरै, सुन्दरि देखै जागि ।
अपणा पीव पिछाणिकरि, दादू रहिये लागि ॥२॥
दादू नीच ऊँच कुल सुन्दरी, सेवा सारी होइ ।
सोई सुहागनि कीजिये, रूप न पीजै धोइ ॥३॥
नदिया नीर उलंघिकरि, दरिया पैली पार ।
दादू सुन्दरि सो भली, जाइ मिलै भर्तार ॥४॥

निद्या को अँग

दादू जिहिं घरि निद्या साध की, सौ घर गये समूल ।
तिनकी नींव न पाइये, नांव न ठांव न भूल ॥१॥
दादू निंदक बपुरा जिनि मरै, परउपगारी सोइ ।
हमकूं करता ऊजला, आपण मैला होइ ॥२॥

बिनती कौ अग

दादू बुरा बुरा सब हम किया, सो मुख कह्या न जाइ ।
निर्मल मेरा सांइयां, ताकौं दोष न लाइ ॥१॥
तिल तिल का अपराधी तेरा, रती रती का चोर ।
पल पल का मैं गुनहीं तेरा, बकसहु औगुण मोर ॥२॥
राखणहारा राख तू, यहु मन मेरा राखि ।
तुम बिन दूजा को नहीं, साधू बोलैं साखि ॥३॥
माया बिषै बिकार थैं, मेरा मन भागै ।
सोई कीजै सांइयां, तूं मीठा लागै ॥४॥

सुन्दरी कौ अग

१. मेला=मिलन ।

३. सारी=अच्छी, सच्ची ।

बिनती कौ अग

२. गुनही=गुनाही, अपराधी ।

साँई दीजै सो रती, तूं मीठा लागै।
दूजा खारा होइ सब, सूता जीव जागै ॥५॥
ज्यौं आपै देखै आपकौं सो नैना दे मुझ।
मीराँ मेरा मेहर कर, दादू देखै तुझ ॥६॥
नांहीं परगट ह्वै रह्या, है सो रह्या लुकाइ।
संइयां पड़दा दूरि कर, तू ह्वै परगट आइ ॥७॥
जिनकी रख्या तूं करैं, ते उबरे करतार।
जे तैं छाड़े हाथ थैं, ते डूबे संसार ॥८॥
दादू दौं लागी जग परजलै, घटि घटि सब संसार।
हम थै कछू न होत है, तुम बरसि बुझावणहार ॥९॥
तुमहीं थैं तुम्हकूं मिलै, एक पलक मैं आइ।
हम थैं कबहु न होइगा, कोटि कलप जे जाइ ॥१०॥
खुसी तुम्हारी त्यूं करौ, हम तो मानी हारि।
भावै बन्दा बकसिये, भावै गहिकरि मारि ॥११॥

---

५. खारा=फीका
६. ज्यो आपै देखै आपकौ=जिन अन्तर की आखों से अपने 'स्वरूप' को देख सकूँ।
७. रह्या लुकाइ=छिप रहा है।
९. दौ=जंगल की आग
१०. तुमही थै तुम्हकूं मिलै=तुम्हारी कृपा से ही तुमसे हम मिल सकते है। जे जाइ=यदि बीत जाये; बीत जाने पर भी।
११. भावै बंदा बकसिये=चाहे तो इस सेवक को माफ करदो।

रज्जबजी

चोला-परिचय

जन्म-संवत्—१६२४ वि०

जन्म-स्थान—सांगानेर

जाति—पठान

गुरु—स्वामी दादू दयाल

भेष—विरक्त

चोला-त्याग—अनुमानतः संवत् १७४० के आसपास; वस्तुतः अनिश्चित ।

निर्वाण-स्थान—सागानेर

रज्जबजी के विषय मे इतना ही कुछ परम्परा से ज्ञात है कि यह जाति के मुसलमान थे, और सद्गुरु दादू दयाल के एक ही शब्द का इनके मन पर इतना गहरा प्रभाव पडा कि विवाह का विचार छोडकर तत्क्षण सिर पर से मौर व सेहरा उतारकर आबेर मे उनके शिष्य हो गये । ज्ञान के नेत्रो को सद्गुरु के एक शब्द ने ही, एक सैन ने ही खोल दिया । वह शब्द यह था—

"कीया था कुछ काज को सेवा सुमरण साज ।
दादू भूल्या बदगी, सर्‌यौ न एको काज ।।"

इसी प्रसग पर की एक यह साखी भी प्रसिद्ध है—

"रज्जब तै गज्जब किया, सिर पर बाँधा मौर ।
आया था हरिभजन कूँ, करै नरक को ठौर ।।"

शब्द-वाण के चुभते ही यह घोड़े पर से उतरकर सद्गुरु दादू दयाल के चरणो के समीप जा वैठे, और बाराती सब निराश होकर अपने-अपने घर लौट गये ।

राघोदासजी ने 'भक्तमाल' मे इस प्रसग को इस प्रकार लिखा है—

"रज्जबजी अज्जब राजथान आबेर आये
गुरु के सबद त्रिया ब्याह सग त्याग्यौ है ।
पायो नरदेह प्रभुसेवा काज सहज येह
ताकों भूलि गयो सठ विषैरस लाग्यौ है ।।
मौर खोलि डार्‌यौ तन मन धन वार्‌यौ
सत सील व्रत धार्‌यौ मन मार्‌यौ काम भाग्यौ है ।
भक्ति मौज दीनीं गुरु दादू दया कीनी,
उर लाइ प्रीति लीनीं माथे बड़ो भाग जाग्यौ है ।।"

कहते हैं कि दादूजी ने कुछ दिनो बाद रज्जबजी से कहा कि "जाओ, विवाह करलो, नही तो तुम आगे चलकर पराई नारियो को कुदृष्टि से देखते फिरोगे"। किन्तु रज्जब तो दृढ थे, बोले—

"रज्जब घर-घरणी तजी, पर-घरणी न सुहाय।
अहि तजि अपनी कचुकी, किसकी पहिरै जाय॥"

रज्जब की गुरु-भक्ति बडी ही गहरी थी, अनुपम थी। कहते हैं कि दादूजी के अन्तर्धान हो जाने पर रज्जब ने अपने नेत्र सदा के लिए बन्द कर लिये। उनके लेखे मे अब ससार मे रहा ही कौन था, जिसे वे नेत्र खोलकर देखते ?

बानी-परिचय

रज्जबजी ने दो बडे ग्रन्थ रचे—'वाणी' और 'सर्वङ्गी'। साखियों की सख्या ५४२८ है, और अग १९४। इतनी बडी सख्या मे शायद किसीभी अन्य सत ने साखियाँ नही कही। पदो की सख्या २१८ है। कवित्त, सवैये, अरिल्ल आदि अनेक छन्दो मे रज्जबजी ने रचना की है।

भाषा अधिकतर इनकी राजस्थानी है। जान पडता है कि सस्कृत का भी इनको ज्ञान था। रचना बडी सरस है। कुछ साखियाँ और पद तो अत्यन्त गूढ हैं, जिनका अर्थ लगाना सहज नही। सारी ही बानी ऊँचे परमार्थ और गहरे अनुभव मे रॅगी हुई है। विरह और प्रेम के पद अत्यत सरस हैं, जिनमे सूफियो की ऊँची मस्ती तथा भक्तो की गहरी भावना दोनो एकसाथ दीखती हैं। साखियाँ भी रज्जबजी की ऊँचे घाट की हैं। प्रस्तुत ग्रन्थ मे संकलन "**रज्जबजी की वाणी**" मे से किया गया है, जिसका पाठ बहुत अशुद्ध है।

आधार

१ **रज्जबजी की वाणी**—दादुओ का मदिर, नारनौल (पंजाब)

२ **सुन्दर-ग्रन्थावली** (प्रथम खण्ड)—राजस्थान रिसर्च सोसाइटी, कलकत्ता

३ **महात्मा रज्जबजी** (लेख)—पुरोहित श्री हरिनारायण शर्मा,
[illegible]

रज्जबजी

राग रामगिरि

रामराय, महा कठिन यहु माया।
जिन मोहि सकल जग खाया॥
यहु माया ब्रह्मा सा मोह्या, संकर सा अटकाया।
महाबली सिध साधक मारे, छिन में मान गिराया॥
यहु माया षट दर्सन खाये, बातनि जगु बौराया।
छलबल सहित चतुरजन चकरित, तिनका कछु न बसाया॥
मारे बहुत नाम सूँ न्यारे, जिन यासूँ मन लाया।
रज्जब मुक्त भये माया तें, जे गहि राम छुड़ाया॥१॥

राग रामगिरि

संतो, आवै जाइ सु माया।
आदि न अंत मरै नहिं जीवै, सो किनहूँ नहिं जाया॥
लोक असंखि भये जा माहीं, सो क्यूँ गरभ समाया।
बाजीगर की बाजी ऊपर, यहु सब जगत भुलाया॥
सुन्न सरूप अकलि अविनासी, पंचतत्त नहिं काया।
त्यूँ औतार अपार असति ये, देखत दृष्टि बिलाया॥
ज्यूँ मुख एक देखि दुइ दर्पन, गहला तेता गाया।
जन रज्जब ऐसी बिधि जानें, ज्यूँ था त्यूँ ठहराया॥२॥

राग रामगिरि

संतो, ऐसा यहु आचार।
पाप अनेक करैं पूजा में, हिरदैं नहीं बिचार॥

---

१. अटकाया=फँसाया। षट् दर्शन=छह शास्त्र। चकरित=विमूढ़। न बसाया=वश नहीं चला। न्यारे=विमुख।

२. जाया=पैदा किया। असंखि=असंख्य, अनगिनती। बाजीगर=जादूगर। अकलि=कला अर्थात् अंशरहित, पूर्ण। असति=असत्य। गहला=बावला।

३. घुण=घुन, एक छोटा कीड़ा, जो अनाज, लकड़ी आदि में लगता और उसे

चींटीं दस चौके में मारैं, घुण दस हाँडी माहीं ।
चाकी चूल्हैं जीव मारैं जो, सो समझैं कछु नाहीं ।।
पाती फूल सदाहीं तोडैं, पूजन कूँ पाषाण ।
छार पतंगा होहि आरती, हिरदैं नहीं बिनाण ।।
सगले जनम जीव संघारे, यहु खोटे षटकर्मा ।
पाप प्रपंच चढ़ैं सिरि ऊपरि, नाम कहावै धर्मा ।।
आप दुखी औरां दुखदायक, अंतरि राम न जान्या ।
जन रज्जब दुख देहि दृष्टि बिन, बाहिर पाखंड ठान्या ।।३।।

राग रामगिरि

म्हारो मंदिर सूनों राम बिन, बिरहिण नींद न आवै रे ।
पर-उपगारी नर मिलै, कोइ गोबिंद आन मिलावै रे ।।
चेती बिरहिण चित न भाजै, अविनासी नहिं पावै रे ।
यहु बिवोग जागै निसबासर, बिरहा बहुत सतावै रे ।।
बिरह बिवोग बिरहिणी बींधी, घर बन कछु न सुहावै रे ।
दह दिसि देखि भयौ चित चकरित, कौन दसा दरसावै रे ।।
ऐसा सोच पड्या मन माहीं समझि समझि धूँधावै रे ।
बिरहबान घटि अंतरि लाग्या, घाइल ज्यूँ घूमावै रे ।।
बिरह-अगिन तनपिंजर छींनां, पिवकूँ कौन सुनावै रे ।
जन रज्जब जगदीस मिले बिन पल पल वज्र बिहावै रे ।।४।।

राग गौडी

संतो, मगन भया मन मेरा ।
अहनिस सदा एकरस लाग्या, दिया दरीबैं डेरा ।।

खाकर खोखला कर देना है । पाषाण=पत्थर की मूर्ति । बिनाण=विज्ञान, विचार । सगले=सकल, सारे । षटकर्मा=यजन याजन आदि ब्राह्मण के छह नियत कर्म । दृष्टि=ज्ञान-दृष्टि ।

४. म्हारो मन्दिर=मेरा हृदय-मन्दिर । बिवोग=वियोग । बीधी=वेधली । समझि-समझि=याद कर-कर । धूँधावै=आह ले-लेकर जलती है । घूमावै=मूर्च्छित होती है । छींनां=क्षीण । वज्र बिहावै=वज्र की तरह बीतता है ।

कुल मरजाद मैंड सब त्यागी, बैठा भाठी नेरा।
जात-पांत कछु समझौं नाहीं, किसकूँ करै परेरा ॥
रस की प्यास आस नहिं औरां, इहि मत किया बसेरा।
ल्याव ल्याव एही लय लागी, पीवैं फूल घनेरा ॥
सो रस मांग्या मिलै न काहू, सिर साटे बहुतेरा।
जन रज्जब तन मन दे लीया, होइ धनी का चेरा ॥५॥

राग गौड़ी

प्राणपति न आये हो, बिरहिण अति बेहाल।
बिन देखे अब जीव जातु है, विलम न कीजे लाल ॥
बिरहिण ब्याकुल केसवा, निसदिन दुखी बिहाइ।
जैसैं चंद कुमोदिनी, बिन देखे कुमिलाइ ॥
खिन खिन दुखिया दगधिये, विरह-विथा तन पीर ॥
घरी पलक में बिनसिये, ज्यूँ मछरी बिन नीर ॥
पीव पीव टेरत दिक भई, स्वातिसुरूपी आव।
सागर सलिता सब भरे, परि चातिग कै नहिं चाव ॥
दीन दुखी दीदार बिन, रज्जब धन बेहाल।
दरस दया करि दीजिए, तौ निकसै सब साल ॥६॥

राग आसावरी

मनरे, करु संतोष सनेही।
तृस्ना तपति मिटै जुग-जुग, की, दुख पावै नहिं देही ॥
मिल्या सुत्याग माहिं जे सिरज्या, गह्या अधिक नहिं आवै।
तामें फेर सार कछु नाहीं राम रच्या सोइ पावै ॥

---

५. दरीबै=बाजार में। मैंड=हद, रास्ता। भाठी=भट्ठी, जहाँ शराब बनाते हे। नेरा=पास। फूल=कड़ा देसी शराब। साटे=बदले में, मोल।

६. विलम=विलम्ब, देर। दिक=बेहाल, बीमार। सलिता=सरिता, नदी। चातिग=चातक, पपीहा। धन=स्त्री; जीवात्मा से आशय है। साल=कष्ट।

७. मिल्या सिरज्या=जो कुछ भगवान् ने सृष्टि में रचा है, वह त्याग के अनन्तर

बाछै सरग सरग नहिं पहुँचै, और पताल न जाई ।।
ऐसैं जानि मनोरथ मेटहु, समझि सुखी रहु भाई ।।
रे मन, मानि सीख सतगुरु की, हिरदै धरि बिस्वासा ।
जन रज्जब यूँ जानि भजन करु, गोबिन्द है घर वासा ।।७।।

राग टोडी

हरिनाम मैं नहिं लीनां ।
पाँच सखीं पाँचूँ दिस खेलैं, मन मायारस भीनां ।।
कौन कुमति लागी मन मेरे, प्रेम अकारज कीनां ।
देख्या उरझि सुरझि नहिं जान्यूँ, बिषम बिषयरस पीनां ।।
कहिये कथा कौन विध अपनी, बहु बैरनि मन खीनां ।
आतमराम सनेही अपने, सो सुपिनैं नहिं चीनां ।।
आन अनेक आनि उर अंतरि, पग पग भया अधीनां ।
जन रज्जब क्यूँ मिलैं जगतगुरु, जगत माहिं जी दीनां ।।८।।

राग टोडी

सब सुख की निधि आये साध । करम कलेस कटे अपराध ।।
दरसन देखि किये दंडौत । अघ उतरे, अंकुर उदौत ।।
परिदच्छिन दे दुख दूरि । चरनोदक लीनां सुखपूरि ।।
स्रवनांन कथा सुनत सुखसार । साधु-सब्द गहि उतरे पार ।।
साचे संत सजीवनमूरि । रज्जब तिन चरनन की धूरि ।।९।।

राग मलार

राम बिन सावण सह्यो न जाइ ।
काली घटा काल होइ आई, कामनि दगधै माइ ।।

भोगने को मिला है । मिलाइए ईशोपनिषद का मन्त्र—"तेन त्यक्तेन भुंजीथा :" बाछै=चाहता है ।

८. पांचूँ……खेलैं=पाँचों ज्ञानेन्द्रियाँ अपने-अपने विषयों में रम रही हैं । भीनां=मग्न । खीनां=खिन्न या क्षीण कर दिया है । चीनां=पहचाना । आनि……अंतरि=और अनेक विषयों को मन में स्थान देकर ।

९. अंकुर उदौत=पुण्य का अंकुर प्रकट हुआ । सुखपूरि=आनन्दपूर्वक । सब्द=ज्ञानोपदेश ।

कनक-अवास-वास सब फीके, बिन पिय के परसंग ।
महाबिपत बेहाल लाल बिन, लागे बिरह-भुअंग ॥
सूनी सेज बिथा कहूं कासूं, अबला धरै न धार ।
दादुर मोर पपीहा बोलै, ते मारत नग मार ॥
सकल सिंगार भार ज्यूं लागैं, मन भावै कछु नाहीं ।
रज्जब रंग कौन सूं काजे, जे पाव नाहीं माहीं ॥१०॥

राग केदारा

भजन बिन भूलि पर्यो संसार ।
चाहैं पछिम जात पूरब दिस, हिरदै नहीं बिचार ॥
बाछैं ऊरध अरध सूं लागे, भूले मुगध गँवार ।
खाइ हलाहल जीयो चाहैं, मरत न लागै बार ॥
बैठे सिला समुद्र तिरन कूँ, सो सब बूडनहार ।
नाम बिना नाहीं निसतारा, कबहुं न पहुंचै पार ॥
सुख के काज धरे दीरघ दुख, बहे काल की धार ।
जन रज्जब यूँ जगत बिगूच्यो इस माया की लार ॥११॥

राग बिलावल

भक्ति जाति कूँ क्या करै, सुनियों रे भाई ।
बेटी सहारे बाप के, भेजै तहँ जाई ॥
नामा कबीर सु कौन थे, कुन रांका बांका ।
भगति समानी सब घरनि तजि कुल का नाका ॥
बिदुर बांदरा बंस तें, सो भक्ति न छोड़ै ।
नीच ऊँच देखैं नहीं, मन मानैं मोड़ैं ॥
आनि मिली जैदेव कूँ रैदास समानी ।
सो दादू घर पैठी, क्यूँ रहै निमानी ॥

---

१०. माइ=अन्दर-ही-अन्दर । वास=वस्त्र । रंग=आनन्द-केलि । माही= हृदय में ।

११. ऊरध=ऊर्ध्व, स्वर्गलोक । अरध सूं लागे=अधोलोक अर्थात् नरक की तैयारी करते है । मुगध=मूढ़ । विगूच्यौ=अड़चन में पड़ा है । लार=साथ, पीछे ।

१२. नामा=नामदेव । कुन=कौन । रांका बांका=दो हरिभक्त । बांदरा=बांदी अर्थात्

रज्जब रोकी ना रहै, आग्या लै आई।
रावरंक सब सारिखे भाव भगति पाई ॥१२॥

राम गुड

गुर गरवा दादू मिल्या, दीरघ दिल दरिया।
तत छन परसन होतहीं भजन-भाव भरिया॥
स्त्रवण कथा सांचा सुणो, संगति सतगुर की।
दूजा दिल आवै नहीं, जब धारी धुर की॥
भरमजाल भव काटिया, तंका सब तोड़ी।
सांचा सगा जे राम का, ल्यो तासूँ जोडी॥
भौजल माहीं काढिकैं जिन जीव जिलाया।
सहज सजीवन कर लिया सांचे सँगि लाया॥
जनम सफल तबका भया, चरनौं चित लाया।
रज्जब राम दया करी, दादू गुर पाया ॥१३॥

राग कानडा

राम रँगीले के रँग राती।
परमपुरुष संगि प्राण हमारो, मगन गलित मद-माती।
लाग्यो नेह नाम निर्मल सूँ, गिनत न सीलो ताती।
डगमग नहीं, अडिग होइ बैठी, सिर धरि करवत काती॥
सब विधि सुखी राम ज्यूँ राखैं, यहु रसरीति सुहाती।
जन रज्जब धन ध्यान तिहारो, बेरबेर बलि जाती ॥१४॥

राग भैरूँ

सेइ निरंजन दीनदयाल। पेड परसि पूजीं सब डाल॥
सिव बिरंचि सब लोकपाल। जोपै सेयो श्री गोपाल।

दासा के। निमांनो=दबकर, छिपा हुई।

१३. गरवा=भारी, महान्। परसन=प्रसन्न। धारी धुर की=परे से भी परे की भक्ति-भावना धारणा की। ल्यो=प्रीति। लाया=लगाया।

१४. गलित=पूर्ण, पुष्ट। सीली-ताती=सरदी-गरमी। करवत=करौत, बडा आरा। काती=काटी।

नबी साथ सब पीर पसारा । सेवक सबका सबहिं पियारा ॥
सिध साधक सबहिन सुखपाया । जोपैं जीव जगतपति ध्याया ॥
मूल बिना डालों सचु नाहीं । रज्जब समझि लागि रहु माहीं ॥१५॥

राग भैरूँ

मार भली जो सतगुरु देहि । फेरि बदल औरैं करि लेहि ॥
ज्यूँ माटी कूँ कूट कुँभार । त्यूँ सतगुरु की मार बिचार ॥
भाव भिन्न कछु औरै होइ । ताते रे मन मार न जोइ ॥
जैसे लोहा घड़ै लुहार । कूटि काटि करि लेवै सार ॥
मारै मारि सिहरि करि लेहि । तौ निपजै फिरि मार न देहि ॥
ज्यूँ सांटी संपुट में आनि । सूधी करै तारगर पानि ॥
मन तोड़न का नाहीं भाव । जे तुछ तूटि जाय तौ जाव ॥
ज्यूँ कपड़ा दरजी के जाय । टूक टूक करि लेहि बनाय ॥
त्यूँ रज्जब सतगुरु का खेल । ताते समझि मार सब झेल ॥१६॥

राग आसावरी

गुरु के गमन दुखी सिख सारे । सब सुखनिधि के विलसणहारे ॥
स्रवणा दुखित सुनति सत बानी । नैन दुखित डारैं बहु पानी ॥
दुखित रसन मुख बातें करते । सीस दुखित गुरु चरननि धरते ॥
तन मन दुखित जु फेरि सेवारे । अन्तरिध्यान भये गुरु प्यारे ॥
जन रज्जब रोवै दुख यादू । परमपुरुष बिछुटे गुरु दादू ॥१७॥

साखी

दादू दीनदयाल गुरु, सो मेरे सिरमौर ।
जन रज्जब उनकी दया, पाई निहचल ठौर ॥१॥

---

१५. नबी=पैगम्बर । पीर=मुसलमान सिद्ध । सचु=सुख । लागिरहु माहीं=अपने अन्तर में आत्मा का ध्यान करो ।

१६. न जोइ=ध्यान न दे । निपजै=(ज्ञान-दृष्टि) प्रकट होती है । साटी=छड़ी, कमची । सपुट=शिकंजे से तात्पर्य है । तारगर=तार बनानेवाला कारीगर । तुछ=तुच्छ, निकम्मा । झेल=सहन करले ।

१७. रसना=रसन, जीभ । बिछुटे=बिछुड़ गये, चलबसे ।

रज्जब कूँ अज्जब मिल्या, गुरु दादू दातार ।
दुख दरिद्र तबका गया, सुख संपत्ति अपार ॥२॥
रज्जब नर-नारी सकल, चकवा चकवी जोड़ ।
गुरू-बैन बिच रैन में, किया दुहूँ घर फोड़ ॥३॥
गुरु दीरघ गोविन्द सूँ, सारै सिष्य सुकाज ।
रज्जब मक्का बड़ा, परि पहुँचै बैठ जहाज ॥४॥
कामधेनु गुरु क्या कहै, जो सिष निःकार्मी होइ ।
रज्जब मिलि रीता रह्या, मँदभागी सिष जोइ ॥५॥
मिला सँवारी राजनैं, ताहि नवैं सबकोइ ।
रज्जब सिष-सिल गुरु गढ़ै, सोइ पूजि किन होइ ॥६॥
गुरु ग्याता परजापती, सेवक माटीरूप ।
रज्जब रज सूँ फेरिकै घड़िले कुम्भ अनूप ॥७॥
ज्यूँ धोबी की धमस सहि ऊजल होइ कुचीर ।
त्यूँ सिष तालिब निरमला, मार सहै गुरु पीर ॥८॥
बिरहिण बिहरै रैनदिन, बिन देखे दीदार ।
जन रज्जब जलती रहै, लाग्या बिरह अपार ॥९॥
बिरहा-पावक उर बसै, नखसिख जालैं देह ।
रज्जब ऊपरि रहम करि बरम्हु मोहन मेह ॥१०॥
भलका लाग्या भाव का, सेवक हुआ सुमार ।
रज्जब तलफै तबलगैं, मिलै न मारनहार ॥११॥

---

२. अज्जब=अजब, अलौकिक । दातार=दाता ।
३. किया · फोड=दोनो को अलग कर दिया: ; ससार से विरक्त कर दिया ।
४. सारै=पूरा करता है ।
५. निःकार्मी=यहाँ निकम्मा से आशय है । रीता=खाली, ज्ञानशून्य ।
६. सिला संवारी राजनै=कारीगर ने पत्थर से मूर्ति तैयार की । पूजि=पूज्य ।
७. परजापती=प्रजापति, कुम्हार । रज मिट्टी ।
८. धमस=पछाड, चोट । कुचीर=मैला कपड़ा । तालिब=खोजी ।
९. विहरै=बिछोह में तडपती है ।
११. भलका=भाला । सुमार=निसार ।

जैसे नारी नाह बिन, भूली सकल सिंगार ।
त्यूँ रज्जब भूल्या सकल, सुनि सनेह दिलदार ॥१२॥
तनमन ओले ज्यूँ गलहिं, बिरह-सूर की ताप ।
रज्जब निपजै देखि तूँ, यूँ आपा गलि आप ॥१३॥
रज्जब ज्वाला बिरह की, कबहूँ प्रगटै माहिं ।
तौं सींचनि घृत सों चहौ, करम-काठ जरि जाहिं ॥१४॥
दरद नहीं दीदार का, तालिब नाहीं जीव ।
रज्जब बिरह बिवोग बिन, कहाँ मिलै सो पीव ॥१५॥
गृह दारा सुत वित्त सूँ, यहु मन भया उदास ।
जन रज्जब रामहि रच्या, छूट्या जगत-निवास ॥१६॥
रज्जब घर-घरणी तजी, पर-घरणी न सुहाइ ।
अहि तजि अपनी कंचुकी, किसकी पहिरै जाइ ॥१७॥
माता तौ मेरी सकल, जे जनमीं जगि आइ ।
जन रज्जब जननी सबै, कासूँ विषय कमाइ ॥१८॥
मनसा-नारी त्यागिकै, मन बैरागी होइ ।
रज्जब राखै जतन यहु, जती कहावै सोइ ॥१९॥
मुख सूँ भजै सो मानवी, दिलसूँ भजै सो देव ।
जीव सूँ जपै सो जोतिमैं, रज्जब साँची सेव ॥२०॥
ज्यूँ कामिनि सिर कुंभ धरि, मन राखै ता माहिं ।
त्यूँ रज्जब करि राम सूँ, कारज बिनसै नाहिं ॥२१॥

---

१३. आपा=अहंकार ।
१४. माहिं=मन्दिर में ।
१५. बिवोग=वियोग ।
१६. रच्या=रँगा ।
१८. बिषय कमाइ=भोग करे ।
१९. जती=यति, सन्यासी ।
२०. मानवी=मनुष्य ।

ऊपर संत असंत सम, अंतर अंतर होय ।
रज्जब पानी ईख का, रूप एक रस दोय ॥२२॥
आदि अन्त मधि हम बुरे, हम ते भला न होय ।
रज्जब ज्यूँ साहिब खुशी, सो लच्छन नहिं कोय ॥२३॥
तुम जोगी सेवक नहीं, मै मंदभागी करतार ।
रज्जब गुण नहिं बापजी, बहुत किये विभचार ॥२४॥
सकल पतित पावन किये, अधम-उधारनहार ।
बिरद विचारौ बापजी, जन रज्जब की बार ॥२५॥
जे तुम राम बुलायल्यौ, तौ रज्जब मिलसी आय ।
जथा पवन परसंगि ते गुडी गगन कूँ जाय ॥२६॥
भला बुरा जैसा किया, तैसा निपज्या जीव ।
यह तुम्हरा तुमकूँ मिल्या, तुम क्यूँ मिले न पीव ॥२७॥
जैसे छाया कूप की, बाहरि निकसै नाहिं ।
जन रज्जब यूँ राखिये, मन मनसा हरि माहिं ॥२८॥
साध, सबूरी स्वान की, लीजै करि सुविवेक ।
वै घर बैठ्या एक कै, तू घर घर फिरहि अनेक ॥२९॥
साबुन सुमिरण जल सतसंग । सकल सुकृत करि निर्मल अंग ॥
रज्जब रज उतरैं इहि रूप । आतम-अम्बर होइ अनूप ॥३०॥
हिन्दू पावैगा वही, वोही मूसलमान ।
रज्जब किणका रहम का, जिसकूँ दे रहमान ॥३१॥
रज्जब हिन्दू तुरक तजि, सुमिरहु सिरजनहार ।
पखापखी सूँ प्रीति करि कौन पहूँचा पार ॥३२॥

---

२४. तुम जोगी=तुम्हारे योग्य।
२६. परसंगि=साथ में । गुडी=पतंग ।
२७. निपज्या=उत्पन्न हुआ ।
२८. मन मनसा=मन की वृत्ति ।
२९. सबूरी=सब्र,संतोष ।
३०. रज=मिट्टी, मैल । इहि रूप=इसी प्रकार । अम्बर=वस्त्र ।
३२. पखापखी=पक्ष और विपक्ष ।

हिंदु तुरक दून्यूँ जलबूँदा । कासूँ कहये बांभण सूदा ।
रज्जब समता ग्यान विचारा । पंचतत्त का सकल पसारा ॥३३॥

नारायण अरु नगर के, रज्जब पंथ अनेक ।
कोई आवौ कहीं दिसि, आगे अस्थल एक ॥३४॥

मुल्ला मन बिसमिल करौ, तजौ स्वाद का घाट ।
सब सूरत सुबहान की, गाफिल गला न काट ॥३५॥

रज्जब बेटी बंदगी, जाई सिरजनहार ।
दीन्हीं सो जा जीव कूँ, रिधि सिधि बाँधी लार ॥३६॥

एक गये नट नाचिकै, एक कछे अब आय ।
जन रज्जब इक आइसी, बाजी रची खुदाय ॥३७॥

नामरदाँ भुगती नहीं, मरद गये करि त्याग ।
रज्जब रिधि क्वाँरी रही, पुरुष-पाणि नहिं लाग ॥३८॥

छाजन भोजन दे भगवंत, अधिक न बाछैं साधूसंत ।
रज्जब यह संतोषी चाल, माँगहिं नाहिं मुलक औ माल ॥३९॥

जबलगि तुझमें तू रहै, तबलगि वह रस नाहिं ।
रज्जब आपा अरपिदे, तौ आवै हरि माहिं ॥४०॥

करणी कठिन रे बंदगी, कहनी सब आसान ।
जन रज्जब रहणी बिना, कहाँ मिलै रहिमान ॥४१॥

हाथघड़े कूँ पूजता, मोललिये का मान ।
रज्जब अघड़ अमोल की, खलक खबर नहिं जान ॥४२॥

---

३३. जल-बूँदा=माता-पिता के रज-वीर्य (से उत्पन्न) । सूदा=शूद्र ।

३५. बिसमिल=घायल । घाट=दिशा, ओर ।

३६. जाई=पैदा की हुई । लार=साथ ।

३७. कछे=नाचने के लिए वस्त्र सँवारकर पहने । आयसी=आयेगा ।

३८. रिधि=ऋद्धि । क्वाँरी=कुमारी, अविवाहिता । पाणि=हाथ ।

३९. छाजन=वस्त्र । बाछैं=चाहते है ।

३२. हाथ घड़े कूँ=हाथ से बनाई हुई मूर्ति को । अघड़=जिसे मनुष्य ने नही बनाया । खलक=दुनिया ।

माला तिलक न मानई, तीरथ मूरति त्याग ।
सो दिल दादू-पंथ में, परमपुरुष सूँ लाग ॥४३॥
पराकिरत मधि ऊपजे, संसकिरत सब बेद ।
अब समझावै कौनकरि, पाया भाषाभेद ॥४४॥
बीजरूप कछु और था, बिरछरूप भया और ।
त्यूँ प्राकृत में संस्कृत, रज्जब समझा ब्यौर ॥४५॥
बेद सु बाणी कूपजल, दुखसूँ प्रापति होइ ।
सबद साखि सरवर सलिल, सुख पीवैं सब कोइ ॥४६॥
चार्को चरखा घसि गये, भ्रमि भ्रमि भामिनि-हाथ ।
तौ रज्जब क्यूँ होहिंगे, नर निहचल तिनसाथ ॥४७॥
समये मीठा बोलना, समये मीठा चूप ।
उनहाले छाया भली, रज्जब सियाले धूप ॥४८॥

४५. ब्यौर—ब्यौरा, पूरा हाल ।
४६. दुखसूँ—कठिनाई से ।
४७ भ्रमि-भ्रमि—चक्कर लगाते लगाते ।
४८. उनहाले—गरमी मे । सियाले—सरदी मे

बषनाजी

चोला-परिचय

जन्म-सवत् —अज्ञात; अनुमानत १७ वी विक्रमी शती का प्रथम पाद
जन्म-स्थान—नराणा ग्राम (साँभर से ५ कोस दक्षिण)
जाति —मीरासी; मतान्तर से लखारा, कलाल तथा राजपूत
गुरु— स्वामी दादू दयाल
आश्रम— गृहस्थ
रचना-काल - अनुमानत सवत् १६४० से १६७७ तक
निर्वाण-स्थान -- नराणा ग्राम

बषनाजी का निश्चयात्मक इतिवृत्त इतना ही समझा जाये कि वे नराणे ग्राम के निवासी थे, और स्वामी दादू दयाल के प्रधान शिष्यों में

उनकी गणना हुई है। यह एक ऊँचे दरजे के गायक थे, कंठ बड़ा सुरीला था। जनगोपालजी की 'जन्मलीला' में लिखा है—

"स्वामी गये सबनि सुख पाये। रमते नगर नराणे आये ।।
बषनौ होरी गावत देख्यौ। गुरु दादू अपनौ करि पेख्यौ ।।
कृपा करी तब ऐसी स्वामी। बचन बोलिया अन्तरजामी ।।
ऐसी देह रची रे भाई। राम निरंजन गावौ आई ।।
ऐसा बचन सुन्या है जबही। बषनौ दख्या लीन्ही तबही ।।"

इस प्रकार बषना दादू दयालजी के शिष्य हुए थे। अर्थात्, शृंगार-रस की होली गा रहे थे, कंठ मीठा सुरीला था, पर भाव गीत का संसारी था। दादूजी ने रास्ता मोड़ दिया। बषना अब मालिक के गुण गाने लगे। सतगुरु के शब्दबाण से बिंध गये—

"म्हारे गुरा कह्यो सोई करस्यूं हो।
खार समंद में मीठी बेरी कर सूधै घड़ले भरस्यूं हो।

गुरु-भक्ति इनकी बड़ी गहरी थी। दादूजी के विरह में इन्होंने जो यह पद कहा, उसके शब्द-शब्द में इनकी गहरी गुरु-भक्ति की झलक मिलती है—

"बीछड्या रामसनेही रे, म्हारे मन पछतावो येही रे।
बिलखी सखी सहेली रे, ज्यौं जल बिन नागरवेली रे ।।
वा मुलकति छवि छोडो रे, म्हारे रै गई हिरदा माही रे।
को ऊहि उणिहारे नाही रे, हूँ ढूँढि रही जग माही रे ।।
सब फीको म्हारे भाई रे, मंडली को मंडण नाही रे।
कूँण सभा में सोहै रे, जाकी निर्मल बाणी मोहै रे ।।
भरि-भरि प्रेम पिलावै रे, कोई दादू आणि मिलावै रे ।।
'बषना' बहुत बिसूरै रे, दरसण के कारण झूरै रे ।।"

दादूपंथी राघोदासजी ने अपनी 'भक्तमाल' में बषनाजी का गुणानुवाद इन शब्दों में किया है—

"गुरुभगता जनदास सील सुठि सुमरन सारौ ।
बिरह-लपेटे सबद लगत तन करत सु भारौ ॥
हरिरस मद पिय मत्त रैनिदिन रहै खुमारी ।
परचै वाणी विमद सुनत प्रभु बहुत पियारी ॥
माया ममता मान मद, राघो तन मन मारि छड ।
दादू दीनदयाल के हैं बषनौ बानैत बड ॥"

बानी-परिचय

बषनाजी की बानी के विषय में स्वामी मगलदासजी ने "बषनाजी की वाणी" की भूमिका मे लिखा है कि, "उनकी रचना का परीक्षण साहित्यिक दृष्टि से किया जाना सगत नही है, क्योकि वे कोई कवि या साहित्यकार नही थे । वे तो एक सच्चे साधक थे । परमात्मा के लिए सब कुछ अर्पण कर देनेवाली भावना ही उनकी साहित्य-धारा थी ।" सत्य के चरणो पर सर्वस्वार्पण कर देने की भावना यदि साहित्य नही है तो फिर साहित्य और क्या है ? काव्य के कतिपय आचार्यो ने साहित्य की जो व्याख्याएँ निर्धारित कर रखी है, और उदाहरणस्वरूप जिन अनेक कवियो की रचनाएं उपस्थित की है, उनकी तुलना मे भले ही संतो की ऊँची रचनाओ को न रखा जाये --रखना समीचीन भी नही है—किन्तु साहित्य की आत्मा 'रस' की निर्मल धारा तो उन्हीकी वाणी से प्रवाहित हुई है । उस धारा के आगे सुसज्जित भाषा काँपती है, अलकार लजाते है ।

बषनाजी ने ढूढाहडी (राजस्थानी का एक भेद) भाषा मे सीधे-सादे शब्दो मे सत्य का ऊँचा निरूपण और मालिक के विरह का बडा सजीव चित्रण किया है । साखियाँ हृदय पर सीधे चोट करनेवाली, और पद अन्तर को बिना बाण के भेद देनेवाले है । कोई-कोई उक्ति तो बडी ही अनूठी है । दादू-पंथ के महान् सत रज्जबजी ने भी इनकी साखियो और पदों को अपनी 'सर्वङ्गी' मे लिया है । सुन्दरदासजी भी बषनाजी की वाणी को प्रमाणरूप मानते थे । शान्ति-निकेतन के आचार्य क्षिति-मोहन सेन भी बषनाजी की बानी के भक्त है ।

जयपुर के दादू महाविद्यालय के स्वामी मंगलदासजी ने बषनाजी की वाणी का सुचारु संपादन कर संत-साहित्य की भारी सेवा की है। इसी सुसंपादित पुस्तक से हमने बषनाजी की साखियों और पदों को सटिप्पण संकलित किया है।

आधार

१. बषनाजी की वाणी—स्वामी मंगलदास, श्री लक्ष्मीराम ट्रस्ट, जयपुर

२. सुन्दर-ग्रंथावली (प्रथम खण्ड)—राजस्थान रिसर्च सोसाइटी, कलकत्ता

बषनाजी

साखी

बांवैं डिगी न दांहिणैं, मती अपूठा थाइ।
गुर दादू देश बताइया, बषना उस मारगि जाइ ॥१॥

रामनाम जिन ओषदी, सतगुर दई बताइ।
ओषदि खाइ र पछि रहै, बषना वेदन जाइ ॥२॥

पछि पांणी राखै नहीं, जौ भावै सो खाइ।
तौ ओषदि गुण नां करै, बषना व्याधि न जाइ ॥३॥

इहिं ओषद तैं साध सब, अनत उधारी देह।
कोइ कुपछ का फेर है, नहीं त ओषद येह ॥४॥

सत जत साँच खिमा दया, भाव भगति पछि लेह।
तौ अमर ओषदी गुण करै, बषना उधरै देह ॥५॥

---

१. बांवैं=बाईं ओर। मती=मत, न। अपूठा=पीछे। थाइ=हो।
२. ओषदी=औषध, दवा। पछि=पथ्य। वेदन=पीडा, रोग।
४. कुपछ=कुपथ्य। फेर=अंतर, भूल।
५. जत=संयम। खिमा=क्षमा।

अमर जड़ी पानैं पड़ी, सो सूँघी सत जाणि ।
बषना विसहर सूँ लडै, न्योल जड़ी के पाणि ॥६॥
पहली था सो अब नहीं, अब सो पछैं न थाइ ।
हरि भजि बिलम न कीजिये, बषना बारौ जाइ ॥७॥
जे बोल्या तौ राम कहि, जे चुपका तौ राम ।
मन मनसा हिरदा मही, बषना यहु विश्राम ॥८॥
सब आया उस एक मैं, दही मही घृत सूध ।
बषना बाकै क्या रह्या, जब दुहि पीया दूध ॥९॥
प्रश्न—चकोर अंगारे क्यूँ चुगे, चुगि देह जरावै ।
कहि बषना किहि कारणैं, कोई मरम लखावै ॥१०॥
उत्तर—स्यौ बिभूति कबहूँ करै, लावै उस ठांई ।
बषना मस्तक चन्द है, मिलि वाकै तांई ॥११॥
भरिया होइ तौ कदे न डोलै ज्ञान ध्यान गुर पूरा ।
बषना ओछै बासणि, छलकै सदा अधूरा ॥१२॥
बषना वेद कतेबों कागदों, लिख्या न आवै ज्ञानि ।
पंखी उड्या आकाश में, सब अपणैं उनमानि ॥१३॥
कौडी रमतां डावडौ, डरतौ सास न लेइ ।
बषना साहिब तौ मिले, यौं लै चरणा देइ ॥१४॥
यौ लै लावौ राम सूँ, बषना सारौ काम ।
अवार हूवां पर्या डरे, कब घरि जास्यूँ राम ॥१५॥

---

६. पानै पड़ी=हाथ में आई, मिल गई । विसहर=विषधर, सर्प । न्योल=नेवला । पाणि=सहारे से ।

७. बारौ=समय ।

९. मही=मट्ठा । सूध=शुद्ध ।

११. स्यौ=शिव । बिभूति=भस्म । वाकै तांई=उस (चन्द्र) के साथ ।

१२ कदे=कभी । ओछै बासणि=छोटे बर्तन में, जिसमें कम पानी हो ।

१३. उनमानि=अनुमान या अटकल से ।

१४. रमतां=खेलनेवाला । डावडो=बालक । सास न लेह=मारे डर के सांस भी नहीं खींचता कि माता-पिता कहीं खेलते हुए देख न ले । कौड़ियों का खेल खेलता तो है,

मोटी देखि बहुत मन मान्यां, दूहतां दूध न आवै ।
बषना बहिल भैंसिनैं मूरखि, क्याहनैं पसर चरावै ॥१६॥
कण कड़वो भेला चरै, आंधा बिषई प्राण ।
बषना पसु भरम्यां भवै, सुनि भागौत पुराण ॥१७॥
देहा का गुण बीसरै, एक रंगि रहि जाइ ।
बषना सोई सन्तजन, कड़वि टालि कण खाइ ॥१८॥
मात पिता की गमि नहीं, तहा पिवायो खीर ।
सो गुण थारा रामजी, बषनै लिख्या शरीर ॥१९॥
बषना इहि व्यौपार मैं टोटा मनहुँ न आणि ।
सिर साटै जैं हरि मिलै, तबलग सुहगा जाणि ॥२०॥
बैसंदरि धोवै लूगडा, सूरजि करै रसोइ ।
बषना ताकी चिता मैं, अजहूँ धूँवां होइ ॥२१॥
इसा बड़ा गर्वै गल्या, बल को करि अहंकार ।
थे बषना अब दीन ह्वै, सुमिरो सिरजनहार ॥२२॥
बषना सुमिरौ रामनैं, मन को गर्व गमाइ ।
जीवत जगि सोभा वणी, मूवा मुक्ति सिधाइ ॥२३॥
कोइल स्याम, काग भी काला, भेद एक, पण लषण निराला ।
काग रंक परि करैं कुरांली, वा बोलै अम्बा की डाली ॥२४॥

पर ध्यान मग्न है उसका ध्यान पिता की ओर लगा हुआ है । लै=लय, तन्मयता ।

१५. अवार=देर । जाण्यूँ=जाकर, पहुँच गया ।

१६. बहिल=बैल । क्याहन=क्या, व्यर्थ । पसर—रात को हरी घास चराना ।

१७. कण=अन्न । कड़वा—भूसा । आंधा=मोहान्ध । भरम्यां भवै—भ्रम में ही पड़े रहते हैं, सार वस्तु ग्रहण नहीं कर पाते ।

१८. एकरंगी=चित्तवृत्तियों का निरोध कर स्थिरबुद्धि हो जाना । टालि=दूर करके । कड़वी=विषय-भोगों से आशय है । कण=आत्मानन्द से आशय है ।

२०. मनहुँ न आणि=मन में भी न ला । साटै=मोल । सुहगा=सस्ता ।

२१. बैसंदरि=अग्नि । लूगडा=कपडा ।

२४. पण=परन्तु । लषण=लक्षण । करंक=लाश । कुरांली=कांव-कांव ।

बषना हरि जल बरषिया, जल थल भरे अनेक ।
करम कठौरा माणसां, रोरा न भीगै एक ।।२४।।

पद

राग गौडी

रमईयो कहि नै कदि मो म्हारो जीवन प्राण आधार,
जिहि की मूं नें ओलूं आवें बारंबार ।।
जोई नै रूडो जोइसी, रूडो लगन बिचारि ।
कहि गोविन्द कद आवसी, म्हारा आंगणडै पग धारि ।।
जिहि मिलियां आनन्द होइ रे, बीछड़ियां बेराग ।
तिहिं मिलबा कै कारणैं हूं ऊभी उडाऊंली काग ।।
ऊभा बैठां निरखतां, म्हारा नैण रह्या रतवाय ।
हरि को मारग हेरतां, रेण गई दिन जाय ।
पंथी बूझौं पल गिणौं रे, ऊभी मारग जोइ ।
कोई कहै हरि आवतो, म्हारो हियो उरेरो होय ।।
अणदीठो ओलूं करै रे, मो मन बारंबार ।
ऊझल फूटा क्यार ज्यूँ, म्हारै नैण न खंडै धार ।।
इहि बेला आयो नहीं, म्हारो गईंगो संदेशो ऊटि ।
हीयो पुराणी बाड ज्यूँ, म्हारा गयो बिचालथो टूटि ।।
सखी सहेली देहली रे, दाधा ऊपरि दाह ।
हौं न जाणौं क्यूँही रह्यो, मो निगुणी रो नाह ।।
क्रिपा करि आवो हरि, जन अपणा सौभाइ ।
लेस्यूँ लांबै आंचलि वारणां, बषनो बलिहारी जाइ ।।१।।

१. मूं नें=मुझे । ओलूं=याद । रूडो=सुन्दर । बेराग=दुःख से आशय है । ऊभी=खडी । नैण रह्या रतवाय=रोते-रोते आंखें लाल हो गई है । मारग जोइ=बाट देखती हू । उरेरो=उमाह, आनन्द । अणदीठो=ऊझल=अधिक भर जाने पर । क्यार=क्यारी । खडै=टूटती है । क्यूं ही=कहा । निगुणी रो=अभागिनी का । नाह=नाथ, स्वामी । सौभाइ=शोभा या बड़ाई पावे । लाबै ओंचलि=अंचल फैलाकर । वारणां=बलैयां । लेस्यूं=लूँगी ।

आया था एक आया था, खबरि उहां की ल्याया था।
आदि अन्त को जाणै था, पूरणब्रह्म बखाणै था॥
बूझ्या थैं सब कहता था, धोखा कछू न रहता था।
हरि का सेवग आदू था, नाव उन्होंका दादू था॥
को ऐसा आयां सूझैगा, वषना ताकों बूझैगा॥२॥

राग गौडी

जोड़ौंगा रे जोड़ौंगा, हरि से प्रीत न तोड़ौंगा॥
जोति पतंगा जैसे जोड़े, जीव जलै पै अंग न मोड़ै।
मृगानाद सुणि ऐसे वाछै, प्यंड पड़ै परि अंग न खौंचै।
कतियारी ज्यूं कात्या लोडै, ज्यूं ज्यूं तूटै त्यूं त्यूं जोड़ै॥
योंकरि वषना जोड़ा जोड़ी, हरि स्यूं जोड़ि आन सूं तोड़ी॥३॥

राग गौडी

पिरथी परमेसुर की सारी।
कोई राजा अपनै सिर पर, भार लेहु मत भारी॥
पिरथी के कारणि कैरूँ पांडौ, करते जुद्ध दिनाई।
मेरी मेरी करि करि मूये, निहचै भई पराई॥
जाकै नौ ग्रह पाइडे बांधे, कूवै मीच उसारी॥
ता रावण की ठौर न ठाहर, गोविन्द गर्वप्रहारी॥
केते राजा राज बइठे, केते छत्र धरेंगे।
दिन द्वै चारि मुकाम भयो है, फिर भी कूंच करेंगे॥
अटल एक राजा अविनासी, जाकी अनंत लोक दुहाई।
वषना कहै, पिरथी है ताकी, नहीं तुम्हारी भाई॥४॥

---

२. उहां की=प्रियतम के घर की, ब्रह्मलोक की। बूझ्या थैं=पूछने से, जिज्ञासा करने पर। आदू=आदिगुरु।

३. अंग न मोड़ै=पीछे पैर नहीं रखता। वाछै=चाहे। प्यंड पड़ै=शरीर भले ही गिर जाये। खांचै=खींचे, मोड़े। कतियारी=कातनेवाली। ज्यूं-ज्यूं तूटै=सूत ज्यों-ज्यों कातने में टूटता है। स्यूं=से।

४. पाइडे बांधे=खाट की पाटी से बँधे हुए थे। उसारी=लटका रखी थी।

राग गौडी

आसा रे अलूँधी रमइयौ कब मिलै, मिलियां हूं जाण न देस।
अंचल गहि राखिस्यूँ रे, नैणा नीर भरेस ॥
राम रहूकौ म्हारे मनि वस्यो, बिसार्यो नहिं जाय।
जे कबहू दिन बिसरूँ रे, तो रैणि खटूकै आय ॥
जे सोऊँ तो दोय जणा रे, जे जागौं तो एक।
सेज टटोलूँ पीव ना लहूँ, म्हारै पड्यौ कलेजै छेक ॥
बार लगाई बालमा रे, बिरहनि करै बिलाप।
कोई इक आडो ह्वै रह्यो, म्हारो पूरब जनम कौ पाप ॥
बालपण थैं बाटड़ो, बूढापा लग दीठ।
कहि बषना, आवो हरी, म्हारा बलता बुझै अँगीठ ॥५॥

राग रामकली

सोई जागै रे सोई जागै रे, रामनाम ल्यो लागै रे।
आप अलंबण नींद अयाणा, जागत सूता होय सयाणा ॥
तिंहि बरियां गुरु आया, जिनि सूता जीव जगाया ॥
थी तो रैणि घणेरी, नींद गई तब मेरी।
डरता पलक न लाऊँ हूँ जाग्यो और जगाऊँ ॥
सोवत सुपना मांहीं, जागूँ तो कछु नांहीं।
सुरति की सुरति विचारी, तब नेहा नींद निवारी ॥
एक सबद गुरु दीया, तिंहि सोवत बैठा कीया।
बषना साध सभागा, जे अपने पहरे जागा ॥६॥

---

५. अलूँधी=अटकी हुई हूं। रमइयो=प्यारा राम। मिलियां हूं जाण न देस=मिलने पर फिर जाने नहीं दूँगी। खटूकै आय=खटकने लगता है। छेक=छेद। आडो=बाधक। बाटड़ी=राह। अंगीठ=हृदय की जलन।

६. अलंबण=अहंकार का आश्रय। अयाणा=अचेत, गाफिल, अपने अहंकार को आश्रय देने से नींद में गाफिल हो गया।
जागत सूता होय सयाणा=अपनी समझ में जाग रहा था, पर असल में अचेत था। बरियाँ=अवसर। रैणि घणेरी=लम्बी जिन्दगी से आशय है।

राग आसावरी

ऐसा रे मत ज्ञान विचारै, एकहिं को दूजा कर मारै ॥
जो तैं पाठ पढ़्या रे भाई, सो पाठ सही ले बोड़ेगा ।
दाँतण फाड़्याँ लेखा लेगा, तो गल काट्यां क्यूँ छोड़ेगा ॥
धोये हाथ पाँव भी धोये, मैल रह्या दिल मांहीं ।
अलह टिसमला करि मारण लागा, साहब का डर नांहीं ॥
बेमिहरां को मिहर न आवे, स्वाद न छोड़ै कोई ।
अलह राम वषना यों बोल्या, भिस्त कहाँ थै होई ॥७॥

राग आसावरी

फुरमाया रे फुरमाया रे भाई, खाण मतै ऐसी मन आई ॥
आपणि मार आपण ही खावै, पैगम्बर नैं दोष लगावै ॥
रोजा धर्‌या निवाज गुजारी, सांझ पड़्यां थैं मुरगी मारी ॥
बेमेहर को मेहर न आवै गले पराये छुरी चलावै ॥
वषना बहुत हिरस के घाले, भिस्त छाड़ दोजग को चाले ॥८॥

राग आसावरी

हूँ क्यों बिसरूँ रे तो गुण दीनदयाल ?
तूं म्हारो ओगुण छावणों करुणामै कृपाल ॥
जिहिं उदर मांहि अधार दीयो, नीर खीर संजोइ ।
सो थारा कीया रामजी, म्हारै कहै न होइ ॥
जिहिं सिरज्या जल बूँद में, बँध्या इसा बँधाण ।
सो हमनैं क्यूँ बीसरै, जिहिं का ये सहनांण ॥

---

७. एकहिं ··मारै=एक प्राणी को दूसरी आत्मा समझकर मारता है, असल मे तो वह तेरी ही आत्मा है। सही ले बोडेगा=निश्चय ही ले डुबायेगा। भिस्त=बहिश्त, स्वर्ग।

८. खाण मतै=खाने के विचार मे। आपणि ··लगावै=आपही ज़िबह करके खुद खा जाता है और पैगम्बर मोहम्मद साहब का नाम लेता है कि उन्होने जिबह करने को कहा था ! हिरस=वासना। घाले=मारे हुए, वशीभूत। दोजग=दोजख, नरक।

९. छावणों=छिपानेवाला। सँजोइ=जुटाकर। बँध्या इसा बधाण=ऐसी अद्‌भुत

जिहिं सगेरा सहि सगा, मात पिता परिवार।
तिहिं तूटा सहि तूटसे, कोई राखै नहीं लगार॥
और सबै विसारिस्यूँ, कहूँ नहिं म्हारे भाइ।
जिहि बिना म्हारे ना सरै, सो क्यूँ विसारयो जाइ॥
ये गुण थारा रामजी, ये दूजा का नाहिं।
सो बषना क्यूँ बीसरै, लिख्या जु हिरदे मांहिं॥९॥

राग सोरठ

हिरदो बडो रे कठोर।
कोटि कियां भीजै नहीं, ऐसो पाहण नाहीं और॥
गंगा ने गोदावरी न्हायो, कासी पुहकर मांहि रे।
कर्म कापडै मैण को, तार्थे रोम भीगो नांहि रे॥
वेद ने भागोत सुनिया, कथा सुणी अनेक रे।
कर्म पाखर सारिखा, तार्थे वाण न लागै एक रे॥
औंधा कलसा ऊपरै, जल बूठो अखंड धार रे।
तत बेला निहालियो, तो पाणी नहीं लगार रे॥
ब्रह्म अगनि पाषाण जाल्या, चूना कीया सलेस रे।
बषना भिजोया रामरस, म्हारा सतगुरन आदेस रे॥१०॥

राम मारू

विचालै अन्तरो रे, हरि, हम भागो नांहिं॥
को जाणै कद भाजसी, म्हारै पछतावो मन मांहिं।

शरीर-रचना की। जलबूँद में=एक बूँद वीर्य और एक बूँद रज के संयोग से। सहनाण=निशानी। सगेरा सहि=सम्बन्ध के कारण। लगार=नाता, साथ। म्हारे ना सरै=मेरा काम नहीं चलता।

१०. कोटि किया=करोडों उपाय करने पर भी। ने=और। पुहकर=पुष्कर-तीर्थ। मैण=मोम। पाखर=कवच। कलस=घडा। बूठो=बरसा। निहालियो=सभाला। ततवेला=सही समय पर। सलेस=पक्का। ब्रह्म ‥ सलेस रे=पत्थर के जैसे हृदय को ब्रह्म की अग्नि में अर्थात् प्रचंड प्रीति में जलाकर पायेदार चूना तैयार कर लिया और अब उसे प्रियतम राम के प्रेम-रस में भिगोकर बुझा लिया है।

आडा डूँगर बन घणां, नदियाँ बहैं अनंत ।
सो पंखडियाँ पंजर नहि, हौं मिल-मिल आऊँ नित ॥
चरण पाषैं चालिबो रे, धरती पाषैं वाट ।
परवत पाषैं लंघणा, विषमी ओघट घाट ॥
जातां जातां द्योहडा, म्हारै मन पछितावो होइ ।
जीवत मेलो हे सखी, मूंवा न मिलसी कोइ ॥
हरिदरसन कारणि हे सखी, म्हारै नैंन रह्या जल पूरि ।
सो साजन अलगा हुवा, भ्वै भारो घर दूरि ॥
पाती प्यारा पीव की, हूँ क्यूँ बाँचों कर लेइ ।
विरह महाघन ऊमड्यो, म्हारो नैंन न वाँचण देइ ॥
बटाऊ उहि वाट का, म्हारो संदेसो तिहिं हाथि ।
आऊँली नाहीं रहूँ, काहू साधूजन कै साथि ॥
ज्यूँ वन कै कारणि हस्ती झुरै, चकवी पैले पारि ।
यो बषना झुरै राम कूं, ज्यूँ उलगाँणा की नारि ॥११॥

राग टोडी

नांव हरी का प्यारा रे, जासूँ लागा हेत हमारा रे ॥
जैसे माखी को गुड़ मीठा, जिसा पतंगै दीपक दीठा ।
जैसे चन्द कमोदनि प्यारा, तैसा हरि सूँ हेत हमारा ।
ज्यूँ कीड़ी कण सांच्या भावै, सीप स्वांति जल ऊपरि आवै ।
चन्दनि चील न होई न्यारा, तैसा हरि सूँ हेत हमारा ॥१२॥

---

११. विचालै अंतरो=(हम दोनों के) बीच वह अंतर पड गया ह । भागसी=भाग जायेगा । आडा=बाधक । डूँगर=टीले, भींटे । पजर=शरीर । नित=नित्य । पाषैं= शब्द कुछ अस्पष्ट-सा है; किन्तु स्वामी मंगलदासने इसका अर्थ 'बिना' किया है, जो ठीक बैठता है । विषमी=कठिन, भयानक । द्योहडा=दिन । मिलसो=मिलेगा । भ्वै=भय । बटाऊ=राहगीर । हस्ती=हाथी । झुरै=रोता है (वन बीच में आ जाने से हथिनी के वियोग से) पैले पारि=(जलाशय के) उस पार । उलगाँणा-परदेश गया हुआ ।

१२. हेत=प्रेम । चील='चील्ह' का अर्थ कुछ बैठता नही; संभवतः चकोर से आशय हो ।

राग टोडी

हेरिलै फेरिलै घेरिलै पाछो, रामभगति करि होय मन आछो ॥
जाणि तांणि अपूठो आणि, जे वाणैं तो हरि सों वाणि ॥
बावरो भयो कै लागी वाइ, रीती तलाइयां भूलण जाइ ।
साधसंगति में रहु रे भाई, बषना तूनैं रामदुहाई ॥१३॥

रागबिलावल

मेरे लालन हो, दरस द्यो क्यूँ नांहीं ।
जैसे जल बिन मीन तलपै, यूँ हूँ तेरे ताईं ॥
बिन देख्यूँ तन तालाबेली, बिरहनि बारहमासी ।
दिल मेरी का दरद पियारे, तुम्ह मिलियां तैं जासी ॥
रैणि निरासी होइ छैमासी, तारा गिणत बिहासी ।
दिन बिरहनि क्यूँ बाट तुम्हारी, सदा उडीकत जासी ॥
जल थल देखूँ परबत देखूँ वन वन फिरों उदासी ।
बूझों कोई उहाँ थै आथा, ठावा मोहि बतासी ॥
फिरि फिरि सबै सयाने बूझे, हौं तो आसपियासी ।
बषना कहै, कहो क्यूँ नाहीं, कब साहिब घर आसी ॥१४॥

राग कन्हारो

भाव-भजन की भाठी आगे, राम-रसायन पीवन लागे ॥
देहरी कलाली, तूं जिनि नाटै, हरि-रस तो है तन कै साटै ।
एक पियाला हमकों दीया, साथी सह मतिवाला कीया ॥
सद मतिवाले साध हमारे, तन मन कापड़ गहणै मारे ।
सार सुधारस हिरदै धारे, हरि-रस पीवे पिचका डारे ॥

---

१३. हेरिलै=खोजले । फेरिलै=पलटले (विषयो की ओर से । घेरिलै=मोड़ले जाणि=समझकर । ताणि=खीच । अपूठो=सम्मुख, स्थिर । जे वाणि=यदि वाणिज्य करना है । रीती तलाइयों=बिना पानी के तालाबो में । भूलण जाइ=नहाने-तैरने जाता है । तूनैं=तुझे ।

१४. तेरे ताईं=तेरे लिए । बिहासी=कटती है । ठावा=सही । सयाने=ओझा लोग । आसी=आयेगा।

१५. भाटी=मद्य बनाने की भट्टी । रसायन=मद्य जिनि नाटै=नाही न कर । साटै=

पीवे सदा खुमार न भागै, ल्याव ही ल्याव सदा ल्यो लागै।
नाचैं गावैं हरि-रस-राते, बषना दादूपंथी माते ॥१५॥

राग मलार

बीछुड्या राम-सनेही रे, म्हारै मन पछतानो येही रे ॥*
बीछुड़िया वन दहिया रे, म्हारै हिवडै करवत बहिया रे ॥
बिलखी सखी सहेली रे, ज्यूँ जल बिन नागरवेली रे ॥
वा मुलकनि की छवि छाहीं रे, म्हारै रहि गई हिरदै माहीं रे ॥
को उहिं उणहारे नाहीं रे, हौं ढूंढ रहा जग माहीं रे ॥
सब फीको म्हारै भाई रे, मंडली कौ मंडण नाहीं रे।
कोण सभा में सोहे रे, जाकी निर्मल वाणी मोहे रे ॥
भरि-भरि प्रेम पियावे रे, कोई दादू आणि मिलावे रे ॥
बषना बहुत बिसूरे रे, दरसन कै कारण झूरे रे ॥१६॥

बदले मे, मोल में। तन ‧ मारे=तन, मन और वस्त्र रेहन रख दिये, सर्वस्व सौंप दिया। पिचका डारे=फोक फेंक दिया।

१६. वन दहिया=(जीवनरूपी) वन धायँ-धायँ जल रहा है। हिवडै करवत बहिया= हृदय पर करौत (आरा) चल रहा है। मुलकनि=प्रफुल्लता, विहँसन। उणहारे=उपमा का। मंडण=शृंगार। बिसूरे=याद कर-कर रोता है। कारण=लिए। झूरे=तड़प रहा है।

*यह पद बषनाजाने सद्गुरु स्वामी दादू दयाल के महानिर्वाण के प्रसंग पर वियोग की दशा में कहा था।

वाजिदजी

चोला-परिचय

जाति—पठान
पूर्वधर्म—इसलाम
गुरु—स्वामी दादू दयाल

वाजिदजी के विषय में केवल इतना ही प्रसिद्ध है कि यह एक

पठान थे। शिकार खेलने एक दिन निकले, और जंगल में एक हिरणी पर तीर चलाने ही वाले थे कि इनके हृदय से करुणा का निर्झर फूट पडा। तीर-कमान तोडकर फेक दिये। जीवन जीव-प्रेम की ओर मुड गया। सद्गुरु पाने के लिए व्याकुल हो उठे। खोजते-खोजते स्वामी दादू दयाल की अकुतोभय शरण पाली, और उनके कृपापात्र शिष्य हो गये। दादू दयालजी के १५२ शिष्यो मे वाजिदजी की भी गणना की जाती है।

स्वामी मंगलदासजी ने अपने 'पंचामृत' मे वाजिदजी के विषय मे राघोदासजी का यह कवित्त उद्धृत किया है—

छाड़िकै पठान-कुल रामनाम कीन्हों पाठ,
भजनप्रताप सूँ वाजिद बाजी जीत्यौ है॥
हिरणी हतत उर डर भयो भयकारि,
सीलभाव उपज्यो दुसीलभाव बीत्यौ है॥
तोरे हैं कवाणतीर चाणक दियो शरीर
दादूजी दयाल गुरु अंतर उदीत्यौ है॥
राघो रति रात दिन देह दिल मालिक सूँ
खालिक सूँ खेल्यो जैसे खेलण की रीत्यौ है।

बानी-परिचय

'अरिल' छंद मे अनेक अगों पर वाजिदजी ने प्रसादगुणयुक्त सरल सरस रचना की है। कहते हैं कि छोटे-छोटे १४ ग्रन्थो मे इनकी पूरी बानी है, पर सब उपलब्ध नही है। इनकी कुछ साखियों को रज्जबजी ने भी अपने संग्रह में संकलित किया है। इन्होंने दोहे-चौपाई में भी रचना की है।

भाषा मे ओज है, प्रवाह है। उर्दू-फारसी शब्दो का कदाचित् ही प्रयोग किया है। दया और उदारता तथा देह की अनित्यता पर इनके बड़े ही भावपूर्ण 'अरिल' हैं।

आधार

पचामृत—स्वामी मंगलदास, श्री स्वामी लक्ष्मीराम ट्रस्ट, जयपुर

वाजिद्जी

अरध नाम पाषाण तिरे नर लोइ रे।
तेरा नाम कह्यो कलि मांहिं न बूडे कोइ रे।
कर्म सुकृति इकवार बिलै हो जाहिंगे।
हरि हां, वाजिद, हस्ती के असवार न कूकर खाहिंगे ॥१॥

रामनाम की लूट फबी है जीव कूँ।
निसवासर वाजिद सुमरता पीव कूँ।
यही बात परसिद्ध कहत सब गांव रे।
हरि हां, अधम अजामेल तिर्यो नारायण-नांव रे ॥२॥

कहियो जाय सलाम हमारी राम कूँ।
नैण रहे झड़ लाय तुम्हारे नाम कूँ॥
कमल गया कुमलाय कल्यौं भी जायसी।
हरि हां,वाजिद, इस बाड़ी में बहुरि न भंवरा आयसी ॥३॥

चटक चांदणी रात बिछाया ढोलिया।
भर भादव की रैण पपीहा बोलिया॥
कोयल सबद सुणाय रामरस लेत है।
हरि हां, वाजिद, दाज्यो ऊपर लूण पपीहा देत है ॥४॥

रैण सवाई वार पपीहा रटत है।
ज्यूँ ज्यूँ सुणिये कान करेजा कटत है॥
खान पान वाजिद सुहात न जीव रे।
हरि हां, फूल भये सम सूल बिना वा पीव रे ॥५॥

---

१. अरध नाम ·····रे—रामनाम के आधे भाग से अर्थात् 'रकार' मात्र से समुद्र पर नल आदि वानर लोगों ने पत्थर तैरा दिये। बिलै=क्षीण। खाहिंगे=काटेंगे।

२. फबी=ऊँची। पीव=प्रियतम, परमात्मा।

३. नैण=नयन। कल्यौं=कलियाँ, पंखड़ियाँ। जायसी=(मुरझा) जायेंगी। आयसी= आयेगा। भँवरा=भ्रमर, जीव से आशय है।

४. ढोलिया=पलंग। रैण=रात। दाज्यो=जला हुआ। लूण=नमक।

पंछी एक संदेस कहो उस पीव सूँ ।
बिरहनि है बेहाल जायेगी जीव सूँ ॥
सींचनहार सुदूर, सूक भई लाकरी ।
हरि हां, वाजिद, घर ही में बन कियो वियोगनि बापरी ॥६॥

बालम बस्यो विदेस भयावह भौन है ।
सोवै पाँव पसार जु ऐसी कौन है ॥
अति ही कठिन यह रैण बीतती जीव कूँ ।
हरि हां, वाजिद, कोई चतुर सुजान कहे जाय पीव कूँ ॥७॥

पीव बस्या परदेस कि जोगन मैं भई ।
उनमनि मुद्रा धार फकीरी में लई ॥
ढूंढ्या सब संसार क अलख जगाइया ।
हरि हां, वाजिद, वह सूरत वह पीव कहूँ नहिं पाइया ॥८॥

जब तें कीनो गौन भौन नहिं भावही ।
भई छमासी रैण नींद नहिं आवही ॥
मीत, तुम्हारी चीत रहत है जीव कूँ ।
हरि हां, वाजिद, वो दिन कैसो होइ मिलौं हरि पीव कूँ ॥९॥

कहिये सुणिये राम और नहिं चित्त रे ।
हरि-चरणन को ध्यान सु धरिये नित्त रे ॥
जीव बिलंब्या पीव दुहाई राम की ।
हरि हां, सुख संपति वाजिद कहो किस काम की ॥१०॥

तुमहि बिलोकत नैण भई हूँ बावरी ।
झोरी डंड भभूत पगन दोउ पाँवरी ॥

---

६. सूक भई लाकरी=सूखकर लकड़ी की तरह दुबली हो गई । बापरी=गरीब, दीन ।

७. पाँव पसार=बेफिकर होकर ।

९. चीत=ध्यान ।

१०. विलंब्या=रम गया, लग गया ।

११. झोरी=झोली । भभूत=भस्म । पाँवरी=खड़ाऊँ ।

कर जोगण को भेष सकल जग डोलिहूँ ।
वाजिद, ऐसो मेरो नेम राम मुख बोलिहूँ ॥११॥

सूर कमल वाजिंद न सुपने मेल है ।
जरै द्यौस अरु रैण कड़ाई तेल है ॥
हमही में सब खोट दोष नहि स्याम कूँ ।
हरि हां, वाजिद, ऊंच नीच सों बंधे कहो किहि काम कूँ ॥१२॥

भूखे भोजन देह उघारे कापरो ।
खाय धणी को लूण जाय कहाँ बापरो ।
भली बुरी वाजिंद सबै ही सहेंगे ।
हरि हां, दरगह को दरवेश यहां ही रहेंगे ॥१३॥

हरिजन बैठा होय तहाँ चल जाइये ।
हिरदै उपजै ग्यान रामगुण गाइये ॥
परिहरिये वह ठाम भगति नहिं राम की ।
हरि हां, वाजिद बीन विहूणी जान कहो किस काम की ॥१४॥

साधां सेती नेह लगे तो लाइये ।
जे घर होवे हांण तहुं न छिटकाइये ॥
जे नर मूरख जान सो तो मन में डरै ।
हरि हां, वाजिद, सब कारज सिध होय कृपा जे वह करै ॥१५॥

बेग करहु पुन दान बेर क्यूँ बनत है ।
दिवस घड़ी पल जाम जुरा सो गिनत है ॥

---

१२. सूर=सूर्य । द्यौस=दिवस, दिन । कड़ाई तेल=जैसे कढाई में तेल जलता है । खोटा=दोष, कमी ।

१३. उघारे=नगे को । कापरो=कपडा । धणी को लूण=मालिक का नमक । बापरो=बेचारा । दरगह=खुदा का घर । दरवेश=फकीर ।

१४. विहूणी=बिना प्रियतम की ।

१५. साधां सेती=साधुजनों के साथ । लाइयो=लगाना चाहिए । हांण=हानि । तहुँ न छिटकाइये=तोभी नही छोडना चाहिए । जे=यदि ।

मुख पर देहैं थाप सूँज सब लूटिहै ।
हरि हां, जम जालिम सूँ वाजिद जीव नहि छूटिहै ॥१६॥

कहै वाजिद पुकार सीख एक सुन्न रे ।
आड़ो बांकी वार आइहै पुन्न रे ॥
अपनों पेट पसार बडौ क्यूँ कीजिये ।
हरि हां, सारी में तै कौर और कूँ दीजिये ॥१७॥

धन तो सोई जाग, धणी के अरथ है ।
बाकी माया वीर पाप को गरथ है ॥
जो अब लागो लाय बुझावै भौन रे ।
हरि हां वाजिद, बैठ पथर की नाव पार गयो कौन रे ॥१८॥

जो भी होय कुछ गांठि खोलिकै दीजिये ।
सांई सबही मांहि, नांहि क्यूँ कीजिये ॥
जाको ताकूँ सोंप क्यूँ न सुख सोवही ।
हरि हां, अंत लुणें वाजिद खेत जो बोवही ॥१९॥

जोध मुये ते गये, रहे ते जाहिंगे ।
धन सांचता दिनरैण कहो कुण खांहिंगे ॥
तन धन है मिजमान दुहाई राम की ।
हरि हां, दे ले खर्च खिलाय धरी किहि काम की ॥२०॥

गहरो राखी गोय कहो किस काम कूँ ।
या माया वाजिद समर्पो राम कूँ ॥

---

१६. पुन=पुण्य । बेर=देर । जुरा=जरा, बुढापा । थाप=थप्पड, तमाचा । सूँज=सामान ।

१७. आडो ⋯पुन्न रे=अरे, विपत्ति के समय एक पुण्य ही काम आयेगा । सारी मै ते कौर=पूरी थाली में से एक कौर या ग्रास ।

१८. अरथ=निमित्त । गरथ=राशि, पूँजी । लाय=आग ।

१९. जाको ताकूँ सोंप=जिस मालिक का दिया धन है उसीके निमित्त उसे लगादे ।

२०. जोध=योद्धा । मुये=मर गये । सांचता=जोडता, इकट्ठा करता । कुण=कौन । मिजमान=मेहमान; क्षणस्थायी । धरी=सञ्चित (संपत्ति) ।

२१. गहरी राखी गोय=ज़मीन में गाडकर रखी हुई । कान⋯दास रे=अरे, यह

कान अंगुली मेलि पुकारे दास रे।
हरि हां, फूल धूल में धरै न फैलै बास रे ॥२१॥

टेढी पगडी बाँध झरोखा झाँकते।
ताता तुरग पिलाण चहूँटे डाकते ॥
लारे चढती फौज नगारा बाजते।
वाजिद, ये नर गये विलाय सिंह ज्यूँ गाजते ॥२२॥

दो दो दीपक जोय सु मन्दिर पोढ़ते।
नारी सेतीं नेह पलक नहीं छोड़ते ॥
तेल फुलेल लगाय क काया चाम की।
हरि हां, वाजिद, मर्द गर्द मिल गये दुहाई राम की ॥२३॥

सिर पर लम्बा केस चले गज चालसी।
हाथ गह्यां समसेर ढलकती ढालसी ॥
एता यह अभिमान कहाँ ठहराहिगे।
हरि हां, वाजिद, ज्यूँ तीतर कूँ बाज झपट ले जाहिंगे ॥२४॥

कारीगर कर्तार क हून्दर हद किया।
दस दरवाजा राख शहर पैदा किया ॥
नखसिख महल बनायक दीपक जोड़िया।
हरि हां, भीतर भरी भँगार क ऊपर रंग दिया ॥२५॥

काल फिरत है हाल रैंणदिन लोइ रे।
हनै राव अरु रंक गिणै नहिं कोइ रे ॥

प्रभु का दास वाजिद खूब चिल्लाकर कह रहा है। फूल ... बास रे=अरे, जैसे मिट्टी में दबा देने से फूल की सुगन्ध नही फैलती, वैसे ही धन गाड देने या छिपाकर रखने में यश नही मिलता।

२२. टेढी=बाँकी, झुकी हुई। ताता=तेज। पिलाण=जीन कसकर। चहूँटे डाकते=चारों तरफ़ कूदते थे। लारे=पीछे-पीछे। गये विलाय=लापता हो गये।

२३. जोय=जलाकर। मदिर=महल। सेती=से, प्रति। मर्द=शूरवीर।

२५. हूंदर=हुनर, करागरी। दीपक=जीवात्मा से अभिप्राय है। भँगार=कचरा।

यह दुनियां वाजिद बाट की दूब है।
हरि हां, पाणी पहिले पाल बँधे तो खूब है ॥२६॥

सुकरित लीनो, साथ पड़ी रहि मातरा।
लाम्बा पाँव पसार बिछाया मांथरा॥
लेय चल्या बनवास लगाई लाय रे।
हरि बाजिद, देखै सब परिवार अकेलो जाय रे ॥२७॥

भूखो दुर्बल देख नाहिं मुहँ मोड़िये।
जो हरि सारो देय तो आधी तोडिये॥
दे आधी की आध अरध की कोर रे।
हरि हां, अन्न सरीखा पुन्य नाहिं कोइ ओर रे ॥२८॥

खैर सरीखी और न दूजी वसत है।
मेल्हे वासण मांहिं कहा मुहँ कसत है॥
तूं जिन जानें जाय रहेगो ठाम रे।
हरि हां, माया दे वाजिंद धणी के काम रे ॥२९॥

मंगण आवत देख रहे मुहुं गोय रे।
जद्यपि है बहु दाम काम नहिं लोय रे॥
भूखे भोजन दियो न नागा कापरा।
हरि हां, बिन दीया वाजिद पावे कहा बापरा ॥३०॥

जल में झीणा जीव थाह नहिं कोय रे।
बिन छाण्या जल पियां पाप बहु होय रे॥

---

२६. लोइ=लोगो। बाट की दूब=रास्ते पर का घास, जिसे सभी कुचलकर चलते है।

२७. मातरा=दौलत। माथरा=सेज; यहा अरथी से आशय है। लाय=आग।

२८. तोडिये=तोडकर या हिस्सा करके देदे। कोर=टुकडा।

२९. खैर=खैरात। वसत=वस्तु। मेल्हे=रख देने पर। वासण=बर्तन। कसत है=बांधता है। माया=धन-संपत्ति। धणी=ईश्वर।

३०. गोय=छिपाकर। नांगा कापरा=नंगे को कपडा। बापा=बेचारा।

३१. झीणा=सूक्ष्म। काठै=मोटे। जुगत सों=सावधानी के साथ।

काठै कपडे छाण नीर कूँ पीजिये।
हरि हां वाजिद, जीवाणी जल मांहि जुगत सूँ कीजिये ॥३१॥
साहिब के दरबार पुकार्यां बाकरा।
काजी लीया जाय कमरसों पाकरा॥
मेरा लीया सीस उसीका लीजिये।
हरि हां, वाजिद, राव रंक का न्याव बराबर कीजिये ॥३२॥
पाहन पड़ गई रेख रातदिन धोवहीं।
छाले पड़ गये हाथ मूंड़ गहि रोवहीं॥
जाको जोइ सुभाव जाइहै जीव सूं।
हरि हां, नीम न मीठी होइ सींच गुड़ घीव सूँ ॥३३॥
सतगुरु शरणें आयक तामस त्यागिये।
बुरी भली कह जाय ऊठ नहिं लागिये॥
उठ लाग्या में राड़, राड़ में मीच है।
हरि हां, जा घर प्रगटै क्रोध सोइ घर नीच है ॥३४॥
कहि-कहि वचन कठोर खरूँठ नहिं छोलिये।
सीतल शान्त स्वभाव सबन सूं बोलिये॥
आपन सीतल होय और भी कीजिये।
हरि हां, बलती में सुण मीत न पूला दीजिये ॥३५॥
बड़ा भया सो कहा बरस सौ साठ का।
घणां पढ्या तो कहा चतुर्विधि पाठ का॥

---

३२. पाकरा=पकड़ा। न्याव=न्याय, इन्साफ।

३३. जाको...... ..जीव सूं=जान भले चली जाय, पर स्वभाव नहीं बदलता। घीव=घी।

३४. ऊठ नहिं लागिये=उठकर जवाब नहीं देना चाहिए। राड=लड़ाई-झगड़ा। मीच=मौत, सर्वनाश।

३५. पूला=घास की पूली; उत्तेजन से आशय है।

३६. न आया हाथ=वश में नहीं हुआ। पंसेरी आठ का=मन; यहाँ तोल के मन से नहीं, वरन् मन अर्थात् चित्त से तात्पर्य है।

छापा तिलक बनाय कमंडल काठ का ।
हरि हां, वाजिद, एक न आया हाथ पंसेरी आठ का ॥३६॥

स्वामी सुन्दरदास

चोला-परिचय

जन्म-सवत्—१६५३ वि०, चैत्र शु० ६
जन्म-स्थान—द्यौसा (जयपुर राज्यान्तर्गत)
पिता—चोखा; दूसरा नाम परमानन्द
माता—सती
जाति—बूसर (खण्डेलवाल वैश्य)
गुरु-स्वामी दादू दयाल
भेष— विरक्त
निर्वाण-सवत्—१७४६ वि०

६ या ७ वर्ष की बाल्यावस्था मे ही स० १३५६ मे सुन्दरदासजी सद्गुरु महात्मा दादू दयाल के शरणापन्न हो गये थे —

दादूजी जब द्यौसा आये । बालपने महँ दरसन पाये ॥
[ग्रन्थ गुरु संप्रदाय

सुन्दरदासजी ने स्वय अपनी एक साखी मे कहा है—

"सुन्दर सतगुरु आपतें, किया अनुग्रह आइ ।
मोह-निसामे सोवते, हमकौ लिया जगाइ ॥

तथा—

"दादूजी जब द्यौसा आये । बालपने हम दर्सन पाये ।
तिनके चरननि नायौ माथा । उनि दीयो मेरे सिर हाथा ॥"
[बावनी ग्रन्थ

उम्रमे सबसे छोटे होने के कारण दादूजी महाराज के सभी शिष्य इनके प्रति बडा स्नेह-भाव रखते थे । दादूजी ने इन्हे अपने प्रिय शिष्य जगजीवनजी को सौप दिया था, और वे सदा इनकी बहुत सार-सँभाल रखा करते थे ।

११ वर्ष की अवस्था में सुन्दरदासजी कुछ गुरुभाइयो के साथ विद्याध्ययन करने काशी चले गये। वहाँ इन्होने सस्कृत-साहित्य का अठारह-उन्नीस वर्ष रहकर बडा गहरा अध्ययन किया। व्याकरण, काव्य, दर्शन आदि के साथ योग-विद्या का भी अच्छा अनुशीलन किया। भाषा-काव्य-रचना भी काशी मे ही इन्होने आरभ की। कहते है कि काशी मे यह गगा के उसी असी घाट पर रहा करते थे, जहाँ गोस्वामी तुलसीदासजी ने शरीर-त्याग किया था।

काशी से विद्याध्ययन करके सुन्दरदासजी स० १६८२ मे सीधे फतेहपुर शेखावाटी आये। यहाँ पर कितने ही वर्ष यह रहे। यही योगाभ्यास किया और १२ वर्षतक घोर तपश्चर्या भी। सत्संग भी इन्होंने यही चेताया, और कितने ही छोटे बड़े ग्रथो की रचना भी की। इनकी प्रसिद्धि की सुगध यहाँ से धीरे-धीरे चारो ओर फैलने लगी। फतेहपुर इनका साधना-स्थान बना, और सिद्ध-स्थान भी।

देशाटन भी सुन्दरदासजी ने बहुत किया। सद्गुरु दादू दयालजी के सब पुण्यस्थानो की तो उन्होने देखा ही, बिहार, बगाल, उड़ीसातक पूर्व के देशों का, और लाहौरतक पश्चिम का, व गुजरात, मालवा और द्वारकातक भी भ्रमण किया था। अपने देशाटन के सवैयो मे सुन्दरदासजी ने कितने ही स्थानो का उल्लेख और वर्णन किया है। मालवा और उत्तरप्रदेश इन्हे बहुत प्रिय था। इन प्रान्तों की प्रशसा भी इन्होने खूब की है।

सुन्दरदासजी स्वामी दादू दयाल के पट्ट शिष्य रज्जबजी के विशेष स्नेह-पात्र थे। रज्जनजी के साथ सत्सग करने यह प्रायः साँगानेर जाया करते थे। विद्वद्वर पुरोहित श्री हरनारायण शर्माने 'सुन्दर-ग्रथावली' (प्रथम खड-जीवन-चरित्र, पृष्ठ ५६) मे लिखा कि है "सुन्दरदासजी ने रज्जबजी से बहुत ज्ञान-लाभ किया था, और उनकी उक्तियों और विचारों और कविताओं मे रज्जबजी की झलक पडती है।"

दादू दयालजी के एक अन्य प्रधान शिष्य बषनाजी का भी सुन्दरदासजी से बहुत प्रेम-भाव रहता था। कहते है कि, "बषनाजी के साथ

सुन्दरदासजी प्रेममग्न होकर पद गाया करते थे, और अपने रचे पदों को भी सुनाते, जिनके रागों की यथार्थता मे बषनाजी सम्मति देते थे।" (सुन्दर-ग्रथावली-प्रथम खण्ड, जीवन-चरित्र-पृष्ठ ८७)।

इसी प्रकार दादू दयालजी के प्रधान शिष्य गरीबदासजी, बाजिदजी, जनगोपालजी, जगजीवनजी, राघोदासजी, प्रागदासजी, नारायणदासजी, मोहनदासजी आदिभी सुंदरदासजी के समकालीन और परमस्नेहियों मे से थे।

महात्मा सुन्दरदास एक पहुँचे हुए परम वीतराग सत थे। निर्मल और ऊँची रचनी थी इनकी। अति दयालु और भगवत्प्रेम मे निरन्तर विभोर रहनेवाले यह ऊँचे ज्ञानी तथा हरिभक्त थे।

सुन्दरदासजी का शरीरपात सवत् १७४६ मे सागानेर मे हुआ था। अनन्य सत्संगी श्री रज्जबजी के ब्रह्मलीन हो जाने का असह्य समाचार सुनकर यह अत्यंत व्यथित हुए, और उसी दिन से इनका स्वास्थ्य गिरने लगा। कार्तिक शुक्ला अष्टमी को तीसरे पहर सुन्दरदासजी समाधि लेकर ब्रह्मलीन हो गये।

सांगानेर मे प्राप्त एक शिला-लेख मे शिखा है—

"संवत् सत्रासै छीयाला। कातीसुदी अष्टमी उजीयाला॥
तीजे पहर ब्रहसपतवार। सुन्दर मिलिया सुन्दरदास॥"

सुंदरदासजी की रची अत समय की ४ साखियाँ हम नीचे उद्धृत करते है—

"निरालब निरवासना, इच्छाचारी येह।
संस्कार-पवनहि फिरै, शुष्कपर्ण ज्यौ देह॥
वैद्य हमारे रामजी, औषधहू हरिनाम।
सुन्दर यहे उपाय अब, सुमरण आठों जाम॥
सुन्दर संसय को नही, बडो महोच्छव येह।
आतम परमातम मिल्यौ, रहौ कि बिनसौ देह॥
सात बरस सौ मे घटे, इतने दिन की देह।
सुन्दर आतम अमर है, देह खेह की खेह॥"

बानी-परिचय

स्वामी सुन्दरदास सच्चे अर्थ मे एक महाकवि थे। केवल काव्य की स्वीकृत दृष्टि से देखा जाये तो शान्तरस के वे एकमात्र आचार्य माने जा सकते है। कवि के लौकिक अर्थ मे निर्गुणपन्थी सतो मे कवि केवल सुन्दरदास को ही कहा जा सकता है। भाषा, भाव, छन्द, अलकार, ध्वनि आदि प्रायः सभी काव्याङ्गो को देखते हुए सुन्दरदासजी अपना एक विशेष स्थान रखते है, इसमे सन्देह नही।

हमने बहुत पहले सुन्दरदासजी का 'सुन्दरविलास' नामक एक ग्रथ देखा था। इसमे उनके अनूठे सवैयो का सग्रह था। उनके समस्त छोटे-बड़े ग्रथो का अत्यन्त विद्वत्तापूर्ण सुसपादित सस्करण, 'सुन्दर-ग्रथावली' नाम का, दो खण्डो मे देखकर सुन्दरदासजी के सत्काव्य का जब हमने यत्किंचित् रसास्वादन किया, तब ऐसा लगा कि उनके रचे "ज्ञान-समुद्र' और "सवैया' मे से प्रस्तुत सग्रह-ग्रथ मे किन रत्नो को स्थान दिया जाये और किन्हे छोडा जाये।

विद्वद्वर पुरोहित हरिनारायण शर्मा विद्याभूषण ने इस ग्रथावली का ऐसा उत्तम सपादन किया है कि देखते ही बनता है। अनेक परिशिष्टो के साथ २०८ पृष्ठो की अत्यन्त शोधपूर्ण भूमिका, और १८६ पृष्ठो का ग्रथकर्त्ता का मथनपूर्ण विशद जीवन-चरित्र देखकर कौन सत-साहित्य रसिक मुग्ध नही हो जायेगा। टिप्पणियाँ, कठिन गूढ शब्दो के सरल अर्थ, और विपर्यय के अगो की पाण्डित्यपूर्ण 'सुन्दरानन्दी' टीका लिखकर विद्वान् सपादक ने सत-साहित्य के रसिको का अनुपम हित किया है।

सुन्दरदासजी के समस्त ग्रथो का विभाजन 'सुन्दर-ग्रथावली मे 'नीचे-लिखे ६ विभागो मे हुआ है :—

१ प्रथम विभाग—इसके अतर्गत केवल 'ज्ञान-समुद्र' ग्रंथ रखा गया है, जिसमे ५ उल्लास है।

२ द्वितीय विभाग—इसके अन्तर्गत छोटे-छोटे ३७ ग्रंथ है।*

---

*(१) सर्वाङ्ग योग प्रदीपिका, (२) पंचेन्द्रिय-चरित्र, (३) सुख

३ तृतीय विभाग—"सवैया" इस अत्युत्तम ग्रथ की छद-संख्या ५६३, और अग-सख्या ३४ है।

४ चतुर्थ विभाग—"साखी" ; इसकी अग-सख्या ३१ है।

५ पचम विभाग—"पद" ; इसमे २७ भिन्न-भिन्न रागो मे २१३ पद है।

६ षष्ठ विभाग—फुटकर काव्य।

इन छोटे-बड़े ग्रथो मे 'ज्ञान-समुद्र' तथा 'सवैया' अथवा 'सुन्दर-विलास' ये दो ग्रथ सर्वोत्कृष्ट है। 'ज्ञान-समुद्र' को स्वय सुन्दरदासजी ने भी अपना सबसे उत्कृष्ट ग्रथ कहा है। श्री पुरोहितजी के शब्दो मे यह ग्रंथ "वर्तमान कालतक के भाषा-साहित्य मे ज्ञान का भडार छन्दोबद्ध सर्वगुणालकृत ऐसा सुरम्य ग्रथ और है ही नही, जिसमे थोडे-से वर्णनो मे इतने विशाल विषय इतनी सरलता और चातुर्य से एकत्रित हो। भाषा-काव्य मे **ज्ञानकाण्ड का यह रीति-ग्रंथ** है। स्वामी सुन्दरदासजी इसके कारण इस प्रदेश की विद्या और विधान मे आचार्य है।"

समाधि, (४) स्वप्नप्रबोध, (५) वेदविचार, (६) उक्त अनूप, (७) अद्भुत उपदेश, (८) पच प्रभाव, (९) गुरु सप्रदाय, (१०) गुन उत्पत्ति निसानी, (११) सद्गुरु महिमा निसानी, (१२) बावनी, (१३) गुरुदया षट्पटी, (१४) भ्रम विध्वंस-अष्टक, (१५) गुरुकृपा अष्टक, (१६) गुरु उपदेश ज्ञानाष्टक (१७) गुरुदेव महिमा-स्तोत्र अष्टक, (१८) रामजी अष्टक, (१९) नाम अष्टक, (२०) आत्म अचल-अष्टक, (२१) पजाबी भाषा अष्टक, (२२) ब्रह्मस्तोत्र अष्टक, (२३) पीर मुरीद अष्टक, (२४) अजब ख्याल अष्टक, (२५) ज्ञान झूलना अष्टक, (२६) सहजानन्द ग्रथ, (२७) गृह वैराग बोध ग्रथ, (२८) हरिबोल चितावनी, (२९) तर्क चितावनी, (३०) विवेक चितावनी, (३१) पवगम छन्द, (३२) अडिल्ला छन्द, (३३) मडिल्ला छन्द, (३४) बारह मासिया, (३५) आयुर्बल भेद आतमा विचार, (३६) त्रिविध अन्त:करण भेद, और (३७) पूर्वीभाषा बरवै।

'सवैया' अथवा 'सुन्दरविलास, ग्रंथ भी इनका अनूठा और बड़ा लोकप्रिय है। इसके जोड के शान्तरस के सवैये अन्यत्र मिलने मे संदेह ही है।

'विपर्यय' अग इसका अत्यन्त गूढ़ और क्लिष्ट भी है। कबीर साहब की उलट बाँसियों से इस अंग के सवैये कम महत्त्व के नही है। बिना अच्छी टीका के इनका अर्थ स्पष्ट हो नही सकता। किंतु कबीर साहब की 'उलट बाँसियो' और सुन्दरदासजी के 'विपर्यय' को हमने प्रस्तुत संग्रह में स्थान न देने की धृष्टता की है। प्रसादगुणमयी सरल सुबोध रचनाओं को ही हमने इस संग्रह मे लिया है।

'सवैया' और 'साखी' मे भी ज्ञानकाण्ड के प्राय. सभी गूढ अंगो का विश्लेषण सुन्दरदासजी ने इतना सरस, सरल और इतना अनूठा किया है कि देखते ही बनता है। शान्तरस का ऐसा काव्यात्मक परिपाक अन्यत्र बहुत कम मिलेगा।

भाषा पर इस संत महाकवि का पूरा अधिकार था। अच्छी परिष्कृत साधुभाषा है। मुख्यत ब्रजभाषा है, पर खड़ी हिन्दी और राजस्थानी का भी स्वभावत: उसमे मेल हुआ है। महाविरों और लोकोक्तियों का स्थान-स्थान पर बहुत उपयुक्त प्रयोग किया गया है। भारत की अनेक प्रांतीय भाषाओं के कितने ही शब्द इनके काव्यो मे मिलते है। फारसी के भी अनेक शब्दो का मुक्त प्रयोग हुआ है।

गोसाईं तुलसीदास की तरह इन्होने भी क्योकि 'नाना पुराण निगमागम' तथा अन्य अनेक संस्कृत एव भाषा-ग्रन्थों का अध्ययन किया था, और अनेक देशो का पर्यटन भी, इसलिए इनकी रचनाओं मे कितने ही अनुभवात्मक भाव देखने मे आते है, किंतु कहने का ढग इनका अपना मौलिक है।

काव्य के सभी लक्षण इनकी रचनाओं मे हम पाते है। ध्वनि और अलंकारों का सुन्दर प्रयोग कितने ही पद्यों में हुआ है। प्रसाद, माधुर्य और ओज तीनों ही गुण अच्छी मात्रा मे मिलते है।

शांतरस के वर्णन में सुन्दरदासजी का वास्तव मे अपना एक विशेष स्थान है। श्री पुरोहितजी ने यह सर्वथा सही लिखा है—"सुन्दरदासजी ने शृंगारादि रसो पर मानों विजय पाकर शातरस का यह क़िला बनाकर उसपर विजय का झडा फहरा दिया है। इस पक्ष मे वे आचार्य माने जाने के योग्य है।"

लिखा भी सुन्दरदासजी ने बहुत अधिक है। सारी पद्य-सख्या इनकी ३७८८ है।

छन्द ५२ प्रकार के इन्होंने लिखे है। १४ छद चित्रकाव्य के भी है और २७ रागो मे पदो की भी सरस रचना इन्होने की है।

स्वामी सुन्दरदासजी की बानी क्या भाव, क्या भाषा, क्या अध्यात्म सभी दृष्टियों से अति सरस और सरल तथापि गूढ है। सत-साहित्य में इस बानी का एक निराला ही स्थान है, इसमे सदेह नही।

आधार

सुन्दर-ग्रंथावली (प्रथम तथा द्वितीय खण्ड)—स० पुरोहित श्रीहरि नारायण शर्मा, विद्या-भूषण—राजस्थान रिसर्च सोसाइटी, कलकत्ता

स्वामी सुन्दरदास

ज्ञान-समुद्र

छप्पय

प्रथम बन्दि परब्रह्म परम आनंदस्वरूपं।
दुतिय बन्दि गुरुदेव दियौ जिह ज्ञान अनूपं॥
त्रितिय बंदि सब संत जोरिकर तिनके आगय।
मन बच काय प्रणाम करत भय भ्रम सब भागय॥
इहिं भांति मंगलाचरण करि, सुन्दरग्रन्थ बखानिये।
तह विघ्न न कोऊ उप्पजय, यह निश्चयकरि मानिये॥१॥

सुत कलत्र निज देह आपुकौं बंधन जानत ।
छूटौं कौंन उपाय इहैं उर अन्तर आनत ।।
जन्ममरन की शंक रहै निशदिम मन माहीं ।
चतुराशी के दुःख नहीं कछु बरने जाहीं ।।
इहिं भांति रहै सोचत सदा, संतनि कौं पूछत फिरै ।
को है ऐसो सद्गुरु कहीं, जो मेरौ कारय करै ।।२।।

रोडा

चित्त ब्रह्म लयलीन नित्य शीतल हि सुहृदय ।
क्रोधरहित सब साधु साधु-पद नाहिंन निर्दय ।।
अहंकार नहिं लेश महान सबनि सुख दिज्जय ।
शिष्य परख्य विचारि जगत महि सो गुरु किज्जय ।।३।।

छप्पय

सदा प्रसन्न सुभाव प्रगट सर्वोपरि राजय ।
तृप्त ज्ञान विज्ञान अचल कूटस्थ विराजय ।।
सुखनिधान सर्वज्ञ मान अपमान न जानै ।
सारासार बिबेक सकल मिथ्या भ्रम भानै ।।
पुनि भिद्यन्ते हृदिग्रन्थि कौं, छिद्यन्ते सबसंशयं ।
कहि सुन्दर सो सद्गुरु सही, चिदानंदघनचिन्मयं ।।४।।

---

२. कलत्र=स्त्री । चतुराशी=चौरासी लाख योनियां । कारय=कार्य, माया के बन्धन से छुटकारा ।

३. सुहृद=शुद्ध सात्त्विक मनवाला । साध=साधन । निर्दय=करुणारहित । दिज्जय=देता हो । किज्जय=किया जाये ।

४. राजय=शोभित । कूटस्थ=नित्य, स्थिर । भानै=विनष्ट करता हो । भिद्यन्ते=तोडता या खोलता हो । हृदि-ग्रंथि=आत्मा और परमात्मा के बीच की द्वैतबुद्धि । छिद्यन्ते=नष्ट होते हो ।

मिलाइए—तृप्त''' विराजय=“ज्ञानविज्ञानतृप्तात्मा कूटस्थो विजितेन्द्रिय”—गीता ।

सोरठा

ऐसे गुरु पहिं आइ, प्रश्न करै कर जोरिकैं।
शिष्य मुकति ह्वै जाइ, संशय कोऊ नां रहै ॥५॥

चौपाई

खोजत खोजत सद्गुरु पाया। भूरिभाग्य जाग्यौं शिष आया।
देखत दृष्टि भयो आनन्दा। यह तौ कृपा करी गोविन्दा ॥६॥

सोरठा

शिष्य सुनाऊँ तोहि, प्रेम-लक्षणा भक्ति कौं।
सावधान अब होहि, जो तेरैं सिर भाग्य है ॥७॥

इंदव

प्रेम लग्यौ परमेश्वर सों तब भूलि गयौ सब ही घरबारा।
ज्यौं जनमत्त फिरैं जित ही तित, नैकु रही न शरीर-सँभारा॥
स्वास उस्वास उठैं सब रोम, चलै दृग नीर अखंडित धारा।
सुन्दर कौन करै नवधा विधि, छाकि पर्यौ रस पी मतवारा ॥८॥

नराय

प्रेमाधीना छाक्या डोलै। क्यौं का क्यौं ही बानी बोलै।
जैसे गोपी भूली देहा। ताकौं चाहे जासौं नेहा ॥९॥

छप्पय

कहहूँ कै हँसि उठय नृत्यकरि रोवन लागय।
कबहूँ गदगद कंठ शब्द निकसै नहिं आगय।
कबहूँ हृदय उमंगि बहुत उच्चय स्वर गावै।
कबहूँ कै मुख मौंनि मग्न ऐसैं रहि जावै।
तौ चित्तवृत्य हरि सौं लगी, सावधान कैसैं रहैं।
यह प्रेमलक्षणा भक्ति है शिष्य सुनहिं सद्गुरु कहै ॥१०॥

तथा-पुनि···संशयं="भिद्यते हृदयग्रंथिः छिद्यन्ते सर्वसंशयाः।"

८. उठै सब रोम=रोमांचित अर्थात् पुलकित हो जाये। नवधा=बंदन, अर्चन, दास्य, सख्य, आत्मनिवेदन आदि नौ प्रकार की भक्ति।

९. क्यों का क्यों=कुछ का कुछ, अटपटी।

१० वृत्य=वृत्ति लौ। सावधान=सचेत होश में।

मनहर

नीर बिनु मीन दुखी, छीर बिनु शिशु जैसैं,
पीर जाकै औषद बिनु कैसैं रह्यो जात हैं।
चातक ज्यौं स्वांति-बूंद, चंद कौं चकोर जैसैं,
चन्दन की चाह करि सर्प अकुलात है।
निर्धन ज्यौं धन चाहै, कामिनी कौं कन्त चाहै,
ऐसी जाकै चाह ताकौं कछु न सुहात है।
प्रेम कौ प्रभाव ऐसौ, प्रेम तहाँ नेम कैसौ,
सुन्दर कहत यह प्रेम ही की बात है॥११॥

दोहा

प्रेमभक्ति यह मैं कही, जानैं बिरला कोइ।
हृदय कलुषता क्यौं रहै, जा घट ऐसी होइ॥१२॥

दोहा

मनकरिं दोष न कीजिये, बचन न लावै कर्म।
घात न करिये देह सौं, इहे अहिंसा धर्म॥१३॥

सोरठा

सत्य सु दोइ प्रकार, एक सत्य जो बोलिये।
मिथ्या सब संसार, दूसर सत्य सु ब्रह्म है॥१४॥

मालती

छमा अब सुनहि शिष मोसौं, सहनता कहौं सब तोसौं।
दुष्ट दुख देहि जो भारी, दुसह मुख वचन पुरि गारी॥
कदे नहि छोभ कौं पावै, उदधि महि अग्नि बुझि जावै।
बहुरि तन त्रास दे कोऊ, छमा करि सहै पुनि सोऊ॥१५॥

---

११. पीर=पीड़ा। अकुलात है=बेचैन हो जाता है। चाह=तीव्र लालसा। नेम=विधि-निषेध के नियम।

१३. मनिकरि=मन से, मानसिक। दोष=द्वेष।

१५. कदे=कभी भी। छोभ=रोष, आपेसे बाहर हो जाने का भाव।
उदधि…जावै=शांतिरूपी समुद्रमें क्रोधरूपी अग्नि अपने आप शांत हो जाती है।

चौपइया

यह कोमल हृदय रहै निशबासर बोलै कोमल बानी।
पुनि कोमल दृष्टि निहारैं सबकौं कोमलता सुखदानी॥
ज्यौं कोमल भूमि करै नीकी विधि बीज वृद्धि ह्वै आवै॥
त्यौं इहै आर्ज्जव-लक्षण सुनि शिष योगसिद्धि कौं पावै॥१६॥

सवइया

नाना सुख-संसार-जनित जे तिनहिं देखि लोलुप नहिं होइ।
स्वर्गादिक की करिय न इच्छा इहामुत्र त्यागै सुख दोइ॥
पूजा मान बड़ाई आदर निंदा करै आइकैं कोइ।
या प्रकार मति निश्चल जाकी सुन्दर दृढमति कहिये सोइ॥१७॥

नहिं हर्ष शोक न सुखं दुखं नहीं मान अमानियो।
पुनि मनौं इन्द्रिय वृत्य नष्टं गतं ज्ञान अज्ञानयो।
नहि जाति कुल नहिं वर्ण आश्रम जीव ब्रह्म न जानिये।
कछु भिन्न भाव रहै न कोऊ सा समाधि बखानिये॥१८॥

सद्गुरु-महिमा निसांनी

दोहा

अद्भुत ख्याल रच्यौ प्रभू, बहुत भाँति विस्तार।
संत किये उपदेश कौं, पार-उतारनहार॥१॥

निसानी

पार उतारनहार जी गुरु दादू आया॥
जीवनि के उद्धार कौं हरि आपु पठाया॥२॥

---

१६. आर्ज्जव=कोमलता।

१७. संसार-जनित=संसारी माया-मोह से उत्पन्न। इहामुत्र=इह+अमुत्र, यह लोक और परलोक। दृढ मति=स्थिरबुद्धि।

१८. अमानियो=अनादर भी। वृत्य=वृत्ति। जीव ब्रह्म न जानिये=जीव और ब्रह्म में भेद नहीं जाना जाता।

रामनाम उपदेश दे भ्रम दूरि उड़ाया।
ज्ञान भगति बैराग हू ये तीन दृढाया ॥३॥

विमुख जीव सन्मुख किये हरिपंथ चलाया।
झूठ क्रिया सब छाड़िकै प्रभु सत्य बताया ॥४॥

माया मिथ्या सांपिनी जिनि सब जग खाया।
मुख तें मंत्र उचारिकैं उनि मृतक जिवाया ॥५॥

बूड़त काली धार में गहि नाव चढाया।
पैली पार उतारिकैं निज पद पहुँचाया ॥६॥

परउपकारी हैं इसे मोटी निधि ल्याया।
जन्म जन्म की भूख थी सब जीव अघाया ॥७॥

दयावंत दुखमेटना सुखदायक भाया।
शीलवंत साचै मतै संतोष गहाया ॥८॥

रवि ज्यौं प्रगट प्रकाश में जिनि तिमिर मिटाया।
शशि ज्यौं शीतल है सदा रस अमृत पिवाया ॥९॥

अति गंभीर समुद्र ज्यौं तरवर ज्यौं छाया।
बानी बरिषै मेघ ज्यूँ आनन्द बढ़ाया ॥१०॥

चंदन ज्यौं लपटै बनी द्रुम नाम गमाया।
पारस जैसैं परस तैं कंचन ह्वै काया ॥११॥

---

२. पठाया=भेजा।

४. सन्मुख किये=भगवान् की शरण में लाये।

६. पैली पार=उस पार, माया से परे। निजपद=ब्रह्मानुभूति की अवस्था।

७. इसे=ऐसी। मोटी=बहुत बड़ी, अनमोल। अघाया=तृप्त कर दिया।

८. भाया=प्रिय।

११. चन्दन 'गमाया' कहते है कि चन्दन जिस वृक्ष से लिपट जाता है उसे चंदन बना देता है, उसका फिर पहले का नाम नहीं रहता, वह तद्रूप हो जाता है।

चुम्बक ज्यौं लोहा लगैं भृति अंगि लगाया ।
हीरा ज्यौं अति जगमगै निरमोल निपाया ॥१२॥
कामधेनु चिंतामनी तरु कल्प कहाया ।
सबकी पूरै कामनां जिनि जैसा ध्याया ॥१३॥
अडिग इसा है मेरु ज्यौं डोलै न डुलाया ।
भूमि जिसा भारी खवां जिनि सहन सिखाया ॥१४॥
निर्मल जैसा नीर है मल दूर बहाया ।
तेजवन्त पावक जिसा भय-शीत नसाया ॥१५॥
पवन जिसा सब सरिखा को रंक न राया ।
ब्यौम जिसा हृदये बड़ा कहुँ पार न पाया ॥१६॥
टेक जिसी प्रहलाद है ध्रुव ज्यौं मन लाया ।
ज्ञान गह्यो शुकदेव ज्यौं परब्रह्म दिखाया ॥१७॥
योग युगति गोरक्ष ज्यौं धंधा सुरझाया ।
हद छाड़ि बेहद मैं अनहद बजाया ॥१८॥
जैसैं नाम कबीरजी यौं साधु कहाया ।
आदि अन्तलौं आइकैं रमि राम समाया ॥१९॥
सद्गुरु-महिमा कहन कौं मैं बहुत लुभाया ।
मुख में जिह्वा एक ही तातें पछिताया ॥२०॥
नमस्कार गुरुदेव कौं जिनि बंदि छुड़ाया ।
दादू दीन दयाल का सुन्दर जस गाया ॥२१॥

---

१२. भृति=भरण-पोषण करके । निरमोल=अनमोल । निपाया=बना दिया ।

१४. इसा=ऐसा । मेरु=सुमेरु पर्वत । जिसा=जैसा, समान । खवां=क्षमा । सहन=सहिष्णुता ।

१६. सरिखा=सदृश । को=कोई । ब्यौम=आकाश । बड़ा=उदार ।

१७. मनलाया=चित्त लगाया ।

१८. गोरक्ष=गोरखनाथ । धन्धा=जगजाल, द्वैतबुद्धि ।

दोहा

सद्गुरु की महिमा कही, मति अपनी उनमान ।
सुन्दर अमित अनंत गुन, को करि सकै बखान ॥२२॥

भ्रमविध्वंस अष्टक

दोहा

सुन्दर देख्या सोधिकैं सब काहू का ज्ञान ।
कोई मन मानै नहीं, बिना निरंजन ध्यान ॥१॥
षट दरसन हम खोजिया, योगी जंगम शेख ।
संन्यासी अरु सेवड़ा, पण्डित भक्ता भेख ॥२॥

त्रिभगी

तौ भक्त न भावैं, दूरि बतावैं, तीरथ जावैं फिरि आवैं ।
जी कृत्रिम गावैं, पूजा लावैं, झूठ दिढावैं बहिकावैं ॥
अरु माला नांवैं, तिलक बनावैं, क्यौं पावैं गुरुबिन गैला ।
दादू का चेला, भरम पछेला, सुन्दर न्यारा ह्वै खेला ॥३॥
तौ पंडित आये, बेद भुलाये, षटकरमाये तृपताये ।
जी संध्या गाये, पढि उरझाये, रानाराये ठगि खाये ॥
अरु बड़े कहाये, गर्व न जाये, राम न पाये थाघेला ।
दादू का चेला, भरम पछेला, सुन्दर न्यारा ह्वै खेला ॥४॥
तौ ए मत हेरे, सबहिन केरे, गहिगहि गेरे बहुतेरे ।
तब सतगुरु टेरे, कानन मेरे, जाते फेरे आ घेरे ॥

---

२२. मति उनमान=बुद्धि के अनुसार ।

१. कोई मन मानै नही=किसी पर भी मन जमता नही ।

२. षट दरसन=छह शास्त्र । सेवडा=जैन संन्यासी ।

३. कृत्रिम=मनुष्य-निर्मित मूर्तियां । दिढावैं=विश्वास जमाते है । नावैं=डालते या पहनते हैं । गैला=ईश्वर से मिलने का रास्ता; गेहला अर्थात् मूर्ख । भरम-पछेला= भ्रम अर्थात् अविद्या को पछाड देनेवाला । न्यारा=अनासक्त ।

४. षट करमाये=ब्राह्मणों के षट् कर्मों में लग गये (वेद पढना, वेद पढाना, यज्ञ करना, यज्ञ कराना, दान देना, दान लेना ये षट कर्म । तृपताये=तर्पण इत्यादि कर्म किये । थाघेला=पता लग गया ।

उन सूर सबेरे, उदै किये रे, सबै अँधेरे नाशेला।
दादू का चेला भरम पछेला, सुन्दर न्यारा ह्वै खेला ॥५॥

रामाष्टक

मोहिनी

आदि तुम ही हुते अवर नहिं कोइ जी।
अकह अति अगह अति बर्न नहिं होइ जी॥
रूप नहिं रेख नहिं श्वेत नहिं श्याम जी।
तुम सदा एकरस रामजी, रामजी ॥१॥

प्रथम ही आप तैं मूल माया करी।
बहुरि वह कुब्बि करि त्रिगुन ह्वै बिस्तरी॥
पंच हू तत्त्व तैं रूप अरु नाम जी।
तुम सदा एकरस रामजी रामजी ॥२॥

भ्रमत संसार कतहूँ नहीं वोर जी।
तीनहू लोक में काल कौ सोर जी॥
मनुषतन यह बड़े भाग्य तैं पाम जी।
तुम सदा एकरस रामजी रामजी ॥३॥

पूरि दशहू दिशा सब्बं मैं आप जी।
स्तुतिहि को करि सकै पुन्य नहिं पाप जी॥
दास सुन्दर कहै देहु विश्राम जी।
तुम सदा एकरस रामजी रामजी ॥४॥

---

५. गेरे=फेक दिये। घेरे=मोड लिया (सांसारिक विषयों की ओर से) सूर=सूर्य। नाशेला=नष्ट कर दिया।

१. अकह=अकथनीय, अवर्णनीय। अगह=जो मन और इन्द्रियो से ग्रहण न किया जा सके। बर्न=वर्णन।

२. कुब्बि करि=अर्थ स्पष्ट नही होता है, तथापि सुन्दर-ग्रन्थावली के विद्वान् संपादक ने इसका अर्थ किया है 'विकृत या फैलना।'

३. वोर=अंत। सोर=शोर। पाम=पाते है।

सहजानन्द

चौपाई

चिन्ह बिना सब कोई आये । इहां भये दोइ पंथ चलाये ।
हिंदू तुरक उठ्यौं यह भर्मा । हम दोऊ का छाड्या धर्मा ॥
नां मैं कृत्तम कर्म बखानौं । नां रसूल का कलमा जानौं ।
नां मैं तीन ताग गलि नाऊँ । नां मैं सुन्नत करि बौराऊँ ।
माला जपौं न तसबी फेरौं । तीरथ जाऊँ न मक्का हेरौं ॥
न्हाइ धोइ नहिं करूँ अचारा । ऊजू तैं पुनि हूवा न्यारा ।
एकादशी न ब्रतहि बिचारौं । रौजा धरौं न बंग पुकारौं ।
देव पितर नहिं पीर मनाऊँ । धरती गडौं न देह जलाऊँ ॥१॥

दोहा

हिंदू की हदि छाड़िकै, तजी तुरक की राह ।
सुन्दर सहजै चीन्हियां एकै राम अलाह ॥२॥

हरिबोल चितावनी

दोहा

मेरी मेरी करत हैं, देखहु नर की भोल ।
फिरि पीछे पछिताहुगे (सु) हरि बोलै हरि बोल ॥१॥

---

१. भर्मा=भ्रम, भेदभाव । कृत्तम=कृत्रिम, बनावटी, बाह्याडंबर । रसूल=पैगंबर मुहम्मद साहब । तीन ताग=जनेऊ । नाऊँ=डालता हूं, पहनता हूं । सुन्नत=मुसलमानी संस्कार, जिसमें मूत्रेन्द्रिय के अगले भाग का कुछ चमड़ा काट देते है । भीतरी अर्थ है आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत का पालन । बौराऊँ= बावला बनूं । तसबी=तसबीह, माला जिसे मुसलमान फेरा करते हे । हेरौं=ध्यान में नहीं लाता हूं । ऊजू=वजू; नमाज पढ़ने से पहले हाथ-मुंह धोने की क्रिया । बंग=बांग, अजान; नमाज पढने से पहले मुल्ला मसजिद से जोर-जोर से 'अल्लाहो अकबर' की जो आवाज़ लगाता हे उसे 'बांग देना' कहते हैं ।

२. चीन्हियां=पहचान लिया ।

१. भोल=भूल, भोलापन ।

किये रुपइया एकठे, चौकूँटे अरु गोल ।
रीते हाथिन वै गये, (सु) हरि बोलौ हरि बोल ।।२।।

चहलपहल-सी देखिकैं, मान्यौ बहुत अंदोल ।
काल अचानक लै गयौ (सु) हरि बोलौ हरि बोल ।।३।।

सुकृत कोऊ ना कियौ, राच्यौ झँझट झोल ।
अंति चल्यौ सब छाड़िकैं (सु) हरि बोलौ हरि बोल ।।४।।

मूंछ मरोरत डोलई, ऐंठ्यौ फिरत ठठोल ।
ढेरी ह्वै है राख की, (सु) हरि बोलौ हरि बोल ।।५।।

पैंडो ताक्यौ नरक कौ, सुनि-सुनि कथा कपोल ।
बूड़े काली धार में, (सु) हरि बोलौ हरि बोल ।।६।।

माल मुलक हय गय घने, कामिनि करत कलोल ।
कतहूँ गये बिलाइकैं.(सु) हरि बोलौ हरि बोल ।।७।।

मोटे मीर कहावते, करते बहुत डफोल ।
मरद गरद में मिलि गये (सु) हरि बोलौ हरि बोल ।।८।।

ऐसी गति संसार की, अजहूं राखत जोल ।
आपु मुये ही जानिहै,(सु) हरि बोलौ हरि बोल ।।९।।

बांकि बुराई छाड़ि सब, गांठ हृदै की खोल ।
बेगि बिलंब क्यों बनत है,(सु)हरि बोलौ हरि बोल।।१०।।

---

२. चौकूँटे=चार खूंट के याने चौकोर रुपये ।

३. अंदोल=आनन्द-कल्लोल, मौज ।

४. राच्यौ=रंग गया । झोल=टटा ।

५ ठठोल=हँसी-मजाक ।

६. पैंडो=रास्ता । कपोल=झूठा ।

७. गय=गज ।

८. मोटे मीर=बड़े रईस । डफोल=डींग, आडम्बर । गरद=धूल ।

९. जोल=('सुंदर-ग्रंथावली' के अनुसार) ज़ोर, शक्ति का घमंड ।

१०. बांकि=बांकापन ।

हिरदै भीतर पैठिकरि, अंतःकरण बिरोल।
को तेरौ तू कौन कौ,(सु)हरि बोलौ हरि बोल ॥११॥
तेरौ तेरे पास है, अपनैं माँहि टटोल।
राई घटै न तिल बढ़ै,(सु)हरि बोलौ हरि बोल ॥१२॥
सुन्दरदास पुकारिकैं, कहत बजायें ढोल।
चेति सकै तौ चेतिले,(सु)हरि बोलौ हरि बोल ॥१३॥

तर्क चितावनी

चौपाई

पूरण ब्रह्म निरंजन राया। जिनि यहु नखसिख साज बनाया॥
ता कहुँ भूलि गये बिभचारी। अइया, मनुषहुँ बूझि तुम्हारी ॥१॥
बालापन महिं भये अचेता। मात पिता सौं बाँध्यों हेता।
प्रथमहिं चूके सुधि न सँभारी। अइया, मनुषहुँ बूझि तुम्हारी ॥२॥
भयौ किशोर काम जब जाग्यौ। परदारा को निरखन लाग्यौ।
ब्याह करन की मनमहिं धारी। अइया, मनुषहुँ बूझि तुम्हारी ॥३॥
मात पिता जोरचौ सनबंधा। कै कछु आपुहि कीयो धंधा।
लैकरि पांस गरे महिं डारी। अइया, मनषहुँ बूझि तुम्हारी ॥४॥
ता पीछे जोबन मदमाता। अति गति ह्वै विषया सन राता।
अपनी गनै न पर की नारी। अइया, मनुषहुँ बूझि तुम्हारी ॥५॥
गर्ब करै पुनि ऐंठचौ डोलै। मुख तें जो भावै सो बोलै।
लाज कानि सब पटकि पछारी। अइया, मनुषहुँ बूझि तुम्हारी ॥६॥

---

११. बिरोल=मंथनकर।

१. राया=राजा, स्वामी। विभचारी=विषयानुरक्त; नास्तिक। अइया=अय, हे भाई। मनुषहुं=मनुष्यत्व पाकर भी। बूझि तुम्हारी=तुम्हारी ऐसी समझ है (मूर्खता-पूर्ण)!

२. हेता=प्रेम, नाता।

४. सनबंधा=विवाह-सबन्ध। पांस=पाश, फदा।

५. अतिगति=अत्यन्त। सन=से।

६. कानि=मर्यादा, शील।

आठहुँ पहर बिषैरस-भीनां । तन मन धन जुवती कों दीनां ।
ऐसी बिषया लागी प्यारी । अइया, मनुषहुँ बूझि तुम्हारी ॥७॥
कामिनि संग रह्यौ लपटाई । मानहुँ इहै मोक्ष हम पाई ।
कबहूँ नेक होइ जिनि न्यारी । अइया, मनुषहुँ बूझि तुम्हारी ॥८॥
जौ त्रिय कहै सु अति प्रिय लागै । निशिदिन कपि ज्यौं नाचत आगैं ।
मारउ सहै सहै पुनि गारी । अइया, मनुषहुँ बूझि तुम्हारी ॥९॥
औरउ कर्म करै बहुतेरा । जन जन कै आगै हुइ चेरा ।
चोरी करै करै बटपारी । अइया, मनुषहुँ बूझि तुम्हारी ॥१०॥
ज्यौं त्यौंकरि कछु घर मैं आनैं । बनिता आगै दीन बखानैं ।
हौं तेरौ नित आज्ञाकारा । अइया, मनषहुं बूझि तुम्हारी ॥११॥
पुत्र पौत्र बंध्यौ परिवारा । मेरे मेरे कहै गँवारा ।
करत बड़ाई सभा मझारी । अइया, मनुषहुँ बूझि तुम्हारी ॥१२॥
उद्दिम करि-करि जोरी माया । कै कछु भाग्य लिख्यौ सो पाया ।
अजहूँ तृष्णा अधिक पसारी । अइया, मनषहुं बूझि तुम्हारी ॥१३॥
ऐसैं करत बुढापा आया । तब काठी करि पकरी माया ।
कोड़ी खरचत कसकै भारी । अइया, मनुषहूँ बूझि तुम्हारी ॥१४॥
मेरे बेटे पोते खैहैं । मेरी संची कोई न लैहैं ।
ईश्वर की गति कछु न विचारी । अइया, मनषहुं बूझि तुम्हारी ॥१५॥
निपट वृद्ध जब भयौ शरीरा । नैंननि आवन लाग्यौ नीरा ।
पौरी परचौ करै रखवारी । अइया, मनुषहुं बूझि तुम्हारी ॥१६॥

---

७. विषया=कामवासना ।
८. जिनि=नहीं ।
९. मारउ=मार भी ।
१०. चेरा=दास । बटपारी=राहचलते डकैती ।
११. दीन बखानै=दीनता से बोलता है ।
१४. काठी=लाठी ।
१५. संची=जोड़ी हुई दौलत ।
१६. पौरी=दरवाज़े के पास की कोठरी । रखवारी=घर की चौकीदारी ।

कानहुँ सुनै न आँखहुँ सूझै। कहैं और को औरै बूझै।
अब तौ भई बहुत बिधि ख्वारी। अइया, मनुषहुँ बूझि तुम्हारी ॥१७॥
बेटा बहू नजीक न आवै। तूँ तौ मति चल कहि समुझावै।
टूक देहि ज्यौं स्वान बिलारी। अइया, मनुषहुँ बूझि तुम्हारी ॥१८॥
बकतौ रहै जीभ नहिं मोरै। मरिहुँ न जाइ खाटली तोरै।
तैं खखारि सब ठौर बिगारी। अइया, मनुषहुँ बूझि तुम्हारी ॥१९॥
खिजिकरि उठै सुनै जब ऐसी। गारि देहि मुख भावै तैसी।
भौंडो रांड करकसा दारी। अइया, मनुषहुँ बूझि तुम्हारी ॥२०॥
उठि न सकै कंपै कर चरना। या जीवन तैं नीकौ मरना।
तौहूँ मन मैं अति अहंकारी। अइया, मनुषहुँ बूझि तुम्हारी ॥२१॥
अब तौ निकट मौति चलि आई। रोक्यौ कण्ठ पित्त कफ बाई।
जमदूतनि पासी बिस्तारी। अइया, मनुषहुँ बूझि तुम्हारी ॥२२॥
निकसत प्रान सैंन समुझावै। नारायन कौ नाम न आवै।
देखि सबन कौं आँसू ढारी। अइया, मनुषहुँ बूझि तुम्हारी ॥२३॥
हंस बटाऊ किया पयाना। मृतक देखिकरि सबै डराना।
घर महि तैं लै जाहु निकारी। अइया, मनुषहुँ बूझि तुम्हारी ॥२४॥
लोग कुटुम्ब सबै मिलि आये। आपुन रोये और रुलाये।
लैकर चाले धाह उचारी। अइया, मनुषहुँ बूझि तुम्हारी ॥२५॥
लै मसान मैं आये जबही। कीये काठ एकठे सबही।
अग्नि लगाइ दियौं तन जारी। अइया, मनुषहुँ बूझि तुम्हारी ॥२६॥

---

१७. ख्वारी=बर्बादी, खराबी।

१८. टूक=रोटी का टुकड़ा। बिलारी=बिल्ली।

१९. जीभ नहीं मोरै=चुप भी नहीं होता। खाटली तोरै=चारपाइ पड़े-पड़े तोड़ता है। खखारि=थूक-थूककर।

२०. भौंडी=फूहड। दारी=स्त्री के लिए एक गाली।

२२. बाई=बात। पासी बिस्तारी=फाँसी डालदी।

२३. सैन=आँख का इशारा।

२४. हंसबटाऊ=जीवात्मारूपी पथिक। पयाना=प्रयाण, कूच।

२५. धाह उचारी=धाड़ मारकर।

**संचि संचिकरि राखी माया । औरहि दिया न आपु न पाया ।
हाथ झारि ज्यौं चल्यौ जुवारी । अइया, मनुषहुं बूझि तुम्हारी ।।२७।।
सुकृत न कियौ न राम संभारयौ । ऐसौ जन्म अमोलिक हारयौ ।
क्यौं न मुक्ति की पौरि उघारी । अइया,मनुषहुँ बूझि तुम्हारी ।।२८।।
सकलसिरोमनि है नरदेहा । नारायन कौ निज घर येहा ।
जामहि पइये देव मुरारी । अइया, मनुषहुं बूझि तुम्हारी ।।२९।।
चेति सकै सो चेतहु भाई । जिनि डहकाओ रामदुहाई ।
सुंदरदास कहै जु पुकारी । अइया, मनुषहुँ बूझि तुम्हारी ।।३०।।**

पवंगम *

**पिय के बिरह बियोग भई हूँ बावरी ।
शीतल मंद सुगन्ध सुहात न बाव री ।।
अब मुहि दोष न कोइ परौंगी बावरी ।
(परि हां) सुन्दर चहुँ दिश बिरह सु घेरी बावरी ।।१।।
पिय नैंननि की वोर सैंन मुहि दे हरी ।
फेरि न आये दूवार न मेरी देहरी ।।
विरह सु अन्दर पैठि जरावत देह री ।
(परि हां) सुंदर बिरहिन दुखित सीख का देह री ।।२।।**

---

२७. सचि संचि=जोड-जोड़कर । पाया=भोगा ।

२८. संभार्यो=स्मरण किया । क्यौ न ...उघारी—मोक्ष का द्वार क्यो नही खोला ? ससार से छूटने का उपाय क्यो नहीं किया ?

* इन पवगम छन्दों में 'यमक अलकार' का चमत्कार दिखाया गया है । अर्थ करने में कही-कही पर 'सुन्दर-ग्रथावर्ली' का आधार लिया गया है ।

१. बावरी=इसके क्रमशः ४ अर्थ किये जाते हे —(१) बावली याने पगली (२) वायु+अरी, (३) बावडी (अब मुझे कोई दोष न देना, मै बावडी में गिरकर प्राण दे दूँगी), (४) भौंरी (अर्थात् विरह की भौर में फँस गई हूं) ।

२. वोर=ओर । देहरी=इसके क्रमशः ४ अर्थ किये जाते है–
(१) दे हरो, अर्थात् आंखों से इशारा देकर मेरा मन हर लिया, (२) देहली, (३) देह (शरीर) को री सखी, (४) देती है+अरी ।

दूभर रैनि बिहाय अकेली सेजरी।
जिनकै संगि न पीव बिरहनी से जरी॥
बिरहै संकल वाहि बिचारीं से जरी।
(हरि हां) सुन्दर दुःख अपार न पाऊँ से जरी॥३॥

अडिला *

सुन्दर बिरहिनि बिरहै वारो। प्रीति करत किनहू नहिं वारी।
पिय कौं फिरी बाग अरु वारी। अब तौ आइ पहूँची वारी॥१॥
मैं तौ प्रीति करत नहि जानां। पीव सु लै आये नहिं जानां।
निशदिन बिरह जरावत जानां। सुन्दर अब पिय ही पै जानां॥२॥
अब सखि अपना मन बसि करना। वह तौ पिय किस ही के कर ना।
अपनी खुसी करै सो करना। तौ सुन्दर किस ही का कर ना॥३॥
घर में बहुत भई जब माया। तब तौ फूल्यौ अंग न माया।
बहुरि त्रिया सौं बाँधी माया। सुंदर छाड़ि जगत की माया॥४॥
खैंचि कमरि सौं बाँधा पटका। अधपति हुवा बैठि करि पटका।
काल अचानक मारया पटका। सुंदर पकरि जिमीं सौं पटका॥५॥

---

३. दूभर=कठिन। सेजरी=इसके क्रमश. ४ अर्थ किये जाते है–
(१) शय्या+री, अरी, (२)से (वे)+जरी,अर्थात् जल गई, (३) वे बिरहिणी स्त्रियाँ विरह की सांकल से जडी याने जकड दी गई, (४) से (वह) जरी यानै जडी-बूटी।

* इन अडिला छन्दो में यमक अलकार का चमत्कार दिखाया गया है। अर्थ लगाने में 'सुन्दर-ग्रंथावली' का आधार लिया गया है।

१. वारी=क्रमशः ४ अर्थ—(१) जलादी, (२) रोकी, (३) बाडी, वाटिका,(४) समय, घडी।

२. जाना=क्रमशः ४ अर्थ-(१) जाना, समझा (२) यान, सवारी, (३) जान, प्राण, (४) चले जाना है।

३. करना=क्रमशः ४ अर्थ—(१) करना है, (२) हाथ में+नही (३) करनेयोग्य, कर्त्तव्य, (४) महसूल या दण्ड+नही।

४. माया=क्रमशः ४ अर्थ—(१) संपत्ति, (२) समाया, (३) प्रीति, (४) झगडा= मोह।

५. पटका=क्रमशः ४ अर्थ—(१) कमरबन्द, (२) पाट, राजसिहासन, (३) चांटा, थप्पड (४) गिराया।

जामैं हुतौ सबनि कौ भागा । भांडा सोई भ्रम का भागा ।
अब तौ मस्तक जाग्यौ भागा । सुंदर छाड़ि जगत कौं भागा ॥६॥
जौ तौ तू प्रभुजी कौ चरना । तौ तूं भयौं बिमुख हरिचरना ।
अब तू पहिरि कमरि मैं चरना । सुंदर इत उत फिरि कछु चर ना ॥७॥

मडिला*

बंधन भयौ प्रीति करि रामा । मुक्त होइ जौ सुमिरै रामा ।
निशदिन याही करै बिचारा । सुंदर छूटै जीव बिचारा ॥१॥
औरहिं दई न आपुन खाई । माया धरी खोदिकर खाई ।
मेल्ही रही सूम की थाती । सुंदर दी आगै कौं थाती ॥२॥
जो तूं देहिं धणीं कौं लेखा । तौ तूं जो जानै सो लेखा ।
जो तोपै नहिं आवै जाबा । तौ सुंदर टूटेगी जाबा ॥३॥
अधो सीस ऊरध कौं पाया । राज पाट कछु चाहै पाया ।
भीतरि भर्‌या कुबुधि सौं भांडा । सुंदर राम बिनां है भांडा ॥४॥
जो सब तें हूवा बैरागी । सो क्यौं होइ देह बैरागी ।
निशदिन रहै ब्रह्म सौं राता । सुंदर सेत पीत नहिं राता ॥५॥

---

६. भागा=क्रमशः ४ अर्थ —(१) हिस्सा, (२) फूट गया. (३) भाग्य, (४) भाग गया, विरक्त हो गया ।

७. चरना=क्रमशः ४ अर्थ—(१) दास, (२) चरणों से, (३) कमरबद (तैयार हो जा) (४) चल याने भटक +नहीं ।

* इन मडिला छन्दो में भी यमक अलंकार का चमत्कार दिखाया गया है । अर्थ लगाने में 'सुन्दर-ग्रंथावली' से सहायता ली गई है ।

१. रामा=(१) स्त्री, (२) राम । विचारा=(१) बिचार, चिंतन, (२) बेचारा असहाय ।

२. खाई=(१) भोगी, (२) गड्ढा । थाती=(१) धरोहर, जमा पूंजी ।

३. धणी=मालिक, ईश्वर । लेखा=(१) हिसाब. (२) ले+खा=लेकर खाले ; कर्मों का नाश करदे । जाबा=(१) जवाब, (२) जबाडी (दण्ड मिलेगा) ।

४. अधो=नीचे को । ऊरध=ऊर्ध्व, ऊपर को । पाया=(१) पैर, (२) प्राप्त करना चाहे । भांडा=(१) बर्तन, (२) कलंकित ।

५. वैरागी=(१) विरक्त, (२) विशेषरूप से रागी, अर्थात् अनुरागी । राता(१) अनुरक्त, (२) लाल ।

कथा कहै बहु भांति पुराणी । नीकी लागैं बात पुराणी ।
दोष जाइ जब छूटै रागा । सुंदर हरि रीझै सो रागा ॥६॥

सवैया

गुरदेव कौ अंग

इन्दव

धीरजवंत अडिग्ग जितेन्द्रिय निर्मल ज्ञान गह्यौ दृढ आदू ।
शील संतोष क्षमा जिनकै घट लागि रह्यौ सु अनाहद नादू ॥
भेष न पक्ष निरंतर लक्ष जु और नहीं कछु वाद-विवादू ।
ये सब लक्षन हैं जिन मांहि सु सुन्दर कै उर है गुरु दादू ॥१॥
कोउक गोरख कौं गुरु थापत कोउक दत्त दिगम्बर आदू ।
कोउक कंथर कोउ भरथ्थर कोउ कबीर कोउ राखत नादू ॥
कोउ कहै हरदास हमारे जु यौं करि ठानत वादविवादू ।
और तौ संत सबै सिरि ऊपर सुन्दर कै उर है गुरु दादू ॥२॥

गोविंद के किये जीव जात हैं रसातल कौं
गुरु-उपदेशे सु तौ छूटैं जमफंद तें ।
गोबिंद के किये जीव बस परे कर्मनि कैं,
गुरु के निवाजे सो फिरत हैं स्वच्छंद तें ॥

---

६. पुराणी=(१) पुराणों की, (२) प्राचीन । राग=(१) राग, विषयासक्ति, (२) राग, गायन; प्रेम ।

गुरुदेव कौ अग

१. अडिग्ग=निश्चल संकल्पवाले । आदू=आदि से ही, सनातन से । घट=अंतर में । अनाहद नादू=अनाहत शब्द, जिसे योगी समाधि की अवस्था में सुनता है । भेष=संप्रदाय विशेष का वेश ।

२. दत्त=दत्तात्रेय । आदू=आदिनाथ । कंथर=कंथर नामक एक महायोगी । भरथ्थर=भर्तृहरि । हरदास=निरंजन पंथ के आचार्य हरिदास । सिरिऊपर=प्रणम्य, वंदनीय ।

३. किये=रचे हुए । रसातल=नरक से आशय हैं । निवाजे=कृपा किये हुए, उद्धार

गोंविद् के किये जीव बूड़त भौसागर मैं,
सुन्दर कहत गुरु काढ़े दुखद्वंद तें।
औरऊ कहांलौं कछु मुख तें कहैं बताइ,
गुरु की तौ महिमा अधिक है गोविन्द तें ॥३॥

उपदेश-चितावनी कौ अंग

हंसाल

तौ सही चतुर तू जान परबीन अति परै जिनि पंजरै मोह-कूवा।
पाइ उत्तम जनम लाइलै चपल मन गाइ गोविंद गुन जीति जूवा।
आपुही आपु अज्ञान-नलनी बँध्यौ बिना प्रभु बिमुख कै बार मूवा।
दास सुन्दर कहै, परमपद तौ लहै "राम हरि राम हरि बोलि सूवा" ॥१॥
अवल उस्ताद के कदम की खाक हो हिरस बुगुजार सब छोड़ि फैना।
यार दिलदार दिल माहिं तूं याद कर, है तुझी पास तूं देखि नैना॥
जान का जान है जिंद का जिंद है, सखुन का सखुन कछु समुझि सैना।
दास सुन्दर कहै, सकल घट मैं रहै, "एक तूं एक तूं बोलि मैना" ॥२॥

श्रवनूं लै जाइ करि नाद की लै डारै पासि,
नैनवां लैजाइ करि रूप बसि करयौ है।
नथुवा लैजाइ करि बहुत सुंघावै फूल,
रसनूं लैजाइ करि स्वाद मन हर्यौ है॥
चरनूं लैजाइ करि नारी सौं सपर्श करै,
सुन्दर कोउक साध ठगनि तैं डर्यौ है।

किये हुए। स्वच्छन्द=निश्चिन्त; आत्मस्थित। बडत=डूबते हैं।

उपदेश-चितावनी कौ अंग

१. पजरै=देहरूपी पिंजड़े में। मोह-कूवा=अविद्यारूपी कुवां। लाइलै=लगाले। नलनी बंध्यो=नली को पकडे हुए है। मूवा=मरा। सूवा=जीव से आशय है।

२. अवल उस्ताद=सद्‌गुरु। खाक=धूल की तरह तुच्छ। हिरस=वासना। बुगुजार =त्यागदे। फैना=छलछन्द। जिद=जिदगी। सखुन=ज्ञानोपदेश से आशय है। सैना=सैन, संकेत (गुरु का)। मैना=जीवात्मा से आशय है।

३. नाद=मोहक प्रिय शब्द। पासि=फाँसी, मोहिनी। नथुवा=नाक। रसनूं=रसना,

काम ठग क्रोध ठग लोभ ठग मोह ठग,
ठगनि की नगरी मैं जीव आइ पर्यौ है ॥३॥

इदव

कौन कुबुद्धि भई घट अंतर तूं अपनौ प्रभु सौं मन चोरै ।
भूलि गयौ विषयासुख मैं सठ लालच लागि रह्यौ अति थोरै ॥
ज्यों कोउ कंचन छार मिलावत लै करि पाथर सौं नग फोरै ।
सुन्दर या नरदेह अमोलिक "तीर लगी नवका कत बोरै" ॥४॥

देहात्म-विछोह कौ अग

इन्दव

वै श्रवना रसना मुख वैसेहि नासिका वैसेहि वैसेहि अंखी ।
वै कर वै पग वै सब द्वार सु वै नख-सीस हि रोम असंखी ॥
वैसें हि देह परी पुनि दीसत एक बिना सब लागत खंखी ।
सुन्दर कोउ न जानि सकै यह "बोलत हो सु कहाँ गयौ पंखी" ॥१॥

मनहर

देह तौ प्रगट महिं ज्यौं कौ त्यौंहीं जानियत,
नैंन के झरौखे मांहि झाँकत न देखिये ।
नाक के झरौखे मांहि नैकु न सुबास लेत,
कान के झरौखे मांहिं सुनत न लेखिये ॥

जिह्वा । सपर्श=स्पर्श । कोउक=कोई विरला ।

४. मन चोरै=मन को चुराता है। छार=राख, धूल। नग=रत्न। तीर······बोरै=किनारे पर लगी नाव को क्यो डुबा रहा है ? तात्पर्य यह कि नर-देह पाकर मोक्ष तेरे लक्ष्य में होते हुए भी विषयों में फँसकर तू क्यो अपने जीवन को विफल कर रहा है ?

देहात्म-बिछोह कौ अंग

१. अंखी=आँखे। दीसत=दिखती है। खंखी=खोखली, सारहीन। पंखी=पक्षी ; जीव से आशय है।

२. प्रगट=प्रत्यक्ष। झरौखे=द्वार ; इन्द्रिय। सुबास=सुगंध। काहू=किसीभी। जातौहू न पेखिये=निकलते हुए भी देखने में नही आता है।

मुख के झरौखे मैं बचन न उचार होत,
जीभ हू कौ षटरस स्वाद न बिशेखिये।
सुन्दर कहत कोउ कौंन बिधि जानै ताहि,
कारौ पीरौ काहू द्वार जातौहू न पेखिये ॥२॥

तृष्णा कौ अंग

इन्दव

जौ दस बीस पचास भये सत होहिं हजारनि लाख मँगैगी ॥
कोटि अरब्ब खरब्ब असंखि पृथ्वीपति होन की पाह जगैगी ॥
स्वर्ग पताल कौ राज करौं तृसना अधिकी अति आगि लगैगी ॥
सुन्दर एक संतोष बिना सठ "तेरी तौ भूख न क्यौंहु भगैगी" ॥१॥
क्यौं जग मांहि फिरै झख मारत स्वारथ कौंन परी जिहिं जोलै ।
ज्यौं हरिहाइ गऊ नहिं मानत दूध दुह्यौ कछु सो पुनि ढोलै ॥
तूं अति चञ्चल हाथ न आवत नीकसि जाइ नहीं मुख बोलै ।
सुन्दर तोहि कह्यौ बर केतक "हे तृष्णा अब तूं मति डोलै" ॥२॥

देह-मलीनता गर्व-प्रहार कौ अंग

मनहर

जा शरीर माहिं तूं अनेक सुख मानि रह्यौ,
ताही तूं विचारि यामैं कौंन बात भली है।
मेद मज्जा मांस रग-रगनि मांहिं रकत,
पेट हू पिटारी सी मैं ठौर ठौर मली है ॥

तृष्णा कौ अंग

१. मँगैगी=(तृष्णा) मांगैगी, चाहेगी। पाह=तीव्र चाह। लगैगी=लगायगी। क्यौंहु=किसीभी तरह।

जोलै=अर्थ स्पष्ट नहीं होता है। हरिहाइ=हरा खेत चरनेवाली स्वच्छंद गाय। ढोलै=लुढका या ढुलका देती है। बर केतक=कितनी ही बार।

देह-मलीनता गर्व-प्रहार कौ अंग

१ रग रगनि माहिं=एक-एक नस में। मली=मैला ही। जिनि=नहीं। भगार=

हाड़नि सौं मुख भर्‌यौ हाड़िही के नैंन नाक,
हाथ पांव सोऊ सब हाड़ ही की नली है।
सुन्दर कहत, याहि देखि जिनि भूलै कोइ,
"भीतरि भंगार भरी ऊपर तैं कली है" ॥१॥

थूक रु लार भर्‌यौ मुख दीसत आँखि मैं गीज रु नाक मैं सेढ़ौ।
औरउ द्वार मलीन रहैं नित हाड़ के मांस के भीतरि बेढ़ौ॥
ऐसैं शरीर मैं बास कियौ तब एक से दीसत बांभन ढेढ़ौ।
सुन्दर गर्व कहा इतने पर "काहे कौं तूं नर चालत टेढ़ौ" ॥२॥

शृंगार-निंदा कौ अंग

कुण्डलिया

'रसिकप्रिया' 'रस-मंजरी' और 'सिंगार' हि जानि।
चतुराई करि बहुत बिधि बिषैं बनाई आनि॥
बिषै बनाई आनि लगत बिषियन कौं प्यारी।
जागै मदन प्रचण्ड सराहैं नखसिख नारी।
ज्यौं रोगी मिष्ठान्न खाइ रोगहि बिस्तारै।
सुन्दर यह गति होइ जु तौ 'रसिकप्रिया' धारै ॥१॥

कचरा, तुच्छ चीज। कली=कलई।

२. गीज=कीचड। सेढो=नाक का मैल। बेढौ=जाल, उलझन। ढेढौ=अछूत। टेढौ=ऐंठता हुआ।

शृंगार-निंदा कौ अंग

१. 'रसिकप्रिया'=महाकवि केशवदास का रचा नायिकाभेद का प्रसिद्ध रीति-ग्रन्थ। 'रस-मंजरी'=शृंगाररस-प्रधान एक संस्कृत ग्रन्थ। 'सिंगार'='रस-मंजरी' का भाषान्तर, जिसका पूरा नाम 'सुन्दर-शृंगार' है। इसे आगरे के सुन्दर कवि ने रचा था (देखो सुन्दर-ग्रन्थावली—खंड २, पृष्ठ—४३९)। विषै=शृंगारविषय, जो वास्तव में विषरूप है। बिस्तारै=बढ़ाता है।

स्वामी सुन्दरदासजी ने इन शृंगाररसात्मक रीत-ग्रन्थों का खण्डन कर शान्तरस की श्रेष्ठता बड़े ओजस्वी शब्दों में प्रतिपादित की है।

वचन-विवेक कौ अंग

मनहर

बोलिये तौ तब जब बोलिबे की सुधि होइ,
न तौ मुख मौन करि चुप होइ रहिये ।
जोरियेऊ तब जब जोरिब्रौऊ जानि परै,
तुक छंद अरथ अनूप जामें लहिये ॥
गाइयेऊ तब जब गाइबे कौ कंठ होइ,
श्रवण कै सुनत ही मन जाइ गहिये ।
तुकभंग छुन्दभंग अरथ मिलै न कछु,
सुन्दर कहत, ऐसी बानी नहिं कहिये ॥१॥
एकनि के बचन सुनत अति सुख होइ,
फूल से भरत हैं अधिक मनभावने ।
एकनि के बचन अशम मानौ बरषत,
श्रवण कै सुनत लगत अलखावने ॥
एकनि के वचन कंटक कटु विषरूप,
करत मरम छेद दुखउपजावने ।
सुन्दर कहत, घट घट में बचन-भेद,
उत्तम मध्यम अरु अधम सुनावने ॥२॥

· पतिव्रता कौ अंग

इन्दव

होइ अनन्य भजै भगवंतहिं और कछू उर में नहिं राखै ।
देविय देव जहाँलग हैं डरिकै तिनसौं कहुँ दीन न भाखै ॥

बचन-विवेक कौ अंग

१. जोरियेऊ तब=कविता भी तभी रचनी चाहिए । मन जाइ गहियै=मन मुग्ध हो जाये । बानी=वाणी ; रचना ।

२. भावने=प्यारे । अशम=पत्थर । अलखावने=अप्रिय । मरम=मर्मस्थान ; अन्तर । छेद=घाव । घट-घट=प्राणी-प्राणी में ।

योगहु यज्ञ ब्रतादि क्रिया तिनकौं नहिं तौ सुपनैं अभिलाखै ।
सुन्दर अंमृत पान कियौ तब तौ कहि कौन हलाहल चाखै ॥१॥

मनहर

जल कौ सनेही मीन बिछुरत तजै प्राण,
मणि बिन अहि जैसैं जीवत न लहिये ।
स्वांतिबूँद के सनेही प्रगट जगत मांहिं,
एक सीप दूसरौ सु चातकऊ कहिये ॥
रवि कौ सनेही पुनि कँवल सरोबर में,
ससि कौ सनेहीऊ चकोर जैसें रहिये ।
तैसैं ही सुन्दर एक प्रभु सौं सनेह जोरि,
और कछु देखि काहू वोर नहिं बहिये ॥२॥

शब्दसार कौ अंग

इन्दव

कार उहै अबिकार रहै नित, सार रहै जु असारहि नाखै ।
प्रीति उहै जु प्रतीति धरै उर, नीति उहै जु अनीति न भाखै ॥
तन्त उहै लगि अंत न टूटत, संत उहै अपनों सत राखै ।
नाद उहै सुनि बाद तजै सब स्वाद उहै रस सुन्दर चाखै ॥१॥
सोवत सोवत सोइ गयौ सठ रोवत रोवत कै बर रोयौ ।
गोवत गोवत गोइ धर्यौ धन खोवत खोवत तैं सब खोयौ ॥
जोवत जोवत बीति गये दिन बोवत बोवत लै बिष बोयौ ।
सुन्दर सुन्दर राम भज्यौ नहिं, ढोवत ढोवत बोझहि ढोयौ ॥२॥

पतिव्रता कौ अंग

२. काहू वोर नहि बहिये=किसी दूसरे की ओर मन नही जाने देना चाहिए ।

शब्दसार कौ अंग

१. कार=कार्य । उहै=वही । नाखै=फेकदे । लगि अंत=अन्ततक, जीवनभर । रस=ब्रह्मरस से आशय है ।

२. बर=बार । गोवत=छिपाते हुए । बोझ=सांसारिक कर्मो का भार ।

सूरातन कौ अंग

मनहर

सुनत नगारै चोट विगसै कँवलमुख,
अधिक उछाह फूल्यौ माइहू न तन मैं ।
फिरै जब सांगि तब कोऊ नहि धीर धरै,
काइर कंपाइमान होत देखि मन मैं ।।
टूटिकैं पतग जैसैं परत पावक मांहिं,
ऐसैं टूटि परै बहु सावंत के गन मैं ।
मारि घमसांण करि सुन्दर जुहारै स्याम,
सोई सूरबीर रुपि रहै जाइ रन मैं ।।१।।
सूरबीर रिपु कौ निमूनौ देखि चोट करै,
मारै तब ताकि करि तरवारि तीर सौं ।
साधु आठौ जाम बैठौ मन ही सौं युद्ध करै,
जाकै मुहँ माथौ नहिं देखिये शरीर सौं ।।
सूरबीर भूमि परै दौर करै दूरिलगैं,
साधु शून्य कौं पकरि राखै धरि धीर सौं ।
सुन्दर कहत, तहाँ काहू के न पाव टिकैं,
"साधु कौ संग्राम है अधिक सूरबीर सौं ।।२।।"
काम सौ प्रबल महा जीते जिनि तीनौ लोक,
सु तौ एक साधु कै बिचार आगै हारचौ है ।

सूरातन कौ अग

१. नगारै=नगाडे पर । बिगसै=प्रफुल्लित हो जाये । माइ=समाये । फिरै=चले । सांगि=बडा भाला । सावॅत=सामंत । जुहारै स्याम=युद्ध जीतकर शाम को जो अपने स्वामी को प्रणाम करता है । रुपि रहे=पैर जमाकर दृढ रहता है ।

२. निमूनौ=नमूना ; सामने, साक्षात् । जाकै मुहँ······शरीर सौं=जिस मन का न मुहँ, न सिर है, न शरीर है ; निराकार । दूरिलगै=दूरतक । शून्य कौ पकरि राखै=शरीररहित सूक्ष्म मन को पकडकर काबू में रखता है ।

क्रोध सौं कराल जाकें देखत न धीर धरै,
सोउ साधु छमा कै हथ्यार सौं बिदार्‌यौ है।
लोभ सौ सुभट साधु तोष सौं गिराइ दियौ
मोह सौ नृपति साधु ज्ञान सौं प्रहार्‌यौ है।
सुन्दर कहत, ऐसौ साधु कोउ सूरवीर,
ताकि ताकि सबहि पिशुनदल मार्‌यौ है ॥३॥

साधु कौ अंग

इन्दव

जो कोउ आवत है उनकैं ढिग, ताहिं सुनावत शब्द-सँदेसौ।
ताहिकै तैसिहि ओषद लावत, जाहिकै रोगहि जानत जैसौ ॥
कर्म-कलंकहि काटत हैं सब, सुद्ध करै पुनि कंचन तैसौ।
सुन्दर वस्तु बिचारत हैं नित, संतनि कौ जु प्रभाव है ऐसौ ॥१॥

मनहर

धूलि जैसो धन जाकैं सूलि से संसार-सुख,
भूलि जैसो भाग देखै अंत की सी यारी है।
पाप जैसी प्रभुताई साँप जैसो सनमान,
बड़ाई हू बीछुनी सी नागनी सी नारी है ॥
अग्नि जैसौ इन्द्रलोक विघ्न जैसौ बिधिलोक,
कीरति कलंक जैसी, सिद्धि सींटि डारी है।
बासना न कोऊ बाकी ऐसी मति सदा जाकी,
सुन्दर कहत, ताहि बन्दना हमारी है ॥२॥

---

३. जिनि=जिस काम ने। विचार=विवेक; संयम। जाकें=जिसे। बिदार्‌यो=चीर डाला। तोष=सतोष। पिशुन-दल= दुष्ट मनोविकारों से आशय है।

साधु कौ अंग

१. वस्तु विचारत है=आत्मतत्त्व का निरूपण तथा मनन करते है।

२. भूलि जैसो भाग देखै=भाग्य को जो गलत समझता है। अंत की सी यारी= संसारी मित्रता को जो मृत्यु के समान मानता है। नारी=कामवासना से तात्पर्य है। सींटि डारी है=तुच्छ मानकर त्याग दिया है। ताहि=उस साधु पुरुष को।

सौंचौ उपदेश देत, भली भली सीख देत,
समता सुबुद्धि देत, कुमति हरत हैं।
मारग दिखाइ देत, भावहू भगति देत,
प्रेम की प्रतीति देत, अभरा भरत हैं॥
ज्ञान देत, ध्यान देत, आतम-विचार देत,
ब्रह्म कौं बताइ देत ब्रह्म में चरत हैं।
सुन्दर कहत जग संत कछु देत नांहिं,
"संतजन निशदिन देबौई करत हैं" ॥३॥

आत्मानुभव कौ अंग

इन्दव

है दिल में दिलदार सही अँखियां उलटि करि ताहि चितइये।
आब में खाक में बाद में आतस जान में सुन्दर जानि जनइये।
नूर में नूर है तेज में तेज है ज्योति में ज्योति मिलें मिलि जइये।
क्या कहिये कहते न बनै, कछु जो कहिये कहते ही लजइये ॥१॥

जासौं कहूँ 'सब में वह एक' तौ सो कहै,कैसो है, आँखि दिखइये।
जौ कहूँ 'रूप न रेख तिसै कछु' तौ सब झूठ कैं मानें कहइये॥
जौ कहूँ सुन्दर 'नैननि मांझि' तौ नैनहूं बैंन गये पुनि हइये।
क्या कहिये कहते न बनै कछु जो कहिये कहते ही लजइये ॥२॥

---

३. मारग=मोक्ष का रास्ता। अभरा=अपूर्ण। चरत है=विचरण करते है; लीन रहते है। कहत जग ... करत है=दुनिया का यह कहना कि संतजन अकिंचिन होने के कारण किसीको कुछ भी नहीं देते, सही नहीं है। वे बहुत बड़े धनी हैं, कितनी ही चीजें वे सबको देते ही रहते है।

आत्मानुभव कौ अंग

१. उलटि करि=अंतर्मुखी करके; विषयों की ओर से उलटकर आत्मस्वरूप पर स्थिर करके। ताहि=परमात्मतत्त्व को। खाक=मिट्टी, पृथिवी तत्त्व। बाद=हवा। आतस=अग्नि, तेज। नूर=प्रकाश।

२. तिसै=उसको। झूठकै मानें=झूठी मान्यता। हइये=हैही।

ज्ञानी कौ अंग

इन्दव

ज्ञान प्रकाश भयौ जिनके उर वे घट क्यूँ हि छिपे न रहैंगे ।
भोडल मांहिं दुरै नहि दीपक यद्यपि वे मुख मौन रहैंगे ।
ज्यूँ घनसारहि गोप्य छिपावत तोहि सुगन्धि सु तज्ञ लहैंगे ।
सुन्दर और कहा कोउ जानत बूठे की बात बटाऊ कहैंगे ॥१॥

मनहर

विधि न निषेध कछु भेद न अभेद पुनि,
क्रिया सौ करत दीसै यौंहो नितप्रति है ।
काहू कौं निकट राखै काहू कौं तौ दूरि भाषै,
काहू सौं नीरै न दूर ऐसी जाकि मति है ॥
राग ही न दोष कोऊ शोक न उछाह दोऊ,
ऐसी विधि रहै कहूँ रति न बिरति है ।
बाहिर ब्यौहार ठानै मन मैं स्वपन जानैं,
सुन्दर ज्ञानी की कछु अद्भुत गति है ।२॥
ज्ञानी लोकसंग्रह कौ करत ब्यौहार-विधि,
अंतहकरण में सुपन की सी दौर है ।
देत उपदेश नाना भांति के बचन कहि,
सब कोउ जानत सकल-सिरमौर है ॥
हलन चलन पुनि देह सौं करावत है,
ज्ञान मैं गरक नित लिये निज ठौर है ।

ज्ञानी कौ अग

१. भोडल=अबरक । घनसार=कपूर । तज्ञ=जानकार, पारखी । बूठे की=रास्ते पर चले जानेवाले की । बटाऊ=राहगीर ।

२. क्रिया सौ करत दीसै=बाहर से ऐसा दीखता है मानो कर्म कर रहा हो । नीरै=समीप । दोष=द्वेष । उछाह=उत्साह, आनन्द । रति=प्रीति । स्वपन=स्वप्न की तरह मिथ्या ।

३. लोक-संग्रह=लोकोपकार । ब्योहार=लौकिक कर्म । दौर=क्रिया । गरक=मग्न ।

सुन्दर कहत, जैसैं दंत गजराज मुख,
"खाइबे कैं औरई दिखाइबे कै और है" ॥३॥

प्रेमपराज्ञान ज्ञानी कौ अंग

प्रीति की रीति नहीं कछु राखत जाति न पांति नहीं कुल-गारौ।
प्रेम कै नेम कहूँ नहि दीसत लाज न कानि लग्यौ सब खारौ॥
लीन भयौ हरि सौं अभिअंतर आठहुँ जाम रहै मतवारौ।
सुन्दर कोउ न जानि सकै यह "गोकुल गाँव कौ पैंडौ ही न्यारौ"॥१॥
द्वंद्व बिना बिचरै बसुधापरि जा घट आतमज्ञान अपारौ।
काम न क्रोध न लोभ न मोह न राग न दोष न म्हारौ न थारौ।
योग न भोग न त्याग न संग्रह देहदशा न ढक्यौ न उघारौ।
सुन्दर कोउ न जानि सकै यह "गोकुल गाँव कौ पैंडो ही न्यारौ" ॥२॥

साखी

सुमरण कौ अग

सुन्दर सद्गुरु यौं कह्या सकल-सिरोमनि नाम।
ताकौं निसदिन सुमरिये, सुखसागर सुखधाम ॥१॥
राम नाम बिन लैन कौं और बस्तु कहि कौन।
सुन्दर जप तप दान व्रत, लागे खारे लौन ॥२॥
राम-नाम-पीयूष तजि, बिष पीवै मतिहीन।
सुन्दर डोलै भटकत, जन जन आगे दीन ॥३॥

निज ठौर=स्वरूप में स्थिति।

प्रेमपराज्ञान ज्ञानी कौ अग

१. गारौ=गाली, अपवाद, निंदा। कानि=मर्यादा। अभिअंतर=अन्तःकरण। पैंडो=रास्ता। न्यारौ=निराला।

२. द्वन्द्व=द्वैतभाव; राग-द्वेष, सुख-दुःख आदि। दोष=द्वेष। म्हारौ थारौ=मेरा-तेरा, यह भेद-भाव। उघारौ=नंगा।

सुमरण कौ अंग

३. पीयूष=अमृत। विष=विषयरूपी विष।

सुन्दर सुरति समेटिकैं सुमिरन सौं लैलीन।
मन बच क्रम करि होत हैं, हरि ताके आधीन ॥४॥

सुमिरन ही में शील है, सुमिरन में संतोष।
सुमिरन ही तें पाइये सुन्दर जीवन-मोष ॥५॥

बिरह कौ अंग

मारग जोवै बिरहनी, चितवै पिय की वोर।
सुन्दर जियरै जक नहीं, कल न परत निसभोर ॥१॥

सुन्दर बिरहनि मरि रही, कहूँ न पइये जीव;
अंमृत पान कराइकै फेरि जिवावै पीव ॥२॥

बिरह-बघूरा लै गयौ चित्तहि कहूँ उड़ाइ।
सुन्दर आवै ठौर तब, पीय मिलै जब आइ ॥३॥

बिरहा दुखदाई लग्यौ, मारै ऐंठि मरोरि।
सुन्दर बिरहनि क्यौं जिवै, सब तन लियौ निचोरि ॥४॥

सुन्दर बिरहनि अधजरी, दुक्ख कहै मुख रोइ।
जरिबरिकैं भस्मी भई, धुवाँ न निकसै कोइ ॥५॥

सब कोई रलियां करै, आयौ सरस बसंत।
सुन्दर बिरहनि अनमनी, जाकौ घर नहि कंत ॥६॥

साईं तूँ ही तूँ करौं, क्यौंही दरस दिखाव।
सुन्दर बिरहनि यौं कहै, ज्यौंहीं त्यौंही आव ॥७॥

---

४. सुरति=लौ, ध्यान। समेटिकै=एकाग्र करके। आधीन=वश में।

५. मोष=मोक्ष।

बिरह कौ अंग

१. वोर=ओर। जक=शांति। भोर=सवेरा, यहां दिन से आशय है।

३. बघूरा=बवंडर। ठौर=अपना स्थान; शान्ति-पद।

६. रलियां=रंगरलियां, मौज। अनमना=उदास।

७. क्यौंही=किसीभी तरह। ज्यौं ही त्यौं ही=कैसे भी हो।

जिस विधि पीव रिझाइये, सो विधि जानी नांहि ।
जोबन जाइ उतावला, सुन्दर यहु दुख मांहिं ॥८॥
लालन मेरा लाड़िला, रूप बहुत तुझ मांहिं ।
सुन्दर राखै नैन में, पलक उघारै नांहि ॥९॥
सुंदर बिगसै बिरहनी, मन में भया उछाह ।
फूल बिछाऊँ सेजरी, आज पधारैं नाह ॥१०॥

बंदगी कौ अंग

दोहा

सुन्दर अंदर पैसिकरि, दिल मौं गोता मारि ।
तौ दिल ही मौं पाइये, सांईं सिरजनहार ॥१॥
जिस बंदे का पाकदिल, सो बंदा माकूल ।
सुन्दर उसकी बंदगी, सांईं करै कबूल ॥२॥

हर दम हर दम हक्क तूँ, लेइ धनीं का नांव ।
सुन्दर ऐसी बंदगी, पहुँचावै उस ठांव ॥३॥

मुखसेती बंदा कहै, दिल में अति गुमराह ।
सुन्दर सो पावै नहीं, सांईं की दरगाह ॥४॥

मैं ही अति गाफिल हुई, रही सेज पर सोइ ।
सुन्दर पिय जागै सदा, क्यौंकरि मेला होइ ॥५॥

---

८. जाइ उतावला=बड़ी जल्दी-जल्दी भाग रहा है । माहि=मन में ।

९. पलक उघारे नाहि=पलक इसलिए नहीं खोलता, कि कहीं आखों के अन्दर से निकलकर भाग न जाये ।

१०. बिगसै=प्रफुल्लित होती है । नाह=स्वामी ।

बंदगी कौ अंग

१. पैसिकरि=पैठकर । मौं=में, अन्दर ।

२. माकूल=योग्य । बंदगी=सेवा ।

४. सेती=से, द्वारा

५. मेला=मिलन

जौ जागै तौ पिय लहै, सोये लहिये नाहिं ।
सुन्दर करिये बंदगी, तौ जाग्या दिल माँहि ॥६॥

उपदेश-चितावनी कौ अंग

सुन्दर मनुषा देह यह, पायौ रतन अमोल ।
कौड़ी सटै न खोइये, मानि हमारौ बोल ॥१॥
सुन्दर सांची कहतु है, मति आनै कछु रोस ।
जौ तैं खोयो रतन यह, तौ तोहीकौं दोस ॥२॥
बार बार नहिं पाइये, सुन्दर मनुषा देह ।
रामभजन सेवा सुकृत, यह सोदो करि लेह ॥३॥
सुन्दर सांची कहतु है, जौ मानै तौ मानि ।
यहै देह अति निंद्य है, यहै रतन की खानि ॥४॥
सुन्दर नदी-प्रवाह मैं, मिल्यौ काठ-संजोग ।
आपु आपुकौं ह्वै गये, त्यौं कुटंब सब लोग ॥५॥
सुन्दर बैठे नाव मैं, कहूँ कहूँ तें आइ ।
पार भये कतहूँ गये, त्यौं कुटंब सब जाइ ॥६॥
सुन्दर पच्छी वृच्छ पर, लियौ बसेरा आनि ।
राति रहे दिन उठि गये, त्यौं कुटंब सब जानि ॥७॥
सुन्दर यह औसर भलौ, भजिलै सिरजनहार ।
जैसे ताते लोह कौं लेत मिलाइ लुहार ॥८॥
सुन्दर याही देह मैं, हारि जीति कौ खेल ।
जीतैं सो जगपति मिलै हारै माया मेल ॥९॥
सुन्दर सौदा कीजिये, भली बस्तु कछु खाटि ।
नाना बिधि का टांगरा, उस बनिया की हाटि ॥१०॥

उपदेश-चितावनी कौ अंग

१. सटै=मोल पर ।
२. रोस=रोष, क्रोध, नाराजी ।
८. लेत मिलाइ=जोड़ लेता है ।
१०. खाटि=परखकर बिसाहले । टांगरा=सामान । बनिया=परमात्मा से आशय है ।

दीया की बतियाँ कहै, दीया किया न जाइ।
दीया करै सनेह करि, दीयें ज्योति दिखाइ ॥११॥
दीये तें सब देखिये, दीये करौ सनेह।
दीयें दसा प्रकासिये, दीया करि किन लेह ॥१२॥
दीया राखै जतन सौं, दीये होइ प्रकाश।
दीये पवन लगै अहं, दीये होइ विनाश ॥१३॥
साईं दीया है सही, इसका दीया नांहिं।
यह अपना दीया कहै, दीया लखै न मांहिं ॥१४॥
साईं आप दिया किया, दीया मांहिं सनेह।
दीये दीये होत है, सुन्दर जीया देह ॥१५॥

देहमलिनता गर्व-प्रहार कौ अंग

दोहा

सुंदर देह मलीन है, राख्यौ रूप सँवारि।
ऊपर तें कलई करी, भीतरि भरी भँगारि ॥१॥
सुंदर देह मलीन अति, बुरी बस्तु कौ भौन।
हाड़ मांस कौ कौथरा, भली बस्तु कहिं कौन ॥
सुंदर देह मलीन अति, नखसिख भरे विकार।
रक्त पीप मल मूत्र पुनि, सदा बहै नवद्वार ॥२॥

---

११. दीया=(१) दीपक (२) दान। बतियाँ=(१) बत्तियां (२) बातें। सनेह=(१) तेल (२) प्रेम। इसमें श्लेष अलंकार है।

१३. अहं=अहंकार। दीये······विनाश=दान को अहंकाररूपी पवन बुझा देता है। अहंकार से दान का महत्व नष्ट हो जाता है। इसमें भी श्लेष अलंकार है;

१४. इसका दीया=मनुष्य का दिया हुआ। माहिं=अन्तर में।

१५. दीये दीये होत है=दीपक से दूसरा दीपक जलता है। गुरु अपने शिष्य को, और फिर वह शिष्य अपने शिष्य को ज्ञान प्रकाश देता है।

देहमलिनता गर्व-प्रहार कौ अंग

१. भँगारि=कचरा।

२. पीप=पीब, मैल।

सुंदर पंजर हाड़ कौ, चाम लपेट्यौ ताहि।
तामैं बैठ्यौ फूलिकै, मो समान को आहि ॥३॥
सुंदर अपरस धोवती, चौकै बैठौ आइ।
देह मलीन सदा रहै, ताही कै संगि खाइ ॥४॥
सुंदर देखै आरसी, टेढी नाखै पाग।
बैठौ आइ करंक पर, अतिगति फूल्यौ काग ॥५॥
स्वास चलै खाँसी चलै, चलै पसुलिया बाव।
सुंदर ऐसी देह में दुखी रंक अरु राव ॥६॥

मन कौ अंग

दोहा

मन कौं राखत हटकिकरि, सटकि चहूँ दिसि जाइ।
सुंदर लटकि रु लालची गटकि बिषैफल खाइ ॥१॥
सुंदर क्यौंकरि धीजिये मन कौ बुरौ सुभाव।
आइ बनै गुदरै नहीं, खेलै अपनौं दाव ॥२॥
सुंदर यहु मन भाँड़ है, सदा भँडायौ देत।
रूप धरै बहु भाँति कै, राते पीरे सेत ॥३॥
सुंदर आसन मारिकै, साधि रहे मुख मौन।
तन कौं राखै पकरिकै, मन पकरै कहि कौन ॥४॥
तन कौ साधन होत है, मन कौ साधन नाहिं।
सुंदर बाहर सब करै, मन साधन मन मांहिं ॥५॥

---

४. अपरस धोवती=रेशम की धोती, जिसे वैष्णव पहनकर भोजन करते है, और अपनेको पवित्र मानते है।

५. नाखै=अर्थ होता है 'डालता है,' पर यहा अर्थ है 'बाधता है'। करंक=लाश। अतिगति=अत्यत। फूल्यौ=आनंदित है।

मन कौ अंग

१. सटकि जाइ=हाथ से छूट जाता है।

२. धीजिये=विश्वास करे। गुदरै नही=किसी तरह मानता नही है।

३. राते पीरे=लाल और पीले।

मन ही बड़ौ कपूत है, मन ही महा सपूत।
सुंदर जौ मन थिर रहै, तौ मन ही अवधूत ॥६॥
जब मन देखै जगत कौं, जगतरूप ह्वै जाइ।
सुंदर देखै ब्रह्म कौं, तब मन ब्रह्म समाइ ॥७॥
सुंदर परम सुगन्ध सौं, लपटि रह्यौ निश-भोर।
पुण्डरीक परमातमा, चंचरीक मन मोर ॥८॥

चाणक कौ अंग

दोहा

छूट्यौ चाहत जगत सौं, महा अज्ञ मतिमंद।
जोई करै उपाइ कछु, सुंदर सोई फंद ॥१॥
बैठौ आसन मारि करि, पकरि रह्यो मुख मौन।
सुंदर सैन बतावतें, सिद्ध भयौ कहि कौन ॥२॥
कोउ करैं पयपान कौं, कौन सिद्धि कहि बीर।
सुंदर बालक बाछुरा, ये नित पीवहि खीर ॥३॥
कोऊ होत अलौंनिया, खाय अलौंनौ नाज।
सुंदर करहिं प्रपंच बहु, मान बढ़ावन काज ॥४॥
कोउक दूध रु पूत दे, कर पर मेल्हि विभूति।
सुंदर ये पाखण्ड किय, क्यौंही परै न सूति ॥५॥

---

६. अवधूत=पहुचा हुआ ब्रह्मज्ञानी।

८. भोर=दिन। पुण्डरीक=कमल।

चाणक कौ अंग

१. चाणक=इस शब्द का अर्थ पुरोहित श्री हरनारायणजी ने 'कोडे की तरह कड़ा उपदेश' यह किया है।

२. पकरि रह्यौ=ले बैठा है, साध रखा है।

३. बीर=हे भाई। खीर=क्षीर, दूध।

४. अलौनिया=नमक न खानेवाला। प्रपंच=ऊपरी दिखाव, पाखंड।

५. मेल्हि=रखकर। विभूति=धूनी की भस्म। सूति=सूत।

[यह सुन्दरदासजी की जन्म-कथा से सम्बन्ध रखनेवाली बात है। जग्गाजी ने आंबेर में भिक्षा के समय कहा था—'दे माई सूत, ले माई पूत।' यहाँ अभिप्राय

केस लुचाइ न ह्वै जती, कान फराइ न जोग।
सुन्दर सिद्धि कहा भई, बादि हँसाये लोग ॥६॥

वचन-विवेक कौ अंग

दोहा

सुन्दर मौन गहे रहै तबलग भारी तोल।
मुख बोलैं तें होत है सब काहू कौ मोल ॥१॥
सुन्दर सुवचन-तक्र तें राखैं दूध जमाइ।
कुवचन कांजी परत ही तुरत फाटिकरि जाइ ॥२॥
सूरज के आगैं कहा, करैं जीगणा जोति।
सुन्दर हीरा लाल घर, ताहि दिखावैं पोति ॥३॥
रचना करी अनेकविधि, भलौ बनायौ धाम।
सुन्दर मूरति बाहरी, देवल कौने काम ॥४॥

साधु कौ अंग

दोहा

संत समागम कीजिये तजिये और उपाइ।
सुंदर बहुते उद्धरे, सतसंगति मैं आइ ॥१॥
संत मुक्ति के पौरिया, तिनसौं करिये प्यार।
कूंजी उनकै हाथ है, सुंदर खोलहिं द्वार ॥२॥

है कि हरएक साधु में ऐसी शक्ति नहीं हो सकती, इसलिए साधारण साधु पाखंड ही करते है।—सुन्दर-ग्रन्थावली—खंड २—पृष्ठ ७३४ पादटिप्पणी।]

६. जती=जैन श्रमण, जो केश-लुंचन कराते हैं। बादि=व्यर्थ।

वचन-विवेक कौ अंग

२. तक्र=मट्ठा, छाछ। कांजी=नमकीन खट्टा पानी।

३. जीगणा=जुगनू। पोति=काँच का रंग-बिरंगा गुरिया या मनका।

४. देवल=देवालय, मन्दिर।

साधु कौ अंग

२ पौरिया=द्वारपाल, पहरेदार।

मात पिता सबही मिलैं, भइया बंधु प्रसंग।
सुंदर सुत दारा मिलैं, दुर्लभ है सतसंग ॥३॥
मद मत्सर अहंकार की दीन्हीं ठौर उठाइ।
सुंदर ऐसे संतजन, ग्रंथनि कहे सुनाइ ॥४॥
आयें हर्ष न ऊपजै, गयें शोक नहिं होइ।
सुंदर ऐसे संतजन, कोटिनु मध्ये कोइ ॥५॥
सुखदाई सीतल हृदय, देखत सीतल नैन।
सुंदर ऐसे संतजन, बोलत अंमृत बैन ॥६॥
क्षमावंत धीरज लिये, सत्य दया संतोष।
सुंदर ऐसे संतजन, निर्भय निर्गतरोष ॥७॥
घर बन दोऊ सारिखे, सबतें रहत उदास।
सुंदर संतनि कै नहीं, जिवन मरन की आस ॥८॥
धोवत है संसार सब, गंगा मांहें पाप।
सुंदर संतनि के चरण, गंगा बंछै आप ॥९॥
संतनि की सेवा किये, सुंदर रीझै आप।
जाकौ पुत्र लड़ाइये, अति सुख पावै बाप ॥१०॥

समर्थाई आश्चर्य कौ अंग

दोहा

करै हरै पालै सदा, सुन्दर समरथ राम।
सबही तैं न्यारौ रहै, सबमैं जिन कौ धाम ॥१॥
अंजन यह माया करी, आपु निरंजन राइ।
सुंदर उपजत देखिये, बहुरचौ जाइ बिलाइ ॥२॥

---

५. आयें=प्राप्त होने पर।
७. निर्गत=विगत, रहित।
८. उदास=उदासीन, तटस्थ।
९. बंछै=चाहती है।
१०. आप=स्वयं परमात्मा। लड़ाइये=प्यार करे।

समर्थाई आश्चर्य कौ अंग

२. अंजन=अनित्य, नाशवान्। निरंजन=नित्य, अविनाशी। बहुर्यौ=फिर, तुरन्त।

सूरति तेरी खूब है, को करि सकै बखान।
बानी सुनि सुनि मोहिया, सुंदर सकल जिहान ॥३॥
प्रीतम मेरा एक तूँ, सुंदर और न कोइ।
गुप्त भया किस कारनै, काहि न परगट होइ ॥४॥
ऐसी तेरी साहिबी, जानि न सक्कै कोइ।
सुंदर सब देखै सुनै, काहू लिप्त न होइ ॥५॥
वचन तहाँ पहुँचै नहीं, तहाँ न ज्ञान न ध्यान।
कहत कहत यौंही कह्यौ, सुन्दर है हैरान ॥६॥
लौन-पूतरी उदधि में, थाह लेन कौं जाइ।
सुंदर थाह न पाइये, बिचिही गई बिलाइ ॥७॥

स्वरूप-विस्मरण कौ अंग

जा घट की उनहारि है, तैसौ दीसत आहि।
सुन्दर भूलौ आपुही, सो अब कहिये काहि ॥१॥
सुन्दर पावक दार के भीतरि रह्यौ समाइ।
दीरघ में दीरघ लगै, चौरे में चौराइ ॥२॥
सुन्दर चेतनि आपु यह, चालत जड़ की चाल।
ज्यौं लकरी के अश्व चढ़ि, कूदत डोलै बाल ॥३॥
काहू सौं बांभन कहै, काहू सौं चंडाल।
सुन्दर ऐसौ भ्रम भयौ, यौंही मारै गाल ॥४॥
देह पुष्ट ह्वै दूबरी, लगै देह कौं घाव।
चेतनि मानै आपुकौं, सुन्दर कौन सुभाव ॥५॥
सान्यौ घर मांहे कहै हूँ अपने घर जाउं।
सुन्दर भ्रम ऐसौ भयौ, भूलौ अपनौ ठाउं ॥६॥

स्वरूप-विस्मरण कौ अंग

१. उनहारि=रूप। दीसत=दिखाई देता है। दार=दारु, लकड़ी। चौराई=चौड़ा ही।

४. मारै गाल=गप लगाता है; मिथ्या बोलता है।

६ सान्यौ=सयाना, चतुर।

आत्मानुभव कौ अंग

दोहा

कह्या कछू नाहिं जात है, अनुभव आतम सुक्ख ।
सुन्दर आवै कंठलौं, निकसित नाहिन मुक्ख ॥१॥
सुन्दर जाकै वित्त है, सो वह राखै गोइ ।
कौड़ी फिरै उछालतौ, जो टटपूंज्यौ होइ ॥२॥

ज्ञानी को अंग

दोहा

अंत्यज ब्राह्मण आदि दै, दार मथै जो कोइ ।
सुन्दर भेद कछू नहीं, प्रगट हुतासन होइ ॥१॥
दीपग जोयौ विप्र घर, पुनि जोयौ चण्डाल ।
सुन्दर दोऊ सदन कौ तिमिर गयौं ततकाल ॥२॥
अंत्यज कै जलकुंभ मैं, ब्राह्मन-कलस मँझार ।
सुन्दर सूर प्रकाशिया, दुहुंवनि मैं इकसार ॥३॥

पद

राग गौडी

हरि भजि बौरी हरि भजु, त्यजु नैहर कर मोहु ।
जिव लिनहार पठाइहि, इक दिन होइहि बिछोहु ॥
आपुहि आपु जतन करु, जौंलगि बारि वयेस ।
आन पुरुष जिनि भेंटहु केहूके उपदेश ॥
जबलग होहु सयानिय, तबलग रहब सँभारि ।
केहूँ तन जिनि चितवहु, ऊंचिय दृष्टि पसारि ॥

ज्ञानी को अंग

१. दार=दारु, लकड़ी । मथै=अग्नि उत्पन्न करने के लिए घर्षण करे । हुतासन=अग्नि ।

२. दीपग=दीपक । जोयौ=जलाया । कलस मँझार=घडे में । सूर=सूर्य ।

पद

१. बारि वयेस=छोटी उम्र । रहब सँभारि=विषयों से बहुत बचकर दूर रहना । केहूँ

यह जोवन पियकारन नीकै राखि जुगाइ ।
अपनो घर जिनि छोड़हु परघर आगि लगाइ ॥
यह बिधि तन मन मारै, दुइ कुल तारै सोइ ।
सुन्दर अति सुख बिलम्पइ कंत-पियारी होइ ॥१॥

ताल रूपक

सतसंग नितप्रति कीजिये, मति होइ निर्मल सार रे ।
रति प्रानपति सौं ऊपजै, अति लहै सुक्ख अपार रे ॥
मुख नाम हरि हरि उच्चरै, श्रुति सुनै गुन गोविन्द रे ।
रटि ररंकार अखंड धुनि तहँ प्रगट पूरन चन्द रे ॥
सतगुरु बिना नहिं पाइये यह अगम उलटा खेल रे ।
कहि दास सुन्दर देखते होइ जीव-ब्रह्महि मेल रे ॥२॥

राग विहागड़ौ

माइ हो, हरिदरसन की आस ।
कब देखौं मेरा प्रान-सनेहो, नैन मरत दोऊ प्यास ॥
पल छिन आध घरी नहिं बिसरौं, सुमिरत साम्र उसास ।
घर बाहरि मोहि कल न परत है, निसदिन रहत उदास ॥
यहै सोच सोचत मोहि सजनी, सूके रगत रु माँस ॥
सुन्दर बिरहिन कैंसे जीवै, बिरहबिथा तन त्रास ॥३॥

हमारैं गुरु दीनी एक जरी ।
कहा कहौं कछु कहत न आवै, अंमृतरसहि भरी ।
ताकौ मरम संतजन जानत, बस्तु अमोल परी ।
यातें मोहि पियारी लागति, लैकरि सीस धरी ॥

तन–किसीकी ओर । जुगाइ–सँभालकर । दुइकुल–लोक और परलोक से आशय है ।

२. रति=प्रीति । प्रानपति–परमात्मा से आशय है । श्रुति=श्रवण । पूरनचंद=अखंड आत्मस्वरूप । उलटा खेल=चित्त को अन्तर्मुख करने की आनन्दमयी स्थिति ।

३. सूको=सूख गया ।

४. हमारैं=हमको । जरी=जड़ी, बूटी । परी=पडी हुई । पंच नागनी=पाँच इन्द्रियाँ,

मन-भुजंग अरु पंच नागनी सूंघत तुरत मरी।
डायनि एक खात सब जग कौं, सो भी देख डरी॥
त्रिविधि बिकार ताप तनि भागी, दुरमति सकल हरी।
ताकौ गुन सुनि मोच पलाई, और कवन बपुरी॥
निसबासर नहिं ताहि बिसारत, पल छिन आध घरी।
सुन्दरदास भयो घट निर्विष, सबही ब्याधि टरी॥४॥

सोई जन राम कों भावै हो।
कनक कामिनी परहरै, नहिं आप बँधावै हो॥
सबही सौं निरबैरता, काहू न दुखावै हो।
सीतल बानी बोलिकै, रस अंमृत प्यावै हो॥
कैतो मौन गहे रहै, कै हरिगुन गावैं हो।
भरम-कथा संसार की सब दूरि उड़ावै हो॥
पंचौं इन्द्री बसि करै, मन मनहिं मिलावै हो।
काम क्रोध अरु लोभ कौं खनि खोदि बहाव हो॥
चौथा पद कों चीन्हकैं ता मांहि समावै हो।
सुन्दर ऐसे साधु की ढिग काल न आवै हो॥५॥

राग ललित

द्वार प्रभु के जाचन जइये।
विविधि प्रकार सरस गुन गइये॥
जाचिक होइ सु नींद निवारै, बड़े प्रात दाताहिं सँभारैं।
नितप्रति ताके कान जगावै, वह पुनि जानैं जाचिक आवै॥
दाता के मन चिन्ता होई, दान करन की उपजैं कोई।
सुन्दरदास पहाऊ गावै, माँगत इहै जु दरसन पावै॥६॥

जो सर्पिणी के समान है। डायनि=तृष्णा अथवा अविद्या। पलाई=भाग गई। बपुरी=बेचारी। निरविष=विषरहित; अमृतमय।

५. दुखावै=कष्ट देता है। मन मनहि मिलावै=मन को नियंत्रित करके शून्यवत् कर देता है। चौथा पद=तुरीय पद, समाधि की अवस्था। ढिग=पास।

६. सँभारैं=स्मरण करता है। जानै जाचिक आवै=जान जाय कि याचक आ गया है। उपजै कोई=कछ मन में आ जाय। पहाऊ=प्रभाती।

आजु मेरे गृह सतगुरु आये।
भरम-करम की निसा बितीती, भोर भयौ रवि प्रगट दिखाये ॥
अति आनन्दकन्द सुखसागर, दरसन देखत नैन सिराये।
प्रफुलित कमल अंग सब पुलकित, प्रेमसहित मन मंगल गाये ॥
बचन सुनत सबही दुख भागे, जागे भाग चरन सिर लाये।
सुन्दर सुफल भयौ सबही तनु, जन्म-जन्म के पाप नसाये ॥७॥

राग बिलावल

जो पिय कौ ब्रत ले रहे, सो पियहि पियारी।
काहेकौं पचि-पचि मरति है, मूरख बिभचारी ॥
अंजन मंजन क्या करै, क्या रूप सिंगारा।
ऊपर निर्मल देखिये, दिल मांहिं बिकारा।
इन बातनि क्यौं पाइये, अबे प्रीतम पिय प्यारा ॥
पतिब्रत कबहुं न देखिये मन चहुं दिश धावै।
और सखिन में बैसिकैं पतिब्रता कहावै।
हौंस करै पियमिलन की, अबे तोहि लाज न आवै ॥
कोटि जतन कीयें कहा, पिय एक न मानै।
नाना बिधि की चातुरी बहुतेरी ठानै।
तन कौं बहुत बनावई, अबे मन सौंपि न जानै ॥
अपना बल जौ छाडिकैं सब सुधि बिसरावै ॥
लोकबड़ाई नैकहू कछु याद न आवै।
सुन्दर तब पिय रीझिकैं, अबे तोहि कंठ लगावै ॥८॥
जाकैं हिरदैं ज्ञान है, ताहि कर्म न लागैं।
सब परि बैठे मक्षिका, पावक तैं भागैं ॥
जहां पाहरू जागहीं, तहां चोर न जाहीं।
आंखिन देखत सिंह कौ, पशु दूरि पलाहीं ॥

---

७. बितीती=बीत गई। भोर=सवेरा। सिराये=ठंडे हो गये, प्रसन्न हो गये।

८. और सखिन मैं बैसिकैं=दुनियादारों के साथ बैठकर। तनकौं बहुत बनावई=शरीर को अनेक भांति मे सजाता है। बल=अहंकार। सब सुधि=अपनेपन का सारा भान।

जा घर मांहि मंजारि ह्वै तहाँ मूषक नासै ।
शब्द सुनत ही मोर का अहि रहै न पासै ॥
ज्यों रवि निकट न देखिये कबहूं अँधियारा ।
सुन्दर सदा प्रकाशमय, सबहीं तैं न्यारा ॥९॥

आया था इक आया था, जिनि दरसन प्रगट दिखाया था ।
श्रवणनि शब्द सुनाया था, तिन सत्य स्वरूप बताया था ॥
ब्रह्मज्ञान समुझाया था, तिन संसा दूरि बहाया था ।
अलख खजाना ल्याया था, तिन बांटि सबनि सौं खाया था ॥
ऐसा दादू राया था, सो सुंदर कै मनि भाया था ॥१०॥

राग सोरठ

सब कोऊ भूलि रहे इहिं बाजी ।
आप आपुनें अहंकार मैं, पातिसाहि कहा पाजी ॥
पातिसाहि कै विभौ बहुत बिधि, खात मिठाई ताजी ।
पेट पयादौ भरत आपनौ जीमत रोटी-भाजी ॥
पण्डित भूले बेदपाठ करि, पढ़ि कुरान कौं काजी ।
वे पूरब दिशि करैं डण्डवत, वे पच्छिमहि निवाजी ॥
तीरथिया तीरथ कौं दौड़ैं, हज को दौड़ै हाजी ।
अन्तरगति कौं खोजैं नाहीं, भ्रमसौं ही सौं राजी ॥
अपने अपने मद के माते, लखैं न फूटी साजी ।
सुन्दर तिनहि कहा अब कहिये, जिनकै भई दुराजी ॥११॥

---

९. मक्षिका=मक्खी । पलाहीं=भागते हैं । मजारि=बिल्ली । मूषक=चूहा ।

१०. संसा=संशय, द्वैतबुद्धि । बहाया=नष्ट कर दिया । अलख खजाना=ब्रह्म-निधि से आशय है । राया=राजा ।

११. पातिसाहि=बादशाह । पाजी=पयादा, छोटा आदमी । जीमत=खाता है । निवाजी=नमाज पढ़ते हैं । फूटी साजी=आधी और साबित; नुकसान व नफा । दुराजी=द्वैतबुद्धि ।

राग रामगरी

सन्त चले बिस ब्रह्म की, तजि जगव्यवहारा।
सीधै मारग चालतैं, निंदै संसारा॥
सन्त कहैं सांची कथा, मिथ्या नहिं बोलैं।
जगत डिगावै आइकैं, तौ कबहूं ना डोलैं॥
जे-जे कृत संसार के, ते सन्तनि छांड़े।
ताकौ जगत कहा करै, पग आगै मांड़े॥
जे मरजादा बेद की, ते सन्तनि भेंटी।
जैसे गोपी कृष्ण कौं सब तजिकरि भंटी॥
एक भरोसे राम कै, कछ शंक न आनैं।
जन सुन्दर सांचै मतै, जग की नहिं मानैं॥१२॥

मुझि वेगि मिलहु किन आइ मेरा लाल रे।
मैं तेरै बिरह बिवोग फिरौं बेहाल रे॥
हौं निसदिन रहौं उदास तेरै कारनैं।
मुझे बिरह-कसाई आइ लागा मारनैं॥
इस पंजर मांहैं पैठि बिरह मरोरई।
जैसैं बस्तर धोबी ऐंठि नीर निचोरई॥
मैं कासनि करौं पुकार तुम बिन पीव रे।
यहु बिरहा मेरो लार दुखी अति जीव रे॥
अब काहे न करहु सहाइ सुन्दरदास को।
बाल्हा, तुमसौं मेरा आइ लगा है आसकी॥१३॥

या मैं कोऊ नहीं काहू कौ रे।
रामभजन करि लेहु बावरे, औसर काहे चूकौ रे॥

---

१२. कृत=कर्म, व्यवहार। मरजादा वेद की=वैदिक क्रिया-कर्म, यज्ञादिक।

१३. इस पजर ··· निचोरई=इस शरीर के अन्दर पैठकर यह विरह रग-रग को ऐसे मरोड़ रहा है, जैसे धोबी कपड़े को मरोड़कर निचोड़ता है। क्या ही सजीव अनूठी उत्प्रेक्षा है! कासनि=किससे। लार=साथ; पीछे। आसकी=आशिकी, प्रीति।

जिनसौं प्रीति करत है गाढ़ी, सो मुख लावै लूकौ रे।
जारि बारि तन खेह करैंगे, देदे मूंड ठरूकौ रे॥

जोरि जोरि धन करत एकठौ, देत न काहू टूकौ रे।
एक दिना सब यौंही जैहै, जैसैं सरवर सूकौ रे।
अजहूँ बेगि समुझि किन देखौ, यह संसार बिभूकौ रे।
माया मोह छाड़िकरि बौरे, सरन गहौ हरिजू कौ रे॥

प्रान पिंड सिरजे जिनि साहिब, ताकौ काहे न कूकौ रे।
सुन्दरदास कहै समुझावै, चेला है दादू कौ रे॥१४॥

बलिहारी हूं उन संत की।
जिनकै और झौर कछु नाहीं, कहैं कथा भगवंत की॥

शीतल हृदय सदा सुखदाई, दया करैं सब जंत की।
देखि देखि वै मुदित होत हैं, लीला आप अनंत की॥

जिनतें गोपि कहूँ कछु नाहीं, जानत आदि रु अंत की।
सुन्दरदास कहै जन तेई, राखत बात सिद्धन्त की॥१५॥

राग मलार

देखौ माई, आज भलौ दिन लागत।
बरिषा रितु कौ आगम आयौ, बैठि मलारहिं रागत॥

रामनाम के बादल उनये, घोरि घोरि रस पागत।
तन मन मांहिं भई शीतलता, गये बिकार जु दागत॥

जा कारनि हम फिरत बियोगी, निशिदिन उठि उठि जागत।
सुन्दरदास दयाल भये प्रभु सोइ दियौ जोइ माँगत॥१६॥

---

१४. लूकौ=जलती हुई लकड़ी, जिससे मुरदे को जलाते है। खेह=भस्म। ठरूकौ=ठरका; लकड़ी से ठोकर देने की कपाल-क्रिया। सूकौ=सूखा। कूकौ=पुकारो।

१५. झौर=झंझट। जन्त=जन्तु, जीव। गोपि=गोप्य, छिपा हुआ।

१६. मलारहि रागत=मलार राग गाते है। उनये=घिर आये। दागत=जलाते है।

राग धनाश्री

आरती कैसैं करौं गुसाईं । तुमही ब्यापि रहे सब ठाईं ॥
तुमही कुंभ नीर तुम देवा, तुमही कहियत अलख अभेवा ।
तुमहीं दीपक धूप अनूपं, तुमही घंटा नाद स्वरूपं ॥
तुमही पाती पुहुप प्रकासा, तुमहीं ठाकुर तुमहीं दासा ।
तुमही जल थल पावक पौना, सुन्दर पकरि रहे मुख मौना ॥१७॥

---

१७. ठांईं=ठौर । पाती पुहुप=पत्ती और फूल । पौना=पवन । ठाकुर=स्वामी । पकरि रहे मुख मौना=सर्वव्यापकता और अद्वैतावस्था का चिंतन करते हुए कुछ कहते नही बनता ।

बाबा मलूकदास

चोला-परिचय

जन्म-संवत्—१६३१ वि०
जन्म-स्थान—कडा (जिला इलाहाबाद)
जाति—कक्कड़ खत्री
पिता—सुन्दरदास
चोला-त्याग-सवत्—१७३९ वि०

बाबा मलूकदास बालपन से ही ऊँचे संस्कारी थे । रास्ते मे कही कुछ काँटा, कूडा-कचरा पडा देखते, तो उसे उठाकर एक तरफ फेकदेते थे । एक दिन घर के सामने की गली से एक महात्मा आ निकले । बालक मलूकदास को खेलते हुए देखकर उन्होने पूछा—'यह किसका बालक है ?' पिता सुन्दरदास को बुलाया और उनसे पूछा—'तुम्हारा यह बालक आगे चलकर बडा नाम पैदा करेगा । देखो न, यह आजानुबाहु है । सो या तो यह भारी प्रतापी राजा होगा, या फिर कोई ऊँचा महात्मा ।'

बचपन से ही मलूकदास साधु-सेवा बडे प्रेम से किया करते थे । घर मे जो कुछ पाते साधुओ के सेवा-सत्कार मे लगा देते, मा की राज़ी से और चोरी से भी ।

इनके पिता, जब यह दस-ग्यारह बरस के हुए, इन्हे कंबल बेचने हर आठवे दिन देहात की एक पैठ मे भेजने लगे। जाडे से ठिठुरते किसी गरीब आदमी को या साधु-संत को यह रास्ते मे देखते तो उसे योंही मुफ़्त मे कंबल दे दिया करते थे।

हरि के प्रेम-रस का चसका बालपन से ही मलूकदास को लग गया था। हरि-रस मे सदा मस्त रहते थे। बडे त्यागी और बड़े ही निस्पृह। बाबाजी का औलियापना उनकी बानी मे पूरा झलकता है।

बाबाजी जगन्नाथ स्वामी के बडे भक्त थे। पुरी में आजभी 'मलूकदास का रोट' नित्य राजभोग में चढाया जाता है।

बाबाजी के सम्बन्ध मे अनेक अद्‌भुत चमत्कार प्रसिद्ध हैं, जैसे, एक अहीरिन के इकलोते बेटे को जिला देना, मलवे के नीचे दबे हुए मज़दूरों को ज़िंदा निकाल लेना, बादशाह आलमगीर के सामने अधर लकटते हुए भजन करना आदि।

बाबा मलूकदासजी ने सवत् १७३८ मे अपना चोला छोड़ा १०८ वर्ष की अवस्था मे।

बानी-परिचय

साखी, शब्द (पद) और कुछ कवित्त भी मलूकदासजी ने कहे हैं। अन्य कई सतो की तरह इन्होने निर्गुण के साथ-साथ सगुण का भी गुण-गान किया है। प्रेम की लहलही लहर और पल-पल मे रग पलटनेवाली दुनिया के तई मस्तीभरी लापर्वाही इनकी साध-बानी की खास खूबी है। "अजगर करै न चाकरी, पछी करै न काम। दास मलूका कहि गया, सब का दाता राम"—इनकी इस अखूट विश्वासमयी साखी का, यह तो प्रसिद्ध ही है कि, कितना गलत अर्थ लगाया जाता है।

भाषा मिली-जुली साधु-भाषा है। फारसी के अनेक शब्दो और मुहाविरो का भी प्रयोग इनकी बानी मे हुआ है। जानदार भाषा है।

आधार

१ **बाबा मलूकदासजी की बानी**—बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद

२ **साध-संग्रह अथवा नतन भक्तमाल**—स्वामी बाग, आगरा

बाबा मलूकदास

शब्द

नाम तुम्हारा निरमला, निरमोलक हीरा ॥
तू साहेब समरत्थ, हम मल-मुत्र कै कीरा ॥
पाप न राखे देह में, जब सुमिरन करिये ।
एक अच्छर के कहतहीं, भौसागर तरिये ॥
अधम-उधारन सब कहैं, प्रभु बिरद तुम्हारा ।
सुनि सरनागत आइया, तब पार उतारा ॥
तुझ-सा गरुवा औ धनी, जामें बड़ई समाई ।
जरत उबारे पांडवा, ताती बाव न लाई ॥
कोटिक औगुन जन करै, प्रभु मनहि न आनै ।
कहत मलूकदास को अपना करि जानै ॥१॥

सदा सोहगिन नारि सो जाके राम भतारा ।
मुख माँगे सुख देत हैं, जगजीवन प्यारा ॥
कबहुं न चढ़ै रंडपुरा, जानै सब कोई ।
अजर अमर अबिनासिया, ताको नास न होई ॥
नरदेही दिन दोय की, सुन सुरजन मेरी ।
क्या ऐसों का नेहरा, मुए बिपति घनेरी ॥
ना उपजै ना बीनसै, संतन सुखदाई ।
कहै मलूक यह जानिके मैं प्रीत लगाई ॥२॥

साँचा तू गोपाल, साँच तेरा नाम है ।
जहँवाँ सुमिरन होय, धन्य सो ठाम है ॥

---

१. कीरा=कीड़ा । बिरद=प्रसिद्धि, बड़ा नाम । गरुवा=महान् । बड़ई समाई=बड़ी ही सामर्थ्य । जरत उबारे पाण्डवा=लाक्षागृह में से, जिसे दुर्योधन ने पाण्डवों को जला देने की इच्छा से बनवाया था, श्रीकृष्ण ने पहले ही सूचना देकर पाण्डवों को उसमें से बाहर निकाल लिया । ताती बाव=गर्म हवा ।

२. भतारा=भर्त्ता, पति । रँडपुरा=रँडापा । सुरजन=निश्चित मत । नेहरा=स्नेह ।

साँचा तेरा भक्त, जो तुझको जानता।
तीन लोक को राज, मनै नहिं आनता॥
झूठा नाता छोड़ि, तुझे लव लाइया।
सुमिरि तिहारो नाम, परमपद पाइया॥
जिन यह लाहा पायो, यह जग आइकै।
उतरि गयो भव पार, तेरो गुन गाइकै॥
तुही मातु तुही पिता, तुही हितु बंधु है।
कहत मलूकदास, बिना तुझ धुंध है॥३॥

कौन मिलावै जोगिया हो, जोगिया बिन रह्यो न जाइ॥टेक॥
मैं जो प्यासी पीव की, रटत फिरौ पिव पीव।
जो जोगिया नहिं मिलिहै हो, तो तुरत निकासूँ जीव॥
गुरूजी अहेरी मैं हिरनी, गुरु मारैं प्रेम का बान।
जेहि लागै सोई जानई हो, और दरद नहिं जान॥
कहैं मलूक सुनु जोगिनी रे, तनहिं में मनहि समाय।
तेरे प्रेम के कारने जोगी सहज मिला मोहिं आय॥४॥

दर्द-दिवाने बावरे, अलमस्त फकीरा।
एक अकीदा लै रहे, ऐसे मन-धीरा॥
प्रेम-पियाला पीवते, बिसरे सब साथी।
आठ पहर यों झूमते, मैगल माता हाथी॥
उनकी नजर न आवते, कोई राजा रंक।
बंधन तोड़े मोह के, फिरते निहसंक॥
साहेब मिल साहेब भये, कछु रही न तमाई।
कहैं मलूक तिस घर गये, जहँ पवन न जाई॥५॥

---

३. लाहा=लाभ। धुंध=द्वन्द्व, झगडा।

४. जोगिया=प्यारा सतगुरु। अहेरी=शिकारी। जोगिनी=प्रेम की साधिका, जीवात्मा।

५. अलमस्त=मतवाला, निर्द्वन्द्व। अकीदा=विश्वास। मैगल=मतवाला। निहसंक=निर्भय। तमाई=वासना।

सोई सहर सुबस बसे, जहँ हरि के दासा।
दरस किये सुख पाइये, पूजै मन आसा॥
साकट के घर साधजन, सुपनै नहि जाहीं।
तेइ-तेइ नगर उजाड़ हैं, जहँ साधू नाहीं॥
मूरत पूजैं बहुत मति, नित नाम पुकारैं।
कोटि कसाई तुल्य हैं, जो आतम मारैं॥
परदुख-दुखिया भक्त है, सो रामहिं प्यारा।
एक पलक प्रभु आपतें, नहिं राखैं न्यारा॥
दीनबंधु करुनामयी, ऐसे रघुराजा।
कहैं मलूक जन आपने कों कौन निवाजा॥६॥

हमसे जनि लागे तू माया।
थोरे से फिर बहुत होयगी, सुनि पैहैं रघुराया॥
अपने में है साहेय हमरा, अजहूँ चेतु दिवानी।
काहू जन के बस परि जैहौ, भरत मरहुगी पानी॥
तरह्वै चितय लाज करु जन की, डारु हाथ की फाँसी।
जन तें तेरो जोर न चलिहै, रच्छपाल अबिनासी॥७॥

राग-मिलन क्यों पइये, मोहि राखा ठगवन घेरि, हो।
क्रोध तो काला नाग है, काम तो परघट काल॥
आप आपको खैंचते, मोहि कर डाला बेहाल, हो॥
एक कनक और कामिनी, यह दोनों बटपार।
मिसरी की छुरी गर लायके, इन मारा सब संसार, हो॥
इन में कोई ना भला, सब का एक विचार।
पैंडा मारैं भजन का, कोइ कैसेके उतरै पार, हो॥

---

६. साकट=शाक्त, वाममार्गी। आतम मारैं=आत्माको कष्ट देते है। निवाजा=कृपा की, उद्धार किया।

७. बहुत होयगी=झगड़ा बहुत बढ़ जायगा। काहू जन के=किसी हरिभक्त के। तरह्वै चितय=नीचे की ओर देख।

८. ठगवन=ठगोने। परघट=प्रकट,प्रत्यक्ष। बटपार—राह में लूट लेनेवाले।

उपजत बिनसत थकि पड़ा, जियरा गया उकताय।
कहै मलूक बहु भरमिया.मो पै अब नहिं भरमो जाय, हो ॥८॥

आपा मेटि न हरि भजे, तेइ नर डूबे।
हरि का मर्म न पाइया, कारन कर ऊबे॥
करें भरोसा पुन्न का, साहेब बिसराया।
बूड़ गये तरबोर को, कहुँ खोज न पाया॥
साध-मंडली बैठिके, मूढ़ जाति बखानी।
हम बड़ हम बड़ करि मुए, बूड़े बिन पानी॥
तबके बाँधे तेई नर, अजहूँ नहिं छूटे।
पकरि-पकरि भलि भांति से, जमदूतन लूटे॥
काम को सब त्यागिके, जो रामै गावै।
दास मलूका यों कहैं, तेहिं अलख लखावै ॥९॥

ना वह रीझै जप तप कीन्हें, ना आतम को जारे।
ना वह रीझै धोती टाँगे, ना काया के पखारे॥
दाया करै, धरम मन राखै, घर में रहै उदासी।
अपना-सा दुख सबका जानै, ताहिं मिलैं अविनासी॥
सहै कुसब्द, बादहू त्यागै, छाँड़ै गर्व गुमाना।
यही रीझ मेरे निरंकार की, कहत मलूक दिवाना ॥१०॥

मन तें इतने भरम गँवावो।
चलत बिदेस विप्र जनि पूछो, दिनका दोष न लावो॥
संझा होय करो तुम भोजन, बिनु दीपक के बारे।
जौन कहैं असुरन की बेरिया, मूढ़ दई के मारे॥

मिसरी की छुरी=मोहिनी। पैडा मारै=रास्ते से भटका देते है। गया उकताय=ऊब गया।

९. तरबोर=बिना थाह। जाति बखानी=ऊँचे कुल का बखान किया।

१० धोती टाँगै=छू जाने के भय से धोती ऊपर को उठाकर चलना। उदासी=अनासक्त। बाद हू=वाद-विवाद भी।

११. भरम=मिथ्या विश्वास। बारे=जलाये। जौन···मारै=जो यह कहें कि सन्ध्या

आप भले तो सबहि भलो है, बुरा न काहू कहिये ।
जाके मन कछु बसै बुराई, तासों भागे रहिये ।।
लोक बेद का पैंडा औरहि, इनकी कौन चलावै ।
आतम मारि पषानै पूजैं, हिरदै दया न आवै ।।
रहो भरोसे एक राम के, सूरे का मत लीजै ।
संकट पड़े हरज नहिं मानो, जिय का लोभ न कीजै ।।
किरिया करम अचार भरम है, यही जगत का फंदा ।
माया-जाल में बाँधि अँडाया, क्या जानै नरअन्धा ।।
यह संसार बड़ा भौसागर, ताको देखि सकाना ।
सरन गये तोहि अब क्या डर है, कहत मलूक दिवाना ।।११।।
राम कहो राम कहो, राम कहो बावरे ।
अवसर न चूक भोंदू, पायो भला दाँव रे ।।
जिन तोको तन दीन्हों, ताको न भजन कीन्हो,
जनम सिरानो जात तेरो लोहे कैसो ताव रे ।।
रामजी को गाव गाव, रामजी को तू रिझाव,
रामजी के चरनकमल चित्त माहि लाव रे ।।
कहत मलूकदास, छोड़ दे तैं झूठी आस,
आनँद-मगन होइके, तैं हरिगुन गाव रे ।।१२।।
दीनबंधु दीनानाथ मेरी तन हेरिये ।।
भाई नाहिं बंधु नाहि, कुटुम परिवार नाहि,
ऐसा कोई मित्र नाहि, जाके ढिग जाइये ।।
सोने की सलैया नाहिं, रूपे को रुपैया नाहिं,
कौड़ी पैसा गाँठ नाहिं जासे कछु लीजिये ।।

तो राक्षसो का समय है, समझलो कि उन मूर्खों की बुद्धि मारी गई है । भागे=दूर । पैंडा=रास्ता । सूरे का मत लीजै=अंधे से उसके अपनी लकडी पर के भरोसे से पाठ सीखले । अँडाया=अटका दिया । सकाना=सकपकाया, डर गया ।

१२. भोंदू=मूर्ख । ताव=ताप, उतनी गर्मी जितनी किसी चीज को तपाने या पकाने के लिए पहुँचाई जाय ।

खेती नाहिं बारी नाहिं, बनिज ब्यौपार नाहिं,
ऐसा कोई साहु नाहिं जासों कछु माँगिये ॥
कहत मालूकदास, छोड़दे पराई आस,
रामधनी पायके अब काकी सरन जाइये ॥१३॥

कवित्त

भील कद करी थी भलाई जिया आप जान,
फील कद हुआ था मुरीद कहु किसका ॥
गीध कद ज्ञान की किताब का किनारा छुआ,
ब्याध और बधिक तारा, क्या निसाफ तिनका ॥
नाग कद माला लैके बंदगी करी थी बैठ,
मुझको भी लगा था अजामिल का हिसका ॥
एते बदराहों की तुम बदी करी थी माफ,
मलूक अजाती पर एती करी रिस का ॥१४॥

साखी

मलुका सोई पीर है, जो जानै पर-पीर।
जो पर-पीर न जानही, सो काफिर बेपीर ॥१॥
जहाँ-जहाँ बच्छा फिरै, तहाँ-तहाँ फिरै गाय।
कह मलूक जहँ संतजन, तहाँ रमैया जाय ॥२॥
भेष फकीरी जे करैं, मन नहिं आवै हाथ।
दिल फकीर जे हो रहे, साहेब तिनके साथ ॥३॥

---

१३. तन=ओर। सलैया=सलाई, पाँसा। रूपे को=चाँदी का।

१४. भील=शबरी से अभिप्राय है। कद=कब। फील=गजेन्द्र से तात्पर्य है, जिसे भगवान् ने ग्राह के फंद से बचाया था। मुरीद=चेला। गीध=जटायु से आशय है। निसाफ=इन्साफ, न्याय। नाग=गजेन्द्र। हिसका=स्पर्धा। रिस=नाराजगी। का=क्या।

साखी

१. पीर=सिद्धि, धर्मगुरु।

२. रमैया=राम।

राम राम के नाम को, जहाँ नहीं लवलेस ।
पानी तहाँ न पीजिये, परिहरिये सो देस ॥४॥
गांठी सत्त कुपीन में, सदा फिरै निःसंक ।
नाम अमल माता रहै, गिनै इन्द्र कों रंक ॥५॥
धर्महिं का सौदा भला, दाया जग ब्योहार ।
रामनाम की हाट ले, बैठा खोल किवार ॥६॥
औरहिं चिन्ता करन दे, तू मत मारे आह ।
जाके मोदी राम-से, ताहि कहा परवाह ॥७॥
रामराय असरन-सरन, मोहिं आपन करि लेहु ।
संतन सँग सेवा करौं, भक्ति-मजूरी देहु ॥८॥
प्रेम नेम जिन ना कियो, जीतो नाहीं मैन ।
अलख पुरुष जिन ना लख्यो, छार परो तेहि नैन ॥९॥
सब बाजे हिरदे बजैं, प्रेम पखावज तार ।
मंदिर ढूंढत को फिरै, मिल्यो बजावनहार ॥१०॥
करै पखावज प्रेम का, हृदय बजावै तार ।
मनै नचावै मगन ह्वै, तिसका मता अपार ॥११॥
जो तेरे घट प्रेम है, तो कहि कहि न सुनाव ।
अंतर्जामी जानिहै, अंतरगत का भाव ॥१२॥
माला जपों न कर जपों, जिभ्या कहों न राम ।
सुमिरन मेरा हरि करै, मैं पाया बिसराम ॥१३॥
जेती देखै आतमा, तेते सालिगराम ।
बोलनहारा पूजिये, पत्थर से क्या काम ॥१४॥

---

५. कुपीन=कौपीन, लंगोटी ।
७. मोदी=साहूकार ।
९. मैन=मदन, काम-वासना । तार=सितार या वीणा ।
१३. बिसराम=विश्राम, छुट्टी ।
१४. आतमा=प्राणी ।

देवल पुजे कि देवता, की पूजे पाहाड़ ।
पूजन को जाँता भला, जो पीस खाय संसार ॥१५॥
मक्का मदिना द्वारका, बद्री अरु केदार ।
बिना दया सब झूठ है, कहै मलूक बिचार ॥१६॥
हरी डारि ना तोड़िये, लागै छूरा बान ।
दास मलूका यों कहै, अपना-सा जिव जान ॥१७॥
जे दुखिया संसार में, खोवो तिनका दुक्ख ।
दलिद्दर सौंप मलूक को, लोगन दीजै सुक्ख ॥१८॥
कुंजर चींटीं पशू नर, तामें साहेब एक ।
काटै गला खोदाय का, करै सूरमा लेख ॥१९॥
सब कोउ साहेब बन्दते, हिन्दू मूसलमान ॥
साहेब तिसको बन्दता, जिसका ठौर इमान ॥२०॥
दया-धर्म हिरदे बसै, बोलै अमिरत बैन ।
तेई ऊँचे जानिये, जिनके नीचे नैन ॥२१॥
तैं मत जानै मन मुवा, तन करि डारा खेह ।
ताका क्या इतबार है, जिन मारे सकल बिदेह ॥२२॥
सुन्दर देही देखिके, उपजत है अनुराग ।
मढ़ी न होती चाम की, तो जीवत खाते काग ॥२३॥
जेते सुख संसार के, इकठे किये बटोर ।
कन थोरे काँकर घने, देखा फटक पछोर ॥२४॥
मलूक कोटा झाँझरा, भीत परी भहराय ।
ऐसा कोई ना मिला, जो फेर उठावे आय ॥२५॥

---

१५. जाँता=चक्की ।

१८. दलिद्दर=दरिद्रता, दुःख ।

२१. जिनके नीचे नैन=जो नम्र और शीलवान है ।

२२. खेह=मिट्टी । विदेह=महान् ज्ञानी, जिसे देह का भी भान न हो ।

२४. कन=अन्न के दाने । कांकर=कंकड । पछोर=सूप में रखकर अनाज साफ करना ।

२५. झांझरा=जर्जरित, बहुत पुराना । परी भहराय=ढह पड़ी; देहपात से अभिप्राय है ।

आदर मान महत्त्व सत, बालापन को नेह।
यह चारों तबहीं गये, जबहि कहा 'कछु देह' ॥२६॥
प्रभुताही कों सब मरैं, प्रभु कों मरै न कोय।
जो कोई प्रभु कों मरै, तो प्रभुता दासी होय ॥२७॥

जगजीवन साहब

चोला-परिचय

जन्म-संवत्—१७२७ वि०
जन्म-स्थान—सरहदा गाँव (जिला बाराबकी)
जाति—चदेल क्षत्रिय
गुरु—बुल्ला साहब
भेष—गृहस्थ
मृत्यु-संवत्—१८१८ वि०
मृत्यु-स्थान—कोटवा (जिला बाराबकी)

जगजीवन साहब के पिता खेती-बाडी करते थे। यह भी बचपन मे अपने घर के गाय-बैलो को चराने ले जाया करते थे। पर इनका मन संसारी कामो मे लगता नही था। बालपन से ही परमार्थ और सत्संग की ओर इनके चित्त का झुकाव था। कहते है कि एक दिन कही मैदान मे जब यह बैल चरा रहे थे, दो महात्मा वहाँ अचानक पहुँचे—एक तो बुल्ला साहब और दूसरे गोविन्द साहब। उन्होने जगजीवन से अपनी चिलम के लिए आग ले आने के लिए कहा। दौडकर यह घर से आग तो लाये ही, कुछ दूध भी महात्माओं को पिलाने के लिए लोटे मे ले आये। पर दूध को पिता से पूछकर नही लाये थे, इससे मन मे कुछ डर रहे थे। बुल्ला साहब इसे भाँप गये। जगजीवन लौटकर जब घर आये, तो दूध का बर्तन उन्होंने वैसे-का-वैसा भरा हुआ पाया। देखकर चकित हो गये। फिर दौडकर वहीं पहुँचे। दोनो साधु वहाँ से चल दिये थे। किन्तु उन्हें कुछ दूर जाकर पकड़ लिया, और बड़ा आग्रह

किया कि, 'मुझे आप अपना चेला बनाले ।' बुल्ला साहब ने बालक के सिरपर हाथ रख दिया और उसके अन्तर का चोला पलट गया, उसपर प्रेम और वैराग्य का गहरा रग चढ़ गया । दोनो साधु चलते समय बालक जगजीवन को अपना एक-एक चिह्न भी दे गये,—बुल्ला साहब ने अपने हुक्के मे से तोड़कर एक काला धागा और गोविन्द साहब ने अपने हुक्के मे से सफेद धागा लेकर उमकी दाहिनी कलाई पर बाँध दिया । जगजीवन साहब के सत्तनामी पथवाले अनुयायी आज भी इस दोरगे धागे को अपनी कलाई पर बाँधते है और इसे वे 'आँदू' कहते है ।

शका उठाई जाती है कि बालक जगजीवन को चेतानेवाले महात्मा 'बावरी पथ' के प्रसिद्ध बुल्ला साहब थे या इसी नाम के कोई दूसरे सत, अथवा अवध के सत्तनामी-पथ के प्रवर्त्तक जगजीवन साहब से भिन्न बुल्ला साहब के शिष्य यह कोई दूसरे जगजीवन साहब होगे । सत्तनामियो का कहना है कि जगजीवन साहब किन्ही विश्वेश्वर पुरी के शिष्य थे जो काशी मे रहते थे, पर ऐसे विवादो मे पड़ना व्यर्थ है । ऊँची गति को प्राप्त सतो के मार्ग-दर्शक गुरु अनेक हो सकते है । बावरी पंथ के ही बुल्ला साहब से उपदेश पाकर सत्तनामी पथ को जगजीवन साहब ने अवध मे चेताया, या किसी दूसरे इसी नाम के अथवा अन्य नाम के सत से शब्द-उपदेश लेकर, इस प्रकार के ऊहापोह मे क्यो पडा जाये ? पहुँचे हुओ का मत एक ही होता है और वह पथो से कुछ भिन्न व परे भी हो सकता है और होता है ।

जगजीवन साहब ने गृहस्थ-आश्रम मे ही रहकर हजारो लोगो को परमार्थ का गहरा उपदेश दिया । इनकी दिन-दिन बढती हुई महिमा को देखकर सरहदा गाँव के लोगो के मन मे ईर्ष्या होने लगी । इसलिए सरहदा को छोडकर यह वहाँ से छह मील दूर कोटवा गाँव मे जाकर बस गये । कोटवा मे जगजीवन साहब की आज भी समाधि और गद्दी है, जहाँ हर साल उनकी याद मे एक बड़ा मेला लगता है । कोटवा शाखा के सत्तनामियो का यह बहुत बडा स्थान है । जगजीवन साहब ने इसी कोटवा में संवत् १८१८ मे चोला छोड़ा था ।

बानी-परिचय

कहा जाता है कि जगजीवन साहब ने ७ ग्रन्थ रचे थे—ज्ञान-प्रकाश, महाप्रलय, शब्द-सागर, अघविनाश, आगम-पद्धति, प्रथम-ग्रन्थ और प्रेम-ग्रन्थ। पर इनमे से प्रकाश मे केवल शब्द-सागर ही आया है, जो दो भागो मे "जगजीवन साहब की बानी" के नाम से इलाहाबाद के बेलवे-डियर प्रेस से निकला है।

इनकी बानी बडी सरस और ऊँचे घाट की है। प्रेम और विरह और विनय का निरूपण कई पदों मे इन्होने बडा सजीव किया है। सदाचारी जीवन पर बहुत ज़ोर दिया है। इनकी बानी में आत्मानुभूति की हम स्पष्ट झलक देखते हैं। वास्तव मे जगजीवन साहब की बानी बहुत निर्मल और सुलझी हुई है। भाषा मे स्वाभाविक प्रवाह और अच्छी सरसता है।

आधार

१ **जगजीवन साहब की बानी (दोनों भाग)**—बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद

२ **उत्तरी भारत की संत-परंपरा**—परशुराम चतुर्वेदी, भारती-भंडार, इलाहाबाद

जगजीवन साहब

शब्द

साईं, जब तुम मोहि बिसरावत।
भूलि जात भौजाल-जगत मां, मोहि नाहि कछु भावत॥
जानि परत पहिचान होत जब, चरन-सरन लै आवत।
जब पहिचान होत है तुमसे, सूरति सुरति मिलावत॥

शब्द

१. मां=मे। सूरति सुरति मिलावति=जब निरन्तर की लय तुम्हारे रूप से मिला देती

जो कोई चहै कि करौं बंदगी, बपुरा कौन कहावत।
चाहत खैंचि सरन ही राखत, चाहत दूरि बहावत॥
हौं अजान अज्ञान अहौं प्रभु, तुमतें कहिकै सुनावत।
जगजीवन पर करत हौ दाया, तेहिते नहिं बिसरावत॥१॥

तुमसों मन लागो है मोरा।
हम तुम बैठे रही अटरिया, भला बना है जोरा॥
सत की सेज बिछाय सूति रहि, सुख आनन्द घनेरा।
करता हरता तुमहीं आहहु, करौं मैं कौन निहोरा॥
रह्यो अजान अब जानि परचो है, जब चितयो एक कोरा।
अब निर्वाह किये बनि आइहि, लाय प्रीति नहिं तोरिय डोरा॥
आवागमन निवारहु साईं, आदि-अंत का आहिउँ चोरा।
जगजीवन बिनती करि मांगै, देखत दरस सदा रहौं तोरा॥२॥

चेतावनी

हमारा देखि करै नहिं कोई।
जो कोइ देखि हमारा करिहै, अंत फजीहति होई॥
जस हम चलें चलै नहिं कोई, करी सो करै न सोई।
मानै कहा कहे जो चलिहै, सिद्ध काज सब होई॥
हम तो देह धरे जग नाचब, भेद न पाई कोई।
हम आहन सतसंगी-बासी, सूरति रही समोई॥
कहा पुकारि बिचारि लेहु सुनि, वृथा सब्द नहि होई।
जगजीवनदास सहज मन सुमिरन, बिरले यहि जग कोई॥१॥

है। बपुरा=बेचारा। दूरि बहावति=परे फेंक देते हो।

२. जोरा=जोड़ा। सूति रहि=सोते है। आहहु=हो। निहोरा=विनती। एक कोरा=प्रेम की एक नजर से। डोरा=प्रेम का धागा। आहिउँ=हूँ।

चेतावनी

१. हमरा देखि=हमारी देखादेखी, हमारी नकल। फजीहति=विडंबना। आहन=है। सूरति रही समोई=लय-ध्यान में हम तल्लीन हो गये हैं। सहज मन=सहज भाव से।

बौरे, जामा पहिरि न जाना।
को तैं आसि कहाँ ते आइसि, समुझि न देखसि ज्ञाना ॥
घर वह कौन जहाँ रह बासा, तहाँ ते किहेउ पयाना।
इहाँ तो रहिहौ दुई-चारदिन, अंत कहाँ-कहँ जाना ॥
पाप-पुन्न की यह बजार है, सौदा करु मन माना।
होइहि कूच ऊँच नहिं जानसि, भूलसि नाहि हैवाना ॥
जो जो आवा रहेउ न कोई, सबका भयो चलाना।
कोऊ फूटि टूटि गारत भा, कोउ पहुँचा अस्थाना ॥
अब कि सँवारि सँभारि बिचारिले, चूका सो पछिताना।
जगजीवन दृढ़ डोरिलाइ रहु, गहि मन चरन अडाना ॥२॥

नाम सुमिर मन बावरे, कहा फिरत भुलाना हो ॥
मट्टी का बना पूतला, पानी सँग साना हो।
इक दिन हंसा चलि बसै, घर बार बिराना हो ॥
निसि अँधियारी कोठरी, दूजे दिया न बाती हो।
बाँह पकरि जम लै चलै, कोउ संग न साथी हो ॥
गज रथ घोड़ा पालकी, अरु सकल समाजा हो।
इक दिन तजि चल जायेंगे रानी औ राजा हो ॥
सेमर पर बैठा सुवना, लाल फर देख भुलाना हो।
मारत टोंट भुआ उधिराना, फिरि पाछे पछिताना हो ॥
गूलर कै तू भुनगा, तू का आव समाना हो।
जगजीवनदास बिचारि कहत, सबको वहँ जाना हो ॥३॥

---

२. जामा=देह से तात्पर्य है। आसि=है। आइसि=आया है। कहाँ कहँ=किस-किस योनि में। ऊँच=ऊँचा स्थान, ब्रह्मपद। हैवाना=पशु, मूढ़। अडाना=टिकाना, अटकाना।

४. अन्तर मिलु=कपट छोड़कर हृदय से मिल। बिराना=पराया। सुवना=तोता। फर=फल। टोंट=चोंच। उधिराना=उधड़ गया।

गुरु और शब्द-महिमा

सुनु सुनु सखि री, चरनकमल तें लागि रहु री ।
नीचे तें चढ़ि ऊँचे पाउ । मंदिल गगन मगन ह्वै गाउ ॥
दृढ़करि डोरि पोढ़िकरि लाव । इत-उत कतहूँ नाहीं धाव ।
सत समरथ पिय जीव मिलाव । नैन दरस रस आनि पिलाव ॥
माती रहहु सबै बिसराव । आदि अंत तें बहु सुख पाव ।
सन्मुख ह्वै पाछे नहिं आव । जुग-जुग बाँधहु एहै दाँव ॥
जगजीवन सखि बना बनाव । अब मैं काहुक नाहिं डेराँव ॥१॥

तीरथ-ब्रत को तजिदे आसा ।
सत्तनाम की रटना करिकै, गगन मंडल चढ़ि देखु तमासा ॥
ताहि मँदिल का अंत नहीं कछु, रबी बिहून किरिन परगासा ।
तहाँ निरास बास करि रहिये, काहेक भरमत फिरै उदासा ॥
देउँ लखाय छिपावहुँ नाहीं, जस मैं देखउँ अपने पासा ।
ऐसा कोऊ सब्द सुनि समुझै, कटि अघ-कर्म होइ तब दासा ॥
नैन चाखि दरसन-रस पीवै, ताहि नहीं है जम की त्रासा ।
जगजीवनदास भरम तेहि नाहीं, गुरु क चरन करै सुक्ख-बिलासा ॥२॥

कर्म-भर्म-निषेध

बहुतक देखादेखी करहीं ।
जोग जुक्ति कछु आवै नाहीं, अंत भर्म महँ परहीं ॥
गे भरुहाइ अस्तुति जेइ कीन्हा, मनहिं समुझि ना परई ।
रहनी गहनी आवै नाहीं, सब्द कहे तें लरई ॥

गुरु और शब्द-महिमा

१. गगन-मंदिल=शून्य मंदिर, निर्विकल्प लय की अवस्था । धाव=दौड़, डगमग हो । बनाव=अनुकूल अवसर ।

२. तमासा=अद्भुत रहस्य-लीला । रबी बिहून=बिना सूर्य के । निरास=निवृत्त, तटस्थ ।

कर्म-भर्म-निषेध

१. भरुहाइगे=फूल गये । सरई=बनता है । सिद्ध=पूर्ण, निःसंशय ।

नहीं विवेक कहै कछु औरे, और ज्ञान कथि करई ।
सूझि बूझि कछु आवै नाहीं, भजन न एकौ सरई ॥
कहा हमार जो मानै कोई, सिद्ध सन्त चित धरई ।
जगजीवन जो कहा न मानै, भार जाय सो परई ॥१॥
बहु पद जोरि-जोरि करि गावहिं ।
साधन कहा सो काटि-कपटिकै, अपन कहा गोहरावहिं ॥
निंदा करहिं विवाद जहाँ-तहँ, वक्ता बडे कहावहि ।
आपु अंध कछु चेतत नाहीं, औरन अर्थ बतावहि ॥
जो कोउ राम का भजन करत है, तेहिकाँ कहि भरमावहि ।
माला मुद्रा भेष किये बहु, जग परमोधि पुजावहिं ॥
जहँते आये सो सुधि नाहीं, झगरे जन्म गँवावहि ।
जगजीवन ते निंदक वादी, बास नर्क महँ पावहिं ॥२॥
मन महँ जाइ फकीरी करना ।
रहै एकंत तंत तें लागा, राग निर्त नहि सुनना ॥
कथा चारचा पढै-सुनै नहिं, नाहिं बहुत बक बोलना ।
ना थिर रहै जहाँ तहँ धावै, यह मन अहै हिंडोलना ॥
मैं तैं गर्व गुमान बिबादहिं, सबै दूर यह करना ।
सीतल दीन रहै मरि अंतर, गहै नाम की सरना ॥
जल पषान की करै आस नहिं, आहै सकल भरमना ।
जगजीवनदास निहारि निरखिकै, गहि रहु गुरु की सरना ॥३॥

बिरह व प्रेम का अंग

पैयाँ पकरि मैं लेहुँ मनाय ।
कहौं कि तुम्हहीं कहँ मैं जानौं, अब हौं तुम्हरी सरनहिं आय ।

---

२. काटि-कपटिकै=काट-छाँटकर । अपन कहा=अपना रचा हुआ । गोहरावहि=कहते है, पुकारने है । परमोधि=प्रबोध या ज्ञान का उपदेश देकर । वादी=बकवादी ।
३. तंत=तत्व-विचार । चारचा=चर्चा, वार्ता । रहे मार अन्तर=अहंकार को मारकर । भरमना=भ्रम, धोखा ।

बिरह व प्रेम का अंग

१. पइयाँ=पैर । अघाय=तृप्त होकर ।

जोरी प्रीत, न तोरी कबहूँ, यह छबि सुरति बिसरि नहिं जाय ॥
निरखत रहौं निहारत निसु-दिन, नैन दरस रस पियौं अघाय ।
जगजीवन के समरथ तुमहीं, तजि सतसंग अनत नहिं जाय ॥१॥

झमकि चढ़ि जाऊँ अटरिया री ।
ए सखि पूँछों साँईं केहिं अनुहरिया री ॥
सो मैं चहौं रहौं तेहिं संगहिं, निरखि जाउँ बलिहरिया री ।
निरखत रहौं पलक नहि लाओं, सूतों सत्त-सेजरिया री ॥
रहौं तेहिं सँग रँग-रसमाती, डारौं सकल बिसरिया री ।
जगजीवन सखि पायन परिके, माँगि लेउँ तिन सनिया री ॥२॥

जोगिन भइउँ अँग भसम चढ़ाय ।
कब मोरा जियरा जुडइहौ आय ॥
अस मन ललकै, मिलौं मैं धाय ।
घर-आँगन मोहिं कछु न सुहाय ॥
अस मैं ब्याकुल भइउँ अधिकाय ।
जैसे नीर बिन मीन सुखाय ॥
आपन केहि तें कहौं सुनाय ।
जो समुझौं तौ समुझि न आय ॥
सँभरि-सँभरि दुख आवै रोय ।
कस पापी कहँ दरसन होय ॥
तन मन सुखित भयो मोर आय ।
जब इन नैनन दरसन पाय ॥
जगजीवन चरनन लपटाय ।
रहै संग अब छूटि न जाय ॥३॥

---

२. झमकि=उमाह से ठुमककर । अनुहरिया=सूरत । सेजरिया=सेज, पलंग । सनिया=से ।

३. जुडइहौ=ठंडा करोगे । ललकै=लालसा करता है । सुखाय=सूख जाती है । सँभरि-सँभरि=रह-रहकर; याद कर-कर ।

अब की बार तारु मोरे प्यारे, विनती करिकै कहौं पुकारे।
नहिं बसि अहै केतौ कहि हारे, तुम्हरे अब सब बनहि सँवारे॥
तुम्हरे हाथ अहै अब सोई, और दूसरो नाहीं कोई।
जो तुम चहत करत सो होई, जल थल महँ रहि जोति समोई॥
काहुक देन हौ मंत्र सिखाई, सो भजि अंतर भक्ति दृढ़ाई।
कहौं तो कछु कहा नहि जाई, तुम जानत, तुम देत जनाई॥
जगत भगत केते तुम तारा, मैं अजान केतान बिचारा।
चरन सीस मैं नाहीं टारौं, निर्मल मूरत निरत निहारौं॥
जगजीवन कां अब विस्वास, राखहु सतगुरु अपने पास॥४॥

अरी, मैं तो नाम के रँग छकी॥
जबतें चाख्यो बिमल प्रेमरस, तब तें कछु न सोहाई।
रैनि दिना धुनि लागि रहीं, कोउ केतौ कहै समुझाई॥
नाम पियाला घोंटिकै, कछु और न मोहिं चहीं।
जब डोरी लागी नाम की, तब केहिकै कानि रहो॥
जो यहि रँग में मस्त रहत है, तेहि कै सुधि हरना।
गगन-मँदिल दृढ़ डोरि लगावहु, जाहि रहौ मरना।
निर्भय ह्वैकै बैठि रहौं अब, माँगौं यह बर सोई॥
जगजीवन बिनती यह मोरी, फिरि आवन नहिं होई॥५॥

मैं तोहिं चीन्हा, अब तो सीस चरन तर दीन्हा॥
तनिक झलक छवि दरस देखाय। तबतें तन मन कछु न सोहाय॥
कहा कहौं कछु कहि नहिं जाय। अब मोहि कां सुधि समुझि न आय।
होइ जोगिन अँग भस्म चढ़ाय। भँवर-गुफा तुम रहेउ छिपाय॥
जगजीवन छवि बरनि न जाय। नैनन मूरति रही समाय॥६॥

रहिउँ मैं निरमल दृष्टि निहारी।
ए सखि मोहि ते कहिय न आवे, कस-कस करहुँ पुकारी॥

---

४. समोई=व्याप्त। केतान=क्या।

५. छकी=मतवाली, मस्त। डोरी=लय। कानि=लोक-मर्यादा। सुधि=होश।

६. चीन्हा=पहचान लिया। आय=है। भँवर-गुफा=ब्रह्म-रंध्र।

रूप अनूप कहाँलगि बरनौं, डारौं सब कुछु वारी ॥
रवि ससि गन तेहिं छवि सम नाहीं, जिन केहु कहा बिचारी ॥
जगजीवन गहि सतगुरु चरना, दीजै सबै बिसारी ॥७॥

उपदेश का अंग

साधो नाम तें रहु लौ लाय, प्रगट न काहू कहहु सुनाय ॥
झूठे परगट कहत पुकारि, तातें सुमिरन जात बिगारि ॥
भजन बेलि जात कुम्हलाय, कौनि जुक्ति कै भक्ति दृढ़ाय ॥
सिखि पढ़ि जोरि कहै बहु ज्ञान, सो तौ नाहिं अहै परमान ॥
प्रीति-रीति रसना रहै गाय, सो तौ राम कों बहुत हिताय ॥
सो तौ मोर कहावत दास, सदा बसत हौं तिनके पास ॥
मैं-मरि मन तें रहे हैं हारि, दिप्त जोति तिनकै उजियारि ॥
जगजीवनदास भक्त भे सोइ, तिनका आवागवन न होइ ॥१॥

कलि की रीति सुनहु रे भाई ।
माया यह सब है साईं की, आपुनि सब केहु गाई ॥
भूले फूले फिरत आय, पर केहुके हाथ न आई ।
जो है जहाँ तहाँ ही है सो, अंतकाल चाले पछिताई ॥
जहँ कहुं होय नामरस चरचा, तहाँ आइकै और चलाई ।
लेखा-जोखा करहिं दाम का, पड़े अघोर नरक महँ जाई ॥
बूडहिं आपु और कहँ बोरहि, करि झूठी बहुतक बकताई ।
जगजीवन मन न्यारे रहिए, सत्तनाम तें रहु लय लाई ॥२॥

नाम बिनु नहिं कोउकै निस्तारा ।
जान परतु है ज्ञान तत्त तें, मैं मन समुझि विचारा ।
कहा भये जल प्रात अन्हाये, का भये किये अचारा ॥

उपदेश का अंग

१. जात बिगारि=बिगड जाता है, विफल हो जाता है । जोरि=जोडकर, कविता रचकर । परमान=प्रमाण, सत्य । हिताय=प्रिय लगती है ।

२. और चलाई=और दूसरी चर्चा चलाते है । अघोर=घोर । बोरहि=डुबाते हैं । बकताई=बकवास ।

कहा भये माला पहिरे तें, का दिये तिलक लिलारा।
कहा भये व्रत अन्नहिं त्यागे, का किये दूध-अहारा॥
कहा भये पंचअगिन के तापे, कहा लगाये छारा।
कहा उर्धमुख धूमहिं घोंटें, कहा लोन किये न्यारा॥
कहा भये बैठे ठाढ़ें तें, का मौनी किहे अमारा।
का पंडिताई का बकताई, का बहु ज्ञान पुकारा॥
गृहिनी त्यागि कहा बनबासा, का भये तन मन मारा॥
प्रीतिविहूनि हीन है सब कछु, भूला सब संसारा॥
मंदिल रहै कहूँ नहिं धावै, अजपा जपै अधारा।
गगन-मंडल मनि बरै देखि छवि, सोहै सबतें न्यारा॥
जेहि विस्वास तहाँ लै लागिय, तेहि तस काम सँवारा।
जगजीवन गुरुचरन सीस धरि, छूटि भरम कै जारा॥३॥

भेद का अंग

रँगि-रँगि चन्दन चढावहु सांईं के लिलार रे॥
मन तें पुहुप माल गूँथिकै, सो लैकै पहिरावहु रे।
बिना नैन तें निरखु देखु छवि, बिन कर सीस नवावहु रे॥
दुइ कर जोरिकै बिनती करिकै, नाम कै मंगल गावहु रे।
जगजीवन बिनती करि माँगै, कबहुँ नहीं बिसरावहु रे॥१॥

सखि, बाँसुरी बजाय कहाँ गयो प्यारो॥
घर की गैल बिसरिगै मोहितें, अंग न बस्त्र सँभारो।
चलत पाँव डगमगत धरनि पर, जैसे चलत पतवारो॥

---

३. निस्तारा=छुटकारा। अचारा=कर्मकाण्ड के अनुसार आचार। लिलारा=ललाट, माथा। छारा=भस्म। लोन किये न्यारा=नमक खाना छोड़ दिया। बिहूनि=बिना। हीन=तुच्छ, व्यर्थ। मन्दिल=घर। मनि=मणि, ब्रह्मज्योति से तात्पर्य है। जारा=जाल।

भेद का अंग

१. रँगि-रँगि=रुचि से रच-रचकर। पुहुप=पुष्प, फूल। मंगल=स्वागत गीत।

घर आँगन मोहिं नीक न लागै, सब्द-बान हिये मारो ।
लागि लगन में मगन वाहिसों, लोक-लाज कुल-कानि बिसारो ॥
सुरति दिखाय मोर मन लीन्हों, मैं तौ चहों होय नहिं न्यारो ।
जगजीवन छवि बिसरत नाहीं, तुमसे कहों सो इहै पुकारो ॥२॥

साध-महिमा

गऊ निकसि बन जाहीं । बाछा उनका घर ही माहीं ॥
तृन चरहिं चित्त सुत पासा । गहि जुक्ति साध जग-बासा ॥
साध तें बड़ा न कोई । कहि राम सुनावत सोई ।
राम कहो, हम साधा । रस एकमता औराधा ॥
हम साध, साध हम माहीं । कोउ दूसर जानै नाहीं ॥
जिन दूसर करि जाना । तेहिं होइहि नरक निदाना ॥
जगजीवन चरन चित लावै । सो कहिके राम समुझावै ॥१॥

साध कै गति को गावै । जो अन्तर ध्यान लगावै ।
चरन रहे लपटाई । काहू गति नाहीं पाई ॥
अन्तर राखै ध्याना । कोइ विरला करै पहिचाना ॥
जगत किहो एहि बासा । पै रहैं चरन के पासा ॥
जगत कहै हम माहीं । वै लिप्त काहु माँ नाहीं ॥
जस गृह तस उदयाना । वै सदा अहैं निरबाना ॥
ज्यों जल कमल कै बासा । वै वैसे रहत निरासा ॥
जैसे कुरम जल माहीं । वाकी स्रुति अंडन माहीं ॥
भवसागर यह संसारा । वै रहैं जुक्ति तें न्यारा ॥
जगजीवन ऐसें ठहराना । सो साध भया निरबाना ॥२॥

---

२ बासुरी=भँवर-गुफा के शब्द से तात्पर्य है । कानि=मर्यादा । सूरति=सूरत, रूप ।

साध-महिमा

१. औराधा=आराधन किया । एकमता=अनन्य भाव से ।

२. गति=भेद । उदयाना=वन । निरबाना=मुक्त । निरासा=अलिप्त । कुरम=कूर्म्म, कछवा । स्रुति=सुरति, ध्यान । जुक्ति=सावधानी ।

मंगल

अरे, यहि जग आइके कहाँ गँवायो रे।
निर्गुन तें फुटि आनि धर्‍यो गुन, वह घर मन
बिसरायो रे॥
कर्म-फाँसि माँ सुख भा, सुद्धि भुलायो रे।
रचि-पचि मिलि माटी महँ सबै गँवायो रे॥
बहुत लागि हित माया, मन बौरायो रे।
भाई बन्धु कबीला सबै विचार्‍यो रे॥
जब तजि चलत है काया, सँग न सिधारे रे।
रोवत मोहबस माया, ह्वैगे न्यारे रे॥
जीवत कस नहिं त्यागहु, वृथा करि जानहु रे।
आपुनि सुरति सँभारि, नाम गहि आनहु रे॥
रहहु जगत की संगति, मन तें न्यारे रे।
पुहमी पाँव उठावहु, रहहु बिचारे रे॥
काँट गड़ै नहिं पावै, रहहु सँभारे रे॥
काल तें कोइ नहिं बाचहि, सबकाँ खाइहि रे॥
नाम सुकृत नहिं गहहि, अन्त पछिताइहि रे॥
जस मोहिं समुझि परतु है, तस गोहरावौं रे॥
सुनै बूझि मन समुझि, तौ पार उतारौं रे॥
अचरज आवत देखिके रे, मन समुझि रहायो रे॥
मैं तौ कछु नहि जान्यों गुरू जनायो रे॥
रहौं बैठि तहवाँ मैं सुरति निहारौं रे।
चरन सदा आधार, सीस मैं वारौं रे॥
जगजीवन के साँई, तुम सब जानहु रे।
दास आपना जानहु, अवर न आनहु रे॥१॥

---

१. फुटि—फूटकर, छूटकर, विलग होकर। सुद्धि=सुध, याद। कबीला=स्त्री। न्यारे=अलिप्त। पुहमी पाँव उठावहु=धरती पर हलके पैर रखो, नम्रतापूर्वक चलो। गोहरावउँ—पुकारकर कहता हूँ।

यहि नगरी में होरी खेलौं री ॥
हमरी पिया तें भेंट करावौ, तुम्हरे संग मिलि दौरौं री ॥
नाचौं नाच खोलि परदा में, अनत न पीव हँसौ री ।
पीव जीव एकै करि राखौं, सो छवि देखि रसौं री ॥
कतहूँ न बहौं रहौं चरनन ढिग, मन दृढ होय कसौं री ॥
रहौं निहारत पलक न लावौं, सर्बस और तजौं री ॥
सदा सोहाग भाग मोरे जागे, सतसंग सुरति बरौं री ।
जगजीवन सखि सुखित जुगन-जुग, चरनन सुरति धरौं री ॥१॥
अरी ए, नैहर डर लागै, सखी री, कैसे खेलौं मैं होरी ।
औगुन बहुत नाहिं गुन एकौ, कैसे गहौं दृढ डोरी ॥
केहिं कौं दोष मैं देउं सखी री, सबै आपनी खोरी ।
मैं तो सुमारग चला चहत हौं, मैं तैं विष माँ घोरी ॥
सुमति होहि तब चढौं गगन-गढ, पिय तें मिलौं करि जोरी ॥
भीजौं नैनन चाखि दरसन-रस, प्रीति-गाँठि नहिं छोरी ॥
रहौं सीस दै सदा चरनतर, होउँ ताहिकी चेरी ।
जगजीवन सत-सेज सूति रहि, और बात सब थोरी ॥२॥

फुटकर शब्द

पंडित, काह करै पंडिताई ।
त्यागदु बहुत पढब पोथी का, नाम जपहु चित लाई ॥
यह तो चार विचार जगत का, कहै देत गोहराई ।
सुनि जो करै तरै पै छिन महँ, जेहिं प्रतीति मन आई ॥

---

१. रसों=आनन्द मनाऊँ। बहों=इधर-उधर भटकूँ। दृढ होय कसों=दृढता से वश मे करूँ। सतसग सुरति बरों री=अपनी लय को सत्सग के साथ वरण करूँ।
२. खोरी=दोष। मै तें विष माँ=मै और तू इस द्वैतभावरूपी विष में। सुमति होहि=सुबुद्धि उपजे। गगन-गढ=निर्विकल्प समाधि की शून्यावस्था। सूति रहि=लय-समाधि के आनंद मे अपने आपमे लीन करलूँ।

फुटकर शब्द

१. चार=आचार। गोहराई=पुकारकर। प्रतीति= विश्वास। अजपा=उच्चारण न

पढ़ब पढ़ाउब बेधत नाहीं, बकि दिनरैन गँवाई ।
एहि ते भक्ति होत है नाहीं, परगट कहौं सुनाई ॥
सत्त कहत हौं बुरा न मानौ, अजपा जपै जो जाई ।
जगजीवन सत-मत तब पावैं, परमज्ञान अधिकाई ॥१॥

तुमहीं सों चित लागु है, जीवन कछु नाहीं ।
मात पिता सुत बंधवा, कोउ संग न जाहीं ॥
सिद्ध साध मुनि गंध्रबा मिलि माटी माहीं ।
ब्रह्मा बिस्नु महेश्वरा, गनि आवत नाहीं ॥
नर केतानि को बापुरा, केहि लेखे माहीं ।
जगजीवन बिनती करै, रहै तुम्हरी छांहीं ॥२॥

आनन्द के सिन्ध में आनि बसे, तिनको न रह्यो तन को तपनो ।
जब आपु में आपु समाय गये, तब आपु में आपु लह्यो अपनो ॥
जब आपु में आपु लह्यो अपुनो, तब अपनो हो जाय रह्यो जपनो ।
जब ज्ञान को भान प्रकास भयो, जगजीवन होय रह्यो सपनो ॥३॥

साखी

भूलु फूलु सुख पर नहीं, अबहूँ होहु सचेत ।
सांई पठवा तोहि कों, लावो तेहि ते हेत ॥१॥

तजु आसा सब झूठ ही, संग साथी नहिं कोय ।
केउ केहू न उबारिही, जेहि पर होय सो होय ॥२॥

कहँवाँ तें चलि आयहू, कहाँ रहा अस्थान ।
सो सुधि बिसरि गई तोहिं, अब कस भयसि हेवान ॥३॥

किया जानेवाला नाम-स्मरण, जो श्वास-प्रश्वास के गमनागमनमात्र से होता रहता है । इस अजपा जप की सख्या एक दिन और रात मे २१६०० मानी गई है ।

२. गंध्रबा=गन्धर्व । बापुरा—बेचारा ।

साखी

१. पठवा=भेजा, जन्म दिया । हेत=प्रेम ।

२. केउ केहू न उबारही=कोई किसीको नहीं उबारता ।

काया-नगर सोहावना, सुख तबहीं पै होय।
रमत रहे तेहिं भीतरे, दुख नहिं ब्यापै कोय ॥४॥
मृत-मंडल कोउ थिर नहीं, आवा सो चलि जाय।
गाफिल ह्वै फन्दा पर्यौ, जहँ-तहँ गयो बिलाय ॥५॥

५. मृत-मण्डल=मर्त्यलोक।

दरिया साहब

(बिहारवाले)

चोला-परिचय

जन्म-सवत्—१७३१ वि०
जन्म-स्थान—धरकंधा (जिला आरा)
पिता—पीरनशाह (पूर्वनाम पृथुदास)
जाति—धर्मान्तरित मुसलमान (पूर्वजाति क्षत्रिय)
भेष—गृहस्थ; वस्तुत· विरक्त
मृत्यु-सवत्—१८३७ वि, भादो बदी ४

दरिया साहब के पूर्वज उज्जैन के क्षत्रिय थे, जो वहाँ से उठकर बिहार मे आ बसे थे। जगदीशपुर (जिला शाहाबाद) मे ये लोग रहते थे, और इधर इनका राज भी था। महामहोपाध्याय प० सुधाकर द्विवेदी की शोध के अनुसार दरिया साहब के पिता पृथुदास को औरगजेब की बेगम की एक दर्जिन की लडकी के साथ बाध्यत: अपना दूसरा विवाह करना पडा था, और तभी से वह पृथुदास से पीरनशाह बन गये। अपनी नई ससुराल धरकधा मे जाकर वह बस गये। वहीपर ननिहाल मे दरियादास का जन्म हुआ।

नौ बरस की उम्र मे इनका विवाह हो गया। पत्नी का नाम राममती था। पर पन्द्रह बरस की उम्र मे ही तीव्र वैराग्य हो जाने के कारण इन्होने स्त्री का परित्याग कर दिया, गृहस्थी मे नही फँसे। सहज साधना करते-करते इन्होने ज्ञान और भक्ति का पूरा प्रकाश बीस बरस

की अवस्था मे ही पा लिया। तीस बरस के जब हुए, तब 'तखत' पर बैठ गये। सत्सग कराना और सोते हुए को जगाना-चेताना शुरू कर दिया। दरिया साहब ने सबको सत्पुरुष का सच्चा भेद सुझाया, 'छप-लोक' (आत्मा की परात्पर स्थिति) का मार्ग बताया, और सदा शील-सदाचार का उपदेश दिया। कबीरदास की तरह दरिया साहब ने भी अवतार, मूर्ति-पूजा, तीर्थाटन, जात-पांत वगैरा का खण्डन किया है। कबीरदास के मत और ज्ञान का इनपर पूरा प्रभाव पडा था, और कदाचित् इसीलिए इन्हे कबीर साहब का अवतारतक कहा जाता है।

दरिया-पथ की पॉच गद्दियाँ है। मुख्य गद्दी या तख्त धरकंधा म है, जो डुमराव से करीब १८ मील दूर है। दरिया साहब के ३६ चेलो मे दलदासजी मुख्य थे।

दरिया-पंथियों के कई रिवाज मुसलमानो से मिलते-जुलते है। प्रार्थना ये खडे-खडे झुककर करते है, जिसे 'कोरनिश' कहते है, और वदना को 'सिरदा' याने सिजदा। इनके मूलमंत्र का नाम 'बेवाहा' है। इनके हरेक साधु के पास एक मिट्टी का हुक्का होता है, जिसे ये 'रखना' कहते है, और पानी पीने के बर्तन को 'भरुका'।

बानी-परिचय

दरिया साहब की रची २० पुस्तको का पता चला है, जिनका सक्षिप्त विषय-परिचय, डा० धर्मेन्द्र ब्रह्मचारी शास्त्री की शोध के अनुसार, 'उत्तरी भारत की सत-परम्परा' मे उसके विद्वान् लेखक श्री परशुराम चतुर्वेदी ने किया है। किन्तु प्रकाश मे केवल 'दरियासागर' और 'ज्ञानदीपक' ये दो ही पुस्तके आई है। दरियासागर का प्रकाशन इलाहाबाद के बेलवेडियर प्रेस ने किया है। इसी प्रेस से "दरिया साहेब (बिहारवाले) के चुने हुए पद और साखी" नाम का एक सुन्दर सग्रह भी निकला है।

शोध मे जिन २० पुस्तको का पता चला है, वे ये है :—

(१) प्रेममूल, (२) ज्ञानरत्न, (३) भक्तिहेतु, (४) मूर्ति-उखाड़,

(५) शब्द व बीजक, (६) ज्ञान-स्वरोदय, (७) विवेकसागर, (८) दरियासागर, (९) ज्ञानदीपक, (१०) ब्रह्मविवेक, (११) अमरसार, (१२) निर्भय ज्ञान, (१३) सहस्रानी, (१४) ज्ञानमाला, (१५) दरिया नामा, (१६) अग्रज्ञान, (१७) ब्रह्मचैतन्य, (१८) ज्ञानमूल, (१९) कालचरित्र, और (२०) यज्ञसमाधि।

दरिया साहब की बानी मे हम प्रत्यक्ष अनुभूति की स्पष्ट झलक पाते है। 'छपलोक' अर्थात् सत्यपुरुष के रहस्य-लोक या ब्राह्मी स्थिति का वर्णन ऐसा सजीव इन्होने किया है मानो उसे अपने सामने देख रहे हो। बाह्य जगत् तथा अतर्जगत् को इन्होने एक पारदर्शी की दृष्टि से देखा था। विनय और विरह के पदो मे गहरे भावो को सरल व कोमल भाषा मे व्यक्त किया है।

आधार

१ दरिया सागर—बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद,
२ दरिया साहेब के चुने हुए पद और साखी—बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद
३ उत्तरी भारत की सत-परम्परा—परशुराम चतुर्वेदी, भारती-भडार, इलाहाबाद

दरिया साहब

(बिहारवाले)

पद

अबरी[1] के बार बकसु मोरे साहेब। तुम लायक सब जोग, हे॥
गून बकसिहौ सब भ्रम नसिहौ। रखिहौ आपन पास, हे॥
अछै-बिरछि तरि लै बैठैहौ। तहवां धूप न छांह, हे॥
चाँद न सुरज दिवस नहि तहवां। नहिं निसु होत बिहान, हे॥

पद

१. अबरी=अब (इस शब्द का अर्थ 'अबल' भी किया गयाहे, तब 'बार' का अर्थ

अमृतफल मुख चाखन देहौ। सेज सुगन्ध सुहाय, हे॥
जुग-जुग अचल अमर पद देहौ। इतना अरज हमार, हे॥
भवसागर दुख दारुन मिटिहैं। छुटि जैहैं कुल-परिवार, हे॥
कह दरिया यह मंगल मूल। अनूप फुलैला जहाँ फूल, हे॥१॥

अबरी के बार बकसु मोरे साहेब। जनम-जनम कैं चेरि, हे॥
चरनकमल में हृदय लगाइब। कपट-कागज सब फाड़ि, हे॥
मैं अबला किछुओ नहिं जानौं। परपंचन के साथ, हे॥
पिया मिलन बेरी इन्ह मोरारोकल। तब जिव भयल अनाथ, हे॥
जब दिल में हम निहचे जानल। सूझि परल जमफंद, हे॥
खूलल दृष्टि दिया मनि नेसल। मानहुं सरद के चन्द, हे॥
कह दरिया दरसन-सुख उपजल। दुख सुख दूरि बहाय, हे॥२॥

मैं कुलवंती खसम-पियारी। जाँचत तू लै दीपक बारी॥
गंध सुगंध थार भरि लीन्हा। चंदन चर्चित आरति कीन्हा॥
फूलन सेज सुगन्ध बिछायौं। आपन पिया पलंग पौढायौं॥
सेवत चरन रैनि गइ बीती। प्रेम-प्रीति तुम हो सौं रीती॥
कह दरिया ऐसो चित लागा। भई सुलछनि प्रेम-अनुरागा॥३॥

'बल' किया जाना चाहिए, अर्थात् 'अबल के बल'। पर यह खींच-तान का अर्थ होगा। इसलिए 'अबरी के बार' का सीधा अर्थ 'अब की बार तो' यही ठीक है। बकसु=बख्श दो, माफ करदो। बकसिहौ बख्शोगे, प्रदान करोगे। अछै-बिरिछ=जिस वृक्ष का कभी नाश न हो; सहज समाधि से अभिप्राय है। बिहान=सवेरा, दिन। सुहाय=सुन्दर। फुलैला=फूला है।

२. मोरा रोकल=मुझे रोक रखा। भयल=हुआ। परल=पड़ा। खूलल=खुलगई। नेसल=लेसल, जला दिया।

३. खसम=स्वामी। जाचत ... बारी=अरे, तू मुझे दीपक जलाकर देखता-परखता है! चर्चित=लेपकर। सेवत=पलोटने या चांपते हुए। सुलछनि=सुलक्षणी, सदाचारिणी।

झूलना

प्रेम-धगा यह टूटता ना,
गर टूटि कंठी फिर बांधना क्या ।
यह तत्त-तिलक सतनाम छापा करु,
और विविध है साधना क्या ।
ग्यान का दण्ड न डगमगै कर,
दण्ड लियें काहू मारना क्या ।
यह झूलना दरिया साहेब कहा,
सतनाम सही, बहु पेखना क्या ॥१॥

फुटकर पद

भीतर मैल चहल कै लागी, ऊपर तन का धोवै है ।
अविगत मुरति महल कै भीतर, वाका पंथ न जोवै है ॥
जुगति बिना कोइ भेद न पावै, साधु-संगति का गोवै है ।
कह दरिया कुटने बे गोदी, सीस पटकि का रोवै है ॥१॥

बिहंगम, कौन दिसा उड़ि जैहौ ।
नाम बिहूना सो परहीना, भरमि-भरमि भौ रहिहौ ॥
गुरुनिन्दक बद संत के द्रोही, निन्दै जनम गंवैहौ ।
परदारा परसंग परस्पर, कहहु कौन गुन लहिहौ ॥
मद पी माति मदन तन व्यापेउ, अमृत तजि विष खैहौ ॥
समुझहु नहि वा दिन की बातें, पल-पल घात लगैहौ ॥

झूलना

१. धगा=धागा, संबंध । कंठी=छोटी-छोटी तुलसी की गुरियों की माला, जिसे वैष्णव गले में पहनते हैं । छापा=मुद्रा; शंख, चक्र आदि के चिह्न, जिन्हें वैष्णव अपने अंगों पर गरम धातु से अंकित कराते हैं । दंड=संन्यासी का दंड । पेखना=देखना ।

फुटकर पद

१. चहल=कीचड़, बुरी वासनाओं से अभिप्राय है । महल=हृदय । जोवै है=देखता है । जुगति=योग-युक्ति । भेद=रहस्य । गोवै=जो छिपाता है । कुटने=धूर्त । गोदी=कायर ।

चरनकंवल बिनु सो नर बूड़ेउ, उभि चुभि थाप न पैहौ ॥
कहे दरिया सतनाम भजन बिनु, रोइ रोइ जनम गंवैहौ ॥२॥
बुधजन, चलहु अगम पथ भारी ।
तुमते कहौं समुझ जो आवै, अबरि कै बार सम्हारी ॥
कांट कूस पापन नहिं तहंवाँ, नाहिं बिटप बन झारी ।
बेद किताब पंडित नहिं तहंवाँ, बिनु मसि अंक संवारी ॥
नहिं तहँ सरिता समुंद न गंगा, ग्यान के गमि उँजियारी ।
नहि तहँ गनपति फनपति बरह्मा, नहि तहँ सृष्टि संवारी ॥
सर्ग पताल मृतलोक के बाहर, तहवां पुरुष भुवारी ।
कहे दरिया तहँ दरसन सत है, संतन लेहु बिचारी ॥३॥

साखी

बेवाहा के मिलन सों, नैन भया खुसहाल ।
दिल मन मस्त मतवल हुआ, गूंगा गहिर रसाल ॥१॥
है खुसबोई पास में, जानि परै नहि सोय ।
भरम लगे भटकत फिरे, तिरथ बरत सब कोय ॥२॥
बारिधि अगम अथाह जल, बोहित बिनु किमि पार ।
कनहरिया गुरु ना मिला, बूडत हैं मंझधार ॥३॥
निकट जाय जमराज नहिं, सिर धुनि जम पछिताय ।
बुन्द सिंध में मिलि रहा, कवन सके बिलगाय ॥४॥

---

२. बिहूना=रहित । परहाना=बिना पख के । भौ=भव, संसार । गुन=लाभ से आशय है । मदन=कामदेव ।

३. अबरिके=अबकी । कूस=कुश । पाहन=पत्थर । झारी=झाड़ी । मसि=स्याही । फनपति=शेषनाग । भुवारी=भूपाल; राजा, स्वामी ।

साखी

१. बेवाहा=दरियापन्थियों का मूल मंत्र । मतवल=मतवाला ।

३. बोहित=जहाज । कनहरिया=कर्णधार, खेनेवाला । बुंद ……बिलगाय=आत्मा जब परमात्मा में लीन हो गई, तब कौन उसे अलगा सकता है ?

पाँच तत्त की कोठरी, तामें जाल जंजाल।
जीव तहाँ बासा करै, निपट नगीचे काल ॥५॥
दरिया दिल दरियाव है, अगम अपार बेअंत।
सब महँ तुम, तुम में सभे, जानि मरम कोइ संत ॥६॥

दरिया-सागर

साखी

तीनि लोक के ऊपरे, अभय लोक बिस्तार।
सत्त सुकृत परवाना पावै, पहुँचै जाय करार ॥१॥
जोतिहि ब्रह्मा बिस्नु हहिं, संकर जोगी ध्यान।
सत्तपुरुष छपलोक महँ, ताको सकल जहान ॥२॥
सोभा अगम अपार, हंसबंस सुख पावहीं।
कोइ ग्यानी करै विचार, प्रेमतत्त जा उर बसै ॥३॥

चौपाई

जो सत सब्द बिचारै कोई। अभय लोक सोधारै सोई ॥
कहन सुनन किमिकरि बनि आवैं। सत्तनाम निजु परचै पावै ॥
लीजै निरखि भेद निजु सारा। समुझि परै तब उतरै पारा ॥
कंचन डाहै पावक जाई। ऐसे तन कै डाहहु भाई ॥
जो हीरा घन म्है घनेरा। होइ हिरंवर बहुरि न फेरा ॥
गहै मूल तब निर्मल बानी। दरिया दिल बिच सुरति समानी ॥
पारस सब्द कहा समुझाई। सतगुरु मिलैं त देहि दिखाई ॥
सतगुरु सोइ जो सत्त चलावै। हंस बोधि छपलोक पठावै ॥
घर घर ग्यान कथै बिस्तारा। सो नहिं पहुँचै लोक हमारा ॥

---

५. निपट नगीचे=अत्यंत निकट।

१. अभय लोक=सत्यलोक, अथवा ब्राह्मी अवस्था; इसे दरिया साहब ने 'छपलोक' कहा है, अर्थात् गुप्त या रहस्य-लोक। करार=तट, निर्दिष्ट स्थान।

२. हहिं=है।

३. हंस-बंस=सिद्धपुरुषों की परम्परा से तात्पर्य है।

४. सोधारै=पहुँचता है। डाहै=जलाता है। हिरंवर=शुद्ध हीरा। फेरा=ससार में

आतमदेव पुजहु तुम भाई । का जग पाती तोरहु जाई ॥
पाति तोरि निगुन नहिं पाई । आतम जीवघात इन्ह लाई ॥४॥

साखी

परआतम के पूजते, निर्मल नाम अधार ।
पंडित पत्थल पूजते, भटके जम के द्वार ॥५॥

चौपाई

सब घट ब्रह्म और नहिं दूजा । आतम देव के निर्मल पूजा ॥
बादिहि जनम गया सठ तोरा । अंत कि बात किया तैं भोरा ॥
पढ़ि-पढ़ि पोथी भा अभिमानी । जुगति और सब मिथा बखानी ॥
जौ न जानु छपलोक के मरमा । हंस न पहुँचिहि एहि षटकरमा ॥
सार सब्द जब दृढ़ता लावै । तब सतगुरु किछु आपु लखावै ॥
दरिया कहै सब्द निरबाना । अबरि कहौं नहि बेद बखाना ॥
बेदै अरुझि रहा संसारा । फिरि-फिरि होहि गरभ अवतारा ॥६॥

साखी

सुमिरन माला भेख नाहिं, नाहिं मसी को अक ।
सत्त सुकृत दृढ लाइकै तब तोरै गढ़ बंक ॥७॥
ब्राह्मन औ संन्यासी, सबसौं कहा बुझाय ।
जो जन सबदहि मानिहै. सेइ संत ठहराय ॥८॥

फिर-फिर जन्म लेना । सुरित—लौ । बोधि—उपदेश देकर ।

५. पत्थल=पत्थर, देव-मूर्त्ति ।

६. बादिहि=व्यर्थ ही । जुगति=योग-युक्ति । मिथा=मिथ्या । मरमा=रहस्य । षट-करमा=ब्राह्मणों के छह कर्म, विविध कर्म-काण्ड । सब्द निरबाना=गुरुमुख द्वारा उपदिष्ट परमार्थ-ज्ञान से मोक्ष का रहस्य ।

७. मसी को अंक=स्याही से लिखा अक्षर; कोरे पुस्तकी ज्ञान से आशय है । गढ़ बंक=माया का विकट किला ।

चौपाई

हिन्दु तुरुक हम एकै जाना । जो एह मानै सब्द निसाना ॥
साहबका एह सब जिव अहई । बूझि बिचारि ग्यान निजु कहई ॥
अन पानी सब एकै होई । हिन्दु तुरुक दूजा नहि कोई ॥
हिन्दु तुरुक इमि दुनों भुलाना । दुनों वादि ही वादि बिलाना ॥
दो हिरनी वो गाइहिं खाई । लोहु एक दूजा नहिं भाई ॥
दूजा दुविधा जेहि नहिं होई । भगत सुनाम कहावै सोई ॥
ब्राह्मन सो जो ब्रह्महि चीन्हा । ध्यान लगाय रहै लवलीना ॥
क्रोध मोह तृस्ना नहिं होई । पंडित नाम सदा है सोई ॥९॥

चौपाई

भूले संपति स्वारथ मूढ़ा । परे भवन में अगम अगूढ़ा ॥
संत निकट फिनि जाहिं दुराई । बिषय-बासरस फेरि लपटाई ॥
अब का सोचसि मदहि भुलाना । सेमर सेइ सुगा पछताना ॥
मरनकाल कोइ संगि न साथा । जब जम मस्तक दीन्हेउ हाथा ॥
मात पिता धरनी घर ठाढ़ी । देखत प्रान लियो जम काढ़ी ॥
धन सब गाढ गाहिर जो गाड़े । छूटेउ माल जहांलगि भाँड़े ॥
भवन भया बन बाहर डेरा । रोवहि सब मिलि आँगन घेरा ॥
खाट उठाइ कांध करि लीन्हा । बाहर जाइ अगिनि जो दीन्हा ॥
जरि गई खलरी भसम उड़ाना । सोचि चारि दिन कीन्हेउ ग्याना ॥
फिरि धंधे लपटाना प्रानी । बिसरि गया ओइ नाम निसानी ॥

---

९. अन=अन्न । वादि ही वादि बिलाना=बहस में डकर दोनो ही सच्चे रास्ते से भटक गये और नष्ट हो गये, ईश्वर या अल्लाह का सच्चा भेद किसीको न मिला । दूजा=द्वैत-भाव ।

१०. अगम अगूढ़ा=माया मे बुरी तरह लिप्त, जिसे छोडकर परमार्थ की ओर जाना जिन्हे अशक्य है । फिनि=पुनः । जाहि दुराई=सामने से भाग जाते हैं । बास=

खरचहु खाहु दया करु प्रानी । ऐसे बुड़े बहुत अभिमानी ॥
सतगुरु सबद साँच एह मानी । कह दरिया करु भगति बखानी ॥
भूलि भरम एह मूल गँवावै । ऐसन जनम कहाँ फिरि पावै ॥
धन संपति हाथी अरु घोरा । मरन अंत सँग जाहिं न तोरा ॥
मात पिता सुत बंधौ नारी । ई सब पाँवर तोहि बिसारी ॥१०॥

साखी

कोठा महल अटारिया, सुनेउ स्रवन बहु राग ।
सतगुरु सबद चीन्हें बिना, ज्यों पंछिन महँ काग ॥११॥

वासना । सुगा=तोता । घरनी=स्त्री । खलरी=खाल; ठठरी । कोन्हेउ ग्याना=मन को समझा लिया । बुडे=डूब गये, नष्ट हो गये । मूल=पूँजी; परमार्थ । बधौ=भाई-बंधु । पांवर=नीच; मूढ़ ।

दरिया साहब

(मारवाडवाले)

चोला परिचय

जन्म-संवत्—१७३३ वि०

जन्म-स्थान—जैतारन गाँव (मारवाड)

जाति—धुनियाँ (मुसलमान)

पालनहारे—नाना कमीच व नानी कमीरा

गुरु—संत प्रेमजी

चोला-त्याग—संवत् १८१५ वि०

दरिया साहब जाति के धुनियाँ थे । उन्होंने स्वयं ही कहा है—

"जो धुनियाँ तौभी मैं राम तुम्हारा ।
अधम कमीन जाति मतिहीना, तुम तौ हौ सिरताज हमारा ।'

यह सात साल के थे, जब इनके पिता की मृत्यु हुई। रैन नाम के एक गांव मे, जो मेडता परगने मे था, इनके नाना-नानी ने इनको पाला-पोसा। यह पढे-लिखे नही थे। ईश्वर-भक्ति की पिपासा इनको बालपन से ही थी। कितने ही मुल्लो व पडितों के द्वार खटखटाये, पर भक्तिरस का भेद कही भी नही पाया। वे सब के सब छूछे घड़े दीखे। अन्त मे दरिया साहब प्रेमजी महाराज के पास पहुँचे, जो एक पहुँचे हुए सत थे। यह खियानसर गाँव (बीकानेर राज्य) मे रहते थे, और स्वामी दादूदयालजी के शिष्य थे। प्रेम का असली मार्ग उन्होने इन्हें पकडा दिया। उनके चरणो मे बैठकर दरिया साहब ने भरपूर भक्ति-रस पिया और पिलाया। जिस परमतत्त्व के विरह मे बरसो से तड़प रहे थे, वह इन्हे सहज ही मिल गया, भेद पा लिया।

कतिपय दरियापंथी भक्तो का विश्वास है कि दरिया साहब महात्मा दादूदयाल के अवतार थे। उनका कहना है कि दादूजी महाराज ने दरिया साहब के प्रकट होने से सौ बरस पहले यह साखी कही थी—

"देह पडंतॉं दादू कहै, सौ बरसॉं इक सत।
रैन नगर मे परगटै, तारै जीव अनंत॥"

बानी-परिचय

महात्मा दादूदयाल तथा अन्य अनेक संतों की तरह दरिया साहब ने भी विविध अगो पर साखियाँ कही है। प्रेम और विरह के पद भी इनके गहरे और टकसाली है। नाद-परिचय और ब्रह्म-परिचय की साखियो मे सूक्ष्म अभ्यास और गहरा अनुभव झलकता है। कहने का ढंग सुलझा हुआ, और भाषा सरल और मधुर है। शब्द-अभ्यासी संतों की बानियों मे दरिया साहब की बानी ने खासा स्थान पाया है।

आधार

१ दरिया साहब (मारवाड़) की बानी और जीवन-चरित्र—
बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद

दरिया साहब

(मारवाड़वाले)

सतगुरु का अंग

जन दरिया हरिभक्ति की, गुराँ बताई बाट।
भूला ऊजड जाय था, नरक पडन के घाट ॥१॥

नहिं था राम रहीम का, मैं मतिहीन अजान।
दरिया सुध बुध ग्यान दे, सतगुरु किया सुजान ॥२॥

सतगुरु सब्दाँ मिट गया, दरिया संसय सोग।
औषद दे हरिनाम का तनमन किया निरोग ॥३॥

रंजी सास्तर ग्यान की, अंग रही लिपटाय।
सतगुरु एकहि सब्द से, दीन्ही तुरत उड़ाय ॥४॥

जैसे सतगुरु तुम करी, मुझसे कछू न होय।
बिष-भाँडे विष काढकर, दिया अमीरस मोय ॥५॥

सब्द गहा सुख ऊपजा, गया अँदेसा मोहि।
सतगुरु ने किरपा करी, खिड़की दीनीं खोहि ॥६॥

पान बेल से बीछुड़ै, परदेसाँ रस देत।
जन दरिया हरिया रहै, उस हरी बेल के हेत ॥७॥

सतगुरु का अग

१. गुरा=गुरुजी ने।

२. सुजान=ज्ञानवान्।

३. सब्दां=शब्दो से, उपदेशों से। सोग=शोक।

४. रंजी=रज, धूल। सास्तर=शास्त्र।

५. दिया मोय=भर दिया।

६. अँदेशा=डर, संशय। दीनी खोहि=खोलदी।

सुमिरन का अंग

राम बिना फीका लगै, सब किरिया सास्तर ग्यान ।
दरिया दीपक कह करै, उदय भया निज भान ॥१॥
मुसलमान हिंदू कहा, षट दरसन रंक राव ।
जन दरिया हरिनाम बिन, सब पर जम का दाव ॥२॥
जो कोइ साधू गृही में, माहिं राम भरपूर ।
दरिया कह उस दास की, मैं चरनन को धूर ॥३॥
सतगुरु-संग न संचरा, रामनाम उर नाहिं ।
ते घट मरघट सारिखा, भूत बसैं ता माहिं ॥४॥
दरिया सुमिरन राम का देखत-भूली खेल ।
धन धन हैं वे साधवा, जिन लीया मन मेल ॥५॥
फिरी दुहाई सहर में, चोर गये सब भाज ।
सत्र फिरा मित्र जु भया, हुआ राम का काज ॥६॥

बिरह का अंग

दरिया हरि किरपा करी, बिरहा दिया पठाय ।
यह बिरहा मेरे साध को सोता लिया जगाय ॥१॥
दरिया बिरही साध का, तन पीला मन सूख ।
रैन न आवै नींदड़ी, दिवस न लागै भूख ॥२॥

सुमिरन का अंग

१. किरिया=क्रिया, कर्मकाण्ड ।
२. षटदरसन=छह शास्त्र ।
३. जो कोई ''''भरपूर=जो विरक्त और गृहस्थ दोनों में ही राम को व्यापक देखता है ।
४. संचरा=संचार हुआ । घट=शरीर ।
५. लीया मेल=लगा लिया, रमा लिया ।

विरह का अंग

१. पठाय=भेज दिया । सूख=उदास, रसहीन ।

बिरहिन पिउ के कारने, ढूंढ़न बनखण्ड जाय ।
निस बीती, पिउ ना मिला, दरद रही लिपटाय ॥३॥
बिरहिन का घर बिरह में, ता घट लोहु न माँस ।
अपने साहब कारने, सिसकै साँसों साँस ॥४॥

सूर का अंग

पंडित ग्यानी बहु मिले, बेद ग्यान परबीन ।
दरिया ऐसा ना मिला, रामनाम लवलीन ॥१॥
बक्ता स्रोता बहु मिले, करते खैंचातान ।
दरिया ऐसा ना मिला, जो सन्मुख झेलै बान ॥२॥
दरिया साँचा सूरमा, सहै सब्द की चोट ।
लागत ही भाजै भरम, निकस जाय सब खोट ॥३॥
सबहि कटक सूरा नहीं, कटक माहिं कोइ सूर ।
दरिया पड़ै पतंग ज्यों, जब बाजै रन तूर ॥४॥
भया उजाला गैब का, दौड़े देख पतंग ।
दरिया आपा मेटकर, मिले अगिन के रंग ॥५॥
दरिया प्रेमी आत्मा, रामनाम धन पाया ।
निरधन था धनवँत हुआ, भूला घर आया ॥६॥
सूर न जानै कायरी, सूरातन से हेत ।
पुरजा-पुरजा हो पड़ै, तहू न छांड़ै खेत ॥७॥

---

३. दरद रही लिपटाय=अपने दर्द से चिपटकर वहीं सो गई ।

सूर का अंग

२. खैंचातन=तर्क-वितर्क, नये-नये अर्थ लगाने में बाल की खाल खींचना । झेलै=अपने ऊपर ले ।

४. कटक=सेना । तूर=तुरही, रण में बजाने का एक बाजा जो मुँह से फूंककर बजाया जाता है ।

५. उजाला गैब का=जो आँखों के सामने नहीं उस रहस्यमयी शून्यता में स्थित ब्रह्म-ज्योति का अद्भुत प्रकाश । पतंग=पतिंगे ; यहाँ प्रेमी साधकों से तात्पर्य है ।

७. पुरजा-पुरजा=टुकड़ा-टुकड़ा ।

दरिया सो सूरा नहीं, जिन देह करी चकचूर ।
मन को जीत खड़ा रहे, मैं बलिहारी सूर ॥८॥

ब्रह्म-परचे का अंग

रतन अमोलक परखकर, रहा जौहरी थाक ।
दरिया तहँ कोमत नहीं, उनमुन भया अवाक ॥१॥
धरती गगन पवन नहिं पानी, पावक चंद न सूर ।
रात-दिवस की गम नहीं, जहँ ब्रह्म रहा भरपूर ॥२॥
पाप पुन्न सुख दुख नहीं, जहँ कोइ कर्म न काल ।
जन दरिया जहँ पड़त है, हीरों की टकसाल ॥३॥
जीव जात से बीछड़ा, धर पँचतत का भेख ।
दरिया निज घर आइया, पाया ब्रह्म अलेख ॥४॥
आँखों से दीखै नहीं, सब्द न पावै जान ।
मन बुधि तहँ पहुँचै नहीं, कौन कहै सेलान ॥५॥
माया तहाँ न संचरै, जहाँ ब्रह्म का खेल ।
जन दरिया कैसे बनै, रवि रजनी का मेल ॥६॥
जात हमारी ब्रह्म है, माता पिता है राम ।
गिरह हमारा सुन्न में, अनहद में बिसराम ॥७॥

साध का अंग

दरिया लच्छन साध का, क्या गिरही क्या भेख ।
निःकपटी निरसंक रहि, बाहर भीतर एक ॥१॥

---

८. चकचूर=चूर-चूर, टुकडा-टुकड़ा ।

ब्रह्म-परचे का अंग

१. उनमुन=मौन । अबाक=निःशब्द, मौन ।
३. टकसाल=वह स्थान जहाँ सिक्के बनाये या ढाले जाते है ।
४. जाति=असल जाति से अर्थात् ब्रह्मभाव से । तत=तत्त्व ।
५. सेलान=निशान, रूप ।
७. गिरह=गृह, घर ।

साध का अंग

१. गिरही=गृहस्थ । भेख=वैरागी ।

सत्त सब्द सत गुरमुखी, मत गजंद-मुखदंत।
यह तो तोड़ै पौलगढ़, वह तोड़ै करम अनंत ॥२॥
दाँत रहै हस्ती बिना, पौल न टूटै कोय।
कै कर धारै कामिनी, कै खेलाराँ होय ॥३॥
मतबादी जानै नहीं, ततबादी की बात।
सूरज ऊगा उल्लुवा, गिनै अँधारी रात ॥४॥
सीखत ग्यानी ग्यान गम, करै ब्रह्म की बात।
दरिया बाहर चाँदनी, भीतर काली रात ॥५॥

उपदेश का अंग

दरिया बहु बकबाद तज, कर अनहद से नेह।
औंधा कलसा ऊपरे, कहा बरसावै मेह ॥१॥
जन दरिया उपदेस दे, भीतर प्रेम सधीर।
गाहक हो कोइ हींग का, कहा दिखावै हीर ॥२॥
दरिया गैला जगत को, क्या कीजै सुलझाय।
सुलझाया सुलझै नहीं, सुलझ-सुलझ उलझाय ॥३॥
दरिया गैला जगत को, क्या कीजै समझाय।
रोग नीसरै देह में, पत्थर पूजन जाय ॥४॥

---

२. मत=मत्त, मतवाला। पौलगढ़=किले की ड्योढ़ी का फाटक।

३. दाँत रहै हस्ती बिना—यदि हाथी का दाँत हो, पर हाथी न हो; साधना के पक्ष में यह अर्थ होगा, कि यदि इन्द्रियों और मन का दमन न किया हो, केवल वाचनिक साधना हो। खेलारा=खिलौना।

४. मतवाद=भिन्न-भिन्न शास्त्रों के सिद्धान्तों की बात करनेवाले। ततबादी=तत्त्ववादी, शुद्ध आत्मज्ञानी।

उपदेश का अंग

२. सधीर=दृढ़, पक्का। हीर=हीरा।

३. गैला=गहिला, पागल।

४. रोग=चेचक से तात्पर्य है। नीसरै=निकलता है। पत्थर पूजन जाय=माता कहकर देवी पूजने जाते है।

कंचन कंचन ही सदा, काँच काँच सो काँच।
दरिया झूठ सो झूठ है, साँच साँच सो साँच ॥५॥

कानों सुनी सो झूठ सब, आँखों देखी सांच।
दरिया देखे जानिये, यह कंचन यह कांच ॥६॥

पारस का अंग

पारस परसा जानिये, जो पलटै अँग-अंग।
अंग-अंग पलटै नहीं, तौ है झूठा संग ॥१॥
पारस जाकर लाइये, जाके अँग में आप।
क्या लावै पाषान को, घस-घस होय संताप ॥२॥

दरिया बिल्ली गुरु किया, उज्जल बगु को देख।
जैसा को तैसा मिला, ऐसा जक्त अरु भेष ॥३॥
साध स्वाँग अस आँतरा, जेता झूठ अरु सांच।
मोती मोती फेर बहु, इक कंचन इक काँच ॥४॥

पाँच सात साखो कहो, पद गाया दस दोय।
दरिया कारज ना सरै, पेट-भराई होय ॥५॥

मिश्रित साखी

बड के बड लागै नहीं, बड के लागै बीज।
दरिया नान्हा होयकर, रामनाम गह चीज ॥१॥

माया माया सब कहै, चीन्है नाहीं कोय।
जन दरिया निज नाम बिन, सबही माया होय ॥२॥

पारस का अग

२. लाइए=छुआवे। आप=आब या जौहर।

३. जक्त=जगत, सासारिक शिष्य से आशय है। भेख=सासारिक साधु या गुरु से तात्पर्य है।

४. साध स्वाग=सच्चा साधु और झूठा भेषधारी साधु। कचन=असली से तात्पर्य है। काच=नकली से तात्पर्य है।

नारी आवै प्रीत कर, सतुगुर परसै आन।
दरिया हित उपदेस दे, माय बहिन धी जान ॥३॥
नारी जननी जगत की, पाल-पोस दे पोष।
मूरख राम बिसार कर, ताहि लगावै दोष ॥४॥

राग भैरो

जाके उर उपजी नहिं भाई। सो क्या जानै पीर पराई ॥टेक॥
ब्यावर जानै पीर की सार। बाँझ नार क्या लखै बिकार ॥
पतिब्रता पति को ब्रत जानै। बिभचारिन मिल कहा बखानै ॥
हीरा पारख जौहरि पावै। मूरख निरखके कहा बतावै ॥
लागा घाव कराहै सोई। कोतगहार के दर्द न कोई ॥
रामनाम मेरा प्रान-अधार। सोई रामरस-पीवनहार ॥
जन दरिया जानैगा सोई। प्रेम की भाल कलेजे पोई ॥१॥

राग भैरो

जो धुनियाँ तौ मैं भी राम तुम्हारा।
अधम कमीन जाति मतिहीना, तुम तौ हौ सिरताज हमारा ॥टेक॥
काया का जंत्र, सब्द मन मुठिया, सुषमन ताँत चढ़ाई।
गगन-मंडल में धुनुआँ बैठा, मेरे सतगुर कला सिखाई ॥
पाप-पान हरि, कुबुधि-काँकडा, सहज-सहज झड़ जाई।
घुंडी गांठ रहन नहिं पावै, इकरंगी होय आई ॥
इकरँग हुआ भरा हरि चोला, हरि कहै, कहा दिलाऊँ ?
मैं नाहीं मेहनत का लोभी, बकसौ मौज भक्ति निज पाऊँ ॥

मिश्रित साखी

३. धी=लडकी, बेटी।

१. ब्यावर=बच्चा देनेवाली, जच्चा। कोतगहार=तमाशा देखनेवाला, नकल करनेवाला। पोई=चुभी है, आरपार चली गई है।

२. कमीन=नीच। जंत्र=धुनकी। सुखमन ताँत चढाई=सुषुम्ना नाडी में प्राणों को लय करके। गगन-मण्डल=मन की शून्यावस्था अर्थात् निर्विकल्प समाधि की स्थिति। पाप-पान हरि=पापरूपी पत्ते निकालकर। कुबुधि कॉकडा=दुर्बुद्धिरूपी बिनौला।

किरपा करि हरि बोले बानी, तुम तौ हौ मम दास ॥
दरिया कहै मेरे आतम भीतर, मेलौ राम भक्ति-बिस्वास ॥२॥

राग भैरौ

आदि अनादी मेरा साँई ॥
द्रष्ट न मुष्ट है अगम अगोचर, यह सब माया उनहीं माईं ॥
जो बनमाली सींचे मूल, सहजै पिवै डाल फल फूल ॥
जो नरपति को गिरह बुलावै, सेना सकल सहज ही आवै ॥
जो कोई कर भान प्रकासै, तौ निस तारा सहजहि नासै ॥
गरुड़ पंख जो घर में लावै, सर्प जाति रहने नहिं पावै ॥
दरिया सुमरै एकहि राम, एक राम सारै सब काम ॥३॥

राग बिहगडा

नाम बिन भाव करम नहिं छूटै ॥
साध संग औ रामभजन बिन, काल निरंतर लूटै ॥
मल सेती जो मल को धोवै, सो मल कैसे छूटै ॥
प्रेम का साबुन नाम का पानी, दोय मिल तांता टूटै ॥
भेद अभेद भरम का भाँडा, चौड़े पड़-पड़ फूटै ॥
गुरमुख सब्द गहै उर अन्तर, सकल भरम से छूटै ॥
राम का ध्यान तूँ धर रे प्रानी, अंमृत का मेंह बूटै ॥
जन दरियाव अरप दे आपा, जरा मरन तब टूटै ॥४॥

राग सोरठ

है को संत राम अनुरागी, जाकी सुरत साहब से लागी ॥
अरस-परस पिव के सँग राती, होय रही पतिबरता ॥
दुनिया-भाव कछू नहिं समझै, ज्यों समुँद समानी सलिता ।

भरा हरि चोला=घट मे परमात्मा की व्यापकता प्रत्यक्ष हो गई । वकसौ मौज= आनन्दरस प्रदान करो ।

३. मुष्ट=गुप्त । माईं=में । गिरह=गृह । कर भान=भानुकर, सूर्य की किरण । नासै= छिप जाय । सारै=पूर्ण कर देता है ।

४. तांता=मल का लगाव; सत् से असत् का संबंध । चौड़े=मैदान में, स्पष्ट ही । बूटै=बरसे ।

मीन जायकर समुँद समानी, जहँ देखै तहँ पानी ॥
काल-कीर का जाल न पहुँचैं, निर्भय ठौर लुभानी ॥
बावन चन्दन भौंरा पहुँचा, जहँ बैठे तहँ गन्धा ॥
उड़ना छोड़िके थिर हो बैठा, निसदिन करत अनन्दा ॥
जन दरिया इक रामभजन कर, भरम-बासना खोई ॥
पारस परस भया लोह कंचन, बहुर न लोहा होई ॥५॥

राग सोरठ

बाबल कैसे बिसरा जाई ।
जदि मैं पति सँग रल खेलूँगी, आपा धरम समाई ॥
सतगुरु मेरे किरपा कीनी, उत्तम बर परनाई ।
अब मेरे सांई को सरम पड़ैगी, लेगा चरन लगाई ॥
थे जानराय मैं बाली भोली, थे निर्मल, मैं मैली ।
थे बतलाओ मैं बोल न जानूँ, भेद न सकूँ सहेली ॥
थे ब्रह्मभाव मैं आतम-कन्या, समझ न जानूँ बानी ।
दरिया कहै पति पूरा पाया, यह निश्चय कर जानी ॥६॥

राग केदारा

ऐसे साधू करम दहै ।
अपना राम कबहुँ नहि बिसरैं, बुरी भली सब सीस सहै ॥
हस्ती चलै भूँसैं वह कूकर, ताका औगुन उर न गहै ॥
वाकी कबहूँ मन नहि आनै, निराकार की ओर रहै ॥
धन को पाय भया धनवंता, निरधन मिल उन बुरा कहै ॥
बाकी कबहुँ न मन में लावै, अपने धन संग जाय रहै ॥

---

५. अरस परस=देखकर और भेंटकर । राती=प्रेम में रँग गई । सलिता=सरिता, नदी । काल-कीर=मृत्युरूपी बहेलिया ।

६. रल खेलूँगी=हिल-मिलकर क्रीडा करूँगी । परनाई=व्याह करा दिया । थे=तुम । जानराय=चतुर-शिरोमणि । बाली=लड़की । न सकूँ सहेली=समझ नहीं सकती ।

७. भूँसैं=भूँकें । कूकर=कुत्ते, निन्दकों से आशय है । भेख=पाखण्डी, भेषधारी

पति को पाय भई पतिबरता, बहु बिभचारिन हांस करै ॥
वाके संग कबहुं नहि जावैं, पति से मिलकर चिता जरै ॥
दरिया राम भजै जो साधू, जगत भेख उपहास करै ॥
वाका दोष न अन्तर आनै, चढ नाम-जहाज भौसागर तरै ॥७॥

वैरागी । माइ=हृदय मे । मुआ पछे=मरने के बाद ।

भीखा साहब

चोला-परिचय

जन्म-संवत्—१७७० वि०

जन्म-स्थान—खानपुर बोहना गाँव, जिला आज़मगढ

जाति— ब्राह्मण चौबे

गुरु—गुलाल साहब

सत्सग-स्थान—भुरकुडा गाँव, जिला गाजीपुर

चोला त्याग—सवत् १८२० वि०

घरेलू नाम इनका भीखानन्द था । बालपन से ही सत्सग मे रस लेने लगे थे । बारह वर्ष की अवस्था मे ही घर त्याग दिया । सतगुरु की खोज मे निकल पडे काशी की ओर । पर वहाँ कुछ मिला नही । लौट पडे । रास्ते मे सुना कि भुरकुडा गाँव म गुलाल साहब नाम के एक पहुँचे हुए महात्मा परमार्थ को दोनो हाथो लुटा रहे है; जो भी भक्ति-रस का प्यासा उनके द्वार पर जाता है, वह अघाकर ही लौटता है । भक्ति-रस के प्यासे भीखानन्द भुरकुडा पहुँचे, और गुलाल साहब के गुरुमुख चेले हो गये । भीखा साहब ने इस सुन्दर घटना को अपने एक पद मे विस्तार से इस प्रकार कहा है—

"बीते बारह बरस उपजी रामनाम सों प्रीति ।
निपट लागी चटपटी मानो चारिउ पन गये बीति ॥
नहि खान-पान सुहात तेहिं छिन, बहुत तन दुर्बल हुआ ।
घर ग्राम लाग्यो बिषम, धन मनु सकल हार्यो है जुआ ॥

ज्यो मृगा जूथ से फूटि परु, चित चकित ह्वै बहुतै डरो ।
ढुँढ़त व्याकुल वस्तु जनु कै हाथ सो कछु गिरि परो ॥
सतसंग खोजो चित्त सो जहँ बसत अलख अलेख ।
कृपा करि कब मिलहिगे दहुँ कहाँ कौने भेख ॥
कोउ कहेउ साधू बहु बनारस भक्ति-बीज सदा रह्यो ।
तहँ सास्त्र मत को ग्यान है, गुरुभेद काहू नहि कह्यो ॥
दिन दोय-चारि विचारि देख्यौ भरम करम अपार है ।
बहु सेव पूजा कीरतन मन माया-रस व्योहार है ॥
चल्यौ बिरह जगाय छिन-छिन उठत मन अनुराग ।
दहुँ कौन दिन अरु घरी पल कब खुलैगो मम भाग ॥
बहु रेखता अरु कवित साखी सब्द सो मन मान ।
सोइ लिखत सीखत पढत निसिदिन करत हरिगुन गान ॥
इक ध्रुपद बहुत विचित्र सूनत, 'भोग' पूछेउ, है कहाँ ।
नियरे भुरकुडा ग्राम जाके सब्द आपे है तहाँ ॥
चोप लागी बहुत जायके चरन पर सिर नाइया ।
पूछेउ कहा कहि दियो आदर सहित मोहि बैसाइया ॥
गुरुभाव बूझि मगन भयो मन जन्म को फल पाइया ।
लखि प्रीति दरद दयाल दरवे आपनो अपनाइया ॥
आतमा निज रूप साँचो कहत हम करि कसम कै ।
भीखा आपे आप घटघट बोलता सोहमस्मि कै ॥"

इस शब्द मे कितनी गहरी और तीव्र सतगुरु से मिलने और उनके अनमोल वस्तु पाने की विरह-व्याकुलता है । सोते हुए विरह को जगा कर, अनुराग की हिलोरो को उठाते हुए सतगुरु की खोज मे भुरकुडा गाव यह पहुँचे । अद्भुत ध्रुपद कही एक सुन लिया था, जिसकी आखिरी कड़ी मे 'गुलाल' यह छाप पडती थी । गहरी प्रीति और विरह की भीतरी पीड़ देखते ही दयालु गुलाल साहब द्रवित हो गये, और तुरन्त दरदवत भीखा को अपना लिया । १६ बरसतक भीखा साहब ने भुरकुड़ा मे

बैठकर गुलाल साहब की खूब सेवा की और खूब सत्संग कमाया, और ५० बरस की अवस्था में वही पर गुरुधाम मे चोला छोडा ।

बानी-परिचय

भीखा साहब की बानी मे साखियाँ, पद, रेखते, कवित्त और कुण्डलियाँ विविध अगो पर मिलती है। कहते है कि '**रामजहाज**' नाम का इनका रचा एक बडा ग्रथ है। और भी कई पुस्तके है, जिनमें से बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद मे प्रकाशित सतबानी पुस्तकमाला के शोध-प्रेमी सम्पादक ने भीखा साहब की बानी का सकलन किया है।

कोमल, मधुर और अन्तर को वेधनेवाली बानी है भीखा साहब की। अनेक शब्दो मे मौज की ऊँची लहरे उठती दिखाई देती है। शब्द-रहस्य के खुलने पर ऐसा लगता है मानो रस का निर्झर फूट पडा हो, गुलाल बिखर पडी हो।

भावो के अनुरूप अनेक अप्रयुक्त शब्दो का भी इन्होने पटुतापूर्वक प्रयोग किया है।

सतगुरु से जो प्रसादी पाई थी उसे भीखा साहब ने बडे जतन से सँवारा और अपनी गहरी बानी द्वारा जन-जन को दोनो हाथों लुटाया।

आधार

१ **भीखा साहब की बानी**—बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद

२ **साध-संग्रह अथवा नूतन भक्तमाल**—स्वामी बाग, आगरा

भीखा साहब

उपदेश

जग के करम बहुत कठिनाई, तातें भरमि-भरमि जहँड़ाई ॥
ज्ञानवंत अज्ञान होत है, बूढ़े करत लरिकाई।
परमारथ तजि स्वारथ सेवहि, यहधौं कौनि बड़ाई ॥

उपदेश

१. जहँड़ाई=धोखा खाते हैं। लेहिं बिसाहि=खरीद लेते है। सोना नाम=सुवर्ण

बेद-बेदान्त कौ अर्थ बिचारहिं, बहुबिधि रुचि उपजाई ।
माया-मोह-ग्रसित निसबासर, कौन बड़ो सुखदाई ।।
लेहिं बिसाहि कांच को सौदा, सोना नाम गँवाई ।
अमृत तजि बिष अँचवन लागे, यह धौं कौनि मिठाई ।।
गुरु-परताप साध की संगति करहु न काहे भाई ।
अन्तसमय सब काल गरसिहै, कौन करौ चतुराई ।।
मानुष-जनम बहुरि नहिं पैहौ, बादि चला दिन जाई ।
भीखा कौ मन कपट कुचाली, धरन धरै मुरखाई ।।१।।

समुझि गहो हरिनाम, मन तुम समुझि गहो हरिनाम ।
दिन दस सुख यहि तन के कारन, लपटि रहो धन धाम ।।
देखु बिचारि जिया अपने, जत गुनना गुनन बेकाम ।
जोग जुक्ति अरु ज्ञान ध्यान तें, निकट सुलभ, नहिं लाम ।।
इत उत की अब आसा तजिकै, मिलि रहु आतमराम ।
भीखा दीन कहाँलगि बरनै, धन्य घरी वहि जाम ।।२।।

राम सों करु प्रीति हे मन, राम सों करु प्रीति ।।
राम बिना कोउ काम न आवै, अंत ढहो जिमि भीति ।।
बूझि बिचारि देखु जिय अपनो, हरि बिन नहिं कोउ हीति ।।
गुरु गुलाल के चरनकमल-रज, धरु भीखा उर चीति ।।३।।

गुरु व नाम-महिमा

गरु दाता छत्री सुनि पाया । सिप्य होन द्विज जाचक आया ।।
देखत सुभग सुन्दर अति काया । बचन सप्रेम दीन पर दाया ।।

के जैसा हरिनाम । अँचवन लागे=पीने लगे । गरसिहै=ग्रस लेगा, पकड़ लेगा, निगल जायेगा । बादि=व्यर्थ । धरन=धारणा, टेक ।

२. जत=जितना । लाम=लम्बा, दूर । जाम=याम,पहर ।

३. अन्त ''भीति=जैसे दीवार ढह पड़ती है, वैसे ही अन्त में तुम्हारी देह भी गिर पड़ेगा । हीति=हितकारी । चीति=चेतकर ।

गुरु व नाम-महिमा

१. छत्री=गुरु गुलाल साहब, जो क्षत्रिय थे । द्विज=भीखा साहब, जो ब्राह्मण थे ।

बूझि बिचारि समुझि ठहराया। तन मन सों चरनन चित लाया॥
दिन दिन प्रीति बढ़त गतमाया। कृपा करहिं जानहिं निजजाया॥
साहब आपै आप निराल। आतमराम को नाम गुलाल॥
सरब दान दियो रूप बिचारी। पाय मगन भयो बिप्र भिखारी॥१॥

मोहि डहतु है मन माया॥
एकै सब्द ब्रह्म फिरि एकै, फिरि ऐकै जग छाया।
आतम जीव करम अरुझाना, जड़ चेतन बिलमाया॥
परमारथ को पीठ दियो है, स्वारथ सनमुख धाया।
नाम नित्य तजि अनितै भावै, तजि अमृत बिष खाया॥
सतगुरु कृपा कोउ कोउ बाचै, जो सोधै निज काया।
भीखा यह जग रतो कनक पर, कामिनि हाथ बिकाया॥२॥

साधो, सब महँ निज पहिचानी, जग पूरन चारिउ खानी॥
अविगत अलख अखंड अमूरति, कोउ देखे गुरु ज्ञानी॥
ता पद जाय कोउ कोउ पहुँचे, जोग जुक्ति करि ध्यानी॥
भीखा धन जो हरि-रँग-राते, सोइ हैं साधु पुरानी॥३॥

अस करिये साहब दाया।
कृपा कटाच्छ होइ जेहितें प्रभु, छूटि जाय मन-माया॥
सोवत मोह-निसा निसबासर, तुमहीं मोहि जगाया।

गतमाया=माया क्षीण होती जाती है। जाया=पैदा किया हुआ, पुत्र। निराल=निराला, विलक्षण, अलौकिक।

२. डाहत है=तंग कर रही है। जगछाया=यह जगत् ब्रह्म का प्रतिविम्ब है। बिलमाया=ठहरा या रमा लिया है। अनितै=अनित्य जगत् ही। बाचै=बच पाता है। रतो=अनुरक्त या मोहित है।

३. निज=स्वरूप, अपनी आत्मा। चारिउ खानी=जीव के चारो प्रकार अर्थात् अंडज, स्वेदज, पिंडज, और उद्भिज। अविगत=जो जाना न जाय।

जनमत मरत अनेक बार, तुम सतगुरु होय लखाया ॥
भीखा केवल एक रूप हरि, व्यापक त्रिभुवन-राया ॥४॥

यार हो, हँसि बोलहु मोसों, भरम-गाँठि छूटै प्रभु तोसों ॥
पालन करि आये मोकहँ तुम, खाय जियाय कियो घर-पोसो ॥
बचन मेटि मैं कहौं गरज बसि, दरदबंद प्रभु करौ न गोसो ॥
हो करता करमन के दाता, आगे बुधि आवत नहि होसो ॥
तुम अंतरजामी सब जानो, भीखा कहा करहि अपसोसो ॥५॥

ए साईं, तुम दीनदयाला, आयहु करत सदा प्रतिपाला ॥
केतिक अधम तरे तुम चरनन, करम तुम्हार कहा अहि जाला ॥
मन उनमेख छुटत नहिं कबहीं, सौच तिलक पहिरे गल माला ॥
तनिकौ कृपा करहु जेहिं जन पर, खूल्यो भाग तासुको ताला ॥
भीखा हरि नटवर बहुरूपी, जानहि आपु आपनी काला ॥६॥

प्रीति की यह रीति बखानौ ॥
कितनौ दुख सुख परै देह पर, चरन-कमल कर ध्यानो ॥
हो चैतन्य बिचारि, तजो भ्रम, खाँड धूरि जनि मानौ ॥
जैसे चात्रिक स्वाँति बुन्द बिनु, प्रान-समरपन ठानौ ॥
भीखा जेहिं तन रामभजन नहिं, कालरूप तेहिं जानौ ॥७॥

कहा कोउ प्रेम बिसाहन जाय ।
महँग बड़ा गथ काम न आवै, सिर के मोल बिकाय ॥

---

४. त्रिभुवन-राया=तीन लोक के स्वामी ।

५. पोसो=पोषण किया । गरज=स्वार्थ । दरदवन्द=पीड़ित । गोसो=गुस्सा । होसो=होश । अपसोसो=अफसोस, पछतावा ।

६. करम=कृपा । कहि जाला=कहा जा सकता है । उनमेख=उन्मेष, खिलना; यहा मन की चंचलता से अभिप्राय है । काला=कला ।

७. खाँड-धूरि=शकर और धूल; सत् और असत्; ब्रह्मरस और विषयरस । चात्रिक=चातक, पपीहा । ठानौ=निश्चय कर लिया ।

तन मन धन पहिले अरपन करि, जग के सुख न सोहाय।
तजि आपा आपुहि ह्वै जीवै, निज अनन्य सुखदाय॥
यह केवल साधन को मत है, ज्यों गूंगे गुड़ खाय।
जानहिं भले कहै सो कासों, दिल की दिलहिं रहाय॥
बिनु पग नाच नैन बिनु देखै, बिनु कर ताल बजाय।
बिनु सरवन धुनि सुनै बिबिध बिधि, बिनु रसना गुन गाय॥
निर्गुन में गुन क्योंकर कहियत, व्यापकता समुदाय।
जहँ नाहीं तहँ सब कुछ दिखियत, अँधरन की कठिनाय।
अजपा जाप अकथ को कथनो, अलख लखन किन पाय।
भीखा अविगत की गति न्यारी, मन बुधि चित न समाय॥८॥

होली

हरिनाम भजन हठ कीजै हो, स्वाँसा ढरकत रंगभरी।
हो होइ समय जात मानो गनि-गनि, सिरपर ठोकत काल घरी॥
फगुवा जग भकुवा खेलतु है, स्वारथरत होरी जु परी।
परमारथ चेतन्न आतमा आइ सरूप गयो छरी॥
कहत है बेद बेदांत संत, को साँच भक्ति बिनु भव तरी।
परमारथ गुरु ज्ञान अनादर, लोक लाज कुल को डरी॥
जुग बरस मास दिन पहर घरी छिन, तन पर आय चढ़ी जरी।
बात कफ्फ पित कण्ठ गहो है, नैनन नीर लगो झरी॥
बिसर्‌यो गथ, औसान बुझावत, जहँ-जहँ वस्तु धरी।
हाहाकार करत घर पुर जन, थकित भयो का कहि करी॥

---

८. गथ=पूंजी, गाठ का धन। सरवन=श्रवण, कान। धुनि=अनहद नाद से अभिप्राय है। बिनु रसना='अजपा' जप से तात्पर्य है। समुदाय=सर्वत्र। अविगत=जो जाना न जा सके। समाय=पहुँच, गति।

होली

१. ढरकत=ढलती या बीतती जाती है। घरी=घड़ियाल। भकुवा=मूर्ख। सरूप=स्वरूप, निजरूप। गयो छरी=छला गया। जरी=ज्वर, ताप। गथ=बोल। औसान=

चतुर प्रबीन बैद कोउ आवो, हाथ उठा देखो नरी।
भीखा बूझत कहत सबै अब, राम कृस्न बोलो हरी ॥९॥

जहाँतक समुँद दरियाव जल कूप है,
लहरि अरु बुंद को एक पानी।
एक सूबर्न को भयो गहना बहुत,
देखु बीचारकै हेम खानी।
पिरथी आदि घट रच्यो रचना बहुत,
मर्तिका एक खुद भूमि जानी।
भीखा इक आतमा रूप बहुतै भयो,
बोलता ब्रह्म चीन्है सो ज्ञानी ॥१०॥

विविध

राखो मोहिं अपनी छाया। लगै नहि रावरी माया ॥
कृपा अब कीजिये देवा। करौं तुम चरन की सेवा ॥
आसिक तुम खोजता हारे। मिलहु मासूक आ प्यारे ॥
कहौं का भाग मैं अपना। देहु जब अजप का जपना ॥
अलख तुम्हरो न लख पाई। दया करि देहु बतलाई ॥
वारि वारि जावँ प्रभु तेरी। खबरि कछु लीजिये मेरी ॥
सरन मैं आय मैं गीरा। जानो तुम सकल परपीरा ॥
अंतरजामी सकल डेरो। छिपो नहिं कछु करम मेरो ॥
अजब साहब तेरी इच्छा। करो कछु प्रेम की सिच्छा ॥
सकल घट एक हौ आपै। दूसर जो कहै मुख कापै ॥

सुध-बुध। नरी=नाड़ी।

१०. हेम=सोना। खानी=खानि, उत्पत्ति-स्थान। मिर्तिका=मृत्तिका, मिट्टी। चीन्है=पहचाने।

विविध

१. रावरी=तुम्हारी। लगै नहि=असर न कर सके। मासूक=प्रियतम, प्रेम-पात्र। वारि वारि=बलिहारी। गीरा=गिरा, आ पड़ा। डेरो=डेरा, निवास। मुख कापै=

निरगुन तुम आप गुनधारी। अचर चर सकल नरनारी ॥
जानों नहिं देव में दूजा। भीखा इक आतमा पूजा ॥१॥

जान दे, करौं मनुहरिया हो ॥
अनेक जतन करिके समझावों, मानत नाहिं गँवरिया हो ॥
करत करेरी नैन बैन सँग, कैसेके उतरब दरिया हो ॥
या मन तें सुर नर मुनि थाके, नर बपुरा कित धरिया हो ॥
पार भइलौं पिव पोव पुकारत, कहत गुलाल-भिखरिया हो ॥२॥

सब भूला किधौं हमहिं भुलाने। सो न भुला जाके आतमध्याने।
सब घट ब्रह्म बोलता आही। दुनिया नाम कहौं मैं काही ॥
दुनिया लोक बेद मत थापे। हमरे गुरु गम अजपा जापे ॥
हरिजन जे हरिरूप समावे। घमासान भये सूर कहावे ॥
कहे भीखा क्यों नाहीं नाहीं। जबलगि साँच झूँठ तन माहीं ॥३॥

उठ्यो दिल अनुमान हरिध्यान ॥टेक॥
भर्मकरि भूल्यो आपु अपान। अब चीन्हो निजपति भगवान ॥
मन बच क्रम दृढ मत परवान। वारो प्रभु पर तन मन प्रान ॥
सब्द प्रकास दियो गुरु दान। देखत सुनत नैन बिनु कान ॥
जाको सुख सोइ जानत जान। हरिरस मधुर कियो जिन पान ॥
निर्गुन ब्रह्मरूप निर्बान। भीखा जल ओला गलतान ॥४॥

किस मुहँ से। गुनधारी=सगुण।

२. मनुहरिया=विनती, हाहा खाना। धरिया=बिसात। भिखरिया=भिखारी; भीखा।

३. दुनिया ·····काही=संसार यह नाम मैं किसे दूँ, जबकि सर्वत्र ब्रह्म-ही-ब्रह्म की सत्ता है, जगत् की सत्ता तो कहीं है ही नहीं। घमासान=घोर युद्ध। नाही-नही= नेति नेति ; ऐसा नहीं, जैसा कि वाणी द्वारा ब्रह्म का निरूपण करते हैं।

४. आपु अपान=अपने आपको ; आत्मस्वरूप को। परवान=प्रमाण। सब्द प्रकाश=नाद-ब्रह्म का परिचय। जल ओला गलतान=ओला जैसे गलकर जल में लीन हो जाता है, वैसे ही जीवात्मा ब्रह्म में लीन अर्थात् तद्रूप हो गई।

कुण्डलिया

रामरूप को सो लखै, सो जन परम प्रबीन ॥
सो जन परम प्रबीन, लोक अरु बेद बखानै ।
सतसंगति में भाव-भक्ति परमानँद जानै ॥
सकल बिषय को त्याग बहुरि परबेस न पावै ।
केवल आपै आपु आपु में आपु छिपावै ॥
भीखा सब तें छोट होइ, रहै चरन लवलीन ।
रामरूप को जो लखै, सो जन परम प्रबीन ॥१॥

मन क्रम बचन बिचारिकै राम भजै सो धन्य ॥
राम भजै सो धन्य, धन्य बपु मंगलकारी ॥
रामचरन-अनुराग परम पद को अधिकारी ॥
काम क्रोध मद लोभ मोह की लहरि न आवै ।
परमातम चेतन्यरूप महँ दृष्टि समावै ॥
व्यापक पूरनब्रह्म है भीखा रहनि अनन्य ।
मन क्रम बचन बिचारिकै राम भजै सो धन्य ॥२॥

धनि सो भाग जो हरि भजै, ता सम तुलै न कोइ ॥
ता सम तुलै न कोइ, होइ निज हरि को दासा ।
रहै चरन-लौलीन राम को सेवक खासा ॥
सेवक सेवकाई लहै भाव-भक्ति परवान ।
सेवा को फल जोग है भक्तबस्य भगवान ॥
केवल पूरन ब्रह्म है, भीखा एक न दोइ ।

कुण्डलिया

१. परबेस=प्रवेश, दखल ; आवागमन ।

२. बपु=शरीर । अनन्य=जहाँ दूसरा भाव न हो ।

३. परवान=प्रमाण, सच्चा ।

४. पाहुन=अतिथि ; सतगुरु से अभिप्राय है । भाव=प्रेम । का हनो=क्या पीटते, क्या पछताते हो । बाजी=दाँव, अवसर । अकाज=हानि ।

धन्य सो भाग जो हरि भजै, तासम तुलै न कोइ ॥३॥
पाहुन आयो भाव सों, घर में नहीं अनाज ॥
घर में नहीं अनाज, भजन बिनु खाली जानो।
सत्यनाम गयो भूल, झूठ मन माया मानो ॥
महाप्रतापी रामजी, ताको दियो बिसारि।
अब कर छाती का हनो, गयो सो बाजी हारि ॥
भीखा गये हरिभजन बिनु तुरतहि भयो अकाज।
पाहुन आयो भाव सों, घर में नहीं अनाज ॥४॥
बेद-पुरान पढे कहा, जो अच्छर समुझा नाहिं ॥
अच्छर समुझा नाहिं, रहा जैसे का तैसा।
परमारथ सों पीठ, स्वार्थ सन्मुख होइ बैसा ॥
सास्तर मत को ज्ञान, करम भ्रम में मन लावै ॥
छुइ न गयो बिज्ञान परमपद को पहुँचावै ॥
भीखा देखे आपुको, ब्रह्मरूप हिये माहिं।
बेद-पुरान पढे कहा, जो अच्छर समुझा नाहिं ॥५॥

साखी

ब्राह्मन कहिये ब्रह्म-रत, है ताका बड भाग।
नाहिंन पसु अज्ञानता, गर डारे तिन ताग ॥१॥
संत-चरन में लगि रहे, सो जन पावै भेव।
भीखा गुरु-परताप तें, काढेव कपट-जनेव ॥२॥
संत-चरन में जाइकै, सीस चढायो रेनु।
भीखा रेनु के लागते, गगन बजायो बेनु ॥३॥

---

५. अच्छर=अक्षर ; आत्मा का स्वरूप, जिसका नाश नहीं होता है। बैसा=बैठा सास्तर=शास्त्र। बिज्ञान=ब्रह्मज्ञान।

साखी

१. गर=गले में। तिन ताग=तीन तागे अर्थात् जनेऊ।

२. जन=हरिभक्त। भेव=भेद, आत्मा का रहस्य-ज्ञान। जनेव=जनेऊ।

३. रेनु=रेणु, रज, धूल। गगन बजायो बेनु=शून्यावस्था अर्थात समाधि में अनहद नाद किया।

बेनु बजायो मगन ह्वै, छुटी खलक की आस।
भीखा गुरु-परताप तें लियो चरन में बास ॥४॥

भीखा केवल एक है, किरतिम भयो अनंत।
एकै आतम सकलघट, यह गति जानहिं संत ॥५॥

एकै धागा नाम का, सब घट मनिया माल।
फेरत कोई संतजन, सतगुरु नाम गुलाल ॥६॥

---

४. खलक=दुनिया।

५. किरतिम=कृत्रिम, मिथ्या नाम-रूप का संसार।

६. मनिया=मनका, गुरिया।

चरणदासजी

चोला-परिचय

जन्म-संवत्—१७६० वि०, भादो सुदी ३

जन्म-स्थान—डेहरा गाँव (मेवात, राजस्थान)

पिता—मुरलीधर

माता—कुंजी

जाति—ढूसर बनिया

गुरु—शुकदेवजी

भेष—विरक्त

सत्संग-स्थान—दिल्ली

मृत्यु-संवत्—१८३९ वि०, अगहन सुदी ४

मृत्यु-स्थान—दिल्ली

चरणदासजी की पट्टशिष्या सहजोबाई ने एक पद में अपने गुरुदेव के जन्म-संवत् तथा कुल के विषय में कहा है—

"सखी री, आज धन धरती धन देसा।
धन डेहरा मेवात मँझारे, हरि आये जन-भेसा ॥

धन भादो धन तीज सुदी है, धन दिन मंगलकारी।
धन ढूसर-कुल बालक जनम्यौ, फुल्लित भये नरनारी॥
धन-धन माई कुंजी रानी, धन मुरलीधर ताता।
अगले दत्तव अब फल पाये, जिनके सुत भयौ ज्ञाता॥"

चरणदासजी का पूर्व नाम रणजीतसिंह था। पिता मुरलीधर का स्वर्गवास हो जाने पर यह अपने नाना के पास दिल्ली में आकर रहने लगे। कहते हैं कि १९ वर्ष की अवस्था में जब यह भगवान् के विरह में एक दिन रो रहे थे, जंगल में शुकदेव मुनि ने इन्हें दर्शन दिया और भगवद्भक्ति का उपदेश किया। चरणदासजी ने अपने सद्गुरु शुकदेवजी को व्यासदेव का पुत्र शुकदेव मुनि कहा है। किन्तु खोज के आधार पर यह पाया जाता है कि व्यासपुत्र शुकदेव मुनि कहना तो केवल श्रद्धा-भावना की बात है, असल में इनके मंत्र-गुरु बाबा सुखदेवदास या सुखानन्द नाम के एक महात्मा थे, जो मुजफ्फरनगर के पास शूकरताल गाँव में रहते थे।

चरणदासजी ने अनेक तीर्थों का पर्यटन किया था, और ब्रज में भी यह कुछ काल रहे थे। श्रीमद्भागवत पर और विशेषकर उसके एकादश स्कन्ध पर इनकी भारी श्रद्धा-भक्ति थी। निर्गुणमार्गी महान् योगी होते हुए भी श्रीकृष्ण पर इनकी अगाध भक्ति थी। इन्हें हम योगमार्गी वैष्णव भी कह सकते हैं।

दिल्ली में बैठकर इन्होंने १८ वर्षतक योगाभ्यास किया था। दिल्ली को अपना सत्संग-स्थान बनाकर हजारों लोगों को इन्होंने हरि-भक्ति, ब्रह्मज्ञान और शब्द-योग का समन्वयात्मक उपदेश दिया और चेताया। इनके मुख्य शिष्य ५२ थे, जिनके नाम पर चरणदासी पंथ की ५३ शाखाएँ आजभी प्रसिद्ध हैं।

बानी-परिचय

महात्मा चरणदास की २१ रचनाओं का पता लगा है, किन्तु प्रामाणिक रचनाएँ निस्संदिग्ध रूप से ये १२ कही जाती हैं :

१ ब्रज-चरित्र	७ धर्म-जहाज-वर्णन
२ अष्टागयोग-वर्णन	८ अमरलोक-अखडधाम-व र्नन
३ योग-सदेह-सागर	९ ज्ञान-स्वरोदय
४ पचोपनिषद्	१० मन-विकृतकरण गुटका सार
५ भक्ति-पदार्थ-वर्णन	११ शब्द
६ ब्रह्मज्ञान-सागर	१२ भक्ति-सागर

चरणदासजी की बानी बडी मधुर और सरम है। निर्गुण सतो की तथा सगुण भक्तो की दोनो ही शैलियो का सुन्दर सगम इनकी बानी मे हमे मिलता है। भापा मे जो माधुर्य और प्रसाद है वह भी अनूठा है। अनेक पदो मे ऊँचा भक्ति-भाव और गहरा रहस्य भरा हुआ है। साखियाँ भी खूब चेतानेवाली है। इनकी बानी मे भागवत-भक्ति, परमार्थ-ज्ञान तथा शब्द-योग का समन्वयात्मक निरूपण बडी सरस एव सरल शैली और भाषा मे किया गया है। चरणदासजी ने जो कुछ भी कहा 'तन्मय' होकर कहा, और यही कारण है जो उनके कितने ही पदो मे हम अध्यात्म-रस का निर्मल निर्झर पाते है।

आधार

१ चरनदासजी की बानी (पहला भाग)--बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद

२ चरनदासजी की बानी (दूसरा भाग)--बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद

३ चरनदामजी की बानी--नवलकिशार प्रेस, लखनऊ

४ उत्तरी भारत की सत-परम्परा--परशुराम चतुर्वेदी, भारती-भंडार, इलाहाबाद

चरणदासजी

राग सीठना

टुक निर्गुन छैला सूँ, कि नेह लगाव री।
जाको अजर अमर है देस, महल बेगमपुर री॥

जहँ सदा सोहागिन होय, पिया सूँ मिलि रहु री ।
जहँ आवागवन न होय, मुक्ति चेरी तेरी ।।
कहै चरनदास गुरु मिले, सोई ह्वाँ रहु बौरी ।
तब सुख-सागर के बीच, कलहरी ह्वै रहु री ।।१।।

राग सीठना

तू सुन हे लंगर बौरी ।
तू पाँचौ घेरि पचीसौ घेरी, विषै-वासना की है चेरी ।
बारी बारी दौरी ।।
तै पिय भूली चौरासी डोली, अँग-अँग के सुख में फूली ।
माया लाई ठौरी ।।
तैं काम क्रोध सूँ नेह लगायो, मनमाना सब जग भरमायो ।
मोह यार बाँको री ।।
चरनदास सुकदेव बतावैं, निर्गुन छैला तोहि मिलावैं ।
जो टुक चेतन हो, री ।।२।।

राग बसंत

मेरे सतगुरु खेलत नित बसंत ।
जाकी महिमा गावत साध संत ।।
ज्ञान बिबेक के फूले फूल । जहँ साखा जोग, अरु भक्ति मूल ।
प्रेमलता जहँ रही झूल । सत-संगति सागर के कूल ।।
जहँ भर्म उड़त है ज्यों गुलाल । अरु चोवा चरचै निस्चय बाल ।
जहँ सील छिमा को बरसै रंग । काम क्रोध को मान भंग ।।
हरिचरचा जित है नितअनंत । सुनि मुक्त होत सब जीव-जंत ।
आन धर्म सब जाहिं खोय । रामनाम की जै जै होय ।।

---

१. छैला=सुन्दर (परम) पुरुष । बेगमपुर=जहाँ किसीकी गति या पहुँच नहीं । चेरी=दासी । कलहरी=प्रेम-मदिरा पीने व पिलानेवाली ।

२. लंगर=मस्त; चपल । बारी बारी=बारबार जन्म-मरण के चक्कर में दौड़ती फिरी । चौरासी=८४ लाख योनियाँ । लाई ठौरी=टिक रही ।

३. जोग=ज्ञानयोग, राजयोग, हठयोग आदि । भर्म=भ्रम, संशय । चोवा=एक प्रकार

तहँ अपने पीव को ढूँढ़ि लेव। अरु चरन कवँल में सुरति देव।
कहैं चरनदास दुख दुंद जाहिं। जब प्रीतम सुकदेव गहैं बाहिं ॥३॥

होली

प्रेमनगर के माहिं होरी होय रही।
जबसों खेली हमहूँ चित दै, आपनहूँ को खोय रही ॥
बहुतन कुल अरु लाज गँवाई, रहो न कोई काम।
नाचि उठै कभी गावन लागैं, भूले तन धन धाम ॥
बहुतन की मति रंग रंगी है, जिनको लागो प्रेम।
बहुतन को अपनी सुधि नाहीं, कौन करै अस नेम ॥
बहुतन की गदगद ही बानी, नैनन नीर ढराय।
बहुतन को बौरापन लागो, ह्वाँ की कही न जाय ॥
प्रेमी की गति प्रेमी जानै, जाके लागी होय।
चरनदास उस नेह-नगर को सुकदेवा कहि सोय ॥४॥

राग बिलावल

साँचा सुमिरन कीजिये, जामें मीन न मेख।
ज्यों आगे साधुन कियो, बानी में लो देख ॥
टेक गहो दृढ भक्ति की, नौधा हिय धारि।
संतन की सेवा करो, कुल-कानि निवारि ॥
जासूँ प्रेमा ऊपजै, जब हरि दरसायँ।
आगे पीछे ही फिरैं, प्रभु छोडि न जायँ ॥
चारि मुक्ति बाँदी, भँवैं सिधि चरनन माहिं ॥
तीरथ सब आसा करै, अव देखि नसाहिं ॥
कहै गुरु सुकदेवजी चरनदास गुलाम।
ऐसी साधन धारिये, रहिये निस्काम ॥५॥

का शीतल सुगंधित द्रव पदार्थ। चरचै=लेप करे। सुकदेव=चरणदासजी के गुरुदेव।

४. आपन रही=अपने आपको भी प्रेम की नगरी में गँवा दिया; प्रेम में रोम-रोम विलीन कर दिया। नेम=गति। ह्वाँकी=उस प्रेमनगर की लीला।

५. मीन न मेख=संदेह के लिए स्थान नहीं। बानी=संतो की वाणी। निवारि=त्यागकर। प्रेमा=प्रेमभक्ति। चारिमुक्ति=मोक्ष के चार प्रकार अर्थात् सामीप्य, सालोक्य, सारूप्य, और सायुज्य। बाँदी=दासी। भँवैं=घूमती रहती हैं।

राग बिलावल

करनी की गति और है, कथनी की ओरे।
बिन करनी कथनी कथैं बकबादी बौरे॥
करनी बिन कथनी इसी ज्यों ससि बिन रजनी।
बिन सस्तर ज्यों सूरमा भूषन बिन सजनी॥
ज्यों पण्डित कथि-कथि भले बैराग सुनावैं।
आप कुटुँब के फँद पड़े, नाहीं सुरझावैं॥
बाँझ झुलावैं पालना, बालक नहि माहीं।
बस्तु बिहीना जानिये, जहँ करनी नाहीं॥
बहु डिंभी करनी बिना कथि-कथिकरि मूए।
संतो कथि करनी करी, हरि के सम हूए॥
कहैं गुरु सुकदेवजी चरनदास बिचारौ।
करनी रहनी दृढ गहौ, थोथी कथनी डारौ॥६॥

राग कान्हरा

कुटुँब सँघाती स्वारथ लागे, तेरो काहू कूँ नहि चीता॥
तैं प्रभु ओरी सूँ मुख मोड़ा, झूँठे लोगन सूँ हित कीता।
अरु तैं अपनी आँखों देखा, कई बार दुख सुख हो बीता॥
सम्पति में सबहीं घिरि आवैं, बिपति परे अधिको दुख दीता।
मूठी बांधि जनम नर लायो, हाथ पसारि चलैगो रीता॥
धरि-धरि स्वांग फिरै तिन कारन, कपि ज्यों नाचत ताता थीता।
मुए न संगी होहि तिहारे, बांधि जलावैं देइ पलीता।
गुरुसेवा सतसंग न कीन्हा, कनक कामिनी सों करि प्रीता।
चरनदास सुकदेव कहत हैं, मरत-मरत हरिनाम न लीता॥७॥

---

६. इसी=ऐसी। सस्तर=शस्त्र, हथियार। सजनी=स्त्री। वस्तु=तत्व। बिहीना=निस्सार। डिम्भी=दम्भी, पाखंडी। थोथी=सारहीन।

७. सँघाती=संगी, साथी। चीता=चिंता, चाह। कीता=किया। घिरि आवैं इकट्ठे हो जाते हैं। दीता=दिया। रीता=खाली हाथ। ताता थीता=नृत्य में एक प्रकार का बोल। बांधि=अर्थी पर बांधकर। पलीता=कपड़े की मोटी बत्ती। लीता=लिया।

मंगल

सोई सोहगिनि नारि पिया मन भावई ।
अपने घर को छोड़ि न परघर जावई ।।
अपने पिय का भेद न काहू दीजिये ।
तन मन सुरति लखायके सेवा कीजिये ।।
पति की अग्या चाल, पाल पिय को कहो ।
लाज किये कुलवन्त जतन हीं सूँ रहो ।।
पिया कूँ चाहो रूप सिंगार बनाइये ।
पतिब्रता कुल दोय में सोभा पाइये ।।
नौधा-बस्तर पहिरि दया रँग लाल है ।
भूषन बस्तर धारि बिचित्तर बाल है ।
रंगमहल निरदोष ह्वाँ झिलमिल नूर है ।।
निरगुन-सेज बिछाय सबी करि दूर भै ।
मन्दिर दीपक बाल बिन बाती घीव की ।
सुघर चतुर गुनरासि लाड़िली पीव की ।।
कहै गुरु सुकदेव यों बालम मोहिये ।
चरनदास ले सीख जो प्रेम समोइये ।।८।।

बिनती

राग बिलावल

तुम साहब करतार हो, हम बन्दे तेरे ।
रोम-रोम गुनेगार हैं, बखसो हरि मेरे ।।
दसों दुवारे मैल है, सब गंदमगंदा ।
उत्तम तेरो नाम है, बिसरै सो अंधा ।।
गुन तजिकै औगुन कियो तुम सब पहिचानो ।
तुम सूँ कहा छिपाइये हरि घट की जानो ।।
रहम करो रहमान सूँ यह दास तिहारो ।
भक्ति-पदारथ दीजिये आवागवन निवारो ।।

---

६. गुनेगार=गुनहगार, अपराधी । बखसौ=माफ करो । निवारौ=छुटकारा देदो ।

गुरु सुकदेव उबारिलो अब मेहर करीजै।
चरनदास गरीब कूँ अपनो करि लीजै ॥९॥

राग बिहाग

राखो जी लाज गरीबनिवाज।
तुम बिन हमरे कौन सँवारे, सबहीं बिगरे काज ॥
भक्तबछल हरि नाम कहावो, पतित उधारनहार।
करो मनोरथ पूरन जन को, सीतल दृष्टि निहार ॥
तुम जहाज मैं काग तिहारो, तुम तजि अंत न जाऊँ।
जो तुम हरिजू मारि निकासो, और ठौर नहि पाऊँ ॥
चरनदास प्रभु सरन तिहारी, जानत सब संसार।
मेरी हँसी सो हँसी तुम्हारी, तुमहूँ देखु विचार ॥१०॥

राग कल्यान

सतगुरु, पाँचौ भूत उतारौ।
जनम-जनम के लागेहि आये, दे मंतर अब तिन्हैं विडारौ ॥
काम, क्रोध, मोह, लोभ, गर्व ने मन बौराय कियो अपभायो।
जिनके हाथ परो जिव मेरो, घेरा घेरि बहुत दुख पायो ॥
एक घरी मोहिं छोड़त नाहीं, लहरि चढ़ायके बहुत निवायो।
कपि ज्यों घर-घर द्वार नचावैं, उत्तम हरि को नाम छुटायो ॥
अब की सरन गही है तुम्हरी चरनहिदास अजाने।
किरपा करि यह व्याधि छुटावो गुरु सुकदेव सयाने ॥११॥

राग बिलास

घट में तीरथ क्यों न नहावो।
इत-उत डोलो पथिक बनें हीं, भरमि भरमि क्यों जन्म गँवावो ॥

१०. सीतल=कृपा और करुणा से पूर्ण। अंत=अनत,दूसरी जगह।
११. विडारौ=मारकर भगादो। अपभायो=अपना मनचाहा। निवायो=झुकाया, नीचा दिखाया। अजानें=मूढ़।
१२. सुकारथ=सुकृत ; सार्थक। हितकरि=प्रेम से। रेवा=नर्मदा। बोझा=कर्मों का

गोमती कर्म सुकारथ कीजै, अधरम मैल छुटावो ॥
सील-सरोवरि हितकरि न्हैये, काम-अगिन की तपन बुझावो ॥
रेवा सोई छिमा को जानो, तामें गोता लीजै ॥
तन में क्रोध रहन नहिं पावै, ऐसी पूजा चित दै कीजै ॥
सत जमुना, संतोष सरस्वती, गंगा धीरज धारो ॥
झूँठ पटकि निर्लोभ होयकरि, सबहीं बोझा सिर सूँ डारो ॥
दया तीर्थ कर्मनासा कहिये, परसै बदला जावै ॥
चरनदास सुकदेव कहत हैं, चौरासी में फिर नहिं आवै ॥१२॥

राग सोरठ

जो नर इतके भये न उतके ।
उतकी प्रेम-भक्ति नहिं उपजी, इत नहिं नारी सुत के ।
घर सूँ निकसि कहा उन कीन्हा, घर- घर भिच्छा मांगी ॥
बाना सिंह, चाल भेड़न की, साध भये के स्वांगी ।
तन मूँड़ा पै मन नहिं मूँड़ा, अनहद चित्त न दीन्हा ।
इन्द्री स्वाद मिले विषयन सूँ, बकबक बकबक कीन्हा ॥
माला कर में, सुरति न हरि में, वह सुमरिन कहु कैसा ।
बाहर भेख धारिके बैठे, अन्तर पैसा पैसा ॥
हिंसा अकस कुबुधि नहि छोड़ी, हिरदै सांच न आया ।
चरनदास सुकदेव कहत हैं, बाना पहिरि लजाया ॥१३॥

राग बिलावल

ब्राह्मन सो जो ब्रह्म पिछानै । बाहर जाता भीतर आनै ॥
पाँचौ बस करि झूँठ न भाखै । दया-जनेऊ हिरदे राखै ॥

भार । परसै बदला जावै=स्पर्श करने या नहाने से काया-पलट हो जाता है । चौरासी=चौरासी लाख योनियां ।

१३. इतके न उतके=न लोक के, न परलोक के । बाना=भेष । मन नहि मूँडा=मन को वश में नहीं किया । अंतर पैसा पैसा=अंदर पैठा हुआ है पैसा, पैसे का ध्यान लगा है : पैसा ही पैसा । अकस=वैर, विरोध ।

१४. बाहर जाता भीतर आनै=विषयों की ओर जाते हुए मन को अंतर्मुखी करले ।

आतम-विद्या पढ़ै पढ़ावै । परमातम का ध्यान लगावै ॥
काम क्रोध मद लोभ न होई । चरनदास कहैं ब्राह्मन सोई ॥१४॥

राग बिलावल

थोथे सुमिरन कहा सरे ॥
मन के रोग सोग नहिं खोये, हिंसा डूबे, अकस जरे ॥
नारी सुत सूँ मोह कियो है, नेक न हरि के प्रेम अड़े ।
माला तिलक सुधारि सँवारे, राखत छल बल मकर घने ॥
अंतर और निरंतर औरै, सिह गऊमुख रहत बने ।
ऐसो भक्ति मुक्ति नहिं पावै, करम लगैं अरु नरक परै ॥
जम को दंड दहक पावक की, जनम मरन यों नाहिं टरै ।
लच्छन प्रेम सहित जप कीजै, भीतर बाहर उघर नचै ॥
चरनदास सुकदेव कहत हैं, हरि रीझैं जब ब्याधि बचै ॥१५॥

राग बरवा

या तन को कह गर्ब करत हैं, ओला ज्यों गलि जावै रे ॥
जैसे बरतन बनौ कांच को, ठपक लगे बिनसावै रे ।
झूँठ कपट अरु छलबल करिकै, खोटे कर्म कमावै रे ॥
बाजीगर के बांदर सा ज्यों, नाचत नाहिं लजावै रे ।
जबलौं तेरी देह पराक्रम, तबलौं सबन सोहावै रे ॥
माय कहै मेरा पूत सपूता, नारी हुकुम चलावै रे ।
पल पल पल पल पलटै काया, छिन छिन माहि घटावै रे ॥
बालक तरुन होइ फिर बूढ़ा, जरा मरन पुनि आवै रे ।
तेल फुलेल सुगन्ध उबटनो, अम्बर अतर लगावै रे ॥

---

१५. सोग=शोक । अकस=वैर, विरोध । टहल=सेवा । मकर=धूर्तता । निरन्तर=बाहर । सिह गऊमुख=अन्दर सिहमुख अर्थात् हिंसक और बाहर गोमुख अर्थात् शीलवान् । लच्छन प्रेम=सबसे ऊँची प्रेम-लक्षणा भक्ति । व्याधि=भवबाधा, मोहजनित दुःख ।

१६. ठपक=ठोकर, धक्का । सुहावै=प्रिय लगता है । घटावै=क्षीण होती जाती है । जरा=बुढ़ापा । अम्बर=एक इत्र । पिंड=शरीर । समावै=सजाता है । धूरि समावै=

नाना बिधि सूँ पिंड सँवारै, जरि बरि धूरि समावै रे।
कोटि जतन सूँ बचै न क्यूँहीं, देवी देव मनावै रे।।
जिनकूँ तू अपनो करि जानै, दुख में पास न आवै रे।
कोई झिड़कै कोइ अनखावै, कोई नाक चढ़ावै रे।।
यह गति देखि कुटुंब अपने की, इनमें मत उरझावै रे।
अबहीं जम सूँ पाला परिहै, कोई नाहिं छुड़ावै रे।
औसर खोवै पर के काजे, अपनो मूल गँवावै रे।
बिन हरिनाम नहीं छुटकारो बेद पुराण बतावै रे।।
चेतनरूप बसै घट अंतर, भर्म सूल बिसरावै रे।
जो टुक ढूँढ़ खोज करि देखै, सो आपहि में पावै रे।।
जो चाहे चौरासी छूटै, आवा गवन नसावै रे।
चरनदास सुकदेव कहत हैं, सत-संगति मन लावै रे।।१६।।

राग काफी

वह बोलता कित गया नगरिया तजिकै।
दस दरवाजे ज्यों के त्योंही कौन राह गया भजिकै।।
सूना देस, गाँव भया सूना, सूने घर के वासी।
रूप रंग कछु औरै हूआ, देही भई उदासी।।
साजन थे सो दुरजन हूए, तन को बाँधि निकारा।
चिता सँवारि लिटा करि तापै ऊपर धरा अंगारा।।
ढह गया महल, चुहल थी जामें, मिल गया माटी माहीं।
पुत्र कलित्तर भाई बंधू, सबहीं ठोंक जलाहीं।।
देखत ही का नाता जग में, मुए संग नहिं कोई।
चरनदास सुकदेव कहत हैं, हरि बिन मुक्ति न होई।।१७।।

राग बिलावल

अजब फकीरी साहबी भागन सूँ पैये।
प्रेम लगा जगदीश का कछु और न चैये।।

मिट्टी में मिल जाता है। क्यूंहीं=किसीभी तरह। अनखावै=नाराज होता है।
१७. बोलता=जीव। उदासी=फीकी। चुहल=रंगरेलियाँ। कलित्तर=कलत्र, स्त्री।

राव रंक कूँ सम गिनैं, कुछ आसा नाहीं।
आठ पहर सिमिटे रहैं, अपने ही माहीं॥
बैर प्रीत उनके नहीं, नहिं वाद-विवादा।
रूठे-से जग में रहैं, सुनैं अनहद नादा॥
जो बोलैं तौ हरि-कथा, नहिं मौनै राखैं।
मिथ्या कडुवा दुरबचन, कबहूँ नहिं भाखैं॥
जीव-दया अरु सीलता, नख-सिख सूँ धारैं।
पांचौं दूतन बसि करैं, मन सूँ, नहिं टारैं॥
दुख सुख दोनों के परे, आनँद दरसावैं।
जहाँ जायँ अस्थल करैं, माया-पवन न जावै।
हरिजन हरि के लाडिले, कोई लहै न भेवा।
सुकदेव कही चरनदास सूँ, कर तिनकी सेवा॥१८॥

राग बिलावल

भक्ति गरीबी लीजिये तजिये अभिमाना।
दो दिन जग में जीवना आखिर मरि जाना॥
पाप पुन्न लेखा लिखैं, जम बैठे थाना।
कहा हिसाब तुम देहुगे जब जाहि दिवाना॥
मात पिता कोइ ह्वाँ नहीं, सबही बेगाना।
द्रव्य जहाँ पहुँचै नहीं, नहिं मीत पिछाना॥
एक सों एकहि होयगी, ह्वाँ साँच तुलाना॥
काहू की चालै नहीं छनै दूध अरु पाना॥
साहब की कर बन्दगी, दे भूखे दाना।
समुझावै सुकदेवजी चरनदास अयाना॥१९॥

---

१८. चैये=चाहिए। सिमटे ··माही=सदा अन्तमुंखी रहते है, अर्थात् सब विषयों से चित्तवृत्ति हटाकर अपनी आत्मा के ध्यान में ही लीन रहते हैं। रूठे-से=उदासीन। पाँचो दूतन=पाँचों ज्ञान-इन्द्रियों को। मनसूँ नहि हारैं=मन के वश में नही होते हैं। अस्थल करैं=आसन मारकर बैठ जाते है। माया पवन न जावै=माया की हवा भी नही पहुँचती।

१९. दिवाना=दीवान; कर्मों का लेखा रखनेवाले चित्रगुप्त से आशय हैं। बेगाना=

साखो

गुरू कहैं सो कीजिये, करैं सो कीजै नाहिं ।
चरनदास की सीख सुन, यही राख मन माहिं ॥१॥
अबके चूके चूक है, फिर पछितावा होय ।
जो तुम जक्त न छोड़िहौ, जन्म जायगो खोय ॥२॥
जग माहीं न्यारे रहो, लगे रहो हरि-ध्यान ।
प्रथिवी पर देही रहै, परमेसुर में प्रान ॥३॥
सब सूँ रख निरबैरता, गहो दीनता ध्यान ।
अंत मुक्ति-पद पाइहौ, जग में होय न हानि ॥४॥
दया नम्रता दीनता, छिमा सील संतोष ।
इनकूँ लै सुमिरन करै, निस्चय पावै मोष ॥५॥
मिटने सूँ मत प्रीत करि, रहते सूँ करि नेह ।
झूठे कूँ तजि दीजिये, साँचे में करि गेह ॥६॥
ब्रह्म-सिन्ध की लहर है, तामें न्हाव सँजोय ।
कलिमल सब छुटि जाहिंगे, पातक रहै न कोय ॥७॥
क तपस्या नाम बिन, जोग जग्य अरु दान ।
चरनदास यों कहत हैं, सबहीं थोथे जान ॥८॥
गई सो गई अब राखिलै, एहो मूढ अयान ।
निःकेवल हरि कूँ रटो, सीख गुरू की मान ॥९॥

पराये । पाना=पानी ।

साखी

१. करैं⋯नाहिं=जो काम गुरु करते हो, उसकी नकल नहीं करनी चाहिए ।
२. उक्त=जगत ।
३. न्यारे=अनासक्त ।
५. मोष=मोक्ष
६. मिटते सूँ=अनित्य संसार से । रहते सूँ=नित्य आत्मा से ।
८. थोथे=फोकट; निस्सार ।
९. अयान=अज्ञानी । निःकेवल=विशुद्ध, माया-रहित ।

जागै ना पिछले पहर, ताके मुखड़े धूल ।
सुमिरै ना करतार कूँ, सभी गँवावै मूल ॥१०॥
पिछले पहरे जागकरि, भजन करै चित लाय ।
चरनदास वा जीव की, निस्चै गति ह्वै जाय ॥११॥
पहिले पहरे सब जगैं, दूजे भोगी मान ।
तीजे पहरे चोर ही, चौथे जोगी जान ॥१२॥
जो कोइ बिरही नाम के, तिनकूँ कैसी नींद ।
सस्तर लागा नेह का, गया हिये कूँ बींध ॥१३॥
सोये हैं संसार सूँ, जागे हरि की ओर ।
तिनकूँ इकरस हीं सदा, नहीं सांझ नहिं भोर ॥१४॥
सोवन जागन भेद की, कोइक जानत बात ।
साधूजन जागत तहाँ, जहाँ सबन की रात ॥१५॥
जो जागै हरि-भक्ति में, सोई उतरै पार ।
जो जागै संसार में, भवसागर में ख्वार ॥१६॥
सतगुरु से माँगूँ यही, मोहि गरीबी देहु ।
दूर बड़प्पन कीजिये, नान्हा हीं कर लेहु ॥१७॥
आदिपुरुष किरपा करौ, सब औगुन छुटि जाहिं ।
साध होन लच्छन मिलैं, चरनकमल की छाहिं ॥१८॥
हिय हुलसो आनँद भयो, रोम-रोम भयो चैन ।
भये पवित्तर कान ये, सुनि सुनि तुम्हरे बैन ॥१९॥

---

१०. ताके मुखडे धूल=उसे धिक्कार है ।
११. गति=सद्‌गति, मोक्ष ।
१२. भोगी=विषयी जीव ।
१३. सस्तर=शस्त्र, हथियार । गया बींध=आरपार हो गया ।
१४. सोये है संसार सूँ=सान्सारिक विषय-सुखों की ओर से अचेत । भोर=सवेरा, दिन ।
१५. कोइक=बिरला ही ।
१६. ख्वार=नष्ट ।

गुरु-महिमा

किसू काम के थे नहीं, कोइ न कौड़ी देह।
गुरु सुकदेव कृपा करी, भई अमोलक देह ॥१॥
सीधी पलक न देखते, छूते नाहीं छाँहि।
गुरु सुकदेव कृपा करी, चरनोदक ले जाहिं ॥२॥
दूसर के बालक हुते, भक्ति बिना कंगाल।
गुरु सुकदेव कृपा करी, हरिधन किये निहाल ॥३॥
बलिहारी गुरु आपने, तन मन सदके जावँ।
जीव ब्रह्म छिन में कियो, पाई भूली ठावँ ॥४॥
जाति बरन कुल मन गया, गया देह-अभिमान।
अपने मुखसूँ क्या कहूँ, जग ही करै बखान ॥५॥
सतगुरु मेरा सूरमा, करै शब्द की चोट।
मारै गोला प्रेम का, ढहै भ्रम्म का कोट ॥६॥
सतगुरु शब्दी तेग है, लागत दो करि देहि।
पीठ फेरि कायर भजै, सूरा सनमुख लेहि ॥७॥
सतगुरु शब्दी तीर है, तन मन कीयो छेद।
बेदरदी समझै नहीं, बिरही पावै भेद ॥८॥
सतगुरु शब्दो लागिया, नावक का सा तीर।
कसकत है निकसत नहीं, होत प्रेम की पीर ॥९॥

गुरु-महिमा

२. पलक=नजर से। चरनोदक ले जाहिं=अब लोग मेरे पैरो का धोवन ले-ले जाते है।

३. हरिधन किये निहाल=हरिनाम का धन देकर भरपूर कर दिया।

४. सदके=बलिहारी। ठाँव=जीव का निजस्थान, ब्रह्म-पद।

६. भ्रम्म=भ्रम, अविद्या।

७. दो करि देहि=दो टुकडे कर देती है। भजै=भाग जाती है। सूरा सनमुख लेहि=वार को सामने लेता है।

८. बेदरदी=दरद के भेद को न जाननेवाला; अनधिकारी। भेद=मर्म, रहस्य।

सतगुरु शब्दी बान है, अंग अंग डारे तोड़ ।
प्रेम-खेत घायल गिरै, टाँका लगै न जोड़ ॥१०॥
ऐसी मारी खैंचकर, लगी वार गई पार ।
जिनका आपा ना रहा, भये रूप ततसार ॥११॥
बचन लगा गुरुदेव का, छुटे राज के ताज ।
हीरा, मोती, नारि, सुत, सजन, गेह, गज, बाज ॥१२॥
बचन लगा गुरु ज्ञान का, रूखे लागे भोग ।
इन्द्रकि पदवी लौं उन्हें, चरनदास सब रोग ॥१३॥

भक्त-महिमा

प्रभु अपने मुख सूँ कहेव, साधू मेरी देह ।
उनके चरनन की मुझे प्यारी लागै खेह ॥१॥
प्रेमी को रिनिया रहूँ, यही हमारो सूल ।
चारि मुक्ति दइ ब्याज में, दै न सकूँ अब मूल ॥२॥
भक्त हमारो पग धरै, तहाँ धरूँ मैं हाथ ॥
लारे लागो ही फिरूँ, कबहुँ न छोड़ूँ साथ ॥३॥
प्रिथवी पावन होत है, सब ही तीरथ आदि ।
चरनदास हरि यौं कहैं, चरन धरैं जहँ साध ॥४॥

विरह और प्रेम

हिरदै माहीं प्रेम जो, नैनों झलकै आय ।
सोइ छका हरि-रस-पगा, वा पग परसौ धाय ॥१॥

---

११. आपा=अहंता, खुदी । ततसार=तदाकार; ब्रह्मरूप
१२. सजन=सम्बन्धी । बाज=वाजि, घोड़ा ।

भक्ति-महिमा

१. खेह=धूल ।
२. सूल=उसूल; प्रतिज्ञा ।
३. लारे=पीछे, साथ ।

विरह और प्रेम

१. छका=मस्त । पगा=लीन, रँगा हुआ ।

पीव बिना तो जीवना, जगमें भारी जान ।
पिया मिलै तौ जीवना, नहीं तो छूटै प्रान ॥२॥
वह बिरहिन बौरी भई, जानत ना कोइ भेद ।
अगिन बरै हियरा जरै, भये कलेजे छेद ॥३॥

मन और इन्द्रियाँ

बहु बैरी घट में बसैं, तू नहिं जीतत कोय ।
निस-दिन घेरे ही रहैं, छुटकारा नहिं होय ॥१॥
या मन के जाने बिना, होय न कबहूँ साध ।
जक्त-बासना ना छुटै, लहै न भेद अगाध ॥२॥
सरकि जाय बिष ओरहीं, बहुरि न आवै हाथ ।
भजन माहिं ठहरै नहीं, जो गहि राखूँ नाथ ॥३॥
इन्द्री पलटैं मन बिषै, मन पलटै बुधि माहिं ।
बुधि पलटै हरि-ध्यान में, फेरि होय लय जाहिं ॥४॥
तन मन जारै काम हीं, चित कर डावाँडोल ।
धरम सरम सब खोयके, रहै आप हिये खोल ॥५॥
मोह बड़ा दुखरूप है, ताकूँ मारि निकास ।
प्रीत जगत की छोड़दे, जब होवै निर्बास ॥६॥
जग माहीं ऐसे रहो, ज्यों अंबुज सर माहिं ।
रहै नीर के आसरे, जल छूवत नाहिं ॥७॥
जग माहीं ऐसे रहो, ज्यों जिह्वा मुख माहिं ।
घीव घना भच्छन करै, तोभी चिकनी नाहिं ॥८॥

---

३. भेद=मर्म ;

मन ओर इद्रियाँ

२. अगाध भेद=आत्मज्ञान का गहरा रहस्य ।
४. लै होय जाहि=तद्रूप हो जाते है ।
६. निर्वास=वासना-रहित ।
७. अंबुज=कमल । सर=तालाब ।

जा घट चिन्ता-नागिनी, ता मुख जप नहिं होय ।
जो टुक आवै याद भी, उहीं जाय फिर खोय ॥९॥
आसा-नदिया में चलै, सदा मनोरथ-नीर ।
परमारथ उपजै, बहै, मन नहिं पकरै धीर ॥१०॥
अभिमानी मींजे गये, लूट लिये धन बाम ।
निर अभिमानी हो चले, पहुँचे हरि के धाम ॥११॥
चरनदास यों कहत हैं, सुनियो सन्त सुजान ।
मुक्तिमूल आधीनता, नरकमूल अभिमान ॥१२॥

अष्टपदी

रूपवन्त गरबावै । कोइ मोसम दृष्टि न आवै ॥
तरुनापा गर्बाना । वह अँधरा होवै राना ॥
कहै धन-मद में परबीना । सब मेरे ही आधीना ॥
कहै कुल-अभिमानी सूचा । मैं सब जातिन में ऊँचा ॥
वह विद्या-गर्व जो भारी । करै वाद-विवाद अनारी ॥
अरु भूप करै अभिमाना । उन आपै हीं कूँ जाना ॥
उन काल नहीं पहिचाना । सो मार करै घमसाना ॥
गुरु सुकदेव चितावैं । तोहि परगट नैन दिखावैं ॥
जम बाँधि पकरि ले जावैं । वै बहुतै त्रास दिखावैं ॥
तब कहाँ जाय अभिमाना । मोर नीका सुन यह ताना ॥
फिर डारै नरक मँझारी । सुन चेतौ नर अरु नारी ॥
तौ मद मत्सर तजि दीजै । साधौं के चरन गहीजै ॥
हरिभक्ति करौ चित लाई । जब सकल ब्याधि छुट जाई ॥
करि जाति बरन कुल दूरा । हो सतसंगति में पूरा ॥

---

९. टुक=जरा-सा ।
१०. नहिं पकरै धीर=निश्चल नही होता है ।
११. मीज गये=धूल में मिला दिये गये , वाम=वामा, स्त्री ।
१२. आधीनता=नम्रता ।
१३. तरुनापा=तरुणाई, जवानी । सूचा=शुचि, पवित्र । अनारी=अनाडी, मूर्ख ।

जब मुक्तिधाम कूँ पावै । फिर गर्भ-जोनि नहिं आवै ॥
कहै गुरु सुकदेव बखानो । यह चरनदास मति आनो ॥१३॥

नवधा भक्ति

दोहा

नवों अंग के साधते, उपजै प्रेम अनूप ।
रनजीता यौं जानिये, सब धर्मन का भूप ॥१॥

अष्टपदी

वह जात बरन कुल खोवै । अरु बीज बिरह का बोवै ॥
जो प्रेम तनिक चित आवै । वह औगुन सबै नसावै ॥
प्रेम-लता जब लहरै । मन बिना जोग ही ठहरै ॥
कोई चतुर खिलारी खेलै । वह प्रेम-पियारा झेलै ॥
जो धड़ पै सीस न राखै । सोइ प्रेम पियाला चाखै ॥
तन मन सूँ जो बौराई । वह रहै ध्यान लौ लाई ॥
वह पहुँचै हरि के पासा । यों कहैं चरन ही दासा ॥२॥

पतिव्रता

दोहा

पतिव्रता वहि जानिये, आज्ञा करै न भंग ॥
पिय अपने के रंग-रतै, और न सोहै ढंग ॥१॥
अपने पिय कूँ सेइये, आन पुरुष तजि देह ॥
परघर नेह निवारिये, रहिये अपने गेह ॥२॥
आज्ञाकारी पीव की, रहै पिया के संग ॥
तन मन सूँ सेवा करै, और न दूजो रंग ॥३॥

मत्सर=ईर्ष्या, द्वेष । गहीजै=पकड़ ले । चित लाई=मन लगाकर ।

नवधा भक्ति

२. बिना जोग ही ठहरै=बिना योग साधे ही निश्चल हो जाय । खिलारी=प्रेम का साधक । प्रेम-पियाला झेलै=प्रेम के नशे की लहर को सहन कर सके । बौराई=मस्त हो जाय ।

रंग होय तौ पीव को, आन पुरुष विषरूप ॥
छाहँ बुरी परघरन को, अपनी भली जु धूप ॥४॥
अपने घर का दुख भला, परघर का सुख छार ।
ऐसे जानै कुलबधू, सो सतवंती नार ॥५॥
पति की ओर निहारिये, औरन सूँ क्या काम ।
सबै देवता छाड़िकै, जपिये हरि का नाम ॥६॥
खसम तुम्हारे राम हैं, इत उत रुख मत मारि ।
चरनदास यों कहत हैं, यही धारना धारि ॥७॥

पतिव्रता

५. छार—धूल के समान तुच्छ । सतवंती—सती, पतिव्रता ।
७. रुख मत मारि—मन मत डिगा ।

सहजो बाई

चोला-परिचय

जीवन-काल—अनुमानत सं० १७४० से स० १८२० वि०

जन्म-स्थान—डेहरा गाँव (मेवात, राजस्थान)

जाति—ढूमर बनिया

पिता—हरिप्रसाद

भेष—ब्रह्मचारिणी

गुरु—महात्मा चरणदास

सहजोबाई का जीवन-वृत्त इससे अधिक कुछ नही मिलता । इन्होंने अपने गुरु चरणदासजी के विषय मे तो अपने दो पदो द्वारा उनका जन्म-संवत् व तिथि, जन्म-स्थान, पिता का नाम, कुल आदि सब विवरण दिया है, पर अपने विषय मे कुछ भी नही लिखा । पर यह निश्चित है कि यह आजीवन कुमारी ब्रह्मचारिणी रही । दिल्ली मे यह तथा इनकी गुरु-बहिन दयाबाई महात्मा चरणदास की सेवा मे सदा निरत रहा करती थी । यह उच्चकोटि की साधिका थी ।

बानी-परिचय

कुछ फुटकर पदो और कुण्डलियो के अतिरिक्त इनकी प्रसिद्ध रचना 'सहज-प्रकाश' है, जिसे लिखकर इन्होने संवत्. १८०० मे परीक्षितपुर, दिल्ली मे समाप्त किया था। गुरु का गुण-गान करने बैठी थी, कुछ दोहे चौपाई रचे थे, पर धीरे-धीरे सहज मे ही वह एक पोथी बन गई—

"फाग महीना अष्टमी, सुकल पाख बुधवार।
संवत अठारह सै हुते, सहजो किया विचार॥
गुरु-अस्तुति के करन कूँ, बाढ्यौ अधिक हुलास।
होते-होते हो गई पोथी सहज-प्रकास॥"

गुरु-महिमा, वैराग-उपजावन, नाम, प्रेम, साध-महिमा आदि अनेक अगो पर दोहे चौपाइयाँ निरूपण के रूप मे इन्होने रची है। गुरु-भक्ति को सबसे अधिक दृढाया है। पद भी इनके अतिमधुर और सरस है। निर्गुण और सगुण दोनो ही पक्षो पर इनके रचे अनेक सुन्दर पद है। कृष्ण-भक्ति के कुछ पद तो मीराबाइ के पदो से मिलते है। शैली मनोहर और भाषा सरल और प्रांजल है।

आधार

सहजोबाई की बानी—बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद

सहजो बाई

गुरु-महिमा

राम तजूँ पै गुरु न बिसारूँ। गुरु के सम हरि को न निहारूँ॥
हरि ने जन्म दियो जगमाहीं। गुरु ने आवागवन छुटाहीं॥
हरि ने पाँच चोर दिये साथा। गुरु ने लई छुटाय अनाथा॥
हरि ने कुटुँब-जाल में गेरी। गुरु ने काटी ममता-बेरी॥
हरि ने रोग भोग उरझायौ। गुरु जोगी कर सबै छुटायौ॥

गुरु-महिमा

१. गेरी=डाल दिया, फँसा दिया। बेरी=बेडी। बंध=बंधन।

हरि ने कर्म भर्म भरमायौ । गुरु ने आतमरूप लखायौ ॥
हरि ने मोसूँ आप छिपायौ । गुरु दीपक दै ताहि दिखायौ ॥
फिर हरि बंध मुक्ति गति लाये । गुरु ने सब ही भर्म मिटाये ॥
चरनदास पर तन मन वारूँ । गुरु न तजूँ हरि कूँ तजि डारूँ ॥१॥

दोहा

सब परबत स्याही करूँ, घोलूँ समुन्दर जाय ।
धरती का कागद करूँ, गुरु-अस्तुति न समाय ॥२॥
ज्ञानदीप सतगुरु दियौ, राख्यौ काया-कोट ।
साजन बसि, दुर्जन भजे, निकस गई सब खोट ॥३॥
सहजो गुरु दीपक दियौ, देख्यौ आतमरूप ।
तिमिर गयौ चाँदन भयौ, पायौ परघट भूप ॥४॥
सहजो गुरु परसन्न ह्वै, मेटयौ मन सन्देह ।
रोम-रोम सूँ प्रेम उठि, भीज गई सब देह ॥५॥
सहजो गुरु परसन्न ह्वै, मूंद लिये दोउ नैन ।
फिर मोसूँ ऐसे कही, समझ लेहि यह सैन ॥६॥
चिउँटी जहाँ न चढ़ि सकै, सरसों ना ठहराय ।
सहजो कूँ वा देस में, सतगुरु दई बसाय ॥७॥
सहजो सिष ऐसा भला, जैसे माटी मोय ।
आपा सौंपि कुम्हार कूँ, जो कछु होय सो होय ॥८॥
सहजो गुरु बहुतक फिरैं, ज्ञान ध्यान सुधि नाहिं ।
तार सकै नहि एककूँ, गहैं बहुत की बाहिं ॥९॥

२. न समाय=पूरी नहीं लिखी जा सकती ।

३. कोट=किला । भजे=भाग गये । साजन=सज्जन; सत्य, संयम, प्रेम इत्यादि सदगुणों से आशय है । दुर्जन=काम, क्रोध, मोह, लोभ आदि से तात्पर्य है ।

४. परघट=प्रकट । भूप=परमात्मा से अभिप्राय है ।

६. सैन=संकेत; ध्यान में लव लगाकर निजरूप देखने की ओर इशारा ।

८. सिष=शिष्य । कुम्हार=सद्गुरु से अभिप्राय है । जो कछु होय सो होय=चाहे जैसा रूप घड़ दे ।

सहजो गुरु रंगरेज सा, सबहीं कूँ रंग देत।
जैसा तैसा बसन ह्वै, जो कोई आवै सेत ॥१०॥
चरनदास के चरन पर, सहजो वारै प्रान।
जगत ब्याध सूँ काढि कर, राख्यो पद निरबान ॥११॥

साध-महिमा

साध मिले गुरु पाइया, मिठि गये सब सन्देह।
सहजो कूँ समहो भयो, कहा गिरवर कहा गेह ॥१॥

साध बृच्छ, बानी कली, चर्चा फूले फूल।
सहजो संगति बाग में, नाना फल रहे झूल ॥२॥

जो आवै सतसंग में, जाति बरन कुल खोय।
सहजो मैल कुचैल जल, मिलै सु गंगा होय ॥३॥

साध-लक्षण

चौपाई

साध सोइ जो काया साधै। तजि आलस औ बाद-बिबादै ॥
गहै धारना सब गति भारी। तजै बिकलता अस्तुति गारी ॥
छिमावन्त धीरज कूँ धारै। पाँचो बस करि मन कूँ मारै ॥
त्यागै झूठ साँच मुख बोलै। चित इस्थिर इत उत ना डोलै ॥
तन जग में मन हरि के पासा। लोकभोग सूँ सदा उदासा ॥
जतसत नखसिख लीनलताई। तनमन बचन सकल सुखदाई ॥

---

१० सेत=सफेद, शुद्ध, निर्मल।

११. निरबान=निर्वाण, मोक्ष।

साध-महिमा

१. समहो=भयो=सब एकसमान ही दीखने लगा।

२. रहे झूल=लटक रहे हैं।

साध-लक्षण

१. साधै=संयम से वश में रखता है। पाँचों=पाँचो ज्ञान-इद्रियों को। उदासा=विरक्त

निर्गुन ध्यानी ब्रह्म गियानी। मुख सूँ बोलै अंमृत बानी॥
समझ एकता भाव न दूजे। जिनके चरन सहजिया पूजे॥१॥

दोहा

निर्द्वन्दी निर्बैरता, सहजो अरु निर्बास।
संतोषी निर्मल दसा, तकै न पर की आस॥२
जो सोवैं तो सुन्न में, जो जागै हरिनाम।
जो बोलैं तो हरि-कथा, भक्ति करै निहकाम॥३॥
नित ही प्रेम पगे रहैं, छके रहैं निजरूप।
समदृष्टी सहजो कहै, समझैं रंक न भूप॥४॥
साध असंगी सँग तजै, आतम ही को संग।
बोधरूप आनंद में, पियैं सहज को रंग॥५॥
मुए दुखी जीवत दुखी, दुखिया भूख अहार।
साध सुखी सहजो कहै, पायो नित्त बिहार॥६॥

बैराग-उपजावन का अंग

जैसे सँड़सी लोह की, छिन पानी छिन आग।
ऐसे दुख सुख जगत के, सहजो तू मत पाग॥१॥
जबलग चावल धान में, तबलग उपजै आय।
जग छिलके कूँ तजि निकस, मुक्तिरूप ह्वै जाय॥२॥
दरद बटाय सकै नहीं, मुए न चालैं साथ।
सहजो क्योंकर आपने, सब नाते बरबाद॥३॥

जत=यत, संयत, निरुद्ध।

२. निर्बास=वासनारहित। निर्द्वन्दी=अभेदभाव बर्तनेवाला।

३. सुन्न में=समाधि में।

५. असंगी=अनासक्त संग=आसक्ति। बोध=ज्ञानरूप। सहज को रंग=सहज अवस्था का आनन्दरस।

६. नित्त विहार=सहज समाधि का आनन्द।

बैराग-उपजावन का अंग

१. मत पाग=आसक्त मत हो।

सहजो जीवत सब सगे, मुए निकट नहिं जायँ ।
रोवैं स्वारथ आपने, सुपने देख डरायँ ॥४॥
सहजो नौवत स्वास की, बाजत है दिन-रैन ।
मूरख सोवत है महा, चेतन कू नहि चैन ॥५॥
बैठि बैठि बहुतक गये, जग-तरवर की छांहि ।
सहजो बटाऊ बाट के, मिलि-मिलि बिछुड़त जाहिं ॥६॥
झुरि-झुरि के पिंजर भये, रोय गँवाये नैन ।
मरे गये सो ना मिले, सहजो सुनै न बैन ॥७॥
जो रोये सूँ बाहुरैं, तौ रोवौ दिन-रात ।
तन छीजै वह ना मिलै, सहजो कूड़ी बात ॥८॥
देह निकट तेरे पड़ी, जीव अमर है नित्त ।
दुइ में मूवा कौन सा, का सूँ तेरा हित्त ॥९॥

नाम का अंग

पारस नाम अमोल है, धनवन्ते घर होय ।
परख नहीं कंगाल कूँ, सहजो डारै खोय ॥१॥
सहजो सुमिरन कीजिये, हिरदै माहिं दुराय ।
होठ होठ सूँ ना हिलै, सकै नहीं कोइ पाय ॥२॥
राम-नाम यों लीजिये, जानै सुमिरनहार ।
सहजो कै कर्तार ही, जानै ना सन्सार ॥३॥
कामी मति भिष्टल सदा, चलै चाल बिपरीत ।
सील नहीं सहजो कहै, नैनन माहिं अनीति ॥४॥

---

५. नौबत=पहर-पहर पर बजनेवाले नगाड़े और शहनाई । मूरख=अचेत चेतन=जो चेत या जाग गया है ।

७. झुरि-झुरिके=सूख-सूखकर । पिंजर=हड्डियों की ठठरी ।

८. बाहुरैं=वापस आजाय । कूड़ी=बेकार ।

९. हित्त=प्रेम ।

नाम का अंग

४. भिष्टल=भ्रष्ट । अनीति=बुरी वासना ।

सदा रहै चित भंग ही, हिरदे थिरता नाहिं ।
रामनाम के फल जिते, काम-लहर बहि जाहिं ॥५॥

सहजो क्रोधी अति बुरो, उलटी समझै बात ।
सबही सू ऐंठो रहे, करै बचन की घात ॥६॥

मन मैला तन छीन ह्वै, हरि सूँ लगै न नेह ।
दुखी रहै सहजो कहै, मोह बसै जा देह ॥७॥

मोह-मिरग काया बसै, कैसे उबरै खेत ।
जो बोवै सोई चरै, लगै न हरि सू हेत ॥८॥

प्रभुताई कूँ चहत है, प्रभु को चहै न कोइ ।
अभिमानी घट नीच है, सहजो ऊँच न होय ॥९॥

नन्हा महाउत्ताम का अंग

सीस कान मुख नासिका, ऊँचे-ऊँचे ठाँव ।
सहजो नीचे कारने, सब कोउ पूजै पाँव ॥१॥

नन्ही चींटी भवन में, जहाँ-तहां रस लेइ ।
सहजो कुंजर अति बड़ो, सिर पै डारै खेह ॥२॥

बडा न जाने पाइहै, साहेब के दरबार ।
द्वारे ही सूँ लागिहै, सहजो मोटी मार ॥३॥

भली गरीबी नवनता, सकै नहीं कोइ मार ।
सहजो रुई कपास को, काटै ना तरवार ॥४॥

साहन कूँ तो भय घना, सहजो निर्भय रंक ।
कुंजर के पग बेड़ियाँ, चींटी फिरै निसंक ॥५॥

---

५. भंग=अस्थिर, डावाडोल । थिरता=स्थिरता, शान्ति ।
८. मिरग=मृग । उबरै=बचे ।

नन्हा महाउत्ताम का अंग

१. ठाँव=स्थान ।
२. कुंजर=हाथी । खेह=मिट्टी ।

प्रेम का अंग

प्रेम-दिवाने जो भये, पलटि गयो सब रूप।
सहजो दृष्टि न आवई, कहा रंक कहा भूप ॥१॥
प्रेम-दिवाने जो भये, जाति बरन गइ छूट।
सहजो जग बौरा कहै, लोग गये सब फूट ॥२॥
प्रेम-दिवाने जो भये, सहजो डिगमिग देह।
पाँव पड़ै कितकै कितो, हरि सम्हाल तब लेह ॥४॥
मन में तौ आनन्द रहै, तन बौरा सब अंग।
ना काहू के संग है, सहजो ना कोइ संग ॥४॥

सत्त बैराग जगत मिथ्या का अंग

सहजो सुपने एक पल, बीतैं बरस पचास।
आँख खुलै जब झूठ है, ऐसे ही घट-बास ॥१॥
जगत तरैयां भोर की, सहजो ठहरत नाहिं।
जैसे मोती ओस की, पानी अँजुली माहिं ॥२॥
धूवाँ को सो गढ बन्यो, मन में राज संजोय।
झांईं माईं सहजिया, कबहूँ सांच न होय ॥३॥

चौपाई

नेत नेत कहि बेद पुकारै। सो अधरन पर मुरली धारै ॥
जाकूँ ब्रह्मादिक मुनि ध्यावैं। ताहि पूत कहि नन्द बुलावै ॥
सिव सनकादिक अन्त न पावै। सो सखियन संग रासरचावै ॥

प्रेम का अंग

२. गये सब फूट=छोड-छोड़कर अलग हो गये।

३. कितकै किता=कहीं के कहीं

सत्त वैराग जगत मिथ्या का अंग

१. घटबास=देह में जीव का रहना।

२. मोती=बूंद से तात्पर्य है।

३. सँजोय=कल्पना से रचना करके। झाईं माईं=परछाईं में; भ्रांति में।

संजम साधन ध्यान न आवै। सो ग्वालन सँग खेल मचावै ॥
अनन्त लोक मेटै उपजावै। सो मोहन ब्रजराज कहावै ॥
निर्विकार निर्भय निर्वाना। कारन भक्त धरे तन नाना ॥
निर्गुन सगुन भेद न दोई। आदि अंत मधि एकहिं होई ॥
गूँगे को सुपनो यह बाता। सहजो कहै कौन के साथा ॥१॥

दोहा

निर्गुन सगुन एक प्रभु, देख्यो समझ विचार।
सतगुरु ने आँखी दई, निस्चै कियौ निहार ॥२॥
सहजो हरि बहु रंग है, वही प्रगट वहि रूप।
जल पाले में भेद ना, ज्यों सूरज अरु धूप ॥३॥
चरनदास गुरु की दया, गयो सकल संदेह।
छूटे वाद-विवाद सब, भई सहज गति तेह ॥४॥

पद

राग सोरठ

हमारें गुरुबचनन की टेक।
आन धरम कूँ नाहिं जानूँ, जपूँ हरि हरि एक ॥
गुरु बिना नहिं पार उतरै, करो नाना भेख।
रमौ तीरथ बर्त राखौ, होइ पंडित सेख ॥
गुरु बिना नहिं ज्ञान-दीपक, जाय ना अँधियार।
काम क्रोध मद लोभ माहीं, उरझिया संसार ॥
चरनदास गुरु दया करिकै, दिये मन्तर कान।
सहजो घट परगास हूवा, गयौ सब अज्ञान ॥१॥

---

३. नेत नेत=नेति नेति; ऐसा नही ऐसा नहीं, (जैसा कि वाणी से ब्रह्म का निरूपण किया जाता है।) निर्वाना=मुक्त।

३. पाले में=बरफ में।

पद

१. टेक=सहारा। सेख=शेख, मुसलमान उपदेशक। परगास=प्रकाश।

राग बिलावल

हरि बिनु तेरौ ना हितू, कोइ या जग माहीं ॥
अन्त समय तू देखिले, कोइ गहै न बाँहीं ॥
जम सूँ कहा छुटा सकै, कोइ संग न होई ।
नारीं हू फटि रहि गई, स्वारथ कूँ रोई ॥
पुत्र कलित्तर कौन के, भाई और बंधा ।
सबहीं ठोक जलाइहैं, समझै नहिं अन्धा ॥
महल दरब ह्याँही रहे, पचि पचि करि जोड़ा ।
करहा गज ठाढ़े रहैं, चाकर और घोड़ा ॥
परकाजै बहु दुख सहे, हरि-सुमिरन खोया ।
सहजो बाई जम घिरैं, सिर धुनि-धुनि रोया ॥२॥

राग असावरी

बाबा, काया-नगर बसावौ ।
ज्ञानदृष्टि सूँ घट में देखौ, सुरति निरति लौ लावौ ॥
पाँच मारि मन बसि कर अपने, तीनौं ताप नसावौ ।
सत सन्तोष गहौ दृढ़सेती, दुर्जन मारि भजावौ ॥
सील छिमा धीरज कूँ धारौ, अनहद बम्ब बजावौ ।
पाप बानिया रहन न दीजै, धरम-बजार लगावौ ॥
सुबस बास होवै जब नगरी, बैरी रहै न कोई ।
चरनदास गुरु अमल बतायौ, सहजो सँभलौ सोई ॥३॥

राग होरी

साधो, भवसागर के माहिं, काल होरी खेलाई ॥
भाँति भाँति के रंग लिये हैं, करत जीवन की घात ।
बूढ़ा बाला कछू न देखै, देखै ना दिन-रात ॥

---

२. बाँही=हाथ । कलित्तर=कलत्र, स्त्री ; दरब=द्रव्य, धन-संपत्ति । करहा=ऊँट ।
३. निरति=अत्यन्त प्रीति, लीन होने का भाव । दृढ़ सेती=मज़बूती से ।

निहचै मौत लिये सँग रानी, नाना रंग सम्हार।
बड़े-बड़े अभिमानी नामी, सोभी लीन्हे मार ॥
सुरज चंद वा भय तें काँपै, स्वर्ग माहिं सब देव ॥
तनधारी सबही थर्रावैं, ज्ञानी जानत भेव ॥
आपनकूँ देही नहिं जानै, जानत आतम साँच।
चरनदास कह सहजो बाई, ताहि न आवै आँच ॥४॥

राग बसत

सो बसंत नहि बारबार। तैं पाई मानुष देह सार ॥
यह औसर बिरथा न खोव। भक्तिबीज हिये-धरती बोव ॥
सतसंगत को सींच नीर। सतगुरुजी सों करौ सीर ॥
नीको बार बिचार देव। परन राख याकूँ जु सेव ॥
रखवारी कर हेत-खेत। जब तेरो होवै जैत जैत ॥
खोट-कपट पंछी उड़ाव। मोह-प्यास सबही जलाव ॥
सँभलैं वाड़ी नऊ अंग। प्रेमफूल फूलै अंग अंग ॥
पुहुप गूँध माला बनाव। आदिपुरुषकूँ जा चढाव ॥
तौ सहजो बाई चरनदास। तेरे गन की पुरवैं सकल आस ॥५॥

राग भैरौ

हम बालक तुम माय हमारी। पल-पल माहिं करो रखवारी ॥
निसदिन गोदी ही में राखो। इत वित बचन चितावन भाखो।
बिषै ओर जान नहिं देवो। ढुर ढुर जाउँ तो गहि गहि लेवो ॥
मैं अनजान कछु नहि जानूँ। बुरी भली को नहिं पहिचानूँ।
जैसी तैसी तुमही चीन्हेव। गुर ह्वै ध्यान-खेलौना दीन्हेव ॥
तुम्हरी रच्छा ही से जीऊँ। नाम तुम्हारो इंमृत पीऊँ।
दिष्टि तिहारी ऊपर मेरे। सदा रहूँ मैं सरनै तेरे ॥

---

४. भेव=भेद, मर्म।

५. सार=उत्तम। सीर=नमी, तरी। परन=प्रण, टेक। जैत जैत=जय-जय। नऊ अंग=नवधा भक्ति से; सब प्रकार से। पुरवै=सफल करे।

६. इत वित वचन चितावन=इधर उधर सब ओर से बचने से, सावधान होने के

मारौ झिड़कौ तौ नहिं जाऊँ। सरक सरक तुमहीं पै आऊ।
चरनदास है सहजो दासी। हो रच्छक पूरन अबिनासी।।६।।

लिए। डुर डुर=विचलित हो जाऊँ।

दया बाई

चोला-परिचय

जीवन-काल —अनुमानतः सं० १७५० से स० १८३० वि०

जन्म-स्थान—डेहरा गाँव (मेवात—राजस्थान)

जाति—ढूसर बनिया

गुरु—महात्मा चरणदास

भेष—ब्रह्मचारिणी

सत्संग-स्थान—दिल्ली

यह सहजो बाई की गुरुबहिन थी। दिल्ली मे अपने गुरु चरणदास-जी की सेवा मे यह भी रहा करती थी। 'दया-बोध' नामक ग्रथ इन्होंने चैत्र सुदी ७, सवत् १८१८ को समाप्त किया था। बस, इतना ही इनका जीवन-वृत्त मिलता है।

बानी-परिचय

'दया-बोध' में दया बाई ने गुरु-महिमा, सुमिरन, सूरमा, प्रेम, बैराग, साध आदि अनेक अगों पर दोहे और कुछ चौपाइयाँ लिखी हे। शैली और भाषा लगभग सहजो बाई की जैसी है। इनका अधिक बल्कि पूरा झुकाव भक्ति की तरफ़ रहा है। निर्गुण निरजन, या त्रिवेणी और अजपा पर इन्होंने जो दोहे लिखे हैं, उनमें इनकी वैसी तन्मयता हम बहुत कम पाते है, जैसी कि इनकी भक्तिविषयक रचना मे देखते है।

'विनय-मालिका' के दोहों में 'दयादास' की छाप आई है, पर वे दयाबाई के ही रचे हुए हैं, क्योंकि शैली और भाषा मे कोई अन्तर नहीं आया है। भगवान् को अनेक नामों से संबोधन इसमे किया गया है।

अनेक भक्तो का भी उल्लेख उनकी कथाओ के साथ इसमे आया है। मुख्यत. यह सगुण-उपासना-परक रचना है।

आधार

दयाबाई की बानी—बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद

दया बाई

गुरु-महिमा का अंग

दोहा

बंदों श्री सुखदेवजी, सब बिधि करो सहाय।
हरो सकल जग-आपदा, प्रेम-सुधा-रस प्याय ॥१॥
चरनदास गुरुदेवजू, ब्रह्मरूप सुख-धाम।
ताप-हरन सब सुख-करन, दया करत परनाम ॥२॥
अंधकूप जग में पड़ी, दया करम-बस आय।
बूडत लई निकासि करि, गुरु-गुन-ज्ञान गहाय ॥३॥
सतगरु ब्रह्मसरूप हैं, मनुषभाव मत जान।
देहभाव मानैं दया, ते हैं पसू समान ॥४॥

सुमिरन का अंग

दोहा

हरि भजते लागै नहीं, काल-ब्याल दुख-झाल।
तातें राम सँभालिये, दया छोड़ जग-जाल ॥१॥
जे जन हरि-सुमिरन-बिमुख, तासूँ मुखहुँ न बोल।
रामरूप में जे पगे, तासूँ अंतर खोल ॥२॥

गुरु-महिमा का अंग

३. गहाय=ग्रहण कराकर, सौंपकर।

सुमिरन का अंग

१. झाल=ज्वाला। सँभालिये=स्मरण व सेवा करे।
२. अन्तर खोल=हृदय की गुप्त-से-गुप्त बात स्पष्ट बतलादे।

रामनाम के लेतहीं, पातक झुरैं अनेक।
रे नर हरि के नाम को, राखो मन में टेक ॥३॥
नारायण के नाम बिन, नर नर नर जा चित्त।
दीन भयो बिल्लात है, माया-बसि ना थित्त ॥४॥

सूर का अंग

दोहा

गुरु-सब्दनकूँ ग्रहन करि, बिषयनकूँ दे पीठ।
गोबिंदरूपी गदा गहि, मारो करमन डीठ ॥१॥
सूरा वही सराहिये, बिन सिर लड़त कबंद।
लोक-लाज कुल-कानकूँ, ताड़ि होत निबंद ॥२॥
सूरा सम्मुख समर में, घायल होत निसंक।
यों साधू संसार में, जग के सहै कलंक ॥३॥
कायर काँपै देख करि, साधू को संग्राम।
सीस उतारै भुइँ धरै, तब पावै निज ठाम ॥४॥

प्रेम का अंग

दोहा

प्रेम-मगन जे साध जन, तिन गति कही न जात।
रोय रोय गावत हँसत, दया अटपटी बात ॥१॥

---

३. झुरैं=जल जाते है।

४. नर नर नर जा चित्त=जिसके चित्त मे मनुष्य-ही-मनुष्यसम्बन्धी विचार घूमते रहते है। बिल्लात है=आशा के वश गिडगिड़ाता है। थित्त=स्थित, स्थिर।

सूर का अंग

१. डीठ=दृष्टि; बुरी नजर।

२. कबद=कबंध; बिना सिर का केवल धड़।

४. ठाम=स्थान; लक्ष्य।

प्रेम का अंग

१. तनि=तनिक भी। झुके=मस्त। थके नेम व्रत माहि=नियमों और व्रतो का जिन्हें ध्यान नही रहता, अर्थात् त्याग चुके है।

हरिरस-माते जे रहैं, तिनको मतो अगाध ।
त्रिभुवन की संपति दया, तृनसम जानत साध ॥२॥

कहूँ धरत पग परत कहुं, उमगि गात सब देह ।
दया मगन हरिरूप में, दिन दिन अधिक सनेह ॥३॥

हँसि गावत रोवत उठत, गिरि-गिरि परत अधीर ।
पै हरिरस-चसको दया, सहै कठिन तन पीर ॥४॥

विरह ज्वाल-उपजी हिये, राम-सनेही आय ।
मन-मोहन मोहन सरल, तुम देखन दा चाय ॥५॥

काग उड़ावत थके कर, नैन निहारत बाट ।
प्रेमसिन्ध में पर्‍यो मन, ना निकसन को घाट ॥६॥

रे मन, तू निकसत नहीं, हे तू बड़ा कठोर ।
सुन्दर स्याम सरूप बिन, क्यों जीवत निस-भोर ॥७॥

बैराग का अंग

दोहा

दयाकुँवर या जक्त में, नहीं रह्यो थिर कोय ।
जैसो बास सराय को, तैसो यह जग होय ॥१॥

जैसो मोती ओस को, तैसो यह संसार ।
बिनसि जाय छिन एक में, दया प्रभू उर धार ॥२॥

तात मात तुम्हरे गये, तुम भी भये तयार ।
आज काल्ह में तुम चलौ, दया होहु हुसियार ॥३॥

---

४. चसको=चसका, मजा ।
५. दा=का (पंजाबी प्रयोग) चाय=चाह, लालसा ।
७. भोर=दिन ।

बैराग का अंग

१. जक्त=जगत् ।
२. मोती=बूँद से आशय है ।

बड़ो पेट है काल को, नेक न कहूँ अघाय ।
राजा राना छत्र-पति, सबकूँ लीले जाय ॥४॥
बिनसत बादर बात बसि, नभ में नाना भाँति ।
इमि नर दीसत कालबस, तऊ न उपजै साँति ॥५॥

साध का अंग

दोहा

दया दान अरु दीनता, दीना-नाथ दयाल ।
हिरदै सीतल दृष्टि सम, निरखत करैं निहाल ॥१॥
काम क्रोध मद लोभ नहिं, षट विकार करि हीन ।
पंथ कुपंथ न जानहीं, ब्रह्मभाव-रस-लीन ॥२॥
साधसंग छिन एक को, पुन्न न बरन्यो जाय ।
रति उपजै हरिनाम सूँ, सबही पाप बिलाय ॥३॥
साधू बिरला जगत में, हर्ष सोक करि हीन ।
कहन सुनन कूँ बहुत हैं, जन-जन आगे दीन ॥४॥
साधसंग जग में बडो, जो करि जानै कोय ।
आधो छिन सतसंग को, कलमख डारै खोय ॥५॥

अजपा का अंग

दोहा

दया कह्यो गुरदेव ने, कूरम को ब्रत लेहि ।
सब इन्द्रिनकूँ रोकि करि, सुरत स्वाँस में देहि ॥१॥

---

४. लीले जाय=निगलता जा रहा है ।

५. बात=वायु । साँति=शान्ति ।

साध का अंग

२. षट विकार=मन के छह दोष—काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मात्सर्य । करि=से ।

४. रति=प्रीति ।

५. कलमख=पाप ।

अजपा का अंग

१. कूरम को व्रत=कछवा का अपने सब अंगों का सिकोड लेना; यहाँ इन्द्रियों को विषयों की ओर से अन्तर्मुखी कर लेने से अभिप्राय है ।

बिन रसना बिन माल कर, अंतर सुमिरन होय।
दया दया गुरदेव की, बिरला जानै कोय ॥२॥
हृदयकमल में सुरति धरि, अजप जपै जो कोय।
विमल ज्ञान प्रगटै तहाँ, कलमख डारै खोय ॥३॥
जहाँ काल अरु ज्वाल नहिं, सीत उस्न नहिं बीर।
दया परसि निजधामकूँ, पायो भेद गँभीर ॥४॥
पिय को रूप अनूप लखि, कोटि भान उँजियार।
दया सकल दुख मिटि गयो, प्रगट भयो सुखसार ॥५॥
अनंत भान उँजियार तहँ, प्रगटी अद्भुत जोत।
चकचौंधी सी लगति है, मनसा सीतल होत ॥६॥
बिन दामिन उँजियार अति, बिनघन परत फुहार।
मगन भयो मनुवाँ तहाँ, दया निहार निहार ॥७॥
जग परनामी है मृषा, तन-रूपी भ्रमकूप।
तू चेतन्न सरूप है, अद्भुत आनँदरूप ॥८॥
भोर भये गुरु ज्ञान सूँ, मिटी नींद अज्ञान।
रैन अविद्या मिटि गई, प्रगट्यो अनुभव-भान ॥९॥
चरनदास की कृपा तें, मन में उपज्यो चेत।
'दयाबोध' बरनन कियो, परमारथ के हेत ॥१०॥

बिनयमालिका

दोहा

किस बिधि रीझत हौ प्रभू, का कहि टेरूँ नाथ।
लहर मेहर जबहीं करो, तबहीं होउँ सनाथ ॥१॥

---

२. उस्न=उष्ण, गरम।। ज्वाल=संसार का त्रिविध ताप; इस शब्द को 'जबाल' का अपभ्रंश मानकर इसका 'आफत' या 'झंझट' अर्थ भी किया गया है। बीर=भाई या सखी।

६. मनसा=मनोवृत्ति; हृदय।

८. परनामी=परिणामी; जो स्वभावतः सदा बदलता रहता है।

९. भोर=सवेरा

भवजल नदी भयावनी, किस बिधि उतरूँ पार ।
साहिब मेरी अरज है, सुनिये बारम्बार ।।२।।

तुम ठाकुर त्रैलोक-पति, ये ठग बस करि देहु ।
दयादास आधीन की, यह बिनती सुनि लेहु ।।३।।

नहिं संजम नहिं साधना, नहिं तीरथब्रत दान ।
मात-भरोसे रहत है, ज्यों बालक नादान ।।४।।

लाख चूक सुत से परै, सो कछु तजि नहिं देह ।
पोष चुचुक ले गोद में, दिन दिन दूनो नेह ।।५।।

चकई कल में होत है, भान-उदय आनंद ।
दयादास के दृगन तें, पल न टरो ब्रजचंद ।।६।।

बड़े-बड़े पापी अधम, तरत लगी ना बार ।
पूँजी लगै कछु नंद की, हे प्रभु हमरी बार ।।७।।

तुमहीं सूँ टेका लगो, जैसे चन्द्र चकोर ।
अब कासूँ झंखा करौं, मोहन नंदकिसोर ।।८।।

कब को टेरत दीन भो, सुनौ न नाथ पुकार ।
की स्रवन ऊँचो सुनो, की दीन्हों बिरद बिसार ।।९।।

तातें तेरे नाम की, महिमा अपरम्पार ।
जैसे किनका अनल को, सघन बनौ दे जार ।।१०।।

विनयमालिका

३. ठग=काम, क्रोध, लोभ आदि मनोविकारों से आशय है ।

५. चुचुक=चुमकारकर

६. कल=चैन

७. नंद का=श्रीकृष्ण के अभिभावक नंद बाबा क्या मुझे तारने से तुम्हारे बाप की पूँजी खर्च होती है ?

८. टेका=टेक । झंखा=झीखना, कुढ़ना ।

९. बिरद=बाना; बड़ा नाम ।

पलटू साहब

चोला-परिचय

जन्म-संवत्—अज्ञात

जन्म-स्थान—नगपुर जलालपुर (जिला फैजाबाद)

जाति—काँदू बनिया

गुरु—गोविंद साहब

भेष—गृहस्थ; पीछे विरक्त

सत्संग-स्थान—अयोध्या

मृत्यु-संवत्—अज्ञात

काल—विक्रम की १९ वीं शती के पूर्वार्द्ध में विद्यमान।

बस, पलटू साहब का इतना ही, और यह भी बहुत-कुछ आनुमानिक इतिवृत्त मिलता है। जन्म-स्थान का परिचय भी इनके भाई पलटू-परसाद ने अपनी 'भजनावली' में दिया है, और वह इस प्रकार—

नगा जलालपुर जन्म भयो है, बसे अवध के खोर।
कहै पलटूपरसाद हो, भयो जगत में सोर॥
चार बरन को मेटिके, भक्ति चलाई मूल।
गुरु गोविंद के बाग में, पलटू फूलेउ फूल॥
सहर जलालपुर मूँड मुँडाया, अवध तुड़ी करधनियाँ।
सहज करै ब्योपार घटहि में पलटू निर्गुन बनियाँ॥

ननपुर जलालपुर का ही उल्लेख अपने रचे दोहे में पलटूपरसाद ने नगा जलालपुर के नाम से किया है। जन्म पलटू साहब का नगपुर जलालपुर में हुआ था पर बाद में रहने लगे अयोध्या में। मूँड अपने गाँव में ही मुँडा लिया था, पर करधनी या जनेऊ अयोध्या में जाकर तोड़ा था। गुरु इनके गोविंद साहब थे, जो प्रसिद्ध संत भीखा साहब के शिष्य थे। गोविन्द साहब पहले पलटूदासजी के पुरोहित थे।

अयोध्या में पलटू साहब ने सत्संग स्थापित किया, और वहीं अपना चोला भी त्यागा। अयोध्या में इनकी दिन-दिन बढ़ती हुई कीर्ति को

देखकर मन्दिरो और अखाडो के वैरागी इनसे बहुत जलते थे। पर यह उनकी परवा नही करते थे, हमेशा अपनी मौज मे मस्त रहते थे। जहाँ एक तरफ़ वैरागी और पण्डित इनसे जलते थे, तहाँ बडे-बडे सेठ और अमीर-उमरा इनके द्वार पर बडी-बडी भेंट लिये खडे रहते थे। अपनी एक कुंडलिया मे पलटू साहब कहते है :—

"लैलै भेट अमीर नाम का तेज विराजा।
सब कोउ रगरै नाक आइकै परजा राजा॥

सकलदार मै नही, नीच फिर जाति हमारी।
गोड धोय षट करम बरन पीवै लै चारी॥

बिन लसकर बिन फौज मुलुक मे फिरी दुहाई।
जन-महिमा सतनाम आपु मे सरस बडाई॥

सत्तनाम के लिहे से पलटू भया गँभीर।
हाथ जोरि आगे मिलै लै-लै भेट अमीर॥"

बानी-परिचय

पलटू साहब की बानी इलाहाबाद के बेलवेडियर प्रेस से तीन भागों मे प्रकाशित हुई है। पहले भाग मे कुण्डलियाँ है, दूसरे भाग मे रेखते, झूलने, अरिल, कवित्त और सवैये, और तीसरे भाग मे शब्द या पद और साखियाँ।

कुण्डलियाँ पलटू साहब की बहुत प्रसिद्ध है और बडे मार्के की है, कई कुण्डलियाँ इन्होने कबीरदास की साखियों पर भाष्यरूप मे लिखी है, और कुछ कुण्डलियाँ लोकोक्तियो पर भी रची है।

इसी प्रकार झूलने और अरिल भी इनके खूब मस्तीभरे और जोरदार है।

शब्द भी इनके ऊँचे घाट के है। साखियाँ भी सीधे चोट करती है।

इनके कहने का ढग कबीरदासजी से खूब मिलता है। यह वैसे ही निडर और फक्कड़ आलोचक थे, जैसेकि कबीर साहब।

और साधना-पक्ष मे भी यह बहुत गहरे उतरे थे। ब्राह्मी स्थिति का इन्होने प्रत्यक्ष अनुभव किया था। अपने एक शब्द में अपनी गहरी एवं मधुरतम आत्मानुभूति का वर्णन यह परमार्थी बनिया, राम का मोदी, इस प्रकार कर रहा है–

"कौन करै बनियाई अब मोरे, कौन करै बनियाई।
त्रिकुटी मे है भरती मेरी, सुखमन मे है गादी।
दसवें द्वारे कोठी मेरी, बैठा पुरुष अनादी॥
इगला पिगला पलरा दूनौ, लागि सुरति की जोती।
सत्त सबद की डांडी पकरौ, तौलो भरि भरि मोती॥
चाँद सुरज दोउ करै रखवारी, लगी सत्त की ढेरी।
तुरिया चढिके बेचन लागा ऐसी साहिबी मेरी॥
सतगुरु साहिब किहा सिपारस, मिली राम-मोदियाई।
पलटू के घर नौबति बाजै, निति उठि होति सवाई॥"

इनकी बानी का सारा रग और ढग देखकर जो इनको दूसरा कबीर साहब कहा जाता है उसमे कोई अतिशयोक्ति नही, क्योंकि उसमें प्रायः वैसी ही स्पष्टवादिता, वैसी ही निर्भीकता, वैसी ही सरसता और लगभग वैसी ही शैली हम पाते है। भाषा भी अच्छी ज़ोरदार और सरल और सरस है।

आधार

१ पलटू साहब की बानी (पहला भाग)—बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद
२ पलटू साहब की बानी (दूसरा भाग)— ,, ,,
३ पलटू साहब की बानी (तीसरा भाग)— ,, ,,
४ उत्तरी भारत की संत-परम्परा—परशुराम चतुर्वेदी, भारती-भण्डार, इलाहाबाद

पलटू साहब

कुण्डलियाँ

नाव मिली केवट नहीं, कैसे उतरै पार ॥
कैसे उतरै पार पथिक बिस्वास न आवै।
लगै नहीं बैराग यार कैसेकै पावै ॥
मन में धरै न ज्ञान, नहीं सतसंगति रहनी।
बात करै नहिं कान, प्रीति बिन जैसे कहनी ॥
छूटि डगमगी नाहि, संत को वचन न मानै।
मूरख तजै विवेक, चतुरई अपनी आनै ॥
पलटू सतगुरु सब्द का तनिक न करै बिचार।
नाव मिली केवट नहीं, कैसे उतरै पार ॥१॥

साहिब वही फकीर है, जो कोइ पहुँचा होय ॥
जो कोइ पहुँचा होय, नूर का छत्र बिराजै।
सबर-तखत पर बैठि, तूर अठपहरा बाजै ॥
तम्बू है असमान, जमीं का फरस बिछाया।
छिमा किया छिड़काव, खुशी का मुस्क लगाया ॥
नाम खजाना भरा, जिकिर का नेजा चलता।
साहिब चौकीदार देखि इबलीसहुँ डरता ॥
पलटू दुनिया दीन में उनसे बड़ा न कोय।
साहिब वही फकीर है, जो कोइ पहुँचा होय ॥२॥

लहना है सतनाम का जो चाहे सो लेय ॥
जो चाहे जो लेय जायगी लूट औराई।
तुम का लुटिहौ यार, गाँव जब दहिहै लाई ॥

कुण्डलियाँ

१. यार=मित्र, परमात्मा। कान करै=ध्यान देकर सुने। डगमगी=अस्थिरता, दुविधा।

२. नूर=ज्ञान का अखंड प्रकाश। सबर=संतोष। तूर=बाजे, नौबत। मुस्क=मुश्क, कस्तूरी; इत्र। जिकिर=अध्यात्म-चर्चा। नेजा=भाला। इबलीस=शैतान।

३. लहना=लाभ, धन। औराई जायगी=खत्म हो जायगी। मोट=गठरी। सितावी=जल्दी।

ताकै कहा गँवार, मोटभर बाँध सिताबी।
लूट में देरी करै ताहि की होय खराबी॥
बहुरि न ऐसा दाँव, नहीं फिर मानुष होना।
क्या ताकै तू ठाढ़, हाथ से जाता सोना॥
पलटू मैं ऊरिन भया, मोर दोस जिन देय।
लहना है सतनाम का, जो चाहै सो लेय॥३॥
दीपक बारा नाम का, महल भया उँजियार॥
महल भया उँजियार, नाम का तेज बिराजा।
सब्द किया परकास, मानसर ऊपर छाजा॥
दसो दिसा भई सुद्ध, बुद्ध भई निर्मल साची।
छुटी कुमति की गाँठि, सुमति परगट होय नाची॥
होत छतीसो राग, दाग तिर्गुन का छूटा।
पूरन प्रगटे भाग, करम का कलसा फूटा॥
पलटू अँधियारी मिटी, बाती दीन्हीं बार।
दीपक बारा नाम का, महल भया उँजियार॥४॥
हाथ जोरि आगे मिलैं, लै-ले भेंट अमीर।
लै-लैं भेट अमीर, नाम का तेज बिराजा।
सब कोउ रगरै नाक, आइकै परजा राजा॥
सकलदार मैं नहीं, नीच फिर जाति हमारी।
गोड धोय षटकरम बरन पीवैं लै चारी॥
बिन लसकर बिन फौज मुलुक में फिरी दुहाई।
जन-महिमा सतनाम आपु में सरस बड़ाई॥
सत्तनाम के लिहे से पलटू भया गँभीर।
हाथ जोरि आगे मिलैं लै-लैं भेंट अमीर॥५॥

४ बारा=जलाया। छाजा=शोभित हुआ। सुमति=शुद्ध बुद्धि। नाची=प्रफुल्लित हो गई। दाग=धब्बा, मैल। तिर्गुन=माया के तीन गुण सत्व, रज और तम। कलसा=घड़ा।

५. सकलदार=सुन्दर। गोड़…चारी=छहो कर्म करनेवाले और चारो वर्णों के लोग पैर धो-धोकर पीते है। दुहाई=अमल। गँभीर=महान्।

संत सासना सहत हैं, जैसे सहत कपास ॥
जैसे सहत कपास, नाय चरखी में ओटै ।
रूई धर जब तुनै हाथ से दोउ निभोटै ॥
रोम रोम अलगाय पकरिकै धुनिया धूनी ।
पिउनी नहँ दै कात, सूत ले जुलहा बूनी ॥
धोबी भट्टी पर धरी, कुन्दीगर मुगरी मारी ।
दरजी टुक-टुक फारि जोरिकै किया तयारी ॥
परस्वारथ के कारने दुख सहे पलटूदास ।
संत सासना सहत है, जैसे सहत कपास ॥६॥
क्या सोवै तू बावरी, चाला जात बसंत ॥
चाला जात बसंत, कंत ना घर में आये ।
धृग जीवन है तोर, कंत बिन दिवस गँवाये ॥
गर्व गुमानी नारि फिरै जोबन की माती ।
खसम रहा है रूठि, नहीं तू पठवै पाती ॥
लगै न तेरो चित्त, कंत को नाहिं मनावै ।
कापर करै सिंगार, फूल की सेज बिछावै ॥
पलटू ऋतु भरि खेलिले, फिर पछतावै अंत ।
क्या सोवै तू बावरी, चाला जात बसंत ॥७॥
ज्यों-ज्यों सूखै ताल है, त्यों-त्यों मीन मलीन ॥
त्यों-त्यों मीन मलीन, जेठ में सूख्यो पानी ।
तीनों पन गये बीति, भजन का मरम न जानी ॥

---

६. सासना=कष्ट । नाय=डालकर । तुनै=रुई के रेशे अलग-अलग करता है । धूनी=धुनकी । पिउना=पूनी । नहँदै=बढे हुए नाखून में छेद करके उसमें से बारीक-से-बारीक सूत निकालकर ।

७. माती=मतवाली । खसम=स्वामी, परमपुरुष परमात्मा से तात्पर्य है । कापर=किसे रिझाने के लिए ।

८. ज्यों-ज्यों…मलीन=आशय है कि ज्यों-ज्यों शरीर जीर्ण-शीर्ण होता जाता है, त्यों-त्यों मन की वृत्ति उदास होती है, जैसे तालाब का पानी सूखने पर मछली व्याकुल

कँवल गये कुम्हिलाय, हंस ने किया पयाना।
मीन लिया कोउ मारि, ठाँव ढेला चिरहाना॥
ऐसी मानुष-देह वृथा में जात अनारी।
भूला कौल करार, आपसे काम बिगारी॥
पलटू बरस औ मास दिन, पहरघड़ी पल छीन।
ज्यों-ज्यों सूखै ताल है, त्यों-त्यों मीन मलीन॥८॥

पिय को खोजन मैं चली, आपुइ गई हिराय॥
आपुइ गई हिराय, कवन अब कहै सँदेसा।
जेकर पिय में ध्यान, भई वह पिय के भेषा॥
आगि माहिं जो परै, सोउ अग्नी ह्वै जावै।
भृंगी कीट को भेंट आपुसम लेइ बनावै॥
सरिता बहिकै गई, सिंध में रही समाई।
सिव सक्ती के मिले नहीं फिर सक्ती आई॥
पलटू दिवाल कहकहा, मत कोउ झाँकन जाय।
पिय को खोजन मैं चली, आपुइ गई हिराय॥९॥

सीस उतारै हाथ से, सहज आसिकी नाहिं॥
सहज आसिकी नाहिं, खाँड खाने को नाहीं।
झूठ आसिकी करै, मुलुक में जूती खाहीं॥

हो जाती है। कँवल गये कुम्हिलाय=आशय यह कि इन्द्रियाँ थकित हो गईं। हंस=जीव। ढेला चिहराना=पानी सूख जाने पर तली फटकर मिट्टी का थक्का बन गया। अनारी=अनाड़ी, मूर्ख। भूला कौल-करार=गर्भवास में हरिभजन करने का जो प्रण किया था उसे भूल गया।

९. हिराय गई=खो गई, तदाकार हो गई। भेषा=रूप। कहकहा दिवाल=चीन देश की पन्द्रह सौ मील लम्बी, पच्चीस फुट ऊँची और इतनी ही चौड़ी दीवार जिसे असल में मंगोल जातियों के हमले को रोकने के लिए बनवाया गया था, पर जिसके विषय मे यह किंवदन्ती प्रसिद्ध है कि उसपर चढ़कर दूसरी ओर झाँकने से परिस्तान दीख पड़ता है और उसे देखकर इतना अधिक आनन्द होता है कि देखनेवाला हठात् उसपर से कूद पड़ता है और वहाँ लापता हो जाता है।

जीते-जी मरि जाय, करै ना तन की आसा।
आसिक का दिनरात रहै सूली पर बासा॥
मान बड़ाई खोय नींदभर नाहीं सोना।
तिलभर रक्त न मांस, नहीं आसिक को रोना॥
पलटू बड़े बेकूफ वे, आसिक होने जाहि।
सीस उतारै हाथ से, सहज आसिकी नाहिं॥१०॥

यह तो घर है प्रेम का, खाला का घर नाहि॥
खाला का घर नाहि, सीस जब धरै उतारी।
हाथपाव कटि जाय, करै ना संत करारी॥
ज्यों-ज्यों लागैं घाव, तेहुं-तेहुं कदम चलावै।
सूरा रन पर जाय, बहुरि ना जियता आवै॥
पलटू ऐसे घर महैं, बड़े मरद जे जाहिं।
यह तो घर है प्रेम का खाला का घर नाहिं॥११।*

लगन महूरत झूठ सब, और बिगाड़ैं काम॥
और बिगाड़ैं काम, साइत जनि सोधै कोई।
एक भरोसा नाहिं कुसल कहुवाँ से होई॥
जेकरे हाथै कुसल ताहिको दिया बिसारी।
आपन इक चतुराइ बीच में करै अनारी॥
तिनका टूटै नाहि बिना सतगुरु की दाया।
अजहूं चेत गँवार, जगत है झूठी काया॥

---

१०. सहज=आसान। आसिकी=प्रेम लगाना। बेकूफ=बेवकूफ, मूर्ख।

११. खाला का घर=मौसी का घर, ऐसी जगह जहां बिना मेहनत के आसानी से चाहे जब चले गये। करारी=कराह; इनकार। कदम चलावै=आगे बढ़ता जाता है।

१२. साइत=शुभ मुहूर्त। एक भरोसा नाहि=एक परमात्मा पर विश्वास नहीं है। जेकर=जिसके। दाया=दया, कृपा।

*कबीरदासजी की प्रसिद्ध साखी—"यह तो घर है प्रेम का, खाला का घर नाहि—" पर यह कुण्डलियां रची गई है।

पलटू सुभ दिन सुभ घडी, याद पड़ै जब नाम ।
लगन महूरत झूठ सब, और बिगाड़ैं काम ॥१२॥
सोई सती सराहिए, जरै पिया के साथ ॥
जरै पिया के साथ, सोइ है नारि सयानी ।
रहै चरन चित लाय एक से और न जानी ॥
जगत करै उपहास, पिया का संग न छोड़ै ।
प्रेम की सेज बिछाय, मेहर की चादर ओढ़ै ॥
ऐसी रहनी रहै तजै जो भोग-बिलासा ।
मारै भूख-पियास याद सँग चलती स्वासा ॥
रैन-दिवस बेहोस पिया के रंग में राती ।
तन की सुधि है नाहिं पिया रंग बोलत जाती ॥
पलटू गुरु-परसाद से किया पिया को हाथ ।
सोई सती सराहिये, जरै पिया के साथ ॥१३॥
तुझे पराई क्या परी, अपनी आप निबेर ॥
अपनी आप निबेर, छोड़ि गुड़ विष को खावै ।
कूवाँ में तू परै, और को राह बतावै ॥
औरन को उँजियार, मसालची जाइ अँधेरे ।
त्यों ज्ञानी की बात मया से रहते घेरे ॥
बेचत फिरै कपूर आप तो खारी खावै ।
घर में लागी आग दौरिके घूर बुतावै ॥
पलटू यह साँची कहै, अपने मन का फेर ।
तुझे पराई क्या परी, अपनी ओर निबेर ॥१४॥*

---

१३. बेहोश=सांसारिक सुखों की ओर से अचेत । परसाद=प्रसाद, कृपा । हाथ किया=वश में कर लिया ।

१४. निबेर=सुलझाना, निबटाना । मया=माया । खारी=खड़िया मिट्टी । घूर=कूड़े का ढेर । बुतावै=बुझाता है ।

* कबीरदासजी की साखी—"तुझे पराई क्या परी"—पर यह कुंडलिया रची गई है ।

पलटू नीच से ऊँच भा, नीच कहै ना कोय ॥
नीच कहै ना कोय, गये जब से सरनाई ।
नारा बहिकै मिल्यो गंग में गंग कहाई ॥
पारस के परसंग, लोह से कनक कहावै ।
आगि मँहै जो परै, जरै आगइ होइ जावै ॥
राम का घर है बड़ा, सकल ऐगुन छिपि जाई ।
जैसे तिल को तेल फूल सँग बास बसाई ॥
भजन केर परताप तें, तन मन निर्मल होय ।
पलटू नीच से ऊँच भा, नीच कहै ना कोय ॥१५॥

मन मिहीन कर लीजिये, जब पिउ लागै हाथ ॥
जब पिउ लागै हाथ नीच ह्वै सब से रहना ।
पच्छापच्छी त्यागि ऊँच बानी नहिं कहना ॥
मान बडाई खोय खाक में जीते मिलना ।
गारी कोउ दै जाय छिमाकरि चुपके रहना ॥
सबकी करै तारीफ, आपको छोटा जानै ।
पहिले हाथ उठाय सीस पर सबकी आनै ॥
पलटू सोइ सुहागनी, हीरा झलकै माथ ।
मन मिहीन कर लीजिये जब पिउ लागै हाथ ॥१६॥

पानी काको देइ प्यास से मुवा मुसाफिर ॥
मुवा मुसाफिर प्यास, डोर औ लुटिया पासै ।
बैठ कुवाँ की जगत, जतन बिनु कौन निकासै ॥
आगे भोजन धरा थारि में खाता नाहीं ।
भूख भूख करै सोर, कौन डारै मुखमाहीं ॥

---

१५. नारा=नाला । ऐगुन=अवगुण, दोष ।

१६. मिहीन=क्षीण, सूक्ष्म, अत्यन्त संयत । नीच=नम्र । पच्छापच्छी=अपना पक्ष और दूसरे का पक्ष, वादविवाद । ऊँच बानी=आवेश या क्रोधपूर्ण वाणी । सीस ..... आनै=सिर झुकाकर प्रणाम करे । पिउ लागै हाथ=प्रियतम वश में हो ।

दीया बाती तेल, आगि है नाहिं जरावै।
खसम खोया है पास, खसम को खोजन जावै॥
पलटू डगरा सूध, अटकिकै परता गिर-गिर।
पानी काको देइ प्यास से मुवा मुसाफिर॥१७॥

संत-चरन को छोड़िकै पूजत भूत बैताल॥
पूजत भूत बैताल मुए पर भूतइ होई।
जेकर जहवाँ जीव, अन्त को होवै सोई॥
देव पितर सब झूठ, सकल यह मन की भ्रमना।
यही भरम में पड़ा, लगा है जीवन-मरना॥
देई-देवा सेइ परमपद केहिने पावा।
भैरों दुर्गा सीव बाँधिकैं नरक पठावा॥
पलटू अंत घसीटिहै, चोटी धरि धरि काल।
संत-चरन को छोड़िकै, पूजत भूत बैताल॥१८॥

जैसे नदी एक है, बहुतेरे हैं घाट॥
बहुतेरे हैं घाट, भेद भक्तन में नाना।
जो जेहि संगत परा, ताहिके हाथ बिकाना॥
चाहै जैसी करै भक्ति, सब नामहिं केरी।
जाकी जैसी बूझ, मारग सो तैसी हेरी॥
फेर खाय इक गये, एक ठौ गये सिताबी।
आखिर पहुँचे राह, दिना दस भई खराबी॥
पलटू एकै टेक ना, जेतिक भेष तै बाट।
जैसे नदी एक है बहुतेरे हैं घाट॥१९॥

---

१७. मुआ=मर गया। थारि=थाली। डगरा=रास्ता। सूद=सीधा।

१८. देई=देवी। सीव=शिव। बैताल=इस शब्द का अर्थ भाट या बन्दी होता है, पर यहाँ इसका पयोग प्रेत के अर्थ में हुआ है।

१९. ताहि के हाथ बिकाना=उसी संत-मत का हो गया। बूझ=बुद्धि। हेरी=खोज लिया। फेरि=चक्कर। सिताबी=जल्दी। तै=उतनी।

लेहु परोसिनि झोंपड़ा, नित उठि बाढ़त रार ॥
नित उठि बाढ़त रार, काहिको सरबरि कीजै ।
तजिये ऐसा संग, देस चलि दूसर लीजै ॥
जीवन है दिन चारि, काहे को कीजै रोसा ।
तजिये सब जंजाल, नाम के करौ भरोसा ॥
भीख माँगि बरु खाय, खटपटी नीक न लागै ।
भरी गौन गुड़ तजौ, तहाँ से साँझै भागै ॥
पलटू ऐसन बूझिकै डारि दिहा सिर भार ।
लेहु परोसिनि झोंपड़ा, नित उठि बाढ़त रार ॥२०॥

जल पषान को छोड़िकै पूजौ आतमदेव ।
पूजौ आतमदेव, खाय औ बोलै भाई ।
छाती देकै पाँव पथर की मुरत बनाई ॥
ताहि धोय अन्हवाय बिंजन लै भोग लगाई ।
साच्छात भगवान द्वार से भूखा जाई ॥
काह लिये वैराग, झूठ कै बांधै बाना ।
भाव-भक्ति को मरम कोइ है बिरले जाना ॥
पलटू दोउ कर जोरिकै गुरु संतन को सेव ।
जल पषान को छोड़िकै पूजौ आतमदेव ॥२१॥

झूलना

बोलु हरि-नाम तू छोड़िदे काम सब,
सहज में मुक्ति होइ जाय तेरी ।

---

२०. रार=झगड़ा । सरबरि=बराबरी, सामना । रोसा=रोष, क्रोध । नाम कै=रामनाम का । बरु=चाहे । गौन=खुर्जी, बोरा । साँझै भागै=शाम को ही चलदे, एक रात भी न ठहरे ।

२१. पषान=पाषाण, पत्थर की मूर्तियाँ । जल=गंगा, गोदावरी आदि नदियाँ । बाना=भेष ।

झूलना

१. छोड़िदे काम सब=सारी वासनाओं को त्यागदे । फेरी=चक्कर । बिलम=

दाम लागै नहीं काम यह बड़ा है,
सदा सतसंग में लाउ फेरी ॥
बिलम ना लाइकै डारि सिर भार को,
छोड़ि दे आस संसार केरी ॥
दास पलटू कहै यही सँग जायगा,
बोलु मुख राम यह अरज मेरी ॥१॥

पूरब में राम है पच्छिम खुदाय है,
उत्तर औ दक्खिन कहो कौन रहता ?
साहिब वह कहाँ है, कहाँ फिर नहीं है,
हिन्दू और तुरुक तोफान करता ॥
हिन्दू और तुरक मिलि परे हैं खैंचि में,
आपनी बर्ग दोउ दीन बहता ।
दास पलटू कहै, साहिब सब में रहै,
जुदा ना तनिक, मैं साँच कहता ॥२॥

जाहि तन लगी है सोइ तन जानिहै,
जानिहै वही सतसंग-बासी ।
कोटि औषधि करै बिरह ना जायगा,
जाहि के लगी है बिरहगाँसी ॥
नैन झरना बन्यौ, भूख ना नींद है,
परी हैं गले बिच प्रेम-फाँसी ।
दास पलटू कहै, लगी ना छूटिहै,
सकल संसार मिलि करै हाँसी ॥३॥

होय रजपूत सो चढै मैदान पर,
खेत पर पाँच पच्चीस मारै ।

विलम्ब, देर ।

२. तोफान=झगड़ा । खैंचि=खींचतान ।

३. गाँसी=तीर या बर्छी का फल ।

काम औ क्रोध दुइ दुष्ट ये बड़े हैं,
ज्ञान के धनुष से इन्हैं टारै ॥
कूद परि जायकै कोट काया मँहै,
आगि लगाय के मोह जारै ।
दास पलटू कहै सोइ रजपूत है,
लेहि मन जीति तब आपु हारै ॥४॥

राज तन में करै, भक्ति जागीर लै,
ज्ञान से लरै रजपूत सोई ।
छमा-तलवार से जगत को बसि करै,
प्रेम की जुज्झ मैदान होई ॥
लोभ औ मोह हंकार दल मारिकै,
काम औ क्रोध ना बचैं कोई ।
दास पलटू कहै तिलकधारी सोई,
उदित तिहुं लोक रजपूत सोई ॥५॥

गाय-बजायके काल को काटना,
और की सुनैं कछु आपु कहना ।
हँसना-खेलना बात मीठी कहै,
सकल संसार को बस्सि करना ॥
खाइये-पीजिये मिलैं सो पहिरिये,
संग्रह औ त्याग में नाहिं परना ।
बोलु हरिभजन को मगन ह्वै प्रेम से,
चुप्प जब रह्यौ तब ध्यान धरना ॥६॥

---

४. टारै=मारकर फेकदे । आपु हारै=अपने आपको कुर्बान करदे ।

५. जुज्झ=युद्ध । अहंकार । तिलकधारी=वह राजा जिसे राजतिलक हुआ है । उदित=उजागर ।

६. बस्सि करना=वश में कर लेना । सग्रह औ त्याग में नाहिं परना=संग्रह और त्याग दोनो के ही झगड़े में न पड सहजवृत्ति से रहे ।

सुन्दरी पिया की पिया को खोजती,
भई बेहोस तू पिया कै कै।
बहुत-सी पद्मिनी खोजती मरि गई,
रटत ही पिया पिया एक एकै॥
सती सब होति हैं जरत बिनु आगि से,
कठिन कठोर वह नाहिं झाँकै।
दास पलटू कहै सीस उतारिकै,
सीस पर नाचु जो पिया ताकै॥७॥

पूरब ठाकुरद्वारा पच्छिम मक्का बना,
हिन्दू औ तुरुक दुइ ओर धाया।
पूरब मूरति बनी, पच्छिम में कबुर है,
हिन्दू औ तुरुक सिर पटकि आया॥
मूरति औ कबुर ना बोलै ना खाय कछु,
हिन्दू औ तुरुक तुम कहा पाया।
दास पलटू कहै पाया तिन्ह आपमें,
मूए बैल ने कब घास खाया॥८॥

सील की अवध, सनेह का जनकपुर,
सत्त की जानकी ब्याह कीता।
मनहिं दुलहा बने आपु रघुनाथजी,
ज्ञान के मौर सिर बाँधि लीता॥
प्रेम-बारात जब चली है उँमगिकै,
छिमा बिछाय जनवाँस दीता।

---

७. कै कै=कह-कहकर, रट-रट-कर। पद्मिनी=सुन्दरी स्त्रियाँ, यहाँ जीवात्माओं से आशय है। झाँकै=ध्यान देती है। ताकै=खोजै।

८. कबुर=रसूल की कब्र।

९. कीता=किया। बाँधिलीता=बाँध लिया। मौर=ताड़पत्र और फूलों का मुकुट जिसे वर विवाह में अपने सिरपर पहनता है। जनवाँस=जनवासा, बारात का डेरा। दीता=दिया।

भूप अहंकार के मान को मर्दिकै,
धीरता-धनुष को जाय जीता ॥९॥

बाह्मन तो भये जनेउ को पहिरि कै,
बाह्मनी के गले कुछ नाहि देखा।
आधी सूद्रिनि रहै घरै के बीच में,
करैं, तुम खाहु यह कौन लेखा॥
सेख की सुन्नति से मुसलमानी भई,
सेखानी को नाहि तुम कहौ सेखा।
आधी हिन्दुइन रहै घरै के बीच में,
पलटू अब दुहुन के मारु मेखा ॥१०॥

तुरुक लै मुर्दा को कब्र में गाडते,
हिन्दू लै आग के बीच जारैं।
पूरब वै गये हैं वै पच्छूँ को,
दोऊ बेकूफ ह्वै खाक टारैं॥
वै पूजैं पत्थर को, कबर वै पूजते,
भटकके मुए दै सीस मारैं।
दास पलटू कहै, साहिब है आपमें,
आपनी समझ बिनु दोउ हारैं ॥११॥

सन्तन के बीच में टेढ रहैं,
मठ बांधि संसार रिझावते हैं।
दस बीस सिष्य परमोधि लिया,
सबने वह गोड़ धरावते हैं॥

---

१०. करैं तुम खाहु=वे रसोई बनाती हैं और तुम खाते हो। सुन्नति=खतना; मुसलमानी संस्कार जिसमें मूत्रेन्द्रिय के अग्रभाग का कुछ चमड़ा काट देते हैं। मारु मेखा=खतम करो।

११. पच्छूँ=पश्चिम। मुए दै सीस मारैं=बेजान के आगे माथा टेकते हैं।

१२. टेढ=ऐंठ से। बांधि=बनाकर। परमोधि लिया=प्रबोध करा दिया; ज्ञान की

सन्तन की बानी काटिके, जी।
जोरि-जोरिके आपु बनावते हैं॥
पलटू कोस चारि-चारि के गिर्द में, जी।
सोइ चक्रवर्ती कहलावते हैं॥१२॥

सच्चे साहिब के मिलने को,
मेरा मन लीहा बैराग है, जी।
मोह-निसा में मैं सोइ गई,
चौंक परी उठि जाग है, जी॥
दोउ नैन बने गिरि के झरना,
भूषन बसन किया त्याग है, जी।
पलटू जीयत तन त्यागि दिया,
उठी बिरह की आगि है, जी॥१३॥

साहिब के दास कहाय यारो,
जगत की आस न राखिये, जी।
समरथ स्वामी को जब पाया,
जगत से दीन न भाखिये, जी॥
साहिब के घर में कौन कमी,
किस बात को अंतै आखिये, जी।
पलटू जो दुख सुख लाख परै,
वहि नाम-सुधा-रस चाखिये, जी॥१४॥

घर घर से चुटकी मांगि के, जी।
छुधा को चारा डारि दीजै॥
फूटा इक तुम्बा पास राखो,
ओढन को चादर एक लीजै॥

तुच्छ बातें समझाती। गोड धरावते हैं—पैर पुजाते हैं।

१३ लीहा=लिया, धारण किया।

१४ दीन=दीनता के वचन। अंतै=दूसरी जगह या द्वार पर। आखिये=कहे।

१५ चुटकी=मुट्ठीभर भीख। चारा=दाना। महजित=मस्जिद। पीजै=पीता रहे।

हाट बाट महजित में सोय रहौ,
दिनरात सतसंग का रस पीजै।
पलटू उदास रहौ जक्त सेती,
पहिले बैराग यहि भाँति कीजै ॥१५॥

जब मैं नाहीं, तब वह आया,
मैं, ना वह, यह कौन मानै।
गूँगे ने गुड खाइ लिया,
जबान बिना क्या सिफत आनै।
दरियाव औ लहर तो दोय नाहीं,
समा औ रोसनी कौन छानै।
पलटू भगवान की गती न्यारी,
भगवान की गति भगवान जानै ॥१६॥

अरिल्ल

ऋद्धि सिद्धि से बैर, सन्त दुरियावते।
इन्द्रासन बैकुण्ठ बिष्ठा सम जानते॥
करते अबिरल भक्ति, प्यास हरिनाम की।
अरे हाँ, पलटू संत न चाहैं मुक्ति तुच्छ केहि काम की॥१॥

आगम कहैं न सन्त, भड़ेरिया कहत हैं।
सन्त न औषध देत, बैद यह करत हैं॥
झार फूँक ताबीज ओझा को काम है।
अरे हाँ, पलटू संत रहित परपंच राम को नाम है॥२॥

सेती=ओर से। सिफत आवै=गुण या स्वाद कहे।

१६. समा=शमा, ज्योति। छानै=अलग-अलग करे।

अरिल्ल

१. दुरियावते=ठुकरा देते है। अविरल=सघन, निरंतर।

२. आगम=भविष्य की बातें, होनहार। भडेरिया=भड्डरी। ओझा=सयाना।

करते बट्टा ब्याज कसब है जगत का।
माया में हैं लीन, बहाना भगति का॥
कहीं तनिक नहिं छुई गया बैराग है।
अरे हाँ, पलटू जनमें पूत कपूत लगाया दाग है॥३॥

पगरी धरी उतारि टका छह सात का।
मिला दुसाला आय रुपैया साठ का॥
गोड़ धरे कछु देहि मुँड़ाये मूँड़के।
अरे हाँ, पलटू ऐसा है रुजगार कीजिये ढूँढ़िके॥४॥

मसक्कत ना ह्वै सकी मुँड़ाया मूँड़ तब।
सेंति-मेंति में खाय मिला औसान अब॥
तब नागा ह्वै लिहिन, रहे ना काम के।
अरे हाँ, पलटू मारि-पीटिके खाहिं सो बेटा राम के॥५॥

करामाति नट-खेल अन्त पछितायगा।
चटक-मटक दिन चारि, नरक में जायगा॥
भीर-भार से सन्त भागिके लुकत हैं।
अरे हाँ, पलटू सिद्धाई को देखि सन्तजन थुकत हैं॥६॥

भूलि रहा संसार कांच की झलक में।
बनत लगा दस मास, उजाड़ा पलक में॥
रोवनवाला रोया आपनि दाह से।
अरे हाँ,पलटू सब कोइ छेंके ठाढ, गया किस राह से॥७॥

---

३. कसब=धधा, व्यापार। दाग=कलंक।

४. मुंड के मूँडाये=दीक्षा लेने के समय। गोड़ धरे=पैर पुजाने में। ढूँढ़िके=प्रयत्न करके।

५. ह्वै लिहिन=हो लिये, बन गये।

६. भीरभार=भीड-भाड़। लुकत है=छिपते है। सिद्धाई=करामात दिखाने की कला से तात्पर्य है। थुकत=थूकते है, तुच्छ समझते है।

७. कांचि की झलक=दर्पण में की परछाइँ। छेंके ठाढ=खड़े सब रोके रहे।

कच्चा महल उठाय, कच्चा सब भवन है।
दस दरवाजा बीच झाँकता कवन है॥
कच्ची रैयत बसै, कच्ची सब जून है।
अरे हाँ, पलटू निकरि गया सरदार, सहर अब सून है॥८॥

हाथ गोड़ सब बने, नाहिं अब डोलता।
नाक कान मुख ओहि, नाहि अब बोलता॥
काल लिहिसि अगुवाय, चलै ना जोर है।
अरे हाँ, पलटू निकरि गया असवार, सहर में सोर है॥९॥

आया मूठी बाँधि, पसारे जायगा।
छूछा आवत जात, मार तू खायगा॥
किते बिकरमाजीत साका बाँधि मरि गये।
अरे हाँ, पलटू रामनाम है सार सँदेसा कहि गये॥१०॥

टोप-टोप रस आनि मक्खी मधु लाइया।
इक लै गया निकारि सबै दुख पाइया॥
मोको भा बैराग ओहि को निरखिकै।
अरे हाँ, पलटू माया बुरी बलाय तजा मैं परखिकै॥११॥

फूलन सेज बिछाय महल के रंग में।
अतर फुलेल लगाय सुन्दरी संग में॥
सूते छाती लाय परम आनन्द है।
अरे हाँ, पलटू खबरि पूत को नाहि काल को फन्द है॥१२॥

---

८. जून=पुराना। सरदार=जीव से आशय है। सून=सूना, खाली।

९. सब बने=सब वैसे के वैसे ही है। अगुवाय लिहिसि=आगे करके ले चला।

१०. छूछा=खाली हाथ, विना सत्कर्मों की पूँजी के। बिकरमाजीत=विक्रमादित्य। साका बाँधि=संवत्‌रूपी कीर्ति-स्तंभ खड़ा करके।

११. टोप-टोप=बूँद-बूँद।

१२. सूते छाती लाय=हृदय से लगाकर सोये। पूत=बच्चा; मौज में मस्त मूढ़ मनुष्य से आशय है।

पहिले कबर खुदाय, आसिक तब हूजिये।
सिर पर कप्फन बाँधि, पाँव तब दीजिये॥
आसिक को दिनराति नाहिं है सोवना।
अरे हाँ, पलटू बेदर्दी मासूक दर्द कब खोवना॥१३॥

कडुवा प्याला नाम पिया जो, ना जरै।
देखा-देखी पिवै ज्वान सो भी मरै॥
धर पर सीस न होय, उतारै भुँइ धरै।
अरे हाँ, पलटू छोड़ै तन की आस सरग पर घर करै॥१४॥

देव पित्र दे छोड़ि जगत क्या करैगा।
चला जा सूधी चाल, रोइ सब मरैगा॥
जाति-बरन-कुल खोइ करौ तुम भक्ति को।
अरे हाँ, पलटू कान लीजिये मूँदि, हँसै दे जक्त को॥१५॥

केतिक जुग गये बीति माला के फेरते।
छाला परि गये जीभ राम के टेरते॥
माला दीजे डारि, मनै को फेरना।
अरे हाँ, पलटू मुँह के कहे न मिलै, दिलैं बिच हेरना॥१६॥

तीसो रोजा किया, फिरे सब भटकिकै।
आठों पहर निमाज मुए सिर पटकिकै॥
मक्के में भी गये, कबर में खाक है।
अरे, हाँ पलटू एक नबी का नाम सदा वह पाक है॥१७॥

---

१३. पाव तब दीजिए=तब प्रेम-पथ पर पैर रखे। मासूक=प्रेम-पात्र, प्रियतम।

१४. ज्वान=अभिमानी। धर=धड़; सीस=अहता या खुदी से तात्पर्य है। भुइँ धरे= मिट्टी में मिलादे। सरग=ब्रह्मलोक; अधर।

१५. पित्र=पितर। हँसै दे जक्त को=जगत को हँसने दे, तू पर्वा न कर।

१६. टेरते=पुकारते हुए। मनै को फेरना=मन को ही मोड़ना है विषयों की ओर से। हेरना=ध्यान लगाकर देखना है।

१७. नबी=पैगम्बर। पाक=पवित्र।

डाँड़ी पकरे ज्ञान, छिमा कै सेर है।
सुरत सबद से तौल मनै का फेर है॥
भला-बुरा इक भाव निबाहै ओर है।
अरे हाँ, पलटू सन्तोष की करै दुकान महाजन जोर है॥१८॥

चलती चक्की देखि दिया मैं रोय है।
पीस गया संसार, बचा ना कोय है॥
अधबीचे में परा कोऊ ना निरबहा।
अरे हाँ, पलटू बचिगा कोऊ सन्त जो खूँटे लगि रहा॥१९॥

दुरमति जेहि माँ बसैं ज्ञान हर लेति है।
तुरत करत है नास बड़ा दुख देति है॥
तेजपुंज हर लेय बुद्धि बल भावना।
अरे हाँ, पलटू दुरमति बसै बिलाय गया है रावना॥२०॥

शब्द

चितावनी का अंग

कहवाँ से जिव आये, कहाँ समाने हो, साधो।
का देखि रहेउ भुलाय कहाँ लिपटाने हो, साधो॥
निर्गुन से जिव आये, सर्गुन समाने हो, साधो।
भूलि गये हरिनाम, माया लिपटाने हो, साधो॥

---

१८. डाँढी=तराजू। सेर=एक सेर का बाँट। सुरत=ध्यान, लय। फेर=दुविधा, संकल्प-विकल्प।

१९. निरबहा=साबित बचा। जो खूँटे लगि रहा=चक्की की खूँटी के पास जो अनाज था वह पिसने से बच गया। इसी प्रकार भगवान् के चरणों की शरण जिसने पकड़ली वह माया के चक्कर से बच गया।

२०. दुरमति=कुबुद्धि। बिलाय गया है रावना=रावण-जैसे प्रतापी राजा का भी नाम-निशान न रहा।

चितावनी का अंग

१. सर्गुन=सगुण। कौनिक=किस द्वार से। आलहि=ताजे या गीले। डँडिया=

आठ काठ कै पिंजरा, दस दरवाजा हो, साधो।
कौनिक निकस्या प्रान, कौन दिसि भागा हो, साधो॥
रोवत घर की नारि केस-लट खोले हो, साधो।
आज मंदिर भयो सून, कहाँ गये राजा हो, साधो॥
आलहि बाँस कटाइन डँडिया फँदाइन हो, साधो।
पाँच पचीस बराती लेइ सब धाये हो, साधो॥
तीरे दिहिन उतारि, सकल नहवावैं हो, साधो।
करि सोरहो सिंगार, सबै जुरि आये हो, साधो॥
आलहि चँदन कटाइन, घेरि घर छाइन हो साधो।
लोग कुटुँम परिवार, दिहिन पहुड़ाई हो, साधो॥
लाइ दिहिन मुख आगि, काठ करि भारा हो, साधो।
पुत्र लिये कर बांस सीस गहि मारा हो, साधो॥
चहुं दिसि पवन झकोरै तरवर डोलै हो, साधो।
सूझत वार न पार, कौन दिसि जाना हो, साधो॥
हियवाँ नहिं कोइ आपन, जे से मैं बोलौं हो, साधो।
जस पुरइन कर पात अकेला मैं डोलौं हो, साधो॥
बिष बोयों संसार, अमृत कैसे पावौं हो, साधो।
पुरब जनम कर पाप दोस केहि लावौं हो, साधो॥
भौसागर की नदिया, पार कैसे पावौं हो, साधो।
गुरु बैठे मुख मोड़, मैं केहि गोहरावौं हो, साधो॥
जेहि बैरिन कर मूल ताहि हित मान्यो हो, साधो।
पलटूदास गुरु-ज्ञान सुनत अलगान्यो हो, साधो॥१॥
पाती आई मोरे पीतम की, साईं तुरत बुलायो हो॥
इक अँधियारा कोठरी, दूजे दिया न बाती।
बाँह पकरि जम ले चले, कोइ संग न साथी॥

अर्थी। बराती=मुर्दा को ले जानेवाले। घर छाइन=चिता बनादी। पहुडाइ दिहिन=चिता पर लिटा दिया। हियवाँ=यहाँ; यमलोक में। पुरइन=कमल का पत्ता। गुहरावौं=पुकारूँ। अलगान्यो=मुक्त हो गया।

सावन को अँधियरिया, भादौं निज राती।
चौमुख पवन झकोरही, धड़कै मोरि छाती॥
चलना तौ हमें जरूर है, रहना यहँ नाहीं।
का लैके मिलब हजूर से, गाँठी कछु नाहीं॥
पलटूदास जग आयके, नैनन भरि रोया।
जीवन जनम गँवायके, आपै से खोया॥२॥

कै दिन का तोरा जियना रे, नर चेतु गँवार॥
काची माटि कै घैला हो, फूटत नहिं बेर।
पानी बीच बतासा हो, लागै गलत न देर॥
धूआँ कौ धौरेहर हो, बारू कै भीत।
पवन लगे झरि जैहै हो, तृन ऊपर सीत॥
जस कागद कै कलई हो, पाका फल डार।
सपने कै सुख संपति हो, ऐसो संसार॥
घने बाँस का पिंजरा हो, तेहि बिच दस हो द्वार।
पछी पवन बसेरू हो, लावै उड़त न बार॥
आतसबाजी यह तन हो, हाथे काल के आग।
पलटूदास उडि जैवहु हो, जब देइहि दाग॥३॥

बिरह का अंग

जेकरे अँगने नौरँगिया, सो कैसे सोवै हो।
लहर लहर बहु होय, सबद सुनि रोवै हो॥
जेकर पिय परदेस, नींद नहि आवै हो।
चौंकि-चौंकि उठै जागि, सेज नहि भावै हो॥

---

२. निजराती=घोर अँधेरी रात। हजूर=स्वामी।

३. जियना=जीवन। घैला=घड़ा। बतासा=बुलबुला। धौरेहर=मीनार। सीत=सीथ, पके हुए अन्न का दाना। दाग देइहि=आग लगा देगा।

बिरह का अंग

१. नौरंगिया=परम विरहासक्ति। अमी=अमृत। अभरन=आभरण, गहने। देहु

रैन-दिवस मारै बान, पपीहा बोलै हो।
पिय पिय लावै सोर, सवति होइ डोलै हो॥
बिरहिन रहै अकेल, सो कैसेकै जीवै हो।
जेकरे अमी कै चाह, जहर कस पीवै हो॥
अभरन देहु बहाय, बसन धै फारौ हो।
पिय बिन कौन सिंगार, सोस दै मारौ हो॥
भूख न लागै नींद, बिरह हिये करकै हो।
माँग सेंदुर मसि पोंछ, नैन जल ढरकै हो॥
केकहैं करै सिंगार, सो काहि दिखावै हो।
जेकर पिय परदेस, सो काहि रिझावै हो।
रहै चरन चित लाइ, सोइ धन आगर हो।
पलटूदास कै सबद, बिरह कै सागर हो॥१॥

अब तो मैं बैरागभरी, सोवत से मैं जागि परी॥
नैन बने गिरि के झरना ज्यों, मुख से निकरै हरी हरी॥
अभरन तोरि बसन धै फारौं, पापी जिव नहिं जात मरी॥
लेउँ उसास सीस दै मारौं, अगिनि बिना मैं जाऊँ जरी॥
नागिनि बिरह डसत है मोको, जात न मोसे धीर धरी॥
सतगुरु आइ किहिन बैदाई, सिर पर जादू तुरत करी॥
पलटूदास दिया उन मोको, नाम सजीवन मूल जरी॥२॥

प्रेमबान जोगी मारल हो, कसकै हिया मोर॥
जोगिया कै लालि लालि अँखियाँ हो, जस कँवल कै फूल।
हमरी सुरुख चुनरिया हो, दूनों भये तूल॥

बहाय=फेंकदो। करकै=झमकता है, रह-रहकर पीडा देता है। मसि=अंजन, काजल। आगर=चतुर।

२. बैदाई=वैद्यक, रोग का उपचार।

३. चुनरिया=लाल रँगी साडी जिसके बीच में थोडी-थोड़ी दूर पर बुँदकियाँ होती है। तूल=तुल्य, एकसमान। मृगछलवा=मृगछाला, मृगचर्म। गुदरिया=गुदड़ी,

जोगिया कैं लेउँ मिगछलवा हो, आपन पट चीर।
दूनौं कै सियब गुदरिया हो, होइ जाब फकीर॥
गगना में सिंगिया बजाइन्हि हो, ताकिन्हि मोरी ओर।
चितवन में मन हर लियो हो, जोगिया बड़ चोर॥
गंग-जमुन के बिचवाँ हो, बहै झिरहिर नीर।
तेहिं ठैयाँ जोरल सनेहिया हो, हरि ले गयो पीर॥
जोगिया अमर मरै नहिं हो, पुजवल मोरी आस।
करम लिखा बर पावल हो, गावै पलटूदास॥३॥

प्रेम का अंग

जल औ मीन समान, गुरु से प्रीति जो कीजै॥
जल से बिछुरै तनिक एक जो, छोड़ि देति है प्रान।
मीन कँहै लै छीर में राखै, जल बिनु है हैरान॥
जो कछु है सो मीन के जल है, उहिके हाथ बिकान।
पलटूदास प्रीति करै ऐसी, प्रीति सोइ परमान॥१॥

उपदेश का अंग

मितऊ देहला न जगाय, निंदिया बैरिन भैली॥
की तो जागै रोगी, की चाकर की चोर।
की तो जागै संत बिरहिया, भजन गुरू कै होय॥
स्वारथ लाय सभै मिलि जागैं, बिन स्वारथ ना कोय।
परस्वारथ को वह नर जागै, किरपा गुरु की होय॥

कंथा। सिंगिया=तुरही, सींग का बाजा, जिसे योगीजन फूंककर बजाते हैं। गगना में=भँवरगुफा में। गंग जमुन के बिचवाँ=पिंगला और इडा नाडियों के बीच सुषुम्ना नाड़ी; इसीसे होकर कुंडलिनी शक्ति ऊपर की ओर प्रवाहित होती है। इन तीनों नाड़ियों का ब्रह्मरंध्र में संगम हुआ है, जिसे योगी प्रयाग कहते हैं। ठइयाँ=स्थान। जोरल=जोडा। पुजवल=पूरी की।

प्रेम का अंग

१. कँहै=को। परमान=प्रमाणरूप, सत्य।

उपदेश का अंग

१. मितऊ=मित्र ने, प्रियतम ने। देहला न जगाय=जगा न दिया, चेताया नहीं।

जागे से परलोक बनतु है, सोये बड़ दुख होय ॥
ज्ञान-खरग लिये पलटू जागै, होनी होय सो सोय ॥१॥

को खोलै कपट-किवरिया हो, बिन सतगुरु साहिब ॥
नैहर में कछु गुन नहिं सीख्यो, ससुरे में भई फुहरिया हो
अपने मन को कुलवंती, छुए न पावै गगरिया हो ॥
पाँच पचीस रहै घंट भीतर, कौन बतावै डगरिया हो ।
पलटूदास छोड़ि कुल जतिया, सतगुरु मिले सँघतिया हो ॥२॥

साहिब से परदा का कीजै, भरि-भरि नैन निरखि लीजै ॥
नाचै चली घूँघट क्यों काढ़ै, मुख से अंचल टारि दीजै ॥
सती होय का सगुन बिचारै, कहि के माहुर क्या पीजै ॥
लोक-बेद तन-मन की डर है, प्रेम-रंग में क्या भीजै ॥
पलटूदास होय मरजीवा, लेहि रतन नहिं तन छीजै ॥३॥

चलहु सखी वहि देस, जहवाँ दिवस न रजनी ॥
पाप पुन्न नहिं चाँद सुरज नहिं, नहीं सजन नहिं सजनी ॥
धरती आग पवन नहिं पानी, नहिं सूतै नहिं जगनी ॥
लोक बेद जंगल नहिं बस्ती, नहिं संग्रह नहिं त्यगनी ॥
पलटूदास गुरू नहिं चेला, एक राम रम रमनी ॥४॥

वाचक ज्ञान का अंग

वाचक ज्ञान न नीका ज्ञानी, ज्यों कारिख का टीका ॥
बिनु पूँजी को साहु कहावै, कौड़ी घर में नाहीं ।
ज्यों चोकर कै लड्डू खावै, का सवाद तेहि माहीं ॥

बिरहिया=बिरही । लाय=के लिए ।

२. फुहरिया=फूहड, अनाडिन । डगरिया=डगर, रास्ता । जतिया=जात-गोत । सँघतिया=साथी ।

३. माहुर=जहर । सूतै=सोना ।

४. त्यगनी=त्याग । रमनी=जीवात्मा से तात्पर्य है ।

वाचक ज्ञान का अंग

१. वाचक=शाब्दिक, कथनीमात्र । सुवान=श्वान, कुत्ता । अहमक=मूर्ख । अमल=

ज्यों सुवान कुछ देखिकै भूँकै, तिसने तो कछु पाई ।
वाकी भूँक सुने जो भूँकै, सो अहमक कहवाई ॥
बातन सेती नहीं होइ राजा, नहिं बातन गढ़ टूटै ।
मुलुक मँहै तब अमल होइगा, तीर तुपक जब छूटै ॥
बातन से पकवान बनावै, पेट भरै नहिं कोई ।
पलटूदास करै सोइ कहना, कहे सेती क्या होई ॥१॥

मिश्रित शब्द

जहाँ कुमति कै बासा है, सुख सपनेहुँ नाहीं ॥
फोरि देति घर मोर तोर करि, देखै आपु तमासा है ॥
कलह काल दिन रात लगावै, करै जगत उपहासा है ॥
निर्धन करै खाये बिनु मारै, अछत अन्न उपवासा है ॥
पलटूदास कुमति है भौंड़ी, लोक परलोक दोउ नासा है ॥१॥
है कोइ सखिया सयानी, चलै पनिघटवा पानी ॥
सतगुरु घाट गहिर बड़ा सागर, मारग है मोरी जानी ।
लेजुरो सुरति सबद कै घैलन, भरहु तजहु कुलकानी ॥
निहुरिके भरै घयल नहिं फूटै, सो धन प्रेम-दिवानी ।
चाँद सुरुज दोउ अंचल सोहैं, बेसर लट अरुझानी ॥
चाल चलै जस मैगर हाथी, आठ पहर मस्तानी ।
पलटूदास झमकि भरि आनी, लोक-लाज ना मानी ॥२॥
माया तू जगत पियारी वे, हमरे काम की नाहीं ।
द्वारे से दूर हो लंडी रे, पइठु न घर के माहीं ॥

अधिकार ।

मिश्रित शब्द

१. फोरिदेति=फूट डाल देती है । कलहकाल=झगडा । अछत=होते हुए । भौंडी=दुष्ट ।

२. लेजुरो=रस्सी । घैलन=घडों से । निहुरिके=शील और विनय के साथ । चाँद सुरुज=इडा और पिंगला नाडी से आशय है । बेसर=सुषुम्ना नाडी से आशय है । मैगर=मतवाला । झमकि=उमंग से ठमककर ।

माया आपु खड़ी भइ आगे, नैनन काजर लाये।
नाचै गावै भाव बतावैं, मोतिन मांग भराये॥
रोवै माया खाय पछारा, तनिक न गाफिल पाऊँ।
जब देखौं तब ज्ञान ध्यान में, कैसे मारि गिराऊँ॥
ऋद्धि सिद्धि दोउ कनक समाजी, बिस्नु डिगन को भेजा।
तीन लोक में अमल तुम्हारा, यह घर लगै न तेजा॥
तू क्या माया मोहिं नचावै, मैं हौं बड़ा नचनियाँ।
इहवाँ बानिक लगै न तेरी, मैं हौं पलटू बनियाँ॥३॥
पाप के मोटरी बाह्मन भाई, इन सबही जग को बगदाई।
साइत सोधिकै गाँव बेढावैं, खेत चढायकै मूँड़ कटावैं।
रास वर्ग गन मूर को गाडी, घर कै बिटिया चौकै राँड़ी।
और सभन को गरह बतावैं, अपने गरह को नाहिं छुड़ावैं।
मुक्ति के हेतु इन्हें जग मानै, अपनी मुक्ति कै मरम न जानै।
औरन को कहते कल्यान, दुख माँ आपु रहैं हैरान।
दूध-पूत औरन को देते, आप जो घर-घर भिच्छा लेते।
पलटूदास की बात को बूझै, अन्धा होय तेहुको सूझै॥४॥

साखी

गुरु का अंग

पलटू ऐना संत है, सब देखैं तेहि माहिं।
टेढ़ सोझ मुँह आपना, ऐना टेढ़ा नाहिं॥१॥

---

३. लंडी=लौंडी। लाए=लगाए हुए। डिगन=डिगाने व फँसाने को। तेजा=जोर। बानिक=दावँ।

४. बगदाई=भ्रम मे डालकर बरबाद कर दिया। बिढावै=नाश करे। रास ..... राँडी=राशि, वर्ग, गण और मूल से जन्मपत्री को मिलाकर विवाह कराते है, पर कहाँ गया उनका ज्योतिष जब कि मण्डप के नीचे ही उनकी लड़की विधवा हो जाती है? गरह=ग्रह।

साखी

१. ऐना=आईना, दर्पण। सोझ=सीधा।

जो दिन गया सो जान दे, मूरख अबहूँ चेत।
कहता पलटूदास है, करिले हरि से हेत ॥२॥
पलटू नर-तन जातु है, सुन्दर सुभग सरीर।
सेवा कीजै साध की, भजि लीजै रघुबीर ॥३॥
पलटू ऐसी प्रीति करु, ज्यों मजीठ को रंग।
टूक-टूक कपड़ा उड़ै, रंग न छोड़ै संग ॥४॥
पलटू बाजी लाइहौं, दोऊ बिधि से राम।
जो मैं हारौं राम को, जो जीतौं तौ राम ॥५॥
लगा जिकर का बान है, फिकर भई छैकार।
पुरजे-पुरजे उड़ि गया, पलटू जीति हमार ॥६॥
बखतर पहिरे प्रेम का, घोड़ा है गुरुज्ञान।
पलटू सुरति कमान लै, जीति चले मैदान ॥७॥
सोइ सिपाही मरद है, जग में पलटूदास।
मन मारै सिर गिरि पड़ै, तन की करै न आस ॥८॥
पलटू हरिजन मिलन को, चलि जइये इक धाप।
हरिजन आये घर महैं, तो आये हरि आप ॥९॥
पलटू तीरथ को चला, बीच मां मिलिगे संत।
एक मुक्ति के खोजने, मिलि गइ मुक्ति अनंत ॥१०॥
सीस नवावै संत को, सीस बखानौं सोय।
पलटू जे सिर ना नवै, बेहतर कद्दू होय ॥११॥

---

४. मजीठ=पक्का लाल रंग।

५. लाइहौं=लगाऊँगा।

६. जिकर=नाम-स्मरण, सुरति, लय। छैकार=नष्ट।

७. बख्तर=कवच। कमान=धनुष।

९. धाप=टप्पा, एक साँस में जितना लम्बा दौड़ा जा सके; उमंग से उतावला होकर।

११. बखानौं=असल में उसीको कहता हूँ। कद्दू=कुम्हड़ा।

सुनिलो पलटू भेद यह, हँसि बोले भगवान ।
दुख के भीतर मुक्ति है, सुख में नरक निदान ॥१२॥
बिन खोजे से ना मिलै, लाख करै जो कोय ।
पलटू दूध से दही भा, मथिबे से घिव होय ॥१३॥
गारी आई एक से, पलटे भई अनेक ।
जो पलटू पलटै नहीं, रहै एक की एक ॥१४॥
जल पषान के पूजते, सरा न एकौ काम ।
पलटू तन करु देहरा, मन करु सालिगराम ॥१५॥
वृच्छा फरैं न आपको, नदी न अँचवै नीर ।
परस्वारथ के कारने, संतन धरैं सरीर ॥१६॥
बड़े बड़ाई में भुले, छोटे हैं सिरदार ।
पलटू मीठो कूप-जल, समुँद पड़ा है खार ॥१७॥
सब तीरथ में खोजिया, गहरी बुड़की मार ।
पलटू जल के बीच में, किन पाया करतार ॥१८॥
पलटू जहवाँ दो अमल, रैयत होय उजाड़ ।
इक घर में दस देवता, क्योंकर बसै बजार ॥१९॥
हिन्दू पूजै देवखरा, मुसलमान महजीद ।
पलटू पूजै बोलता, जो खाय दीद बरदीद ॥२०॥
कमर बाँधि खोजन चले, पलटू फिरै उदेस ।
षट दरसन सब पचि मुए, कोउ न कहा सँदेस ॥२१॥
खोजत गठरी लाल की, नहीं गाँठि में दाम ।
लोक-लाज तोड़ै नहीं, पलटू चाहै राम ॥२२॥

---

१५. देहरा=देव-मदिर । सरा=पूरा होय ।

१६. अँचवै=पीती है ।

१८. बुडकी=डुबकी ।

१९. अमल=शासन, राज ।

२०. देवखरा=देवालय । दीद बरदीद=नजर के सामने ।

२१ षटदरसन=छह शास्त्र ।

तुलसी साहब

चोला-परिचय

जन्म-संवत्—१८१७ वि० (मतान्तर से संवत् १८४५)

जन्म-स्थान—अज्ञात

सत्संग-संवत्—हाथरस (उत्तर) के समीप जोगिया गाँव

भेष— विरक्त

मृत्यु-स्थान—१८९९ वि० (मतान्तर से सं० १९००, जेठ सुदी २)

तुलसी साहब का परिचय निश्चित रूप से कुछ भी नही मिलता है। इतना ही पता चलता है कि हाथरस के आसपास और दूर-दूर भी एक काला कंबल ओढे और हाथ मे डंडा लिये यह चले जाया करते थे। यह एक अलमस्त पहुँचे संत थे।

इनके जीवन-परिचय के संबध मे यह कथा प्रचलित है कि पूना के पेशवा बाजीराव द्वितीय के यह बडे भाई थे, और नाम इनका श्यामराव था। किन्तु वैराग्य का ऐसा गाढा रंग चढा कि पेशवाई का लोभ छोडकर फकीरी का बाना ले लिया, और हाथरस मे जाकर बैठ गये। यह भी कहा जाता है कि जब बाजीराव द्वितीय को सं० १८७६ मे गद्दी से उतारकर बिठूर भेज दिया गया था, तब ४२ बरस बाद तुलसी साहब उनसे वहाँ जाकर मिले थे।

किन्तु इस कथा या प्रवाद के पीछे कोई ऐतिहासिक पुष्ट प्रमाण नही मिलता। बाजीराव के बडे भाई का उल्लेख इतिहास-ग्रन्थों मे अमृतराव के नाम से किया गया है, श्यामराम के नाम मे नही। यह अमृतराव भी असल मे रघुनाथराव पेशवा के दत्तक पुत्र थे।

तुलसी साहब के पूर्वजन्म की भी कथा इनकी 'घट रामायन' मे मिलती है। उसके अनुसार पूर्वजन्म मे 'रामचरित मानस' के रचयिता गोसाई तुलसीदास यही थे। लिखा है कि 'घट रामायन' का लिखना इन्होने संवत् १६१८ को आरम्भ किया था। पर उसमे प्रकट किये

गये इनके विचारो को तब काशी के पडितो ने पसद नही किया, और इनका भारी विरोध हुआ, इसलिए इन्होने घट रामायन' को तब गुप्त कर दिया, और साधारण जनता के लिए 'रामचरित-मानस' रच दिया।

मालूम यह होता है कि तुलसी साहब के किसी 'बेहद भक्ति' से प्रेरित अनुयायी ने 'घट रामायन' मे इस विचित्र कथा को पीछे से जोड़ दिया है। क्षेपक-जोडको के लिए ऐसा करना बहुत सहज है।

अपने रचे 'रत्नसागर' मे कलियुग के प्रभाव का वर्णन करते हुए स्वय तुलसी साहब ने गोसाई तुलसीदास की रामायण को प्रमाण माना है। उन्होने कहा है —

'बडा कलूजुग सब कहै सत वचन के मायँ ।
रामायन के बाक मे तुलसी कही बनाय ।।'

प्रमाणरूप मे उन्होने तुलसी-कृत रामायण (रामचरित-मानस) मे मे इस चौपाई को और इस दोहे को थोड-से पाठ-भेद के साथ वहाँ उद्धृत भी किया है :—

'कलिकर एक पुन्न परतापू। मानस पुन्न होय नहि पापू ।।'
(शुद्ध पाठ—कलिकर एक पुनीत प्रतापा। मानस पुन्न होहि नहि पापा ।।)

'कलिजुग सम नहि आन जुग, जो नर करै विश्वास ।
नाम डारि गहि भव तरै, जा मन तुलसीदास ।।'
(शुद्ध पाठ--कलिजुग सम जुग आन नहि, जो करै नर विश्वास ।)
गाइ रामगुनगन विमल, भव तर बिनहि प्रयास ।।)

समझ मे नही आता कि इस प्रकार की विचित्र कथाओ और क्षेपकों को जोडकर भक्त अनुयायियों को आखिर क्या लाभ होता है।

तुलसी साहब एक ऊँची रहनी के सत थे, भगवद्विरह और भगवत्प्रेम मे हर हमेश मस्त रहनेवाले। शब्दयोग के गहरे साधक थे। स्वभाव के बड़े फक्कड थे।

कहते है कि एक बार आप घूमते हुए एक धनाढ्य के दरवाजे पर पहुँचे। उसने बडा सत्कार किया, और हाथ जोडकर प्रार्थना की कि, मुझे दया करके एक पुत्र बख्शा जाय। तुलसी साहब ने अपना सोंटा उठाया

और यह कहते हुए चल दिये कि 'संतो की दया तो यह है कि अगर उनके दास की औलाद मौजूद भी हो तो उसे उठाले, और अपने दास को निर्बन्ध करदें।'

तुलसी साहब का कोई गुरु नही था। पर सद्गुरु की तलाश मे अथवा कहना चाहिए कि सद्गुरुरूप अपने 'स्वरूप' की ही तलाश मे वे विरहातुर रहा करते थे, जैसा कि उनकी इस कड़ी से प्रकट होता है—

मिलै कोइ संत फिरौ तेहि लारे।'

बानी-परिचय

तुलसी साहब के रचनाओ के रूप मे तीन ग्रन्थ मिले है – 'घट रामायन' 'रत्न सागर' और 'शब्दावली'। ये तीनो ही ग्रन्थ बेलवेडियर प्रेस, प्रयाग से प्रकाशित हुए है। प्रस्तुत ग्रन्थ मे हमने 'शब्दावली' मे से इनके कुछ मधुर पदो का संकलन किया है। कुछ दोहे 'रत्न सागर' मे से भी लिये है। तुलसी साहब की अति सरस रचना 'शब्दावली' मे ही मिलती है। ऐसी सरसता न 'घट रामायन' मे मिलती है, न 'रत्न सागर' मे ही। कभी-कभी तो पढ़ते-पढते यहाँतक लगने लगता है कि कहीं ये कृतियाँ दो भिन्न संतों की रची तो नही है। पर ऐसी बात असल में है नही। 'घट रामायन' और 'रत्न सागर' मे रूपको और संवादों द्वारा वेदान्त और योग का जिस शैली मे निरूपण किया गया है, वह स्वभावत. वैसी सरस हो नहीं सकती। अन्य अनेक संतो और कवियों की रचनाओ मे भी बहुधा इसी प्रकार का अंतर देखा गया है। मुक्तक पदों मे जहाँ रस-व्यंजना का मुक्त क्षेत्र कवि को मिलता है तहाँ प्रबन्धात्मक रूपको और संवादात्मक निरूपणो से रस की धारा स्वत: अवरुद्ध-सी हो जाती है। विरह और प्रेम के पद इनके बडे ही मर्मभरे और सरस है, वहाँ की जगमग ज्योति का और मुरली की अनहद तान का वर्णन बडा ही सरस इन्होंने किया है।

रेखते, गजले, अरिल, कुंडलियाँ, झूलने, सवैये, कवित्त, लावनी, पश्तो आदि कितने ही छन्दों में तुलसी साहब ने सरस रचना की है। पद तो अनेक रागों में है ही।

भाषा मीठी और जोरदार है। फ़ारसी शब्दो का भी इन्होने कितने ही पदों और दूसरे छदों के बहुलता से प्रयोग किया है।

आधार

१ तुलसी साहब की शब्दावली—बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद
२ घट रामायन (दोनो भाग)— " "
३ रत्न-सागर— " "
४ उत्तरी भारत की सत-परम्परा—परशुराम चतुर्वेदी, भारती भडार, इलाहाबाद

तुलसी साहब

शब्द

कोइ सतगुर देव री बताइ, चरन गहूँ ताहिके ॥
चहुँ दिसि ढँूढि फिरी कोइ भेदी, पूछत हौं गुहराइ।
उनसे कहूँ बिथा सब अपनी, केहि बिधि जीव जुड़ाइ ॥
जो कोइ सखी सुहागिन होवै, कहे तन तपन बुझाइ।
पिउ की खोज खबर कहे मोसे, मरूँ री विकल कर हाइ ॥
जो न्यामत दुनिया दौलत की, सो सब देउँ बहाइ।
बारम्बार वार तन डारूँ, यह कहा मोल बिकाइ ॥
बिन स्वामी सिंगार सुहागिन, लानत तोबा ताइ।
पिय बिन सेज बिछाय ऐसी, नारि मरै विष खाइ ॥
सतगुरु बिरहिन बान कलेजे, रोवै औ चिल्लाइ।
हाय हाय हिये में निसबासर, हरदम पोर पिराइ ॥
इह झुँड में कोइ पाक पियारी, पिया-दुलारी आहि।
मैं देखिया हौं दर्द-दिवानी, प्रीतम-दरस लखाहि ॥

शब्द

१. गुहराइ=पुकारकर। जुडाइ=ठंडा हो, शान्ति मिले। लानत=धिक्कार। तोबा=तौबः; यहाँ पर घृणा प्रकट करने के अर्थ में प्रयोग हुआ है। ताइ=उसको। पिराइ=कसकती है। पाक=पवित्र, सती।

तुलसी प्यास तौ बुझै प्यार से, चढ़ घर अधर समाइ ।
किरपावंत संत समझावैं, और न लगै उपाइ ॥१॥
प्यारे पिया पैहौं कौने भेस, मैं तो हारी ढूँढ़ि सारा देस ।
जोग-जुगति जोगी ठगे, ब्रह्मा विस्नु महेस ।
बेद-बिधी बंधन भये, देव मुनी औ सेस ॥
ब्रह्मचार बैराग लौ, संन्यासी दुरवेस ।
परमहंस बेदांत को पढ़ि भाषत ब्रह्म नरेस ॥
तीरथ बरत अन्हान को, चार बरन परवेस ।
काल करम करता करै, बाँधे जम धर केस ॥
जगत-जाल-जंजाल से, कोइ नहि पावत पेस ।
मैं सतगुर सरना लिया, तुलसी सकल तजि ऐस ॥२॥

ग़ज़ल

तेरा है यार तेरे तन के माईं ।
कहते सब संत साध सास्तर भाई ॥
पूजन आतम आदि सबने गाई ।
भूखे को देख दीन देना जाई ॥
तुलसी यह तत्त मत्त चीन्हे नाहीं ।
चीन्हे जिन भेद पाइ बूझे साईं ॥१॥
ऐ बेहोस प्यारे, तैं यार बिसारा ।
खिलकत का खेल जान सबै झूठ पसारा ॥
इक पल में फना होत देख जक्त असारा ।
यह नैनों से देख तेरा को है प्यारा ॥

---

२. दुरवेस=दरवेश, फकीर । परवेस=प्रवेश ; अधिकार । नरेस=त्रिलोक के नाथ से आशय है । धर केस=चोटी पकड़कर । पावत पेस=जीत सकता है । ऐस=ऐश, भोग-विलास ।

गजल

१. माईं=अन्दर । सास्तर=शास्त्र । मत्त=मत, सिद्धान्त । बूझे=समझ लिया ।
२. यार=प्रियतम, परमात्मा । खिलकत=सृष्टि । फना=नष्ट । सेल=बरछा, भाला ।

तेरी तू आदि देख कहाँ से आया।
उस यार को बिसारके लौ कहँको लाया ॥
हमने दिल बीच यार अंदर पाया।
उस बिरहिन के तन में रोम-रोम में छाया ॥
वह मरती बेहाल पिया पिया पुकारै।
तन मन में नहीं होस नहीं बदन निहारैं ॥
ऐसी बेहोस सूल सहै कटारी।
जैसैं तन बीच सेल तेगा मारी ॥
ऐसी बिरहिन के बीच बिरह सँवारी।
सोई बिरहिन तो लगी पिउ को प्यारी ॥
जिसका यह हाल सोई अधर सिधारी।
तुलसी सो नारि भई जग से न्यारी ॥२॥

कुण्डलिया

सतगुर दीनदयाल बिन, जुग-जुग मारे जायँ ॥
जुग-जुग मारे जाँय, खायँ फिर जम की लाती।
ऐसे मूरख लोग, चलैं वाही के साथी ॥
सुन-सुन कथा पुरान जानकर जनम बिगारा।
सिम्रित सास्तर बेद काल ने किया पसारा ॥
तुलसी सतसँग संत बिन फिर-फिर खेही खायँ।
सतगुर दीनदयाल बिन, जुग-जुग मारे जायँ ॥१॥
जग जग कहते जुग भये, जगा न एको बार।
जगा न एको बार, सार कहु कैसे पावै।
सोवत जुग-जुग भये, संत बिन कौन जगावै ॥

तेगा=खाडा। अधर=विना आधार का स्थान, शून्य पद ; निर्विकल्प समाधि की अवस्था। न्यारी=निराली ; अलौकिक।

कुण्डलिया

१. लाती=लात, ठोकर। सिम्रित=स्मृति, धर्मशास्त्र। खेही खाय=धूल चाटते हैं।

पड़े भरम के माहिं बंद से कौन छुड़ावै।
जो कोइ कहै बिबेक ताहि की नेक न भावै ॥
तुलसी पंडित भेष से सब भूला संसार।
जग जग कहते जुग भये, जगा न एको बार ॥२॥
तन पाये तत ना लखा, चखा न गुरपद-सार।
चखा न गुरपद सार, पार कहु कैसे पावैं।
जम के हाथ बिकाय, लिये चौरासी धावैं ॥
जुग-जुग भरमत जाय, काल से बाजी हारा।
ऐसा जगत अचेत भरम में किया पसारा ॥
तुलसी सतगुर संत बिन करम न काटनहार।
तन पाये तत ना लखा, चखा न गुरपद सार ॥३॥

झूलना

अरे, देख निहार बजार है रे, जगबीच न काम कोइ आवता है ॥
सुत मात पिता नर नार त्रिया, देख अंत कोउ संग न जावता है ॥
तुलसी बिचार जमफाँस है रे, बिधि बाँधिके काल चबावता है ॥१॥
हाय हाय जहान में मौत बुरी, काल जाल से रहन नहिं पावता है ॥
दिन चार संसार में कार करले, फिर जालके खाक मिलावता है ॥
तुलसी कर ख्वाब का ज्वाब दूरी, लख लाभ जो यार को पावता है ॥२॥
अरे, देख निहार बिचार करो, जग-जार न पार कोई पावता है ॥
भवकूप असार को पार किया, भ्रम-भूल के भार उठावता है ॥
तुलसी को जानके सूक्ष्म परा, सोइ आदि अनादि को गावता है ॥३॥

---

२. जग जग=जाग, जाग। बंद=बंधन। भेष=बाहर का रूप और आचार।

३. तत=तत्व, आत्मस्वरूप।

झूलना

१. बिधि बाँधिके=मौका पाकर।

२. रहन नहि पावता है=छूट नहीं सकता। कार=काम। जालके=जलाकर। ज्वाब=जवाब।

३. जार=जाल।

लावनी

पिया दरस बिना दीदार दरद दुख भारी ।
बिना सतगुरु के धृग जीवन संसारी ॥
क्या जनम लिया जगमाहिं मूल नहिं जाना ।
पूरनपद को छाँड़ि किया जुलमाना ।
जुग-जुग में जीवन-मरन, आज नरदेही ।
सुख-संपति में पारपुरुष नहिं सेई ॥
जग में रहना दिन चार बहुरि मरना री ।
बिना सतगुरु के धृग जीवन संसारी ॥१॥

यह नरतन दुरलभ माहिं हाय नहिं लाई ।
जाले अँखियों में पड़े करम दुखदाई ॥
पिया है हरदम हिये माँहिं परख नहि पाई ।
बिन सतगुरु के कौन कहै दरसाई ॥
खोजत रही री दिनरात ढूँढ़कर हारी ।
बिन सतगुरु के धृग जीवन संसारी ॥२॥

अरी, यह मट्टी तन-साज, समझ, बिनसैगा ।
छिन में छूटै बदन काल गिरसैगा ॥
आसा-बंधन जग रोज जन्म धरना री ।
दुख सुख बेड़ी बिषम भोग करना री ॥
भुगतैं चौरासी खान जुगन जुग चारी ।
बिना सतगुरु के धृग जीवन संसारी ॥३॥

लावनी

१. मूल=जड़ की बात; स्वरूप का ज्ञान । पारपुरुष=परमपुरुष परमात्मा ।

२. यह…लाई=हाय ! इस दुर्लभ नर-देह में प्रभु से लौ नहीं लगाई ।

३. गिरसैगा=ग्रस लेगा, निगल जायेगा । विषमभोग करना=कठिन दण्ड भोगना है ।

कोई भेटै दीनदयाल डगर बतलावै ।
जेहि घर से आया जीव तहाँ पहुँचावै ।।
दरसन उनके उर माहिं करै बड़भागी ।
उनके तरने की नाव किनारे लागी ।।
कहिं वे दाता मिल जायँ करैं भवपारी ।
बिन सतगुरु के धृग जीवन संसारी ।।४।।

सतसँग करना मन तोड़ सरन संतन की ।
अंदर अभिलाषा लाग रहै चरनन की ।।
सूरति तन मन से साँच रहै रस पीती ।
कोई जावै सज्जन कुफर काल को जीती ।
अंमृत हरदम कर पान चुवै चौधारी ।।
बिन सतगुरु के धृग जीवन संसारी ।।५।।

सावन

प्रथम सरन सतगुरु गहो, निरखो नैन निहार ।
वारपार परखत रहो, गुरुपद-पदम अधार ।।
संतचरन चित हित करो, सूरति संध सँवार ।
आदि अंत घर लखि परै, सूझै पिउ-दरबार ।।
अब जग की गति मति कहूँ, बिन सतसँग अँधियार ।
मन इंद्री गुन-लोभ में, बिन सतनाम अधार ।।
यह भव-सिंध अगाध है, बूड़े भवजल-धार ।
बिन सतगुरु भरमत फिरै, कैसे उतरैं पार ।।

---

४. डगर=रास्ता । भवपारी=संसार से पार ।

५. मन तोड=जी तोडकर, पूरा साधन करके । कुफर=इसका असल अर्थ है मुसलमानी मत से भिन्न अन्य मत; पर यहा अधर्मी या दुष्ट से अभिप्राय है ।। चौधारी ··चारो ओर से । चुवै=चूता है, टपकता है ।

सावन

१. सूरति-संध=सुरति अर्थात् लय ध्यान का मेल । सुरजन=सज्जन । बंद=बन्धन ।।

सुरति-सहर घर आदि है, पावैं सुरजन साध।
दुरजन दुख सुख में रहैं, करमबंद बहै वाद॥
जग-रचना जमकाल की, फँसि फँसि मुए अजान।
ज्ञान-गली चीन्है बिना, भरमत सकल जहान॥
पिउ परचै पाये बिना, निसदिन फिरत बेहाल।
जुगन जुगन भटकत फिरै, निज घर सुरति न चाल॥
पिय की सेज सूनी पड़ी, कीन्ह और लगवार।
तासु पुरुष घर ना मिलै, भयउ करम भवभार॥
जिन पिय की बिरहा बसै, छिन-छिन छीन सरीर।
नैन नीर ढुरि-ढुरि बहै, कसकै तन मन पीर॥
प्रेम-प्रीति नदिया बहै, सावन भादों मास।
राति-दिवस लागी रहै, बरसै झड़ि निस-बास॥
पिय की पीर पलपल बसै, सूरति अंत न जाइ।
जैसे चंद्र चकोर को, निरखत नाहिं अघाइ॥
गरज घुमर बदरी बहै, चमकै चमचम बीज।
मोर मोर पिउ पिउ करै, तड़फ तड़फ तन छीज॥
घन सुनि धीर न आवही, पाति लिखूँ पिय पास।
मन सूरत कासिद करूँ, पहुँचै अगम निवास॥
खबर खुसी पिय की सुनूँ, हरखत हिया हित मोर।
तुलसी तलब पिय की लगी, जग तिनका अस तोर॥१॥

मोरे पिय छाँड्यो बिदेस में, सइयाँ संग भयो री बिछोह॥टेक॥
बैरन नींद न आवही, सखि सुख भोर न होइ।
रोइ रैन अँखियाँ बहीं, सखि भरि साँसो साँस॥

बहै वाद=वाद-विवाद में भटकते है। जग-रचना जम काल की=सारी ही सृष्टि मरणशील है। लगवार=यार। अंत=अन्यत्र, और जगह। बहै=घुमड़ती है। बीज=बिजली। कासिद=सदेसा ले जानेवाला। तलब=चाह। तिनका अस तोर=तृण की तरह तोड़कर। बिदेस=कर्मलोक से आशय है, जो देह-सबन्ध का कारण है।

बिरह-लहर-नागिन डसै, बिन सइयाँ तड़प उचाट।
चमक उठै जस बीजुली, छतियन धड़क समात ॥
प्रबल अगिनि हिय में उठै, एरी, धूआँ प्रगट न होइ।
सोई अकेली सेज पै, पूरब लिख्यौ री बिजोग ॥
खबर खोज कासे कहौं, पतियाँ लिखौं केहि देस।
अंग भभूति रमाइहौं, करिहौं मैं जोगिनि-भेस ॥
सतगुरु सोधि सरने रहौं, गहौं पिय डगर निमाप।
मोर मनोरथ सुरति से, तुलसी मिलन मिलाप ॥२॥

चितावनी

क्या सोवत गाफिल, चेत, सिर पर काल खड़ा ॥
जोर जुलम की रीति बिचारी, करि माया से हेत।
जम की जबर खबर नहिं जानी, बाँधि नरक दुख देत ॥
बिनसै बदन अगिन बिच जारैं, खीर खाँड़ रस लेत।
फिरि फिरि काल कमान चढावै, मार लेत खुल खेत ॥
विष-रस-रंग संग बहु कीन्हा, करि-करि बैस बितेत।
बृद्ध बनाय बूढ तन भइया, कारे केस सपेत ॥
सुत दारा आदर अलसाने, बुढवा मरे परेत।
छल बल माया करि-करि गई रे, ये दुनिया के हेत ॥
मनी मान से धनी न चीन्हा, चिड़ियाँ चुग गईं खेत।
तुलसी चरन सरन सतगुर बिन, ग्रासत रबि जस केत ॥ १॥
जिंदड़ी दा साहिब बेली वे।
काहू लगाया बाग बगीचा, काहू लगाया चमेली वे ॥

---

२. उचाट=उदासी, विरक्ति। बिजोग=वियोग। डगर=रास्ता। निमाप=बिना माप या ओरछोर।

चितावनी

१. रसलेत=स्वाद लेता है। खुल खेत=सामने खुले मैदान में। विष=विषय। बैस बितेत=उम्र बितादी। आदर अलसाने=सम्मान करने में आलस्य किया। ग्रासत=ग्रस लेता है, निगल जाता है,। केत=केतु ग्रह।

काहू ने जोड़ा माल खजाना, काहू चुनाई हवेली वे ।।
तुलसी सोध बोध सतगुर को, यह संगत अलबेली वे ।।२।।

होली

थिर न कोइ या जग में री, सौदागर लादि चले री ।।
जो कुछ माल भरो भरती में, दुख-सुख करम करे री ।।
भीषम करन द्रोन जरजोधन, भात्रीबस भरमि मरे री ।
राज रनखेत लरे री ।।

रावन लंकपती पै हतो, सो रती नहिं बास बसे री ।
पंडौ पाँच गये तजि देही, सोई हाड हिमाले गले री ।
डगर जम ने घटघेरी ।।

जो-जो देह धरे तनधारी, राजा रंक रचे री ।
को नर नारि पसू गति गावे, भव-सुख-सोक पके री ।
लखे नहिं आदि अजे री ।।

पंडित भेष भगति नहिं जाने, ग्यान के मान भरे री ।
सतगुर सोध बोध बिन मारग, जमपुर फाँस फँसे री ।।
भली तुलसी मति फेरी ।।१।।

कोइ पूछो री या सतगुर से ।
बाल तरुन बिरधापन बीता, प्रीत करी सोइ रीत सखी नहिं धुर से ।।
जोग ग्यान बैराग बिरह नहिं, घटत स्वास नित सुर से ।।
बीतत बदन बिषय-रस मांहीं, भेंट नहीं पिया-पुर से ।।

---

२. दा=का (पंजाबी प्रयोग)। बेला=सहायक, सहारा।

होली

१ जरजोधन=दुर्योधन। रती=थोड़ा-सा भी। घटघेरी=चारों ओर से घेर ली। भव-सुख-सोक-पके=संसार के सुख-दुःख मे पचते रहे। अजे=अजेय; अजन्मा भी अर्थ हो सकता है। भेष=भेषधारी साधु। मान=अभिमान।

२. बीतत=क्षीण होता जा रहा है। पिया-पुर=प्रियतम का नगर; ब्रह्मलोक।

हिये में हिलोर पिया बिन प्यारी, उठत अगिनि जिया झुरसे ॥
तुलसी ताप तपैदिक माहीं, मरत जिया बिन जुर से ॥२॥

शब्द

कछू न सुहाय मोकों पिया के बियोगी ॥
बिरह की बेली हेली फैली चहुँ दिसकूँ, दरद-दुखी जस रोगी ॥
अस री हिलोर मोर मन आवै, तन तजि अब न जियोंगी ॥
हार-सिंगार सखि नीको न लागै, माहुर घोर पियोंगी ॥
रैन न चैन दिवस दुख बीते, आवत नींद न ओंगी ॥
तुलसी तलब मिटै सतगुर से, चित्त धर चरन छुवोंगी ॥१॥

एरी आली, संत-चरन सुखबास ॥
अंत सखी सुख नेक न पैहो, सहिहो री जम की त्रास ॥
भाई बंद कुटुम्ब सुत नारी, इन सँग रहो रीं उदास ॥
यह सब समझ-बूझ भवसागर, लख चौरासी-फाँस ॥
जुग-जुग जनम धरे तन तुलसी, आवागमन-निवास ॥२॥

सोहागिन सुन्दरी, तुम बसहु पिया के देस ॥
नैहर-नेह छाँड़ि देवो री, सुन सतगुर-उपदेस ॥
कोटि करो इहाँ रहन न पैहो, क्या धनि रंक नरेस ॥
प्रभु के देस परम सुख पूरन, निरभय सुनत सँदेस ।
जरा-मरन तन एक न व्यापै, सोक मोह नहिं लेस ॥
सब से हिलमिल बैर बिसन तज, परम प्रतीत प्रवेस ।
दम पर दम हरदम प्रीतम सँग, तुलसी मिटा कलेस ॥३॥

हिलोर=दर्द की कसक या मरोड़। झुरसे=झुलसता है। तपैदिक=क्षयरोग। जुर=ज्वर।

शब्द

१. हेली=हे सखी। माहुर=विष। ओंगी=चुप्पी, चैन। तलब=चाह, गहरी खोज।

३. नैहर=मायका, पीहर; माया का लोक। बिसन=व्यसन, बुरे कर्म।

साखी

तन मन से साँचा रहै, गहै जो सतगुर बाँह ।
काल कधी रोकै नही, दे बताइ धुर राह ॥१॥

अब समझे से का भयो, चिड़ियाँ चुग गईं खेत ।
चेत किया नहिं आपमें, रहे कुटुंब के हेत ॥२॥

आँखी में जाले पड़े, काढै कौन निकारि ।
जब सथिया नस्तर भरै, सुरति-सलाई डारि ॥३॥

जुलमी की जाली पडे, बड़े-बड़े उमराव ।
दाँव कधी लागै नहीं, भागन कवन उपाव ॥४॥

खाय पिये उतना रखै, बाकी रखै न पास ।
और आस ब्यापै नहीं, सतगुरु का बिस्वास ॥५॥

विस्वामित्र वसिष्ठ को, भयो परस्पर बाद ।
उन तप को कीन्हा बड़ा, इन सतसंग अगाध ॥६॥

जल मिसरी कोइ ना कहै, सरबत नाम कहाय ।
यों घुलके सतसँग करैं, काहे भरम समाय ॥७॥

सूरा रन में सीस को, धरै हथेली माहिं ।
सरा सती जरि जाय जो, पिल पैठै घर माहिं ॥८॥

साखी

१. कधी=कभी । धुर=सही , ठीक-ठिकाने को ।

३. सथिया=जर्राह । नस्तर भरै=चीरा लगाते है ।

४. जाली=जाल, फंदा ।

५. बाकी=अतिरिक्त वस्तु । और आस ब्यापै नही=दूसरों की आशा नही सताती ।

६. उन ·· ·अगाध=विश्वामित्र ने तप को बडा बताया, और वसिष्ठ ने सत्संग को बडा कहा ।

७. समाय=पडे ।

८. सरा=अग्नि, चिता । पिल=हिम्मत के साथ घुसकर । घर=प्रियतम (परमात्मा) के सत्यलोक से आशय है ।

मुरसिद सतगुर चरन का, आठ पहर अनुराग ।
सो भागे भव-चक्र से, उनको लगा न दाग ॥९॥

नरतन दुरलभ ना मिलै, खिलैं कँवल रसमाँय ।
खाय अमर फल अगम के, जो सतगुरु सरनाय ॥१०॥

---

९. दाग=(माया का) कलंक ।

१०. कँवल=हृदय-कमल से आशय है । रसमाँय=ब्रह्मानन्द में । अमरफल=मोक्ष ।